

नारद पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

॥

सम्पादक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ
और अठारह पुराणों के भाष्यकार ।

★

प्रकाशक-

संस्कृति संस्थान

खवाजा फुतुव, वेद नगर, बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम

सस्कृति सस्थान,

• हवाजा बुन्दुब, (वेदनगर) बरेली

★

सम्पादक :

ग० श्रीराम शर्मा आचार्य

★

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम जनोपयोगी सस्करण

१९७१

★

मुद्रक

बिनोदकुमार मिश्र

राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,

आर्यसमाज रोड, मयुरा

★

मूल्य

सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द !

“नारद पुराण” के इस दूसरे खण्ड में कुछ ऐसे विषयों का समावेश हुआ है, जो सामान्यतः पुराणों से सम्बन्धित नहीं समझे जाते। उदाहरणार्थ इसमें ज्योतिष-शास्त्र का विषय इतने विस्तार से दिखा गया है कि उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है। उसी प्रकार विविध देवताओं के मन्त्र-विधान भी समस्त क्रियाओं तथा उपासना विधि के साथ खूब समझाकर लिखे गये हैं। यद्यपि रघुनाभाव के कारण हम इन विषयों का ध्यान पूर्ण रूप से नहीं कर सके हैं तो भी उसका जितना अंश हमने ग्रहण किया है, वह भी पाठकों को पर्याप्त उपयोगी और ज्ञान धर्मक प्रतीत होगा इसमें सन्देह नहीं।

पुराणों का मुख्य लक्षण सृष्टि और प्रलय, मन्वन्तरो का वर्णन, ऋषि और राजवंशों का इतिहास आदि पांच विषयों को ही माना गया है और त्रिविपुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि कई प्रसिद्ध पुराणों में उसका ध्यान भी रखा गया है, पर अन्य कितने ही पुराणों में इन विषयों को संक्षिप्त करके अन्य जीवनोपयोगी विषयों को भी सम्मिलित कर दिया गया है। “अग्निपुराण” तो इस दृष्टि से प्रसिद्ध है ही, जिसे विद्वान् लोग प्राचीन काल का “विश्वकोश” कह कर सम्मानित करते हैं। इतने ज्योतिष, आयुर्वेद, मूत्र निर्माण, गृह निर्माण, युद्ध शास्त्र, स्वप्न-विज्ञान, शत्रुन विचार, रत्न परीक्षा, पशु चिकित्सा, छन्द शास्त्र, व्याकरण, योग शास्त्र आदि सौ-से-कई विषयों का विवेचन किया गया है। इसी प्रकार “गरुड पुराण” में समस्त रोगों की औषधियों तथा निरुत्सा प्रणाली का इतने विस्तार में वर्णन किया गया है कि उसमें से आयुर्वेद का एक साङ्गो-पाङ्ग ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है। इसके अतिरिक्त ज्योतिष, सामुद्रिक,

स्वर-विज्ञान, रत्न परीक्षा और मृत्क सम्पन्धी कर्मकाण्ड का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्य पुराणों में भी विभिन्न देवताओं की उपासना की प्रधानता देकर उनकी उपासना विधि तथा माहात्म्य का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

इस प्रकार पुराणों में विविध विषयों का सग्रह देखकर कितने ही विद्वान्, विशेष रूप से विदेशी आलोचक, विभिन्न पुराणों के अमली नूतनी होने की चर्चा किया करते हैं और उनका अपनी साहित्यिक कसौटी पर कस कर उनके बाल का निर्णय किया करते हैं। इधर पुराने विचारों के धार्मिक मनुष्य सभी पुराणों को भगवान् ब्रह्मवास द्वारा प्रणीत ही मानते हैं और उनमें किसी प्रकार की मिलावट की बात उनको किसी प्रकार माननीय नहीं होती। वह इस बात को धार्मिक श्रद्धा का विषय कहते हैं, जिनमें तर्क या खोज-बीन की कोई गुंजायश नहीं। उनका कहना है कि यदि हम श्रद्धापूर्वक इन ग्रन्थों का पारायण करेंगे तो उसमें हमारा कल्याण ही होगा।

पर यदि हम इन दोनों प्रकार के चरमवादियों का ध्यान न करके स्वतन्त्र बुद्धि से पुराणों का पारायण और मनन करें तो यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पुराण चाहे जिसके बनाये हों, उनका लक्ष्य सर्वसाधारण में धार्मिक भावना को जागृत और जीवित रखना ही है। सामान्य जनता के व्यक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे वेद और उपनिषदों का अध्ययन करके धर्म और अध्यात्म के गूढ़ गम्भीर तत्वा को हृदयगम कर सकेंगे। उनका आश्रय पुराण ही सिद्ध होने हैं। उनमें वे महत्तम में समस्त में आने लायक कथाओं और उपाख्यानो को पढ़कर या सुनकर धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाये रहते हैं और आचार विचार, सामाजिक व्यवहार, व्यक्तिगत सुदाचार आदि के सम्बन्ध में उपयोगी शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय जन जीवन की दृष्टि से इन ग्रन्थों की उपयोगिता अनेक अंशों में माननी ही पड़ेगी।

पुराणों से एक लाभ और है कि इनसे प्राचीन भारत की सभ्यता, सस्कृति, रहन-सहन का परिचय मिलता है, और पाठक उनसे कई प्रकार की सद्प्रेरणायें प्राप्त कर सकते हैं। हम यह नहीं कहते कि पुराणों में जैसा प्रायः कहा गया है, उनमें घटनायें लाखों, करोड़ों वर्ष पुरानी हैं। यह तो एक प्रकार की पौराणिक शैली है कि प्रत्येक घटना को लाखों करोड़ों ही नहीं अरबों खरबों वर्ष पुरानी कह देना, जब पृथ्वी का अस्तित्व भी न था। पर अपनी बात को ठीक सिद्ध करने का पुराणकारों ने एक उपाय यह निकाल लिया है कि वे इन तनाम घटनाओं को इसी 'कल्प' से सम्बन्धित नहीं बतलाते, बरन् प्रलय से पूर्व इसी पृथ्वी या किसी अन्य पृथ्वी पर भी उन घटनाओं का होना संभव मानते हैं।

कुछ भी हो विद्वानों के मतानुसार कोई भी पुराण दो हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इस मत को सत्य मान लेने पर भी, यदि हम पुराणों द्वारा उठ द्यो हजार वर्ष पुराने समाज का रहन-सहन, सामाजिक और सामीप्य जीवन, व्यापार-व्यवसाय, आर्थिक जीवन, राजनीतिक परिस्थिति, वस्त्राभूषण, खान पान, जातीय रीति रिवाज आदि की झलक प्राप्त कर सकें तो यह भी कम महत्त्व पूर्ण नहीं है। भारतीय इतिहास अन्धकार में डूबा हुआ है, पुराणकारों ने उसमें वर्णित उपाधवानों की प्रभावयुक्त बनाने के उद्देश्य से अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इसलिये पुराणों का विश्लेषण करने से हम अपने सांस्कृतिक इतिहास की बहुमूल्य सामग्री पा सकते हैं।

पुराणों के अध्ययन से जो सबसे मुख्य बात प्रकट होती है वह है तीर्थों तथा दान और पुण्यादि का महत्त्व स्थापित करना। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि पुराणों के रचयिता प्रायः सभी के सभी वाह्य धर्म, उनकी वृद्धि (उप वृद्धि) और प्रचार करने वाले भी वाह्य ही थे और वाह्यों का वर्ण-धर्म धार्मिक कृत्य करावा और दान-दक्षिणा लेना

निश्चित किया गया है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि वे तीर्थों तथा व्रत और पर्वों का महत्त्व अधिक से अधिक बढ़ावें और जिस प्रकार समभव हो भरपूर दान प्राप्त करें।

“नारद पुराण” में ही समस्त तिथियों को व्रत करने की इतना अधिक बढ़ाया है कि वर्ष का एक भी दिन बिना व्रत के नहीं बचता। एकादशी के महत्त्व का तो कहना ही क्या है। पुराण में सम्पूर्ण उत्तरार्ध में उसी का प्रतिपादन किया गया है। उसी के प्रसंग में समस्त प्रमुख तीर्थों का माहात्म्य भी वर्णित कर दिया गया है। गया, काशी, प्रयाग, हरिद्वार, जगन्नाथ, पुष्कर, मथुरा, वृन्दावन आदि समस्त तीर्थों का वर्णन और वहाँ पर स्नान, ध्यान, दर्शन तथा दान करने का वर्णन इतना बड़ा-बड़ाकर किया गया है कि उससे हमारे कथन की पुष्टि बहुत अच्छी तरह हो जाती है। पर हमने अपने इस “जनोपयोगी सस्करण” में इस प्रकरण को अत्यन्त संक्षेप में ही दिया है। कारण यह कि तीर्थों और व्रतों यह वर्णन तो “स्कन्द पुराण,” “मत्स्य पुराण” “वाराह पुराण” में पर्याप्त किया जा चुका है। “नारद पुराण” की विशेषता तो उनके शिक्षा, कल्प, ज्योतिष आदि के वर्णन को माना गया है। ज्योतिष शास्त्र के कुछ जानकारों ने तो “नारद पुराण” में वर्णित नितिन ज्योतिष का महत्त्व बहुत अधिक बतलाया है। इसलिये जहाँ तक समभव था हमने इस ग्रन्थ में ज्योतिष विषय को देने की चेष्टा की है और हमारा अनुमान है कि ज्योतिष प्रेमियों के लिये वह अवश्य लाभदायक सिद्ध होगा।

फिर भी इस पुराण की लेखन शैली की एक बात से हम सहमत नहीं हो सके। इनमें तीर्थों और व्रतों के माहात्म्य में जो फल लिखा है वह सर्वत्र एक सा लिखा है। अर्थात् जब जिस तीर्थ का वर्णन आया है, उसी को हमारा का सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक पुण्य दायक स्थल बतलाया गया है। यही बात तिथियों के व्रत के विषय में देखने में

आती है। प्रत्येक तिथि के व्रत की जो खोजकर महिषा माई गई है और हर एक का अपार पुण्य बतलाया गया है। हमने एक मामान्य पाठक इसी नतीजे पर पहुँचता है कि इनके लेखकों को किसी तीर्थ या तिथि से कुछ लेना-देना न था, उन्होंने तो दान-दक्षिणा को मुख्य मानकर सब तीर्थों को सूब बढाया-चढाया है। यह बात उनके हित की दृष्टि से लाभदायक हो सकती है, और साधारण तीर्थ-यात्री इन बातों पर ध्यान भी नहीं देते, पर धर्मज्ञाताओं की दृष्टि से ऐसे विरोधाभास से पुराणों का महत्व घटता ही है। हमने इस त्रुटि को अनुभव करके, इस प्रकार के वर्णनों को सशोधन करके ही प्रकाशित किया है जिससे पुराण के मूल अर्थ की कोई हानि न हो। इससे पाठकों को पुराणों का वास्तविक लाभदायक अण प्राप्त हो जाता है। व्रत और तीर्थों का वर्णन सब पुराणों में लगभग एक स्रा ही होने से उसके बार बार पढ़ने में मन भी कम लगता है। इस प्रकार की व्यवस्था पुराण-पाठकों को पसन्द आयेगी और पुराणों के प्रकार में भी सहायक होगी, ऐसा हमारा यह विश्वास है।

—प्रकाशक



विषय-सूची

१.	तिथि आदि का निर्णय	६
२	महापातकी और उपपातकियों का प्रायश्चित्त	२०
३	यममाग निरूपण	...	४० ४ हरि की आराधना	५४
५	अष्टाङ्ग योग वर्णन	७०
६	हरिभक्ति में दोनो लोको म मुख की प्राप्ति	१०१
७	वेदमालि का उपाख्यान	११६
८	यज्ञमालि-मुमालि चरित्र	१३१
९	गुर्निक और उत्तक की कथा	१४२
१०	उत्तङ्ग की विष्णुपद मिलना	१५५
११	जयध्वज चरित्र	...	१६७ १२ मुधर्मा का भाषण	१८१
१३	भगवन्नाम स्मरण से मुक्ति	१९१
१४	शिखा निरूपण	२१७
१५	कल्पवर्णन में गणेशपूजा,ग्रहशांति तथा श्राद्ध निरूपण	२५८
१६	व्याकरण शास्त्र का वर्णन . २८५ १७ निरुक्त वर्णन	३०५
१८	त्रिस्कन्ध ज्योतिष का गणित स्कन्ध	३१८
१९	त्रिस्कन्ध ज्योतिष का जानक स्कन्ध	३६१
२०	त्रिस्कन्ध ज्योतिष का सहिता स्कन्ध	३७५
२१	सक्षिप्त छन्द शास्त्र वर्णन	३८७
२२	शौचाचार और विभिन्न न्यास वर्णन	३९१
२३	देवपूजन विधि	४०५
२४	भगवान राम के मन्त्र की विधि	४२३
२५	विदिध मन्त्रो द्वारा हनुमत-उपासना	४३५
२६	श्रीकृष्ण मन्त्र की अनुष्ठान विधि	४४१
२७	नारद सनक सम्वाद समाप्ति	४५६
२८	एकादशी माहात्म्य वर्णन	४७७
२९	गङ्गा माहात्म्य वर्णन	४८०
३०	गया माहात्म्य और पिडदान विधि	४९६
३१	काशी माहात्म्य वर्णन	५०३

नारद पुराण

(द्वितीय खण्ड)

६

॥ तिथि आदि का निर्णय ॥

तिथीना निर्णय वक्ष्ये प्रायश्चित्तविधि तथा ।
शृणुष्व तन्मुनि श्रेष्ठ कर्मसिद्धयन्तो भवेत् ॥१॥
श्रौत स्मात्तं व्रत दान यज्ञान्यत्कम वैदिकम् ।
अनिर्णीतसु तिथिषु न किञ्चित्फलति द्विज ॥२॥
एकादश्यष्टमी पक्षी पौणमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च ह्युपवासव्रतादिषु ॥३॥
परविद्धा प्रशस्ता स्युर्न ग्राह्या पूर्वमयुता ।
नागविद्धा तु या पक्षी शिवविद्धा तु सप्तमी ॥४॥
दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्या स्यु वदाचन ।
दशं च पौर्णमासी च सप्तमी हरिवासरम् ॥५॥
पूर्वविद्ध प्रकुवाणो नरकायोपपद्यते ।
कृष्णपक्षे पूर्वविद्धा सप्तमी च चतुर्दशीम् ॥६॥
प्रशस्ता केचिदाहुश्च तृतीया नवमी तथा ।
व्रतादीनां तु सर्वेषां शुक्लपक्षो विशिष्यते ॥७॥

महामर्हापि श्री सनकजी न बहा—ह मुनिश्रेष्ठ । भव मैं आपके
।मने तिथिया का निर्णय और प्रायश्चित्त की विधिना बणन —

और बाप श्रवण करे । इससे तमस्त कर्मों की मिद्धि हुआ करती है ॥ १ ॥ हे द्विजवर ! श्रुति स्मृतियों में कहा हुआ व्रत दान तथा वेदोक्त अथ भी कम कलाप निणयन दी हुई तिथियों में करने पर भी कुछ फल नहीं दिया करते हैं ॥ २ ॥ एकादशी—अष्टमी—पष्टी—पूर्णिमा—चतुदशी और अमावस्या एवम् तृतीया उपवास और व्रत आदि के कर्मों में परविद्धा होने पर अर्थात् अगली आने वाली तिथि में विद्धा (विधी हुई) ही परमश्रेष्ठ फल प्रदान किया करती हैं । अतएव गत तिथि से मिली हुई कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए । पंचमी से विधी हुई पष्टी—शिवविद्धा सप्तमी और दशमी विद्धा एकादशी—इसमें भूलकर भी कभी उपवास नहीं करना चाहिए । अमावस्या पूर्णमासी सप्तमी और हरिवामर एकादशी इनका पूव विद्धा ग्रहण किया जावे ता नरक की प्राप्ति हुआ करती है । वाई २ आचाय कृष्ण पक्ष में पूव विद्धा सप्तमी—चतुदशी—तृतीया और नौमी को श्रेष्ठ बनाया करते हैं अथ सब व्रतानि में शुक्ल पक्ष ही श्रेष्ठ माना जाता है ॥३—७॥

अपराहणाच्च पूवाहण ग्राह्य श्रेष्ठतर यत ।
 असम्भवे व्रतादाना गदि गोर्वाहिणकी तिथि ॥८
 महतद्विषय ग्राह्य भगवत्पुदिते रवी ।
 प्रदाय व्यापिनी ग्राह्या तिथिनक्तव्रते सदा ॥९
 उपापितव्य नक्षत्र येनास्त याति भास्वर ।
 तिथिनश्रसयोगविहितव्रतमणि ॥१०
 प्रशप० ग्रापिनी ग्राह्या त्व यथा निष्फल भवेत् ।
 अद्ध रात्रादधा या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथि ॥११
 मव ग्राह्या गुनिश्रेष्ठ नक्षत्रविहितव्रत ।
 यद्यद्गंगायोर्वाप्त नक्षत्र तु दिनद्वय ॥१२
 तपुष्य तिथिभयुक्त नक्षत्र ग्राह्यमुच्यते ।

अर्द्धरात्रद्वये स्याता नक्षत्र च तिथिर्बन्दि ॥१३
 क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद् वृद्धौ वार्या तथोत्तरा ।
 अर्द्धरात्रद्वयव्याप्ता तिथिनक्षत्रसयुता ॥१४
 ह्यमवृद्धिविशून्या जेद ग्राह्या पूर्वा तथा परा ।
 ज्येष्ठानामिश्रित मूल रोहिणी बहिनसयुता ।
 मंत्रेण सयुता ज्येष्ठा सन्तानादिविनाशिनी ॥१५

सर्वदा अपराह्न स पूर्वाह्न को ही परम श्रेष्ठ माना जाया करता है । यदि तिथि व्रत समय में न मिले तो भगवान् सूर्य के उदय काल में दो मुहूर्त भू की ही ग्रहण करनी चाहिए । यदि रात्रि का प्रारंभ होवे तो प्रदोष व्यापिनी तिथि का ही ग्रहण करना चाहिए ॥१५॥६॥ जो नक्षत्र व्रतों के उपासक हैं उन्हें जिस नक्षत्र में सूर्य अस्त हो वही दिन लेना चाहिए । जो ऐसे व्रत हैं जिनमें तिथि और नक्षत्र दोनों का संयोग वाला व्रत किया करते हैं उन्हें प्रदोष व्यापिनी तिथि ही का ग्रहण करना चाहिए । अन्य प्रकार से करने पर वह व्रत चला जाया करता है । यदि नक्षत्र व्यापिनी तिथि आधी रात के पीछे हो तब हे भारद ! उसको नक्षत्र ग्रह में ही ग्रहण करे । यदि अर्द्ध रात्रि व्यापि नक्षत्र दोनों दिन मिलें ॥१७--१२॥ उस समय में पवित्र तिथि युक्त नक्षत्र ग्रहण करने के योग्य माना जाया करता है । यदि दोनों अर्द्ध रात्रियां में तिथि और नक्षत्र हो तो श्राद्ध कर्म में प्रथम तथा वृद्धि वाय्य में अगली ग्रहण करनी चाहिए । हम भारद दोनों अर्द्ध रात्रियों में व्याप्त नक्षत्र तिथि वाली ह्यस और वृद्धि से शून्य तिथि को पूर्वा और परा रूप में लेवे । ज्येष्ठा नक्षत्र से मिला हुआ मूल नक्षत्र-कृत्तिका से मिली हुई रोहिणी एवं अनुशुभ्रा में समन्वित ज्येष्ठा सन्तति आदि के विनाशक होते हैं ॥१२--१५॥

तत मुस्तिथय पुण्या कर्मानुष्ठानतो दिवा ॥१६
 रात्रिप्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते ।

और आप श्रवण करे । इससे तमस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है ॥ १ ॥ हे द्विजवर ! श्रुति-स्मृतियों में कहा हुआ व्रत दान तथा वेदोक्त अन्य भी कर्म कलाप निर्णय नहीं हुई तिथियों में करने पर भी कुछ फल नहीं दिया करते हैं ॥ २ ॥ एकादशी—अष्टमी—पष्ठी—पूर्णिमा—चतुर्दशी और अमावस्या एवम् तृतीया उपवास और व्रत आदि के कर्मों में परविद्धा होने पर अर्थात् अगली आने वाली तिथि से विद्धा (विधी हुई) ही परमश्रेष्ठ फल प्रदान किया करती हैं । अतएव गत तिथि से मिली हुई कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए । पंचमी से विधी हुई पष्ठी-शिवविद्धा सप्तमी और दशमी विद्धा एकादशी—इनमें भूलकर भी कभी उपवास नहीं करना चाहिए । अमावस्या-पूर्णिमासी-सप्तमी और हरिवासर एकादशी इनका पूर्व विद्धा ग्रहण किया जावे तो नरक की प्राप्ति हुआ करती है । कोई २ आचार्य कृष्ण पक्ष में पूर्व विद्धा सप्तमी—चतुर्दशी—तृतीया और नौमी को श्रेष्ठ बताया करते हैं अन्य सब व्रतादि में शुक्ल पक्ष ही श्रेष्ठ माना जाता है ॥३—७॥

अपराह्णाच्च पूर्वाह्णं ग्राह्यं श्रेष्ठतरं यत् ।
 असम्भवे व्रतादीनां यदि पूर्वाह्णिकी तिथि ॥८
 मुहूर्तद्विनयं ग्राह्यं भगवत्प्रदिते रवी ।
 प्रदोषं व्यापिनीं ग्राह्यां तिथिर्नक्तव्रते सदा ॥९
 उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करं ।
 तिथिनक्षत्रयोगविहितव्रतमणि ॥१०
 प्रशपद्यापिनीं ग्राह्यां त्वन्यथा निष्फलं भवेत् ।
 अद्धं रात्रादधो या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथि ॥११
 मयं ग्राह्यां गुनिश्रेष्ठं नक्षत्रविहितव्रते ।
 यद्यद्धं रात्रयोर्प्राप्तं नक्षत्रं तु दिनद्वये ॥१२
 तं पुण्यं नियमगुक्तं नक्षत्रं ग्राह्यमुच्यते ।

अर्धं रात्रद्वये स्याता नक्षत्र च तिथियंदि ॥१३
 क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद् वृद्धौ कार्या तयोत्तरा ।
 अर्धं रात्रद्वयव्याप्ता तिथिर्नक्षत्रसयुता ॥१४
 ह्लासवृद्धिविशून्या चेद् ग्रह्या पूर्वा तथा परा ।
 ज्येष्ठामभिधित मूल रोहिणी वह्निसयुता ।
 मैत्रेण सयुता ज्येष्ठा मन्तानादिविनाशिनी ॥१५

सर्वदा अपराह्न से पूर्वाह्न को ही परम थोड़ा माना जाया करता है । यदि तिथि व्रत समय में न मिले तो भगवान् सूर्य के उदय काल में दो सुहृत् भय शी ही ग्रहण करनी चाहिए । यदि रात्रि का व्रत होवे तो प्रदोष व्यापिनी तिथि का ही ग्रहण करना चाहिए ॥१३॥१४॥ जो नक्षत्र व्रतों के उपासक हैं उन्हें जिस नक्षत्र में मूर्ध्न अस्ते हो वही दिन लेना चाहिए । जो ऐसे ज्ञान हैं जिनमें तिथि और नक्षत्र दोनों का मयोग बाला व्रत किया करते हैं उन्हें प्रदोष व्यापिनी तिथि ही को ग्रहण करना चाहिए । अन्य प्रकार से करने पर वह व्रत चला जाया करता है । यदि नक्षत्र व्यापिनी तिथि आधी रात के पीछे हो तब हे नारद ! उनको नक्षत्र ग्रह में ही ग्रहण करे । यदि अर्ध रात्रि व्यापी नक्षत्र दोनों दिन मिले ॥१०--१२॥ उस समय में पवित्र तिथि युक्त नक्षत्र ग्रहण करने के योग्य माना जाया करता है । यदि दानो अर्ध रात्रियों में तिथि और नक्षत्र हो तो श्राद्ध कर्म में प्रथम तथा वृद्धि काट्य में अगली ग्रहण करनी चाहिए । इस भाँति दोनों अर्ध रात्रियों में व्याप्त नक्षत्र तिथि वाली ह्लास और वृद्धि से शून्य तिथि को पूर्वा और परा रूप में लेवे । ज्येष्ठा नक्षत्र से मिला हुआ मूल नक्षत्र-कृत्तिका से मिली हुई रोहिणी एवं अनुष्ठा से मगन्धित ज्येष्ठा मन्तवि आदि के विनाशक होते हैं ॥१२--१४॥

तत रघुस्तथय पुण्या कर्मानुष्ठानतो दिवा ॥१६
 रात्रिव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगी विशिष्यते ।

हे परम श्रेष्ठ मुने । प्रतिपदा के दिन याग करे, पर्व दिन का चतुर्थ अंश और प्रतिपदा के प्रथम तीन भाग, प्रातःकाल के समय में ही विद्वान् लोगों ने याग करने का समय बतलाया है । यदि दोनों मध्याह्न में अमावस्या अथवा पूर्णिमा हो तो फिर हे विप्रवर । अगले दिन ही पुण्यकाल समझना चाहिए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यदि अमावस्या और पूर्णिमा अगले दिन मगम से पर हों तो फिर पुण्यकाल अगले दिन में ही समझ लेवे । तिथि के क्षय में भी ऐसी ही व्यवस्था होती है ॥ ३६ ॥ सब भक्तों को एकादशी तिथि तो दशमी के वेद्य से रहित ही ग्रहण करनी चाहिए । जो एकादशी दशमी से विद्धा अर्थात् युक्त होती है उसमें व्रतादि करने से तो तीन जन्मों में सञ्चित किये हुए पुण्य का विनाश कर दिया करता है ॥ ४० ॥ यदि एकादशी एक षष्ठा मात्र हो और शेष में द्वादशी हो और इसी तरह से द्वादशी भी त्रयोदशी में हो अगली ही का ग्रहण करना चाहिए ॥ ४१ ॥ यदि एकादशी सम्पूर्ण शुद्ध हो और द्वादशी में भी प्रतीत होती हो और रात्रि के अन्त में त्रयोदशी आ जावे तो वहाँ पर भी निर्णय किया जाता है ॥ ४२ ॥

पूर्वा गृहस्थै सा कार्या ह्यस्य यतिभिस्तथा ।
 गृहस्था सिद्धिमच्छन्ति यतो मोक्ष यतीश्वरा ॥४३
 द्वादश्या तु कलाया न यदि लभ्येत पारणा ।
 तदानो दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथि ॥४४
 शुक्ने वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशोद्वयम् ।
 गृहस्थाना तु पूर्वोक्ता यतीनामुत्तरा स्मृता ॥४५
 द्वादश्या विद्यते रिचिदशमी सयुता यदि ।
 दिनशये द्वितीयैव सर्वेषा परिकीर्तिता ॥४६
 विद्धाप्यैकादशी प्राह्या परतो द्वादशी नचेत् ।
 अविद्यापि निषिद्धैव परतो द्वादशी यदि ॥४७

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेष त्रयोदशी ।
 द्वादशद्वादशीपुण्य त्रयोदश्या तु पारणे ॥४८८
 एकादशी कलामात्रा विद्यते द्वादशीदिने ।
 द्वादशी च त्रयोदश्या नास्ति वा विद्यतेऽथवा ॥४८९
 विद्याप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद् गृहिणा तदा ।
 पतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यनोराभिस्तथैव च ॥४९०

वहा पर यही निगम है कि प्रथम को तो गृहस्थाश्रमी करें और दूसरी को विरक्त लोग करें । क्योंकि गृहाश्रमी तो फलकी सिद्धि के इच्छुक हुआ करते हैं और जो विरक्त हैं उनको मोक्ष की ही माकाह ध्या सुआ करती है ॥ ४८३ ॥ यदि एक कला मात्र भी द्वादशी के न होने से पारणा न होती हो तो दशमीविद्या एकादशी का भी व्रत किया जा सकता है ॥ ४४ ॥ यदि वृष्ण और शुक्ल पक्ष में भी दो एकादशी होवें तो वहा पर भी गार्हस्थ्यश्रमियों के लिये प्रथम और यदि विरक्त लोगों का दूसरी ग्रहण करनी चाहिए ॥४५॥ यदि दिन का क्षय होने पर द्वादशी में भी कुछ दशमी संयुक्त होवे तो फिर सभी के लिये दूसरी ही लेनी चाहिए ॥४६॥ यदि आगे देख कि द्वादशी है ही नहीं तो उस दशा में विद्या एकादशी भी ग्रहण की जा सकती है यदि आगे द्वादशी हो तो अविद्या एकादशी को भी निगिद्व नहा गया है ॥४७॥ एकादशी द्वादशी हो और रात्रि के शेष में त्रयोदशी हो तो त्रयोदशी में व्रत की पारणा करने में बारह द्वादशियों का पुण्य हुआ करता है ॥४८॥ द्वादशी के दिन एकादशी एक कला मात्र ही होवे और त्रयोदशी में द्वादशी हो या न हो तो गृहस्थियों को प्रथम विद्या एकादशी को ही ग्रहण करना चाहिए और जो स्त्रियां पतिहीना विधवा हो इनको और मनियों को दूसरी का ग्रहण करना उत्तम होता है ॥४९॥४९०॥

सम्पूर्ण एकादशी शुद्धा द्वादश्या नास्ति निचन ।

द्वादशा च त्रयोदश्यामस्ति तत्र कथं भवेत् ॥४९१

पूर्वा गृहस्थैः कार्पात्र यतिभिश्चोत्तरा तिथि ।
 उपोष्यैव द्वितीयेति केचिदाहुश्च भक्तितः ॥५२॥
 एकादशी यदा विद्या द्वादश्या न प्रतीयते ।
 द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्रैव चापरे ॥५३॥
 उपोष्या द्वादशी शुद्धा सर्वैरेव न सशयः ।
 केचिदाहुश्च पूर्वा तु तन्मत न समजसम् ॥५४॥
 सक्रातो रविवारे च पातग्रहणयोस्तथा ।
 पारण षोपवासा च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥५५॥
 क्षर्कन्दुपर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमौ दिवा ।
 एकादश्यामहोरात्र भुक्त्वा चाद्रायण चरेत् ॥५६॥

यदि सम्पूर्ण शुद्ध एकादशी हा और द्वादशी कुछ भी नहीं और द्वादशी त्रयोदशी में हो तो वहाँ क्या करना चाहिए ? ऐसा प्रश्न उपस्थित हो सकता है । उनका भी उत्तर यह दिया जाता है ॥५१॥ उस दशा में प्रथम गृहस्थ को करनी चाहिए और द्वितीय यति-विरक्त और सन्यासियों को करनी चाहिए कतिपय विद्वानों का यह भी मत है कि भक्तिभाव के साथ दूसरी ही सबको करनी चाहिए ॥५२॥ यदि एकादशी द्वादशी में वेध करने वाली प्रतीत न होव और द्वादशी त्रयोदशी में हो तो निम्न-देह मभी को उम शुद्धा द्वादशी का ही व्रत करना चाहिए । जो ऐसी दशा में भी प्रथम को उपवास करना बतलाते हैं उनका मत उचित नहीं है ॥५३॥५४॥ जो पुत्र वाला गृहस्थी हो उसको सक्रान्ति-रविवार, व्यतीपात और ग्रहण में व्रत नहीं करना चाहिए और पारणा भी वह न करे ॥५५॥ सूर्य ग्रहण में रात्रि में—शृष्णःशुभो और शिव चतुर्दशी में दिन में तथा एकादशी में दिन-रात्र दोनों समयों में जो भोजन किया करता है तो इस दोष के निवारण करने के लिए उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥५६॥

आदित्यग्रहणे प्राप्ते पूर्वयामभये तथा ।

नाद्याद्वयदि भुञ्जीत सुरापेन समो भवेत् ॥५७॥

अ वाधानेष्टिमध्ये तु ग्रहणे चन्द्रमूययो ।
 प्रार्थश्चिन्ता मुनिथ उ कर्त्तव्यं तत्र याज्ञिके ॥५८
 अ द्रोपराणे जुहुयाद्दशमे सोम इत्यृचा ।
 आप्यायस्व ऋचा चव सोमपास्त इति द्विज ॥५९
 सूर्योपराणे जुहुयाद्दुदुत्य जातवेदसम् ।
 आसत्येनोद्वय चव त्रयो मथा उदाहृता ॥६०
 एव त्रिषु विनिश्चितम् स्मृतिमार्गेण पण्डित ।
 य करोति जनाद्योनि तस्य स्यादक्षयं पणम् ॥६१
 वेदप्रणिहिर्षो धर्मो धर्मस्तुष्यति केशव ।
 तस्माद्धमपरा याति तद्विष्णो परम पदम् ॥६२
 धमा ये कर्त्तुमिच्छन्ति ते व कृष्णस्वरूपिण ।
 तस्मात्तास्तु भवन्त्याधि कदाचिन्नेव वाधते ॥६३

सूर्य ग्रहण म तीन ग्रहर ग्रहणारम्भ के पूव ही मृतक हान से
 भोजन नहीं करना चाहिए । यदि इस मृतक के समय म कोई भोजन
 कर लेता है तो वह मुरापी के ही समान पातकी हो जाया करता है ।
 ॥ ५७ ॥ हे मुनिवर । यदि अवाधानेष्टि के अवसर पर अन्न या गूय
 का ग्रहण पडे तो याज्ञिको को निम्न प्रकार से अवश्य ही प्रायश्चित्त
 करना चाहिए ॥५८॥ हे द्विज । अन्न ग्रहण म दशम म कथित साम —
 आप्यायस्व — सोमपास्ते इत्यादि ऋचाओ म अहृतियो दकर प्राय
 श्चित्त करे ॥५९॥ मृगग्रहण मे उदुब जात वेदसम् — आसत्येन
 और उद्वयम् इन तीन म या क द्वारा अग्नि म आहृतियो देनी
 चाहिए ॥ ६० ॥ जो विद्वान् इस रीति से त्रिषु वा स्मृति वचनानुसार
 निर्णय करके यथाज्ञिक किया करते हैं उ ह अणय पुण्य वन प्राप्त हुआ
 करता है ॥ ६१ ॥ वेदो म ही धम की स्थिति जाती है और धार्मिक
 कर्मो से ही भगवान् केशव परम प्रसन्न हुआ करते हैं । जगत्त्व जो
 पुरुष धम म सदा तत्परता रखते हैं व निश्चय ही भगवान् विष्णु के

परम पद की प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ६२ ॥ जो धर्म के कर्मों के करने की इच्छा रखत हैं वे श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं । अतएव यह ससार का रोम उनको कभी भी पाडा नहीं दिया करता है ॥ ६३ ॥



महापातकी तथा उपपातकियो का प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्ये शृणु नारद साप्रतम् ।
 प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफल लभेत् ॥१॥
 प्रायश्चित्तविहीनस्तु यत्कर्म क्रियते मुने ।
 तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं राक्षसं परिसेवितम् ॥२॥
 कामक्रोधविहीनैश्च धर्मशास्त्रविशारद ।
 प्रष्टव्यां ब्राह्मणा धर्मं सर्वधर्मफलैश्छुभि ॥३॥
 प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखं ।
 न निष्पुनन्ति विप्रेन्द्र सुराभाङ्गमिवापगा ॥४॥
 ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पग ।
 महापातकिनस्त्वेते तत्ससर्गी च पचम ॥५॥
 यस्तु सवत्सर ह्येतै शपनासनभोजनं ।
 सवसेत्सह त यिद्यात्पतित सर्वकर्मसु ॥६॥
 अज्ञानाद् ब्राह्मण हत्वा चोरवासा जटी भवेत् ।
 स्वेनैव हतविप्रस्य कपालमपि धारयेत् ॥७॥

श्री सनकदेवाचार्यजी ने कहा—हे नारद । जिनका वित्त प्रायश्चित्तनादि के द्वारा दोषो से विशुद्ध होजाया करता है उन्हीं को समस्त किए हुए कर्मों का पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है । अतएव परमावश्यक एव अत्यन्त समयोपयोगी समझकर प्रायश्चित्त की विधि का वणन करना चाहना है । आप समाहित हो श्रवण कीजिए । ॥१॥ हे मुने । उपस्थित दोषो का जो प्राय अवश्य ही सभी को होजाया करते हैं उनका प्रायश्चित्त आवश्यक रूप से प्रत्येक को करना ही चाहिये क्योंकि

प्रायश्चित्त के अभाव में किये हुये कर्मों का फल राक्षसगण ही उठा ले जाते हैं और कर्म करने वाले को उनका कुछ भी फल नहीं मिलता है । कर्मों का फल ही अवश्य होता है किन्तु उसका लाभ राक्षसों को ही मिलता है करने वाले को कुछ भी नहीं मिलता क्योंकि प्रायश्चित्त नहीं किया गया है ॥२॥ जो धर्म का फल यथाविधि प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उनको समस्त धर्मों के सम्बन्ध में काम क्रोध से रहित और धर्मशास्त्र के महान विचारद मनीषियों से पूछ लेना चाहिए ॥३॥ हे विपत्तार ! जिस प्रकार मे मरिचा का पात्र चाहे पवित्र नदिया में भी प्रक्षालित किया जावे तो भी वह पवित्र नहीं हो सकता है उसी भाँति भगवान् से विगुण होकर किये गये प्रायश्चित्त भी उसको पवित्र नहीं कर सकते हैं ॥४॥ ब्राह्मण की हत्या मरिचा पान, तथा चोरी करने वाला और इनका सङ्ग करने वाला में सब महान् पातकी कहे गये हैं ॥५॥ जो इन लोगों के साथ एक वप तक निरन्तर उठता बैठता सोता और भोजन किया करता है एक एक साथ निवास करने का सम्बन्ध रखता है वह सभी सत्तमों से पतित हो जाता करता है ॥६॥ यदि अज्ञानवश किसी से ब्राह्मण का वध हो जावे तो उसको पीर वस्त्र और अटा धारण करन चाहिये । जान-बूझ कर यदि कोई विप्र का वध करता है तो उसकी खोपड़ी को लिये उसे भ्रमण करना चाहिये ॥७॥

तदभावे मुनिश्रेष्ठ कापाल वान्यमेव वा ।

तद् द्रव्य ध्वजदण्डे तु धृत्वा वनचरो भवेत् ॥८॥

वन्माहारो वनेशन धारमेव मित्ताशन ।

सम्यक्प्रसन्ध्यामुपासीत निकाल स्नानमाचरेत् ॥९॥

अध्ययनाध्यापनादीन्वर्जयेत्सारमरेद्धरिम् ।

ग्रहाचारी भवन्नित्य गन्धमात्यादि वजयेत् ॥१०॥

तीर्थान्प्रनुदमेच्छेव पुण्याश्चवाश्रमास्तथा ।

यदि वन्यैर्न जीवेत् प्राप्ते भिक्षा समाचरेत् ॥११

द्वादशाब्दं व्रतं युयुदिव हरिपरायण ।

ब्रह्महा शुद्धिमनोति वर्माहंश्चैव जायते ॥१२

व्रतमध्ये मृगैर्वापि रोगैर्वापि निपूदित ।

गोनिमित्तं द्विजार्थं वा प्राणान्वापि परित्यजेत् ॥१३

यद्वा दद्याद् द्विजैर्द्राणां गवामयुतमुत्तमम् ।

एतेष्वन्यतमं कृत्वा ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥१४

हे धिमेन्द्र ! यदि उसकी खोपड़ी प्राप्त न हो सके तो एक काष्ठ की खोपड़ी उमके स्थानापन्न समझकर उसको साथ रखे । और जो भी द्रव्य मुख्य रूप से उसका बंध कर प्राप्त किया हो उसको ध्वजा के दण्ड में बांध कर वन में भ्रमण करना चाहिये ॥११॥ उस वन में जो कुछ भी निवास और भ्रमण करते हुए प्राप्त होवे उसी का दिन में एक बार थोड़ा सा आहार करना चाहिए । नित्य प्रति सन्ध्यावन्दना भी करे और तीनों कालों में स्नान करना चाहिये ॥१२॥ भगवान् का निरन्तर स्मरण करता हुआ पढ़ना पढाना सर्वथा त्याग देना चाहिए । मदा ब्रह्मचर्य धारण करे । गन्ध और माला आदि उत्तम पदार्थों को धारण करने का त्याग कर देना चाहिये ॥१३॥ जो भी परम पावन स्थल एवं तीर्थ हो उन पर भ्रमण करे और यदि वन्य पदार्थों से निर्वाह न हो सके तो गाँवों में भिक्षा ग्रहण करे ॥१४॥ उमके मध्य में वन्य पृणों के द्वारा या किसी रोग से चोट खाकर या गौ-ब्राह्मणों के नेमित्त अपन प्राणा का परित्याग कर देता है और ब्राह्मणों को दश हजार गौओं का दान कर देवे, इन प्रायश्चित्तों में से कोई भी एक शयश्चित्त करने पर ब्रह्महत्या के महा पातक से छुटकारा पा सकता है ॥१३॥१४॥

क्षीक्षित क्षत्रिय हत्वा चरेद्धि ब्रह्महव्रतम् ।

अग्निप्रवेशनं वापि महत्प्रपतनं तथा ॥१५

दीक्षत ब्राह्मण हत्वा द्विगुण व्रतमाचरेत् ।
 आचार्यादियथे चैव व्रतमुक्तं चतुर्गुणम् ॥१६॥
 हत्वा तु द्विजमात्रं च चरेत्सर्वत्सरं व्रतम् ।
 एव विप्रस्य गदिनं प्रायश्चित्तविधिद्विज ॥१७॥
 द्विगुणं क्षत्रियस्योक्तं त्रिगुणं तु विशं स्मृतम् ।
 ब्राह्मणं हति यं शूद्रस्तं मुण्डस्य विदुर्बुधा ॥१८॥
 राजैव शिक्षा कतव्या इति शास्त्रेषु निश्चयः ।
 ब्राह्मणीनां वधे त्वदर्धपादस्यात्कन्यकावधे ॥१९॥
 हत्वा त्वनुपनीताश्च तथा पादव्रतं चरेत् ।
 हत्वा तु क्षत्रियविप्रपण्डितं वृच्छ्रमाचरेत् ॥२०॥
 सर्वत्सरं च वैश्यशूद्रहत्वा तु वत्सरम् ।
 दीक्षितस्य स्त्रियं हत्वा ब्राह्मणां चाष्टवत्सरम् ॥२१॥
 ब्रह्महत्या व्रतं कृत्वा शुद्धो भवति निश्चितम् ।
 प्रायश्चित्तविधानं तु सर्वत्र मुनिसत्तम ॥२२॥

दीक्षा प्राप्त क्षत्रिय का भी वध कर देना पर मही ब्रह्महत्या के शोधक व्रत को करना चाहिए । अग्नि में स्वेच्छया प्रवेश करे या किसी उमर पक्ष से जाँघी के शीरे से निम्न निपात कर प्राणी का त्याग करे ॥१५॥ यदि दीक्षित ब्राह्मण का वध होजावे तो पूर्वोक्त व्रत से दुगुना व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिये । ह द्विज । यह इस रीति से एक ब्राह्मण के लिये प्रायश्चित्त का विधि कही गयी है ॥१७॥ क्षत्रिय व द्वारा जब मही पाप बन जाता है तो उसकी शुद्धि के लिये द्विगुणित विधि बननाई गई है । वैश्य के लिये त्रिगुणी विधि है । यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण का वध कर देता है तो उसको मुण्डस्य कहा जाता है अर्थात् उसकी शुद्धि तभी होती है जब उसे मूमन में मार दिया जावे क्योंकि इसी प्रायश्चित्त का वह पाप होता है ॥१८॥ श स्ववारा का निश्चित विधि व मही है कि सभी वध राजा के द्वारा ही दिये जाने

चाहिए । ब्राह्मणी के वध में उससे आधा और किमी कुमारी बन्धा के वध हो जाने पर चतुर्थ भाग ही प्रायश्चित्त का बतलाया गया है ॥१९॥ जिसका उपनयन नहीं हुआ हो उसके वध में भी चौथाई व्रत बतलाया गया है । ब्राह्मण यदि किसी दुःस्थित का वध कर देवे तो उसे छै वर्ष तप वृत्त बत करना चाहिये । वैश्य के वध में तीन वर्ष और शूद्र के वध में एक ही वर्ष पर्याप्त कहा गया है । यदि दीक्षित विप्र की स्त्री का वध हो जावे तो आठ वर्ष तक वृत्त बत करना चाहिये सभी ब्रह्महत्या के दोष से शुद्धि हुआ करती है । हे मुनि धेछ ! विद्वान् पुरुषों से वृद्ध, आतुर स्त्री और बालकों के वध के पाप को शुद्धि के लिए सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त ही करना आवश्यक है ॥२०—२२॥

वृद्धातुरस्त्रीवालानामर्द्धं मुक्त मनीषिभिः ।
 गौडी पंथी च माघ्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥२३
 चानुर्वर्ण्यैरपेया स्यात्तथा स्त्रीभिश्च नारद ।
 क्षीर घृत चा गोमूत्रमेतेष्वन्यतम मुने ॥२४
 स्नात्वाद्वासा नियतो नारायणमनुस्मरन् ।
 पक्वायसनिभ कृत्वा पिबेच्चैवोदकं तत ॥२५
 तत्तु लोहेन पात्रेण ह्यायसेनाथवा पिबेत् ।
 ताम्रेण वाथ पात्रेण तत्पीत्वा मरणं व्रजेत् ॥२६
 सुरापी शुद्धिं भाप्नोति नान्यथा शुद्धिरिष्यते ।
 अज्ञानादात्मबुद्ध्या तु सुरा पीत्वा द्विजश्चरेत् ॥२७
 ब्रह्महत्याव्रतं सम्यक्तन्त्रिहृत्परिवर्जितं ।
 यदि रोगनिवृत्त्यर्थं मीपधार्थं सुरा पिबेत् ॥ २८
 तस्योपनयनं भूयस्तथा चाद्रायणद्वयम् ।
 सुरासम्पृष्टपानं तु सुराभाडोदकं तथा ।
 सुरापानममं प्राहुस्तथा चन्द्रस्य भक्षणम् ॥२९

बुढ़ की पिठठी की और मधु की निमित्त वी हुई तीत प्रकार की मदिरा समझ लेनी चाहिये ॥२३॥ हे नारद ! चारो बर्णों के पुष्यों और स्त्रियों को मदिरा वर पान कभी नहीं करना चाहिये । शराब पीने वाले को दूध, घृत अथवा गोमूत्र इनमे से किसी भी एक को, स्नान वरके पीले ही वस्त्र धारण वरके भगवान् नारायण के चरणों का स्मरण वर गर्म वर सात २ ही पीना चाहिये ॥२४॥२५॥ उसको सौह, ताम्र या ज्ञीशा के पात्र मे पीकर मृत होजाना चाहिये ॥२६॥ इतना प्रायश्चित्त वरने के बाद ही मदिरा पान वाले की विशुद्धि होती है अन्य किसी भी प्रकार से नहीं हुआ करती है । यदि अज्ञानता से जानबूझ कर मदिरा का पान करता है तो द्विज वा ब्रह्महत्या विशोषक ही व्रत करना चाहिए और इसमे खोपडों के धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है । यदि रोग निवृत्ति क लिये औषध के रूप मे मदिरा पान करना पडे तो पुन उपनयन करना नितान्त आवश्यकता होता है और शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण व्रत भी करने चाहिये । शराब से स्पश किये हुए पात्र का जल तथा चन्द्र मक्षण अर्थात् चन्द्रग्रहण की वेला मे भोजन शराब के पान के तुल्य ही कहे गये है ॥२७--२८॥

ताल च पानस चैव द्राक्ष खार्जूरसम्भवम् ॥३०

माधुक शैलमारिष्ट मैरेय नालिकेरजम् ।

गौडी माध्वी सुग मद्यमेवमेकादश स्मृता ॥३१

एतेष्वन्यतम विप्रो न पिबेद्द्वै वदाचन ।

एतेष्वन्यतम यस्तु पिबेदज्ञानतो द्विज ॥३२

तस्योपनयन भूयस्तप्तकृत् चरेत्तथा ।

सपक्ष वा परोक्ष वा यलाञ्छीर्षेण वा तथा ॥३३

परस्वानामुपादान स्तेयमित्युच्यते बुर्ये ।

शुवर्णस्य प्रमाण तु मन्वाद्यं परिभाषितम् ॥३४

वक्ष्ये शृणुष्व विप्रैर्द्र प्रायश्चित्तोक्तिसाधनम् ।

गवाक्षागतमातंण्डरश्मिमध्ये प्रदृश्यते ॥३५

त्रसरेणुप्रमाण तु रज इत्युच्यते बुधे ।

त्रसरेण्वष्टक निष्कस्तत्त्रय राजसर्पप ॥३६

ताड, कटहल, अमूर, खजूर, महुआ, रीठा, मीरेय, नारियल, पाषाण से घिसी हुई पिट्टी और गुड—इनसे निर्मित की गई ग्यारह तरह की मदिरा हाती है ॥३०।३१॥ इनमें से किसी भी एक तरह की मदिरा को ब्राह्मण को कभी भी नहीं पीना चाहिए । यदि भ्रजानवश द्विज किसी भी एक तरह की मदिरा का पान कर लेता है तो विशुद्धि के लिये फिर उसका उपनयन संस्कार अवश्य ही होना चाहिये और कृच्छ्र व्रत भी करना चाहिए । अब दूसरे चोरी के महापातक के विषय में बतलाया जाता है । जखों के सामने या आँखों के ओंझल में धलाव अथवा चोरी से दूसरे के घन को हड़पने के कार्य को ही विद्वान् पुरुष चोरी कहा करते हैं । सुवर्ण का प्रमाण तो महर्षि मनु आदि ने बताया है ॥३२—३४॥ हे विप्रैर्द्र ! अब मैं उस प्रायश्चित्त की शक्तियों का साधन एवं मान के विषय में बणन करता हूँ । आप समाहित होकर श्रवण करिए । अरोधे म समापतित मूय की किरणों में जो अत्यंत सूक्ष्म धूलिकण उड़त दिखलाई दिया करते हैं उनको विद्वान् धसुरणु कहा करते हैं ऐसे आठ त्रसरेणुओं का एक निष्क होता है और तीन निष्कों का एक राजसर्पप हुआ करता है ॥३५।३६॥

गौरसर्पपस्तत्त्रय रयात्तन्पट्क यव उच्यते ।

यवत्रय कृष्णल स्वान्मापस्तत्पचक स्मृत ॥३७

मापपोडशमान म्यात्सुवणमिति नारद ।

हृत्वा ब्रह्मस्वमशानाद् द्वादशाब्द तु पूर्ववत् ॥३८

वपानध्वजहीन तु ब्रह्महत्याव्रत चरत् ।

गुरुणा यज्ञवर्तुणा धर्मिष्ठाना तथैव च ॥३६
 श्रोत्रियाणा द्विजाना तु हृत्वा हेमं वमाचरेत् ।
 कृतानुतापो देहे च सम्पूर्णे लेपयेद् धृतम् ॥४०
 करीपच्छादितो दग्ध स्तेयपापाद्धिमुच्यते ।
 ब्रह्मस्व क्षत्रियो हृत्वा पश्चात्तापमवाप्य च ॥४१
 पुनर्दंदाति तत्रैव तद्विधानं शृणुष्व मे ।
 तत्र सातपथं कृत्वा द्वादशाहोपवासत ॥४२

ऐसे तीन राज सर्पों का एक सपथ हुआ करता है और छै
 गौर सर्पों का एक मथ होता है । तीन मथों का मिलकर एक कृष्णल
 हुआ करता है । पाँच वृष्णलों का एक माप होता है ॥३७॥ हे मुनि
 यर ! इस तरह से सोलह मापों के मान को सुवर्ण कहा जाया करता
 है । यदि अज्ञानवश किसी ब्राह्मण के धन का हरण कर लेता है तो
 उस दोष से शुद्धता पाने के लिये पूर्वोक्त ब्रह्महत्या शोधक व्रत को ही
 करना चाहिए । इसमें कपात और ध्वज के रखने की आवश्यकता नहीं
 होती है । गुरु यज्ञकर्ता धार्मिक और श्रोत्रिय द्विज के धन का
 अर्थात् सुवर्ण का हरण करे तो ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहिए कि अनु
 ताप करने के पश्चात् अपने समस्त शरीर के अङ्गों में धृत का लेपन
 करे ॥३६—४०॥ फिर प्रज्वलित उपलो में बैठकर आत्म दाह करने
 में पाप से छुटकारा होता है । क्षत्रिय यदि किसी ब्राह्मण के धन का
 अपहरण कर ले तो उसे ब्राह्मण को वापिस लौटाकर पूण रूप में
 पश्चात्ताप भी करना चाहिये । इसका भी एक पूरा विधान है उसे
 मुनि ॥ बारह दिन का उपवास करके सातपथ करे ॥४१॥ २॥

शुद्धिमाप्नोति देवर्षे ह्यन्यथा पतितो भवेत् ।
 रत्नामनमनुष्यस्त्रीधेनुभूम्या दिकेषु च ॥४३
 सुवर्णसदृशेष्वेपु प्रायश्चित्ताद्धमुच्यते ।
 असरेणुसमं ह्यहृत्वा बुयत्सिमाहित ॥४४

प्राणायामद्वय सम्यक् तेन शुद्धयति मानव । ...
 प्राणायामत्रय कुर्याद् धृत्वा निष्प्रमाणकम् ॥४५
 प्राणायामाश्च चत्वारो राजसर्पपमात्रके ।
 गौरसर्पपमान तु हृत्वा हेम विचक्षण ॥४६
 स्नात्वा च विधिवज्जप्याद्गायत्र्यष्टसहस्रकम् ।
 यवमात्रसुवर्णस्य स्तेयाच्छुद्धो भवद् द्विज ॥४७
 आसाय प्रातराभ्य जप्त्वा वै वेदमातरम् ।
 ह्रम कृष्णलमात्र तु हृत्वा सातपन चरेन् ॥४८
 मापप्रमाणे हेम्नस्तु प्रायश्चित्त निगद्यते ।
 गौमूत्रपक्वयवमुग्यर्पणैकेन शुद्धयति ॥४९

हे देवर्षे ! तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है ऐमा न करने पर वह निश्चित रूप से पतित हो जाया करता है । अपहरण में रत्न, आसन मनुष्य स्त्री धेनु भूमि आदि सभी सुवर्ण के सदृश ही मान जाते हैं कि तु इनका प्रायश्चित्त हाता है । प्रसरेण के समान सुवर्ण का हरण कर परम सावधानी के साथ दो प्राणायामों के करन से शुद्धि होजाया करती है । निष्प्र मात्र सुवर्ण की चोरी करने से जो दोष होता है उसकी शुद्धि के लिये तीन बार प्राणायाम करन चाहिए ॥४३—४५॥ राजसर्प के समान सुवर्ण की चोरी में चार प्राणायाम करे । गौर सर्प के बराबर सुवर्ण की चोरी करन पर चतुर पुरुष का स्नान करके आठ सहस्र गायत्री का जप करना चाहिये । द्विज को यव के समान मान वाल सुवर्ण के हरण में प्रातःकाल से सायंकाल तक दसों की जननी गायत्री दधी के मन्त्र का जाप शुद्धि के लिये करना चाहिए तथा कृष्णल के मान के बराबर सुवर्ण के हरण में सातपन्थ्य व्रत करना चाहिये ॥४६—४८॥ अब एक मास भर सुवर्ण की चोरी का प्रायश्चित्त बताया जाता है उग चार का गौमूत्र में पके दूध जो का एक बथ तक भाजन करना चाहिए तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है ॥४९

सम्पूर्णस्य सुवर्णस्य स्तेयं कृत्वा मुनीश्वर ।
 ब्रह्महत्याद्वत्तं कुर्वाद् द्वादशाब्दं समाहित ॥५०॥
 सुवर्णमानान्पूर्णे तु रजतस्तेयकर्मणि ।
 कुर्यात्सातपथं सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥५१॥
 दशनिष्कातपर्यंतमूद्धं निष्कचतुष्टयात् ।
 हृत्वा च रजतं विद्वान्कुर्याच्चन्द्रायणं मुने ॥५२॥
 दशादिशतनिष्कातं यं स्तेयी रजतस्य तु ।
 चाद्रायणद्वयं तस्य प्रोक्तं पापविणोद्यकम् ॥५३॥
 षाताद्बद्धं सहस्रात् प्रोक्तं चाद्रायणद्वयम् ।
 राहस्यादधिकस्तेये ब्रह्महत्याद्वत्तं चरेत् ॥५४॥
 काश्यपित्तलमुष्येषु ह्ययस्काते तथैव च ।
 सहस्रनिष्कमाने तु पराकं परिकीर्तितम् ॥५५॥
 प्रायश्चित्तं तु रत्नानां स्तेये राजतवत्स्मृतम् ।
 गुरुत्पगतानां च प्रायश्चित्तमुदीर्यते ॥५६॥

हे मुनीश्वर ! पूरे सुवर्ण भर प्रमाण के सुवर्ण (सोने) की चोरी करने पर बहुत ही सावधानता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या-पाप के व्रत की ही करना चाहिये ॥५०॥ एक सुवर्ण के प्रमाण से षड् चादी की चोरी में सातपथ व्रत के नियम बिना यह पणित ही रहा करता है उसकी शुद्धि नहीं होती है ॥५१॥ हे मुने ! चार निष्क के

भी श्रमसाग्न (एह शिव का मोक्ष) एह महत्त्व की चींटी में शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त में पराकृष्ण की स्मरणा कही गयी है । रत्नों की चारी में प्रायश्चित्त चारी की ही चारी के मुख करना चाहिए । अथ भीतर मन्त्रान्तर गुरु तन्त्रागमो के प्रायश्चित्त को बतनाया जाता है ॥१६॥

अज्ञानान्मातर गतया तत्तमानीमयापि वा ।
 स्वयमेव स्वमुष्ण तु च्छिजात्पापमुदीरयन् ॥१७॥
 हस्ते गृह्णीत्या मुष्ण तु गच्छेद् यं नैश्रंती दिशम् ।
 गच्छन्मार्गं गुप्तं दुःखं न कदाचिद्विचारयेत् ॥१८॥
 अपश्यन्गच्छन् गच्छेत्प्राणान्तं य स मुद्वपति ।
 मन्त्रप्रपन्नं वापि कुर्वात्पापमुदाहरन् ॥१९॥
 स्ववर्णोत्तमवर्णस्त्रागमने स्वविचारत ।
 ब्रह्महत्याग्रत कुर्वाद् द्वादशाब्द समाहित ॥२०॥
 अमत्याभ्यामता गच्छेत्स्वर्णं चात्तमा तथा ।
 वारीपवह्निना दग्धं शुद्धिं याति द्विजोत्तम ॥२१॥

 ब्रह्महत्याग्रत कुर्वान्नवाब्दान्विष्णुतत्परः ॥२२॥

अज्ञान वश अपनी माला अथवा सीनेकी माला के साथ गमन करने वाले पुरुष को अपने आपके क्रिय हुए पातक को प्रकट करते हुए अपने ही हाथों में दोनों अण्डजोगी को काट डालना चाहिए ॥ १७ ॥ फिर उन अण्डजोगी को हाथ में लेकर नैश्रंती दिशा में गमन करे और मार्ग में दुःख और मुख का कुछ भी विचार नहीं करे ॥१८॥ ऐसे कुछ भी न देखकर चलन २ प्राणों का अन्त हो जाने पर उस पातक से शुद्धि हो जाती है अथवा अपने आपको प्रकट करता हुआ किसी

पर्वत की शिखर से निम्न पात कर डाले ॥५६॥ अविचारवश अपने वर्ण से किसी उच्च वर्ण की स्त्री के साथ गमन कर लेवे तो सावधानी के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या शोधक व्रत को करे ॥६०॥ यदि दुर्भाग्य से काम के बशीभूत होकर किसी सवर्ण या उत्तम वर्ण की स्त्री के साथ गमन करले तो हे द्विज श्रेष्ठ उपलो की प्रज्वालित अग्नि में प्रवेश करने पर ही शुद्धि होती है ॥६१॥ यदि वीर्यपात से पूर्व ही निवृत्ति करले तो भी ब्रह्महत्या व्रत को प्रायश्चित्त के लिये करे और शुक स्खलन करने पर अग्नि में भस्मीभूत होजावे तभी शुद्धि होती है ॥६२॥ यदि सवर्णा अथवा उत्तमवर्णा स्त्री की योनि में वीर्य का स्खलन करके ही निवृत्ता होवे तो विष्णु भक्ति करता हुआ नौ वर्ष तक ब्रह्महत्या-शोधक व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥६३

वैश्याया पितृपत्न्या तु पडब्द व्रतमाचरेत् ।

गत्वा शूद्रा गुरोर्भार्या त्रिवर्ष व्रतमाचरेत् ॥६४

मातृप्वसार च पितृप्वसारमाचार्यभार्या श्वशुरस्य पत्नीम् ।

पितृव्यभार्यामथ मातुलानी पुत्री च गच्छेद्यदि काममुग्ध ॥६५

दिनद्वये ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्यथाविधि ।

एकस्मिन्नेव दिवसे बहुवार त्रिर्वापिकम् ॥६६

एकवार गते ह्यब्द व्रतं कृत्वा विशुद्धयति ।

दिनत्रये गते वह्निदग्धं शुष्येत नान्यथा ॥६७

चाडाली पुष्कसी चैव स्तुपा च भगिनी तथा ।

मिश्रस्त्रिय शिष्यपत्नी यस्तुप्वै वामतो व्रजेत् ॥६८

ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्स पडब्दं मुनीश्वर ।

अकामतो व्रजेद्यस्तु सोऽश्कृच्छ समाचरेत् ॥६९

महापातविससर्गं प्रायश्चित्तं निगद्यते ।

प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकमफल लभेत् ॥७०

यदि वैश्य वर्ण वाली पिता की असवर्णा पत्नी के साथ समागम

कर लेवे तो भी छँ वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या शोधक व्रत करना चाहिए तथा गुरुदेव की शुद्धवर्णा भार्या में गमन करके तीन वर्ष तक वही व्रत करना चाहिए ॥६४॥ यदि कोई काम स मोहित होकर मौसी, बुधा, गुरुश्रानी, साम, चाची, मामी और पुत्री से समागम कर सेवे और दो बार समागम करने पर ब्रह्महत्या शोधक व्रत के करने से ही शुद्धि होती है । एक ही दिन में अनेक बार गमन करने पर तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत करने से शुद्धि होती है ॥६५॥६६॥ केवल एक ही बार समागम करे ता एक वर्ष में शुद्धि हुआ करती है । बराबर तीन दिन तक समागम करते रहने पर बिना अग्नि में भस्मीभूत हुए बिना शुद्धि नहीं होती है ॥६७॥ चाडाली, पुक्कसी, पुत्री, बहिन, मित्र की पत्नी, शिष्य पत्नी से कामना पूर्वक गमन करने से हे मुनीश्वर । छँ वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या व्रत करे । बिना ही कामना के गमन करने पर एक वर्ष तक वृच्छ व्रत करने का विधान है ॥६८॥६९॥ अब महा पातकियों से सम्भक रखने के दोष का प्रायश्चित्त बतलाया जाता है क्योंकि जिसका मन प्रायश्चित्त करने पर शुद्ध हो जाता है उसी को फिर किसी सत्कर्म करने का फल प्राप्त हो सकता है ॥७०॥

यस्य येन भवेत्सगो ब्रह्महादिचतुर्वर्षि ।

तत्तद् व्रतं स निर्वर्त्यं शुद्धिमाप्नोत्यसशयम् ॥७१॥

अज्ञानात्पचरात्रं तु सगमेभिः करोति यः ।

कायकृच्छ्रं चरेत्सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥७२॥

द्वादशाहे तु ससर्गे महासातपन स्मृतम् ।

मग कृत्वाद्द्विमासं तु द्वादशाहमुपावसेत् ॥७३॥

पराको माससर्गे चाद्रिमासत्रये स्मृतम् ।

कृत्वा सगं तु पण्मासं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥७४॥

किञ्चिन्पूनाब्दमगे तु पण्मासवृत्तमाचरेत् ।

एतच्च त्रिगुणं प्रोक्तं ज्ञानात्सगे यथान्नमम् ॥७५॥

महूर्ध्वं ननुत्तं गतं वराहं मूषकं तथा ।
 मार्जारजाविमं श्वानं हत्वा बुधशुक्रं तथा ॥७६
 कृच्छ्रादिमावरद्विप्रार्जितकृच्छ्रं धाश्वहा चरेत् ।
 तप्तकृच्छ्रं करिण्ये परान् गोन्ये स्मृतम् ॥७७

एतेष्वन्यतम हत्वा द्वादशाहमभोजनम् ।
 प्राजापत्यव्रत कुर्याद्व्रतो वण्मूनभोजने ॥८२
 चाद्रायणत्रय प्रोक्त शूद्रोच्छिष्टस्य भोजने ।
 रजस्वला च चाडाल महापातकिना तथा ॥८३
 सूतिका पतित चैव उच्छिष्ट रजकादिकम् ।
 स्पृष्ट्वा सचैल स्नायीत धृत सप्राशयेत्तथा ॥८४

कामनापूर्वक गाय के वध करने पर तो विद्वान् पुरयो ने उस पाप से शुद्ध होने के लिये किसी भी प्राणिव्रत का उल्लेख ही नहीं किया है । शरवत, शंखवा, आसन, पुष्प, फल, मूल, मक्ष-भीज्य की चोरी करने पर केवल पञ्चगव्य लेने ही से शुद्धि हो जाया करती है । शुष्क काष्ठ, तृण, वृक्ष, गुड, चमडा, वस्त्र, मास की चोरी करने पर शुद्धि के लिये तीन दिन तक उपवास करे । टटीरी, चन्वा, हग, करेडुआ, उल्लू, सारस, क्यूतर, मुरगावी, तोता, नीलकण्ठ, बगुना, मोह, फलुआ इनमे से किसी का भी वध करने या बन जाने पर बाह्य दिन तक भोजन का त्याग कर देना चाहिए । पावाना, प्रभाष के छा-पी लेन पर शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करे ॥७८—८२॥ यदि शूद्र का उच्छिष्ट को खा लेवे तो तीन चाद्रायण व्रत करे । रजस्वला स्त्री, चाडाल, महापातकी, सूतिका, पतित उच्छिष्ट, घोवी आदि का स्पर्श हो जाने पर बहरो के सहित स्नान कर धून का प्राशन करना चाहिए ॥८३॥८४॥

गायत्री च विशुद्धात्मा जपेदष्टशत द्विज ।
 एतेष्वन्यतम स्पृष्ट्वा भजानार्थादि भोजने ॥८५
 त्रिरात्रो पोषणाच्छुद्धयेत्पञ्चगव्याशनाद् द्विज ।
 स्नानदानजपादा च भोजनादो च नारद ॥८६
 एषामन्यतमस्यापि शब्द यः शृणुयाद्भवेत् ।
 उद्धमेद्भुक्तमन्न तत्स्नात्वा चोपवसेत्तथा ॥८७

द्वितीयेऽह्नि घृतं प्राश्य नृद्धिमाप्नोति नारद ।
 व्रतादिमध्ये यद्यथा शृणुयाद्दधनिमप्युत ॥८८
 अष्टोत्तरमहस्रं तु जपेद् व वेदमातरम् ।
 पापानामधिकं पापं द्विजदैवतनिन्दनम् ॥८९
 न दृष्ट्वा निष्कृतिस्तस्य सर्वशास्त्रेषु नारद ।
 महापातकनुल्थानि यानि प्राक्तानि सूरिभिः ॥९०
 प्रायश्चित्तं तु तेषां च बुयादव यथाविधि ।
 प्रायश्चित्तानि यं बुधाः नारायणपरायण ॥९१

इसके भी उपरांत हे द्विज ! शृद्धि के लिए आठमो गायत्री मंत्र का जाप करे । यदि उपयुक्तो मंत्र में किसी भी एक का स्मरण कर धनवाने में भोजन कर लेवे तो तीन रात्रि पय तक घृत रखन पर फिर पञ्चगव्य का प्राशन करने से शृद्धि होती है । हे नारद ! दान स्नान जाप भाजन आदि मन्त्रमंत्र से किसी क मन्त्र का भी श्रवण कर लवे या किसी से भाषण कर लवे तो ख्राए हुए भोजन का श्रवण कर देवे तथा फिर स्नान करके उपवास करना चाहिए ॥ ८५-८७ ॥ हे नारद ! फिर दूसरे दिन घृत खाटकर शृद्ध होता है । यदि व्रत आदि मंत्र भी इनकी व्रति का श्रवण कर लेवे तो आठ महस्र गायत्री का जाप करे । देवता और विप्रा को निन्दा करना ममन्त अथवा पाप से भी बड़ा पाप होता है ॥८८॥८९॥ हे नारद ! किसी शास्त्र में उसका प्रायश्चित्त नहीं लिखा है । इनका भी विद्वानों ने महापातको क ममान पातक बतलाया है ॥९०॥अतएव उनका भी यथाविधि प्रायश्चित्त करना चाहिए । जो मनुष्य भगवान् में तत्परता रखकर प्रायश्चित्त किया करता है उसके ममन्त पापों का नाश हो जाता है । अथवा वह पतित ही रहा करता है ॥९१॥

तस्य पापानि नश्यन्ति स्यमया पतिनो भवन् ।

यस्तु रागादिनिमुक्तो ह्यनुतापगमन्विन ॥९२

सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः ।
 महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥६३
 विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरोयत ।
 नारायणमनाद्य त विश्वाकारमनामयम् ।
 यस्तु सस्मरते मर्त्यः स मुक्त पापकोटिभिः ॥६४
 स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यातः प्रणमितोऽपि वा ॥६५
 नाशमत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमनः सताम् ।
 सम्पर्काद्य द वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥६६
 सर्वपापविनिर्मुक्त स प्रयाति हरे पदम् ।
 सकृत्सस्मरणाद्विष्णोर्नश्यति क्लेशसञ्चया ॥६७

जो पुरुष राग से रहित होते हुए इन पापों के लिये हृदय में प्रायश्चित्त किया करता है और समस्त प्राणियों पर दया का भाव रखकर निरन्तर भगवत्स्मरण में पराधन रहा पातकों से और अन्य प्रकार के सभी पापों से मुक्त होजाया करता है । उसको भगवत्स्मरण होने के कारण सब पापों से मुक्त ही समझना चाहिए ॥६३—६४॥ राज्ञो के मन में विराजमान भगवान् विष्णु का स्मरण—अर्चन, ध्यान और नमन से सब पापों को क्षार कर दिया करते हैं । जो सम्पर्क या मोह के बन्ध श्री हरि का पूजन किया करता है वह सम्पूर्ण पातकों से मुक्त होकर अन्त में हरि के परम धाम को प्राप्त किया करता है । भगवान् के स्मरण का बड़ा भारी प्रभाव है । एक बार भी उनका स्मरण करने में सभी बन्धों का समुदाय भी नष्ट होजाया करता है ॥६५—६७॥

स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते ।
 मानुष दुर्लभ जन्म प्राप्यने यं मुनीश्वर ॥६८
 तत्रापि हरि भक्तिस्तु दुर्लभा परिचीतिता ।
 तस्मात्तद्विलतालोल मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् ॥६९

हरिं सपूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।
 सर्वेऽन्तराया नश्यति मन शुद्धिश्च जायते ॥ १००
 पर मोक्ष लभेच्चैव पूजिते तु जनादने ।
 धर्मर्यिकागमोक्षाद्याः पुरुषार्थाः सनातन ॥ १०१
 हरिपूजापराणा तु सिध्यन्ति नात्र सशयः ।
 पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्याभिधायतोम् ॥ १०२
 लब्ध्वेमा मानुषी वृत्ति रे रे दर्प तु मा कृत्या ।
 सत्यज्य काम क्रोध च लोभ मोह मद तथा ॥ १०३
 परापवाद निदा च भजध्व भक्तिनो हरिम् ।
 व्यापारान्सवलास्त्यक्त्वा पूजयध्व जनार्दनम् ॥ १०४

हे विप्र ! इतने ही से स्वर्गादि के गुणोपयोग की प्राप्ति कर अनुमान कर लेना चाहिए । हे मुनिवर ! इस मत्सर से यह मनुष्य का शरीर भी प्राप्त होना महान् दुर्लभ होता है । मनुष्य जीवन में भी श्री हरि की प्राप्ति अन्यन्त दुर्लभ है । अतएव विद्युत् के प्रकाश की भाँति अस्थिर और चञ्चल इस दुर्लभ मानव देह का पाकर पशुना क अज्ञतारूपी पाश का छेदन करने के लिये श्री हरि का भक्तिभाव समन्वित अर्चन करें । भगवान् जनादन देवकी पूजा में सभी विघ्न बाधायें खन ही विनष्ट होजाया करती है—मन शुद्ध होकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करती है । हरि का पूजन में मग्न रहने वालों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थें मिल हीजाया करती है । इस क्षण-भंगुर मानव देह को पाकर पुत्र-पत्नी गृह, धन-धान्य आदि का अर्चिमान कभी नहीं कर । काम क्रोध, लोभ, मोह, मद और परनिंदा का त्याग कर भक्तिपूर्वक श्री हरि का अर्चन करना चाहिये । यही इस जीवन में मार है । सम्झा कामों का परित्याग कर भगवान् का पूजन कर ॥ १०४-१०४ ॥

निरटा एव दृश्यन्ते कृतातनगरद्रुमा ।

यावन्नायाति मरण यावन्नायाति वै जरा ॥१०५
 यावग्नेन्द्रियवैकल्प तावदेवाचर्येद्धरिम् ।
 धीमान्न कुर्याद्विश्वास शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे ॥१०६
 नित्य सन्निहितो मृत्यु सपदत्यतचचला ।
 आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्पं विमुञ्चत ॥१०७
 सयोगा विप्रयोगाता. सर्वं च क्षणभगुरम् ।
 एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जत्तार्दनम् ॥१०८

कारण यही है कि इस मानव-जीवन का समय बहुत ही थोड़ा है और यमराज की नगरी के वृक्ष समीप में ही दिखाई दे रहे हैं । जिस समय तक मोग नहीं आरही है और सब कार्यों के करने में अशक्ति उत्पन्न करने वाला बुढ़ापा आकर नहीं पेरना है, जब तक शरीर की इन्द्रियों में शिथिलता नहीं आती है उस समय तक ही श्री हरि का पूजनार्चन कर लेना चाहिये । जो मतिमान् निरुण पुण्य है उसने इस जगत् का शरीर का लक्षण भी विश्वास नहीं होता है क्योंकि मानवों की मृत्यु मदा निश्चय ही में रहा करती है । इस जीवन में जो भी सुख मर्त्यातियों है वे सब विज्ञान के मरण भक्षण हैं और अज्ञान अस्मिपत्ता कारी होती है । यह शरीर मृत्यु के निश्चयभी ही रहा करता है । अतएव इसका और इसके समीप में रहने वाले पदार्थों का समस्त रसाय ही देना चाहिए ॥१०५-१०७॥ यह मार्बदिक मय निष्ठा है कि जिस मृत्यु में योग हुआ है उगने विषय अवश्य होगा अतएव इस जगत् में प्राप्त होने वाले सभी पदार्थ दिनाशनीय और क्षणभगुर होत हैं—यही भवी भक्ति ममत्ता कर है महाभाग नारद । अज्ञान के कारणों में भक्ति करनी चाहिए ॥१०८॥

आजरा स्वयं च इ मोक्षस्यैव्यन्तदुर्लभ ।

भक्त्या यत्रति या विष्णु महाशानतवानपि ॥१०९

मोर्तिन मति पर स्थान यत्र गवा म जोषति ।

सर्वतोथानि यज्ञाश्च सागां वेदाश्च सत्तम ॥११०

नारायणाचनस्यते कला नाहति पाडशीम् ।

किं वं वेदेमंखं शास्त्रं किंवा तीथनिषवणे ॥१११

विष्णुभक्तिविहीनाना किं तपोभिर्द्रतैरपि ॥११२

यजति ये विष्णुमननमूर्ति निरीक्ष्य चाकारमत वरेण्यम् ।

वेदातवेद्य भवरोगबंध ते याति मर्त्या पदमच्युतस्य ॥११३

अनादिमात्मानमनतशक्तिमाधारभूत जगत सुरेड्यम् ।

ज्याति स्वरूप परमच्युताद्य स्मृत्वा समभ्येति नर सखायम् ॥१४

यह आशा ही एक ऐसी है जिससे मनुष्य पीडायें प्राप्त किया करता है और मोक्ष की प्राप्ति अत्यंत कठिन होती है। कई महान् पापी होकर भी भक्ति के साथ भजन किया करता है वह भी ऐसा उत्तम पद प्राप्त कर लिया करता है जहाँ पहुँचने पर कोई शक नहीं होता है। हे नारद ! य समस्त तीर्थों का सेवन और ममस्त साङ्गवद भी भगवान् की पूजा की सोनहवीं कला व वरावर भी नहीं है। जो भगवान् का अचन नहीं किया करते हैं उनको वद शास्त्र और तीर्थ टन एक प्रनोषवास आदि क्या कर सरत है ॥१०६—११२॥ जो प्राणी वेदा तथास्त्र के द्वारा जानने के या य इस सात्त्विक व्याधि की विनिरसा करने वाले अनन मूर्ति एक व्यापक वरण करने के योग्य भगवान् की मूर्ति रूप में दर्शन प्राप्त किया करते हैं वे मनुष्य अच्युत भगवान् के वैकुण्ठ पद का प्राप्त किया करते हैं ॥११३॥ जो मानव आद्य तरङ्गि आत्म स्वरूप अनन शक्ति म सुमध्य न जगन् क आधार य दनीय ज्यानि स्वरूप परमात्मा का स्मरण करते उनको प्राप्त करता है वह अपन परम त्ति व सम्पादक मित्र प्रभु का प्राप्त कर लिया करता है ॥११४॥

॥ यम-मार्गं निरूपण ॥

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिमुने ।
 इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं सुदुर्गमम् ॥१
 शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् ।
 सुखद पुण्यशीलानां पापिना भयदायकम् ॥२
 पञ्चाशतिसहस्राणि याजनानि मुनीश्वर ।
 यममार्गस्य विस्तारं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥३
 ये नरा दानशीलास्तु ते याति सुखिनो द्विज ।
 घर्मशून्या नरा याति दुःखेन भृशमदित ॥४
 अतिभीता विवस्त्राश्च शुष्ककठोष्ठनालुका ।
 क्रन्दतो विस्वर दीना पापिनो याति तत्पथि ॥५
 हन्यमाना यमभटैः प्रतोदाद्यस्तथायुधैः ।
 इतस्ततः प्रधावतो याति दुःखेन तत्पथि ॥६
 क्वचित्पकं क्वचिद्बहिर्न क्वचित्सन्तप्तसेकतम् ।
 क्वचिद्द्वैतारूपेण लीक्षणधारा जिला क्वचित् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर । आपने चारों वर्णों
 और चारों आश्रमों का बणन भली भाँति कर दिया है । अब मेरी
 अभिनाया यमपुरी के दुर्गम मार्ग के विषय में प्रवण करने की है ॥१॥
 श्री मनसाचाय ने कहा—हे विप्र ! आपका कथानुसार इस समय मैं
 परम दुःख यमराज के भाग का बणन करता हूँ । आप परम समाहित
 होकर उम मुनिय । सनकजी ने कहा—यह यमराज का मार्ग पुण्यात्मा
 पुरुषों को तो सुखदाया हुआ करता है और जो पापी हुआ करते
 हैं उनको यही मार्ग महान् भीषण डरावना बना करता है ॥२॥ हे
 मुनीश्वर । पहिने होने वाले विद्वान् पुरुषों ने यमराज की पुरी के
 मार्ग का विस्तार तीन लाख चोगमा बाँस का बतनाया है ॥३॥ हे

जो प्राणी दानशील होते हैं वे तो उगमे सुख के साथ पहुँच जाया करते हैं और जो धर्म से रहित हुआ करते हैं उन्हें उसमें जाने पर अत्यधिक पीडा होनी है और वे बहुत ही दुःख के साथ वहाँ तक पहुँचा करते हैं ॥४॥ ब्रह्म मार्ग पापात्माओं के लिये तो अत्यन्त ही भयावना एवं कष्टप्रद हुआ करता है । पापी लोग बहुत ही उम मार्ग में भयभीत होते हुए—वस्त्र रहित—मूत्रे हुए कण्ठ और तात्तु से युक्त अत्यन्त दुःख हाथों से पकड़ाये हुए दुःख में बहुत ही चीखते—डकराते हुए जहाँ जाया करते हैं ॥५॥ मार्ग में यमराज के दूत उन्हें कोडों से पीटते हुए ले जाया करते हैं ॥६॥ उम समय में वे पद्म दुःखित होकर उस मार्ग में उधर—उधर को विदिका करते हैं । उम यमपुरी के मार्ग में कहीं तो कीचड़ मिलता है—कहीं आग होती है—किसी स्थल पर तचता हुआ गर्म रेत होता है—कहीं पर दावानल का प्रकोप है तो कहीं पर नौबदार पापान खण्ड बिछे हुए दिखाई दिया करते हैं ॥७॥

क्वचित्कटकवृक्षाश्च दुःखारोहणिला नगा ।
 गाढाघकराश्च गुहा कटकावरण महत् ॥८
 विप्राप्रारोहण चैव बन्दरस्य प्रवेशनम् ।
 शर्कराश्च तथा लोष्टा सूचीतुल्याश्च कण्टका ॥९
 शैवाल च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचकपक्तय ।
 क्वचिद् व्याघ्राश्च गर्जते वर्धते च क्वचिज्ज्वरा ॥१०
 एव बहुविधक्लेशा पापिनो याति नारद ।
 क्रोशतश्च रुदन्तश्च म्लायतश्चैव पापिन ॥११
 पाशेन यत्रिता केचित्कृप्यमाणास्तथाकुक्षौ ।
 गस्त्रास्त्रंस्ताड्यमानाश्च गृष्टनो याति पापिन ॥१२
 नामाग्रपाशकृष्टाश्च केचिदन्त्रंश्च बन्धिता ।
 बहूतश्चायसा भार शिश्नाग्रेण प्रयाति वै ॥१३
 अयोभारद्वय केचिन्नासाग्रेण तथापरे ।

कर्णाम्या च तथा वेचिद्वहतो याति पापिन ॥१४

उस माग म किसी जगह पर काँटेदार वृक्ष है—वही ऐसे पवत आते हैं जिन पर कठिनाई स चढ़ा जाया करता है—वही पर अत्यन्त घोर य घवार म युक्त खोहे और गुफाएँ आती हैं । कही पर काँटेदार बाड़े मिला करता है ॥१८॥ उस माग म ही बड़ी २ यातनायें प्राप्त होती हैं—कही पर बहुत ऊँची किल की मीनारा स चढ़कर नीचे गिरा दिया करते हैं—किसी जगह गुफाओ म ढकल कर घबके दे दिये जाया करते हैं । उस माग म कङ्काले और मुद्ग की नौक वान कोरें होत हैं जिनके कारण बड़ी वेग्ना चलने मे हाती है ॥१९॥ उस परम भीषण माग मे कही पर सवार वाँतो की लघार पडा करती है कही पर शेरों की दहाडे और कही पर च्वर चढ आया करत हैं ॥ १० ॥ हे नारद ! इस तरह से वह माग अनेक प्रकार के बलेशो स घिरा हुआ होता है । इस तरह के अत्यन्त विकट माग मे शपात्मा लोगो को नगे पैरो से चलना पडता है । उस समय म वे बहुत ही दु खित होकर चीखते पुकारते रोत और मूर्छित एव मुग्धनि हुए विवश होकर चला करते हैं ॥११॥ वहाँ पर कुछ को बडा र भी स बाध कर खीचा करते हैं । कुछ पापियो के पीठ पर चलते हुए अस्त्र शस्त्रों के प्रहार किए जात हैं ॥१२॥ कुछ का नकेल डाल कर छोचा जाता है । कुछ की आख बाध दी जाया करती हैं और कुछ पापियो क उपस्थ के अग्र भाग मे लोहे का बोझा बाध कर उ हे भगाया जाता है ॥१३॥ वहा उस माग म कुछ पापियो क छिदे हुए गधुना और क ना मे भारी लाहा बाध कर भगाया जाता है जिनके खोचन म उ ह बड़ी भारी पीटा होती ह ॥ १४ ॥

वचिञ्च स्वलिता याति ताडयमानास्तथापरे ।

अत्यर्थोच्छ्वसिता रन्तिरचिदाञ्छ नलोचना ॥१५

छायाजदविहोने तु पथि यान्यनिदु पिता ।
 शोचन्त स्वानि कर्माणि ज्ञानाज्ञानवृत्तानि च ॥१६॥
 ये तु नारद धर्मिष्ठा वानशीला सुवृद्धय ।
 अतीव सुखमपन्नास्ते याति धर्ममन्दिरम् ॥१७॥
 अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुञ्जन्त स्वादु याति वै ।
 नीरदा याति सुखिन पिवन्त क्षीरमुत्तमम् ॥१८॥
 तक्रदा दधिदारुचैव तत्तद्भाग लभन्त वै ।
 मृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम ॥१९॥
 सुधापान प्रकुर्वन्तो याति वै धर्ममन्दिरम् ।
 शाकद पायस भुञ्जन्दीपदो ज्वलयन्दिश ॥२०॥
 वम्बदो मुनिशाहू ल याति दिव्याम्बरावृत ।
 तथा शय्याप्रदो याति स्तूयमानोऽम्बरं पथि ॥२१॥

उन पापिया म कुछ तो लटखडाने हुए चलते हैं कुछ पिटात हुए
 वरा करते हैं । कुछ को बहा पर हापिनी आजाती है तथा कुछ की
 श्रांछो पर पट्टी बांध कर भगाया जाता है ॥१५॥ इस तरह से उस
 पमपुरी के महान् भीषण माग म अनव प्रकार की यातनाओ की सहत
 हुए पापात्मा छाया और जन म रहिन उजाड म अपने किए हुए जान
 या अनान से पापो पर पछतात हुए घिसटत हुए चला करते है ॥१६॥
 हे नारद । जो प्राणी दाना के दाता सद्वृद्धि वाले और धर्मिमा होत
 है वे वहाँ पर बडे आराम से धर्मराज की पुरी म पहुँचा करत है ॥१७॥
 हे मुनिवर । जिहोने धन का दान लाभ से किया है वे स्वादिष्ट
 पदार्थों को खात-पीत वही जाया करत है जिहान जल वा दान
 दिया है वे दूध पत हुए पहुँचा करत हैं ॥१८॥ हे द्विज श्रेष्ठ । मरुठा
 दध दही घृत मधु का दान करन वाले दही पदार्थों का उपभोग करते
 है और उ ह कुछ भी पीना नहीं हुआ करती है ॥१९॥ एत पुण्यात्मा
 त्याग अमृत पान करत हुए धर्म राज के भवन म उपस्थित

यावन्नायाति मरण यावन्नायाति वै जरा ॥१०५
 यावन्नेन्द्रियवैकल्प तावदेवाचर्येद्धरिम् ।
 धीमान्न कुर्याद्विश्वास शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे ॥१०६
 नित्य सन्निहितो मृत्यु सपदत्यतचचला ।
 आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्पं विमुञ्चत ॥१०७
 सयोगा विप्रयोगाता सर्वं च क्षणभगुरम् ।
 एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जनार्दनम् ॥१०८

कारण यही है कि इस मानव जीवन का समय बहुत ही थोड़ा है और यमराज की नगरी के वृक्ष समीप में ही दिखाई दे रहे हैं । जिस समय तक मृत नहीं आरही है और सब कार्यों के करने में अशक्ति उत्पन्न करने वाला बुझापा आकर नहीं घेरना है, जब तक शरीर की इन्द्रियो में क्षिपिलता नहीं आती है उस समय तक ही श्री हरि का पूजनाचंन कर लेना चाहिये । जो मतिमान निपुण पुरुष हैं उनको इस नाशवान् शरीर का तनिक भी विश्वास नहीं होता है क्योंकि मानवों की मृत्यु सदा निकट ही में रहा करती है । इस जीवन में जो भी मुख्य सम्पत्तिया हैं वे सब विद्युत् के सदृश चञ्चल हैं और अत्यन्त अस्थिरता वाली होती हैं । यह शरीर मृत्यु के निकटवर्ती ही रहा करता है । अतएव इसका और इसके समीप में रहने वाले पदार्थों का घमण्ड त्याग ही देना चाहिए ॥१०५-१०७॥ यह सार्वदिक सत्य सिद्धान्त है कि जिम वस्तु से नयोग हुआ है उससे वियोग अवश्य होगा अतएव इम जगत् में प्राप्त होने वाले सभी पदार्थ विनाशशील और क्षणभगुर होने हैं—यही भन्ती भांति समझ कर है महाभाग नारद । भगवान् के चरणों में रति करनी चाहिए ॥१०८॥

आशया व्यथते च व मोक्षस्त्वत्यन्तदुर्लभ ।
 भक्त्या यजति यो विष्णु महापातकवानपि ॥१०९
 सोऽपि याति पर स्थान यत्र गत्वा न शोचति ।

सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च सागां वेदाश्च सत्तम ॥११०

नारायणार्चनस्यते कला नाहंति षोडशीम् ।

किं वै वेदमखं शास्त्रं किंवा तीर्थनिषेवणे ॥१११

विष्णुभक्तिविहीनानां किं तपोभिर्द्रव्यैरपि ॥११२

यजति ये विष्णुमनतमूर्तिं निरीक्ष्य चाकारगत वरेष्वम् ।

वेदातवेद्य भवरोगवंधं ते याति मर्त्या पदमच्युतस्य ॥११३

अनादिमात्मानमनतशक्तिमाधारभूत जगत् सुरेड्यम् ।

ज्योति स्वरूप परमच्युताद्य स्मृत्वा समभ्येति नर मखायम् १४

यह आशा ही एक ऐसी है जिससे मनुष्य षोडशें प्राप्त किया करता है और मोक्ष की प्राप्ति अथवा त कर्मिणी होती है । कोई महान् पापी होकर भी भक्ति क साथ भजन किया करता है वह भी ऐसा उत्तम पद प्राप्त कर लिया करता है जहाँ पहुँचने पर कोई श्राव नहीं होता है । हे नारद ! य समस्त तीर्थों का सेवन और समस्त साङ्गवद भी भगवान की पूजा की सालहवी कला के बराबर भी नहीं है । जो भगवान का अर्चन नहीं किया करते हैं उनको वेद शास्त्र और तीर्थान् टन एव व्रतोपवास आदि नया कर सकने हैं ॥१०६—११२॥ जो प्राणी वेदा नशास्त्र के द्वारा जानने के योग्य इस सासारिक व्याधि की भक्तिमा करने वाले अतः मूर्ति एक व्यापक वरण करने के योग्य भगवान की मूर्ति रूप में दर्शन प्राप्त किया करते हैं ये मनुष्य लच्युत भगवान् के वैकुण्ठ पद को प्राप्त किया करते हैं ॥११३॥ जो मानव आद्य तरहित आत्म स्वरूप अतः शक्ति से सुमम्य न जगत् के आधार व दनीय ज्योति स्वरूप परमात्मा का स्मरण करके उनको प्राप्त करता है वह अपन परम हित के सम्पादक मित्र प्रभु को प्राप्त कर लिया करता है ॥११४॥

॥ यम-मार्ग निरूपण ॥

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिमुने ।
 इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं मुदुर्गमम् ॥ १
 शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् ।
 सुखद पुण्यशीलानां पापिनां भयदायकम् ॥ २
 पडशातिसहस्राणि योजनानि मुनीश्वर ।
 यममार्गस्य विस्तारं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ ३
 ये नरा दानशीलास्तु ते याति सुखिनो द्विज ।
 धर्माशून्या नरा याति दुःखेन भृशमदित ॥ ४
 अतिभीता विवस्थाश्च शुष्ककठीष्ठनालुका ।
 क्रन्दतो विस्वरदीना पापिनो याति तत्पथि ॥ ५
 हन्यमाना यमभटे प्रतोदाद्यैस्तथायुधैः ।
 इतस्ततः प्रधावतो याति दुःखेन तत्पथि ॥ ६
 क्वचित्पकं क्वचिद्बहिनं क्वचित्सन्तप्तसेवकम् ।
 क्वचिद्द्वैदावरूपेण तीक्ष्णधाराशिलां क्वचिन् ॥ ७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने चारो वर्णों और चारो आश्रमों का वर्णन भली भाँति कर दिया है। अब मेरी अभिनाया यमपुरी के दुर्गम भाग के विषय में श्रवण करने की है ॥ १ ॥ श्री सनकाचार्य ने कहा—हे विप्र ! आपके कथानुसार इस समय में परम दुर्गम यमराज के मार्ग का वर्णन करता हूँ। आप परम समाहित होकर उसे सुनिये। सनकजी ने कहा—यह यमराज का भाग पुण्यात्मा पुरुषों को तो सुखदायी हुआ करता है और जो पापी हुआ करते हैं उनको यही भाग महान् भीषण डरावना लगा करता है ॥ २ ॥ हे मुनीश्वर ! पहिले होने वाले विद्वान् पुरुषों ने यमराज की पुरी के भाग का विस्तार तीन लाख चौरासी बास या बालाया है ॥ ३ ॥ हे

जो प्राणी दानशील होते हैं वे तो उममे मुछ के साथ पहुँच जाया करते हैं और जो धर्म से रहित हुआ करते हैं उन्हें उसम जान पर अत्यधिक पीडा होनी है और वे बहुत ही दुख के साथ वहाँ तक पहुँचा करते हैं ॥४॥ यह मार्ग पापात्माओ के लिये तो अत्यन्त ही भयावना एव कष्टप्रद हुआ करता है । पापी लोग बहुत ही उम मार्ग म भयभीत होन हुए—बरब रहिन—मूछे हुए कण्ठ और तालु से मुक्त अत्यन्त दुःख हाठों से घबडाये हुए दुख ने बहुत ही चीखत—उकराते हुए जहाँ जाया करते हैं ॥५॥ मार्ग मे यमराज के दूत उहे कोडों से पीटते हुए ल जाया करते हैं ॥६॥ उम समय म वे परम दु खित होकर उस मार्ग म उधर—उधर को विद्रिका करते हैं । उस यमपुरी के मार्ग मे कही तो पीचड मिलता है—कही आग होती है—जिसी स्थल पर लचता हुआ गर्म रेत होता है—कही पर दावानल वा गत्रोप है ता कही पर नोकदार पाषाण खण्ड बिछे हुए दिखाई दिया करते हैं ॥७॥

क्वचित्कटकवृक्षाश्च दु खारोहशिला नगा ।
 गाढाधकराश्च गुहा कटकावरण महत् ॥८
 विप्रायारोहण चैत्र कन्दरस्य प्रवेशनम् ।
 शर्कराश्च तथा लोष्टा सूचीतुल्याश्च कण्टका ॥९
 शैवाल च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचवपक्तय ।
 क्वचिद् व्याघ्राश्च गर्जते वर्धते च क्वचिज्ज्वरा ॥१०
 एव बहुविधक्लेशा पापिनो याति नारद ।
 श्लोक्षतश्च रुदन्तश्च म्लायतश्चैव पापिन ॥११
 पाशेन यन्त्रिता क्वचित्पृथ्यमाणास्तथाकुक्षे ।
 शस्त्रास्त्रम्नाडघमानाश्च गृष्टनो याति पापिन ॥१२
 नासाप्रपाशकृष्टाश्च केचिदन्धैश्च बन्धिता ।
 बहुतश्चायमा भार शिशनाग्नेण प्रयानि वै ॥१३
 अयोभाग्द्वय केनिन्नासाग्नेण तथापरे ।

कर्णाभ्या च तथा केचिद्ब्रह्मतो याति पापिन ॥१४

उम मार्ग में किसी जगह पर बटिदार वृक्ष हैं—वही ऐसे पर्वत आते हैं जिन पर बटिनाई से चढ़ा जाया करता है—वही पर अत्यन्त घोर अन्धकार से युक्त छोड़े और गुफाएँ आती हैं। कहीं पर बटिदार बाड़े मिला करती हैं ॥८॥ उम मार्ग में ही बड़ी २ यातनायें प्राप्त होती हैं—वही पर बहुत ऊँची किन्ने की भीतारों से चढ़कर नीचे गिरा दिया करते हैं—किसी जगह गुफाओं में डकक कर धक्के दे दिये जाया करते हैं। उम मार्ग में बङ्कुड-नेले और मुई की नौक वाले कोरें होते हैं जिनके कारण बड़ी वेदना चलने में होती है ॥९॥ उस परम भीषण मार्ग में वही पर सिंघार, वाँतों की लपटार पडा करती है, वही पर शेरों की दहाड़े और वही पर ज्वर चढ़ आया करते हैं ॥ १० ॥ हे नारद। इस तरह से वह मार्ग अनेक प्रकार के बनेशों में घिरा हुआ होता है। इस तरह के अत्यन्त विषट मार्ग में पापात्मा लोगो को नष्ट पैरो से चलना पडना है। उम समय में वे बहुत ही दुःखिन होकर खींचते-पुकारते, रोते और मूर्छित एवं मुग्धति हुए विवश होकर चला करते हैं ॥११॥ वहाँ पर कुछ का बटार सी में बांध कर छोड़ा करते हैं। कुछ पापियो के पीठ पर चलने हुए अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार किए जाते हैं ॥१२॥ कुछ को नक्स डाल कर छोड़ा जाता है। कुछ को आँखे बांध दी जाया करती हैं और कुछ पापियो के उपरम्य के अग्र भाग में सोहे का बोझ बांध कर उन्हें भगाया जाता है ॥१३॥ वहाँ उम मार्ग में कुछ पापियो के छिंदे हुए नथुना और कानों में भारी लोहा बांध कर भगाया जाता है जिनको खींचने में उन्हें बड़ी भारी पीडा हानी है ॥ १४ ॥

केचिच्च स्वयन्तिता याति ताड्यमानास्तथापरे ।

अत्यर्षोऽर्ष्यगता यन्तिचिदशच्छन्नलाचना ॥१५

छायाजलविहीने तु पथि यान्यतिदु खिता ।
 शोचन्त स्वानि कर्माणि ज्ञानाज्ञानवृत्तानि च ॥१६॥
 ये तु नारद घर्मिष्ठा दानशीला मुमुद्धय ।
 अतीव सुखमपन्नास्ते याति धम्मन्दिरम् ॥१७॥
 अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुञ्जन्त स्वादु याति वै ।
 नीरदा याति सुखिन पिवन्त क्षीरमुत्तमम् ॥१८॥
 तन्नदा दधिदाश्चैव तत्तद्भोग लभन्ते वै ।
 घृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम ॥१९॥
 गुग्गुपापान प्रशुर्वतो याति वै धर्मन्दिरम् ।
 शाकद पापस भुञ्जन्दीपदो जलरान्दिश ॥२०॥
 वस्त्रदो मुनिशादू ल याति दिव्याम्बरावृत ।
 तथा शय्याप्रदो याति स्तूयमानोऽमरै पथि ॥२१॥

उन पापियों में कुछ तो लखडाने हुए चतत हैं कुछ पिटत हुए चना करते हैं । कुछ को वहाँ पर हापिनी आजाती है तथा कुछ की आँखों पर पट्टी बाँध कर भगाया जाता है ॥१५॥ इस तरह से उस यमपुरी के महान् भीषण माय में अनेक प्रकार की यातनाओं को सहते हुए पापात्मा छाया और अन्न से रहित उजाड़ में अपना किए हुए ज्ञान या अज्ञान से पापा पर पड़तात हुए घिसटत हुए चना करते हैं ॥१६॥ हे नारद ! जो प्राणी दानों के दाता मधुबुद्धि वाले और घर्मों में होते हैं वे वहाँ पर बड़े आराम से घमराज की पुरी में पहुँचा करते हैं ॥१७॥ हे मुनिवर ! जिन्होंने अन्न का दान मात्र में किया है वे स्वादिष्ट पदार्थों को खान-पीत वहाँ जाया करते हैं जिहान जल का दान किया है वे दूध पत हुए पहुँचा करते हैं ॥१८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! मट्टा दध दही घृत मधु का दान करने वाले दूनी पदार्थों का उपभोग करते हैं और उह कुछ भी पीना नहीं हुआ करती है ॥१९॥ उस पुण्यात्मा माय अमृत पात्र करने हुए घमराज के भवन में उपस्थित

हुआ करते हैं । हे मुनिशार्दूल ! इस लोक में दिया हुआ दान उस मार्ग में आड़ा आया करता है । जो शाक का दाता है वह खीर खाता हुआ, दीपदाता दिशाओं को प्रकाशित हुआ, वस्त्रों का दान करने वाला दिव्य वस्त्र पहिन कर वहाँ उपस्थित हुआ करते हैं । जो शय्या का दान किया करते हैं उनकी देवगण मार्ग में प्रशंसा किया करते हैं और उसे मुनते हुए ही वे वहाँ पर प्राप्त विद्या करते हैं ॥ २०।२१॥

गोदानेन नरो याति सर्वसौख्यसमन्वित ।
भूमिदो गृहदशचैव विमाने सर्वसपदि ॥२२
अप्सरोगणसकीर्णो ब्रीडन्याति वृषालयम् ।
हृयदो यानदशचापि गजदशच द्विजोत्तम ।
धर्मालय विमानेन याति भोगान्वितेन वै ॥२३
अनडुद्दो मुनिश्रेष्ठ यानारूढ प्रयाति वै ।
फलद पुष्पदशचापि याति सतोपसयुत ।
ताबूलदा नरो यति प्रहृष्टो धर्ममन्दिरम् ॥२४
मातापित्रोश्च शुश्रूषा कृतवान्यो नरोत्तम ।
स याति परितुष्टात्मा पूज्यमानो दिविस्थित ॥२५
शुश्रूषा कुरुते यस्तु यतीना व्रतचारिणाम् ।
द्विजप्रयव्राह्मणानां च स यात्यतिसुखान्वित ॥२६
सर्वभूतदयामुक्त पूज्यमानोऽमरद्विज ।
सर्वभोगान्वितेनासौ विमानेन प्रयाति च ॥२७
विद्यादानरतो याति पूज्यमानाञ्ज्जमूनुभि ।
पुराणपाठको याति स्तूयमानो मुनीश्वर ॥२८

जा गाधो का दान करने वाला है वह सभी तरह के सुखों का उपभोग करता हुआ वहाँ प्राप्त होता है । जिसने यहाँ पर भूमि तथा गृह का दान दिया है वह तो सब सम्पत्तियाँ स परिपूर्ण अप्सराया स

युक्त दिव्य विमान में बैठकर आनन्द की क्रीडाये करता हुआ धर्मराज के मन्दिर में पहुँचा करता है । जिसन हाथी-घोड़े और सबारिया का दान दिया है वह अनेक भोगों से पूर्ण विमान में बैठ कर धर्मराज की सभा में उदस्थित हुआ करता है ॥२२॥२३॥ ह मुनिवर । बैद का दान दाता मनुष्य भी सवारी में बैठ कर बहाँ जाता है । फल और पुष्पों का दान देने वाला परम सन्तोष के साथ वहाँ पहुँचता है और ताम्बूलदाता पुरुष प्रसन्नता के साथ वहाँ जाता है और धर्मराज की सभा में प्रवेश किया करता है ॥२४॥ जो श्रेष्ठ नर अपने माता पिता की सेवा किया करता है वह वहाँ पर परम सन्तुष्ट होकर पहुँचा करता है । ऐसे मानव का स्वर्ग में निवास करने पर देवगण भी अत्यधिक सत्कार किया करते हैं ॥२५॥ जो यहाँ ब्रह्मचारी सन्यासी और परम श्रेष्ठ विप्रों की सेवा करता रहता है वह परम सुखों का उपयोग करता हुआ वहाँ यम की सभा में पहुँचा करता है ॥२६॥ जो द्विज समस्त प्राणियों पर दया भाव रखता है वह सब भाँगों से परिपूर्ण विमान पर सभारूढ़ होकर खोज से प्रशमित होता हुआ उस धर्मराज पुरी में पहुँचा करता है ॥२७॥ जो विद्या का दान करने वाला है वहा ब्रह्माजी से सत्कृत होता हुआ वहाँ पहुँचता है । जो पुराणों का प्रवचन करने वाला है वह मुनिगण से सत्कार पाता हुआ वहाँ पहुँचा करता है ॥२८॥

एव धर्मपरा यानि सुख धर्मस्य मन्दिरम् ।
यमश्चतुर्मुखा भूत्वा शखच फगदातिभुत् ॥२९॥
पुण्यकमरत सम्तवतोहाम्मिन्नमिवाचेयि ।
भो भो बुद्धिमता श्रेष्ठा नरवक्त्रेशभीरव ॥३०॥
युष्माभि साधित पुण्यमनामुन्नमुखावहम् ।
मनुष्यजन्म य प्राप्य सुष्टुत न वरोति च ॥३१॥
स एव पापिना श्रेष्ठ आत्मघात करोति च ।

अनित्य प्राप्य मानुष्य नित्य यस्तु न साधयेत् ॥३२
 स याति नरक घोर कोऽन्यस्तस्मादचतन ।
 शरीर यातनारूप मलाद्य परिदूषितम् ॥३३
 तस्मिन् यो याति विश्वाम त विद्यादात्मघातकम् ।
 सर्वेषु प्राणिन श्रेष्ठास्तेषु वै बुद्धि जीविन ॥३४
 बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणास्तथा ।
 ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धय ॥३५

इस तरह स निरंतर धर्म कर्मों में तत्पर रहने वाले सुख के साथ विशेष स्वर्गीय सुखों का उपभोग करने के लिये ही वहाँ धर्मराज की सभा में उपस्थित हुआ करते हैं। उनके सामने धर्मराज भी स्वयं शंख चक्र आदि आसुधों को धारण कर चार मुखों से युक्त होकर पुण्यात्मा प्राणियों के सत्कार के लिए एक मित्र के समान ही प्रस्तुत हुआ करते हैं। अतएव हे बुद्धिमान्नाम श्रेष्ठ जनो! हे नारकीय यातनाओं से भयभीत होने वाला! ॥२६॥३०॥ आप भली भाँति समझ लो कि आपके द्वारा किया हुआ पुण्य इस लोक में भी आपको सुख देने वाला होता है। जो मनुष्य इस परम दुःखमय मनुष्य का शरीर प्राप्त करके भी पुण्य-दान नहीं किया करता है वह पापात्माओं में श्रेष्ठ अपना ही पात किया करता है। यह मानव दत्त तो अनित्य ही है इसके द्वारा जा नित्य स्थिर धर्म का सम्पादन नहीं किया करता है वह महान् घोर नरकों में पड़ा करता है। इगम अग्नि भूढ़ कौन होगा जो इस शरीर पर विश्वाम किया करता है। यह शरीर तो अनेक यातनाओं का स्वरूप है और मनादि में दूषित एवं अस्वस्थ है। शरीर को तो छोड़ा देना ही सग समझना चाहिए। समस्त भूता में प्राणी (जन्तु) श्रेष्ठ होता है। उन प्राणियों में भी जो बुद्धिजीवी होते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं। बुद्धिमान्नाम मानव और मानवा में भी ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। विप्रों में

भी जो विद्वान् होता है वह श्रेष्ठ समझा जाया करता । उन विद्वानों में भी जो निश्चित मति वाला होता है वह श्रेष्ठ हुआ करता है ।

॥३१—३५॥

कृतबुद्धिषु कर्तारि कर्तृषु ब्रह्मवादिन ।
 ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते ॥३६॥
 एतेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्य ध्यानपरायण ।
 तरगात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो धर्गतग्रह् ॥३७॥
 सर्वत्र पूज्यते जन्तुधर्मवान्नात्र सशय ।
 गच्छ स्वपुण्यैर्मत्स्थान सर्वभोगसमान्वितम् ॥३८॥
 अस्ति चेद् दुष्कृतं किञ्चिन्पश्चादत्रैव भोक्षयसे ।
 एव यमस्तमभ्यर्च्य प्रापयित्वा सद्गतिम् ॥३९॥
 धाहूय पापिनश्चैव बालदडेन तर्जयेत् ।
 प्रलयानुदनिर्घोषो ह्य जनाद्रिसमप्रभ ॥४०॥
 विद्युत्प्रभापुर्धर्मीमो द्वाविंशद्भुजसयुत ।
 योजनत्रयविस्तारो रक्ताक्षो दीर्घनासिक ॥४१॥
 दंष्ट्राकरालवदनो वापीतुल्योऽप्रलोचन ।
 मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषण ॥४२॥

सुनिश्चित मतिमानो मैं भी कर्मों का करने वाला श्रेष्ठ है और उनमें भी जो ब्रह्मवादी होता है वह श्रेष्ठ हुआ करता है । ब्रह्मवादी में भी ममता का त्याग करने वाला श्रेष्ठ होता है । जो तत्पर रहा करता है उनमें इन सबसे श्रेष्ठ समझना चाहिये । अतः सबका निश्चय ही कि सभी भाँति से प्रयत्न करने धर्म का नित्य ही सग्रह करना परमावश्यक है । यही किया हुआ धर्म परलोक में लाभ लाता है ॥३६।३७॥ जो पुरुष धार्मिक होता है उसका सभी जगह पर सत्कार हुआ करता है, इसमें कुछ भी गणव नहीं है । इसीलिये धर्म-राज बहा करता है—रे मनुष्यो ! आप साथ अपने किये हुये पुण्यों से

ही मेरे गमस्त भोगा से भरे-भूरे स्थान में आइए ॥३८॥ यदि कुछ थोड़ा बहुत पाप भी होगा तो उसको भी यहाँ पर ही भोग लेना । इसी तरह से उन पुण्य कर्म करने वाले मानवों का यमराज सत्कार पूर्वक सद्गति दिया करते हैं ॥३९॥ जो घोर पापात्मा होते हैं उनकी वे ही घुरी तरह से घमकाया करते हैं उस वक्त उनका स्वर भी प्रलय काल के मेघ के समान हुआ करता है जो बहुत ही गडगडाहट से कण कठोर होता है । यमराज के शरीर का वण सुरमे के समान एक दम काला एवं भयावह हुआ करता है ॥ ४० ॥ यमराज की बत्तीस भुजाओं में बिजली के समान कडक रखने वाले आयुध होते हैं । उनके शरीर की विशालता बारह कोस लम्बाई-चौड़ाई रखने वाली हुआ करती है । उनकी आँखें लाल और नासिका लम्बी होती है ॥४१॥ उनकी दाढ़ी ऐसी भयानक होती है जिनसे उनका शुष्क अत्यन्त बिकराल दिखाई दिया करता है । इनके नेत्र दावडी के समान गहरे होते हैं । यमराज के प्रधान में भी चित्रगुप्त भी बहुत भयङ्कर वेश में उपस्थित रहा करते हैं । उनके आग-पास में मृत्यु ज्वर उनको घरे रखा करते हैं ॥४२॥

सर्वे दूताश्च गजति यमतुल्यविभीषणा ।
 ततो ब्रवीति ता-सर्वाकपमानाश्च पापिन ॥४३॥
 शोचन्त स्वानि कर्माणि चित्तजुप्तो यमानया ।
 भो भो पापा दुराचारा अहकारप्रदूषिता ॥४४॥
 किमथर्भजित पाप युष्माभिरविवेकिभि ।
 कामक्रोध दिदृष्ट न सगर्वेण तु चेतसा ॥४५॥
 यद्यत्पापतर तत्तत्किमर्थं चरित जना ।
 कृत्वन्त पुण्य यूय पापाऽत्यन्तहृषिता ॥४६॥
 तथैव यातना भाग्या किं वृषा ह्यतिदुखिता ।
 भृत्यामित्रवसत्रार्थं दुष्कृतं चरित यथा ॥४७॥

तथा कर्मवशात्प्राप्ता यूयमन्नातदु खिता ।

युष्माभि पापिता ये तु पुत्राद्या अन्यतो गता ॥४८

वहाँ पर यमराज के समान ही उनके दूत भी बहुत डरावने स्वरूप में दहाड़े लगते हुये घूमते रहा करते हैं । उम समय में अपने फुलित कर्मों के कारण काँपते हुये पापियों से कहा करते हैं । ये दूत अपने किये हुये पापों से पश्चात्ताप करने हुये पापियों से यमराज और चित्रगुप्त की आज्ञा से कहते हैं—अरे ! अहङ्कार में दूषित हुये भारी पापियों ! तुम सब अद्विधेकिया न किम लिय पापों का सन्ध किया था क्या अ पको पापा के कुफलो को भोगने का कुछ भी ज्ञान नहीं था ? आप लोगों का चित्त तो सदा काम क्राध और भव में ही भरा रहा करता था ॥४३—४५॥ अरे ! महामूढो ! ऐसे बड़े २ पापों को तुमने क्यों किया था ? तुमने बहुत ही हर्ष में भर कर ये पाप किये थे ॥४६॥ जैसे पाप कर्म तुमने किये हैं उन्हीं के अनुसार अब नरको म जाकर तीव्र यातनाओं को भोगो । तुम्हारे ही किये हुये पापों का यह बुरा परिणाम है । अब व्यथ ही में दुखित क्यों होते हो । तुमको शांत होना चाहिये कि किये हुये कर्मों का फल तो अवश्य ही भागना पड़ता है । तुमने जो भी अपने सेवकों और स्त्रियों के लिये पाप कर्म किये थे उनको भोगो ॥४७॥ अपने कर्मों के वशीभूत होकर ही तुमको यहाँ आना पड़ा है और यहाँ पर उनका भोग तुमको भोगना ही पड़ेगा ॥४८॥

युष्माकमेव तत्पाप प्राप्त कि दु खकारणम् ।

यथा कृतानि पापानि युष्माभि सुबहूनि वै ॥४९

तथा प्रातानि दु खानि विमथमिह दु खिता ।

दिचारयध्व यूय तु युष्माभिश्चरित पुरा ॥५०

यम वरिष्यते दडमिति कि न विचारितम् ।

दरिद्रेऽपि च मूर्खे च पडिते वा श्रियान्विते ॥५१

कादिगोके च वीरे च समवर्ती यम स्मृत ।
 चित्रगुप्तेरित्वा वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा ॥५२
 शोचत स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति भोषिताः ।
 यमाज्ञाकारिणः क्रूराश्चण्डा दूता भयानका ॥५३
 चडालाद्या प्रसह्यतान्तरकेषु क्षिपन्ति च ।
 स्वदुष्कर्मफलं ते तु भुक्त्वाते पापशेषतः ॥५४
 महीतल च सप्राप्य भवन्ति स्थावरादयः ।
 भगवन्सशयो जातो मन्वेत्तसि दयानिधे ॥५५
 त्वं समर्थोऽसि तच्छ्रेयं यतो नो ह्यप्रजो भवान् ।
 धर्माश्च विविधाः प्रोक्ता पापान्यपि बहूनि च ॥५६

तुमने जिन अपने पुत्रादि के पोषण के लिए सब कुछ किया था वे सब दूसरे मार्ग से चले गये हैं। अब पापों का कुफल तुमको ही भोगना पड़ रहा है वहाँ पर तो धर्म ही महायक होता है अन्य कोई भी नहीं। इसमें तुमको दुःख मानने की क्या बात है। जो भी तुमने दुरे कर्मों को किया है उनका बीसा ही दुःख इस समय में मिल रहा है। अब उन्हें भोगते हुए तुम क्यों दुःखित होकर रो रहे हो? तुमको ही स्वयं विचार करना चाहिए कि जब तुमने वे सब दुष्कर्म किये थे उस समय में तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आया था कि इनका दण्ड हमको यमराज के यहाँ अवश्य ही भोगना होगा। अरे! यह तो ऐसा स्थान है जहाँ पर चाह धनी हो या दरिद्र हो, भले ही कोई पण्डित हो या महा मूर्ख हो, कोई चाहे वीर हो या भीरु हो यहाँ पर सभी समान समझे जाया करते हैं और सबके साथ एक-सा वर्तन होता है। कुछ भी यहाँ पर पक्षपात नहीं किया जाता है। उस समय में चित्रगुप्त के द्वारा कहे हुए वचनों को सब पापियों ने गुना था ॥५६--५२॥ वे समस्त पापी लोग अपने किये हुए दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करते हुये भयभीत होकर भ्रुप होजाने हैं उसी समय में यमराज को आज्ञा

से उन अत्यन्त भयानक अधिक क्रूर यमदूत उन पापियों को बल पूर्वक पकड़ कर नरको में डाल दिया करते हैं। वहा पर वे अपने किये हुए दुष्कर्मों के फलों को भोग कर जब थोडा-सा पाप शेष रह जाया करता है तो पुन भूमि पर आकर स्थावर व्वादि योनियों में उत्पन्न हुआ करते हे। नारदजी न कहा—हे दमानिधे। मुझे अब एक सन्देह हो गया है ॥५३—५५॥ आप हम सबके बडे भाई हैं अतएव आप हमारे इस सन्देह को दूर कर सस्ते हैं। आपने हमारे सामने बहुत प्रकार के धर्मों का विवेचन पूर्वक उपदेश दिया है और बहुत से पापों का भी वर्णन बरके श्रवण कराया है। आप सब प्रकार में समर्थ एव योग्य है ॥५६॥

चिरभोज्य फल तेषामुक्त बहुविदा त्वया ।
 दिनान्ते ब्रह्माण प्रोक्तो नाशो लोकत्रयस्य वै ॥५७
 पराद्धं द्वितयाते तु ब्रह्माण्डस्यापि राक्षय ।
 ग्रामदानादिपुण्याना त्वयैव विधिनन्दन ॥५८
 कल्पकोपिसहस्रेषु महान्भोग उदाहृत ।
 सबषामैव लोकाना विनाश प्राकृते लये ॥५९
 एक शिष्यत एवेति त्वया प्रोक्त जनान् ।
 एष मे सशयो जातस्त भवाञ्छुत्तुमर्हति ॥६०
 पुण्यपापोषभोगाना समाप्तिर्नास्य सत्पवे ।
 साधु साधु महाप्राज्ञ गुह्याद् गुह्यतम त्विदम् ।
 पृष्ट ततोऽभिधास्यामि शृणुष्व सुसमाहित ॥६१
 नारायणोऽक्षरोऽनत पर ज्योति सनातन ॥६२
 विशुद्धो निर्गुणो नित्यो मायामोहविवर्जित ।
 निर्गुणोऽपि परानन्दो गुणवानिव भाति य ॥६३

आपका बहुत से विषयों में महान् विस्तृत ज्ञान है। इसीलिए इन सबके चिरकाल में भोगे जान बाल फल भी बतलाए हैं। आप

ब्रह्माजी के द्वितीय दिवस के अन्त में तीनों लोको का विनाश भी बत-
 लाया करते हैं ॥५७॥ आपने ही पहिले बतलाया था कि दूसरे परार्ध
 के अन्त में इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी शय हो जामा करता है । हे
 विघ्नन्दन ! इसके अनन्तर आप यह भी कहते हैं कि ग्राम के दान
 आदि महान् पुण्य हैं । इनके पुण्यो का फल हजारों बरोडो वर्षों में
 भोगा जाया करता है । आपने यह भी कहा था कि प्राकृत तय के
 समय में समस्त लोको का विनाश होजाया करता है ॥५८॥५९॥ उस
 समय में केवल एक भगवान् विष्णु ही बचे रहा करते हैं । यहाँ पर ही
 मुझे यह सन्देश उत्पन्न हो जाता है । उसको आप कृपा कर दूर करिए
 ॥६०॥ क्या महालय हो जाने पर पुण्य-पाप का योग भी सब विनष्ट
 हो जाया करता है ? या उस भोगो की समाप्ति उस समय में भी नहीं
 हुआ करती है ? इस प्रकार में पूछे जाने पर श्री सनक देव जी ने उत्तर
 देते हुए कहा—साधु-साधु अर्थात् बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है । हे महा-
 भाग ! आपने तो यह बहुत ही गूढ बात पूछी है । मैं इसका उत्तर देता
 हूँ । आप सावधान होकर श्रवण कीजिएगा ॥६१॥ ज्योति स्वरूप-
 सनातन नारायण अक्षर और अनन्त हैं । भगवान् माया से निर्लिप्त
 हैं-निर्गुण हैं और माया के मोह से रहित है । गुण रहित
 होते हुए भी परमानन्द स्वरूप है और गुणों से मुक्त दिखलाई
 देते हैं ॥६२॥६३॥

ब्रह्मविष्णुशिवार्थस्तु भेदवा नैव लक्ष्यते ।
 गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातन ॥६४
 सयोज्य गायामखिल जगत्कार्यं करोति च ।
 ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुरूपेण पाति च ॥६५
 अन्ते च रुद्ररूपेण मङ्गमती त निश्चितम् ।
 प्रलयाते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दन ॥६६
 चराचरारमक विश्व यथापूर्वमकल्पयत् ।

स्यावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिता ॥६७
 ब्रह्मा तत्तज्जगत्सर्वं यथापूर्वं वगोति वै ।
 तस्मात्कृतानां पापानां पुण्यानां चैव सत्तम ॥६८
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मणा ह्यक्षयं फलम् ।
 नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
 यो देव सर्वलोकानामनरात्मा जगन्मय ।
 सर्वकर्मफलभुक्ते परिपूर्णं सनातन ॥७०
 योऽसौ विश्वभरो देवो गुणभेदव्यवस्थित ।
 सृजत्यवति चात्येतत्सर्वं सर्वभुगव्यय ॥७१

भगवान् ब्रह्मा—विष्णु और शिव इन तीन स्वरूपों में स्थित
 होकर भेद मुक्त से दिखलाई दिया करते हैं । वस्तुतः वही पुण्य पुरुष
 गुणों के स्वरूप इन तीन मूर्तियों में माया के संयोग को रश्मिकर
 इस जगत् का सब कार्य किया करते हैं । वही एक ब्रह्मा का स्वरूप
 धारण कर मृष्टि की रचना का काम किया करते हैं—विष्णु के स्वरूप
 में जगत् का पालन करते हैं ॥६४॥६५॥ वे ही अन्त में रश्मि रूप से
 सबको प्रसन्न कर महार किया करते हैं । यह विष्णुल सत्य एव मुदढ
 वाच है फिर वही ब्रह्मस्वामी भगवान् जनादन प्रभु प्रलय के अवसान में
 उठकर मनम पुनः इस जगत् की रचना करने की इच्छा किया करते
 हैं ॥६६॥ और वही भगवान् पुनः स्थावर और जङ्गम के स्वरूप में
 स्थित सम्पूर्ण जगत् की पूर्ववत् रचना कर दिया करते हैं । हे
 विप्रवर ! ये समस्त स्थावर आदि पहिले जहाँ पर जिस स्वरूप में
 स्थित थे उन्हीं भाँति पुनः स्थित हो जाया करते हैं ॥६७॥ ब्रह्माजी इस
 सम्पूर्ण जगत् का प्रथम बन्धों के समान ही रचना करके बना दिया
 करते हैं । इसीलिए पापों और विषय हुए पुण्या का फल भाग
 अर्थात् होने का कारण यथावत् अवश्य ही सबको भागना पड़ता है ।

ब्रह्माजी के दिव्य दिवस के अन्त में तीनों लोकों का विनाश भी बतलाया करते हैं ॥५७॥ आपने ही पहिले बतलाया था कि दूसरे पगार्ध के अन्त में इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी क्षय हो जाता करता है । हे विधिनन्दन ! इसके अनन्तर आप यह भी कहते हैं कि ग्राम के दान आदि महान् पुण्य हैं । इनके पुण्यों का फल हजारों करोड़ों वर्षों में भागा जाता करता है । आपने यह भी कहा था कि प्राकृत लय के समय में समस्त लोकों का विनाश होजाया करता है ॥५८॥५९॥ उस समय में केवल एक भगवान् विष्णु ही तन्त्रे रहा करते हैं । यहाँ पर ही मुझे यह सन्देश उत्पन्न हो जाता है । उसको आप कृपा कर दूर करिए ॥६०॥ क्या महालय हो जाने पर पुण्य-पाप का योग भी सब विलुप्त हो जाया करता है ? या उस भोगी की समाप्ति उस समय में भी नहीं हुआ करती है ? इस प्रकार से पूछे जान पर श्री सनक देव जी ने उत्तर देते हुए कहा—साधु-साधु अर्थात् बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है । हे महाभाग ! आपने तो यह बहुत ही गूढ़ बात पूछी है । मैं इसका उत्तर देता हूँ । आप सावधान होकर ध्वनि कीजिएगा ॥६१॥ ज्योति स्वरूप-सनातन नारायण अक्षर और अनन्त हैं । भगवान् माया से निर्विन्त है—विगुण है और माया के मोह से रहित है । गुण रहित हात हुए भी परमानन्द स्वरूप है और गुणों से युक्त दिखलाई देते हैं ॥६२॥६३॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यस्तु भेदया नैव लक्ष्यते ।
 गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातन ॥६४
 सयोज्य मायामखिल जगत्कार्यं करोति च ।
 ब्रह्मरूपेण नृजति विष्णुरूपेण पाति च ॥६५
 अन्ते च रुद्ररूपेण मयगती त निश्चिनम् ।
 प्रतयाते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दन ॥६६
 परापररामक विश्व यथापूर्वमवन्वयन् ।

स्यावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिताः ॥६७
 ब्रह्मा तत्तज्जगत्सर्वं यथापूर्वं कणेति वै ।
 तस्मात्कृतानां पापानां पुण्यानां चैव सत्तम ॥६८
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मणां ह्यक्षयं फलम् ।
 नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभानुभम् ।
 यो देव सर्वलोकानामनरात्मा जगन्मय ।
 सर्वकर्मफलं भुङ्क्ते परिपूर्णं सनातन ॥७०
 योऽसौ विश्वधरो देवो गुणभेदव्यवस्थित ।
 सृजत्यवति चात्येतत्सर्वं सर्वभुगव्यय ॥७१

भगवान् ब्रह्मा—विष्णु और शिव इन तीन स्वरूपों में स्थित होकर भेद गुक्त से दिखलाई दिया करते हैं । वस्तुतः वही पुण्य पुण्य युगों के स्वरूप इन तीन सृष्टियों में माया के मयाग को रक्षकर इस जगत् का सब कार्य किया करते हैं । वही एक ब्रह्मा का स्वरूप धारण कर सृष्टि की रचना का काम किया करते हैं—विष्णु के स्वरूप में जगत् का गन्धन करते हैं ॥६४॥६५॥ वे ही ब्रह्म स रुद्र रूप से सबको धन कर महार किया करते हैं । यह विलकुल सत्य एवं सुदृढ बात है फिर वही ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन प्रभु प्रलय के अवसान में उठकर मनम पुन इस जगत् की रचना करने की इच्छा किया करते हैं ॥६६॥ और वही भगवान् पुन स्थावर और जङ्गम के स्वरूप में स्थित सम्पूर्ण जगत् की पूर्ववत् रचना कर दिया करते हैं । हे विप्रवर ! ये समस्त स्थावर आदि पहिले जहाँ पर जिस स्वरूप में स्थित थे उसी भाँति पुन स्थित हो जाया करते हैं ॥६७॥ ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण जगत् को प्रथम कल्पों के समान ही रचना करके बना दिया करने हैं । इसलिए पापों और विषय हुए पुण्या का पन भोग अक्षय होने के कारण यथावत् अवश्य ही सबको भोगना पड़ता है ।

कर्मों का नाश भोगने ही से होता है चाहे कितन ही फगोड कल्प बयो न हो जावें ॥६८॥६९॥ यह अटल सिद्धांत है कि किये हुए कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो कर्मों का फल मनुको अवश्य भोगना होता है । जगत्समय अ नरात्मा भगवान् नारायण देव है वे परिपूर्ण सनातन देव ही सब कर्मों का फल भोगा करते हैं क्योंकि वे ही सबमे विराजमान रहते हैं ॥७०॥ जो इस सम्पूर्ण विश्व के भरण करने वाले देव है और गुणों के भेद से इस जगत् में स्थित होकर इस सृष्टि का पापण और नष्टार किया करते हैं वे अविनाशी ईश्वर ही सबभुक् है । इसका तात्पर्य यही होता है कि वे ही प्रथम सबमे व्याप्त होकर भाग रहे थे और आगे होने वाले कल्पा में भी वे पुनः सबमे व्याप्त होकर मूल सृष्टि से अलग २ कर्मों का फल भोगा करते हैं या जो समझिए कि समस्त प्राणियों को उनके नियंत्रण में रहने के कारण कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । प्रलय के समय में पुनः सृष्टि की रचना होने के समय में समस्त प्राणियों का काम बीज नष्ट नहीं होता अशुभ प्रसूत और अव्यक्त रूप में रहा करता है । जब पुनः सृष्टि का समारम्भ होता है उस समय में वह फिर उद्भूत एक जाति होजाया करता है । कर्मों का फल कभी भी बिनष्ट नहीं होता है ॥७१



॥ हरि की आराधना ॥

एव कर्मपाशनियत्रितजनव स्वर्गादिपुण्यस्थानेषु पुण्यभोगमनुभूय
 पातनामु धातीव दुःखतर पापफलमनुभूय प्रक्षीणवर्माविशेषेणामु
 लोकागात्थ सबभर्यात्रिहृत्त्रिपु मृत्युदाधासयुतेषु स्यावग्निदिपु
 जायन्ते । वृक्षगुल्मलतावल्कीगिरयश्च तृणानि च । स्यावरा इति
 विद्याता महामोहसमावृता ॥१॥ स्यावस्त्वे पृथिव्यामुप्तवीजानि
 जलसेकानुपद मुमस्वारसामग्रीवशादन्तश्चतप्रपाचितान्युच्छूनस्व-

मापद्य ततो मूलभाय तन्मूलादकुरोत्पत्तिस्तस्मादपि पणकाडना-
लादिक काडेपु च प्रसवमापद्यते तेषु च पुष्पसंभव ॥२॥ तानि
पुष्पाणि कानिचिदफन नि कानिचित्फ नहेतुभूतानि तेषु पुष्पेषु वृद्ध
भावेषु सन्तु तत्पुष्पमूलतस्तुपोत्पत्तिर्जायते तेषु तुपभात्तूणा
प्राणिना संस्कारसामग्रीवशाद्धिमरश्मिक्विरणामन्तया तदोपाध
रसस्तुपात् प्रविष्य क्षीरभाव समेत्य स्वकाल तदुलाकारतामुप
गम्य प्राणिना भोगसंस्कारवशात्सर्वतर फलित स्यु ॥३॥

श्री सनकाचार्य ने कहा—इस भाति कर्मों का व घन वडा ही
अद्भुत है । इनका पाप म वद्ध प्राणी स्वर्गादि परम पुण्यमय जाकी म
वपन किय हुए फली का भोग करके अथवा नरको मे पापो का फल
परम दाहण और दुःखपूण भोग करके कर्मों के क्षय हा जाने पर कम
शेष के लिए होने से इस लोक म ज म ग्रहण करके समस्त भया से
विहरत मृत्यु की बाधा से युक्त स्थावर आदि अनक योनियाम ज म
लिया करते हैं । वक्ष—गुल्म—लता—वल्ली—पवत—घास आदि
सर्व स्थावर वहे जात है । इन जन् प्राणियों म अत्यधिक माह एव
अज्ञान होते हैं ॥ १ ॥ स्थावर स्वरूप म जब पृथ्वी मे बीजा का वपन
होता है तो जल का सिञ्चन प्राप्त करके नरार्द्र आदि होने पर खाद की
गर्मी पाकर य परिपक्व होते हैं और मूत्र भाव की दशा म हाकर उस
मूत्र म ही अक्षुर की उत्पत्ति हुआ करती है । फिर उसने पत्र—दहनी—
तना—वल्ली और पुष्पो की उत्पत्ति हुआ करती है ॥ २ ॥ उन पुष्पा मे
कुछ तो पत्रहीन हुआ करत है और फला के कारण होते हैं । पुष्पा की
वृद्धि होने पर पुष्पो की जठ से तुप (शुमी) उत्प न हुआ करता है ।
उस तुप म उसका भाग करने वाले प्राणियों के संस्कार की सामग्री
से चन्द्र किरणों के पडने पर उन औषधियों का रस उस तुप के अंदर
प्रवेश करके क्षीर व भाव की प्राप्त कर लेता है । समय होने पर वही
भाग गन्धार क हान से चावल जैसे फल का स्वरूप प्राप्त कर लिया
करने है जाकि स्थान म प्राजाया करते हैं ॥३॥

स्थावरत्वेऽपि बहुकाल वानरादिभिर्भुज्यमाना हि च्छेदनवाग्नि-
 दहनशीघ्रात्पादिदुःखमनुभूय भ्रियते । ततश्च क्रिमयो भूत्वा सदा
 दुःखबहुला क्षणाद्ध जीवत क्षणाद्ध भ्रियमाणा बलवत्प्राणि-
 पीडाया निवारयितुमक्षमा शीतवातादिव्लेशभूयिष्ठा नित्य क्षुधा-
 क्षुधिता मलमूत्रादिषु सञ्चरतो दुःखमनुभवति ॥ ४ ॥ तत एव
 पशुयानिमागत्य बलवद्वायोद्वेजिता वृषद्वेगभूयिष्ठा क्षुत्काता नित्य
 वनचारिणो मातृष्वपि विषयातुरा वातादिव्लेशबहुला कस्मिंश्चि-
 ज्जन्मनिमासाभेद्याद्यदना कस्मिंश्चिज्जन्मनि मासाभेद्याद्यदना
 कस्मिंश्चिज्जन्मनि बदमूलफलाशना दुर्बलप्राणिपीडानिरता
 दुःखमनुभवति ॥५॥ अज्जत्वेऽपि वाताशनामारा मेघ्याद्यशनाश्च
 परपीडापरायणा नित्य दुःखबहुला ग्राम्यपशुपानिमागता अपि
 स्वजातिवियोगभारोद्धहनपाशादिवधनताडनह्लादिधारणादिसर्व-
 दुःखान्यनुभवति ॥६॥ एव बहुयोनिषु सभ्राता क्रमेण मानुष
 जन्म प्राप्नुवति केचिच्च पुण्यविशेषाद्युत्क्रमेणापि मनुष्यजन्माश्नु-
 वते ॥७॥

इस स्थावरता की दशा में भी जितनी ही बार वानर आदि के
 द्वारा भक्षण किये जाने पर और छेदन आदि हो जाने पर खाद्य के रूप
 में ही जाना और शीतोष्णादि के दुःख का अनुभव प्राप्त कर मर भी
 जाया करते हैं । और पुनः कीटादि घनकर सवधा दुःख का अधिवा-
 यिक अनुभव किया करते हैं । ये आधे क्षण ही में जीवित रहकर मर
 भी जाया करते हैं । ये बलवान प्राणियों के द्वारा प्रदत्त दुःख को दूर
 नहीं कर पाते हैं । इनको शीत-वायु आदि का बहुत बुरा सन्ना
 पडा करता है । सदा भूष में विचरिताने हुए भय मूमादि में पड़े हुए
 दुःख का अनुभव करते रहा करते हैं ॥ ५ ॥ फिर वे पशु योनि में आ-
 कर भी अपने में अधिक् बलवान् प्राणियों की बाधाभास क्षीप्त हुए
 रहते हैं और भूष में लडपडाते रहा करते हैं और मरने तक बाध

हृए रहते हैं । इनमें न तो कुछ ज्ञान ही होता है और न शक्ति ही हुआ करती है । ये सदा ब्रह्म में टकराते हैं और जड़ता बश अपनी माता से भी भोग करने के लिये आतुर हो जाया करते हैं । वायु—शीत आदि के भी असह्य दुःखों को भोगते रहा करते हैं । किसी जन्म में तो इनका भोग्य धाम होता है और किसी में मासादि अपवित्र वस्तुओं को खाया करते हैं । किसी योनि में वन्द-मूलादि का भक्षण किया करते हैं । ये भी अपने में कमजोर जीवों को पीडा दिया करते हैं और स्वयं बहुत कुछ दुःख का अनुभव किया करते हैं ॥ ५ ॥ कभी ये प्राणी अण्डज योनियों में उत्पन्न होकर जीवन बिनाया करते हैं । इनमें भी मास आदि या अपवित्र भोजन कर दूसरों को पीडा देते हुए स्वयं भी नित्य अनेक दुःख भोगा करते हैं । ग्राम्य पशुओं की योनि में कभी उत्पन्न होते हैं और इसमें भी अपनी जाति से वियोग—भारवहन करना—रज्जु बन्धन—कशातइन आदि अनेक कष्टों को भोगते हुए परम दुःखित होने का अनुभव किया करते हैं । इस तरह में अनेक कष्टों को भोगते हुए परम दुःखित अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए अन्त में इन प्राणियों को इस समार में यह मनुष्य योनि प्राप्त हुआ करती है । इसमें कुछ ही लाग अपने पुण्य विशेषता होने के कारण उत्क्रमण करके ही इस परम दुर्लभ एवं सर्वोत्तम मानव जन्म को सफल बनाया करते हैं और इसका असली ध्येय जो मुक्ति है उसे प्राप्त कर लिया करते हैं ॥६॥७॥

मनुष्यजन्मनापि च चर्मकारचडालव्याघनापितरज्जुकुम्भकार-
लोहकारस्वर्णनारततुवाय सौनिकजटिलसिद्धधावकनेध्वकभृतक-
शामन हरि नीचे भृत्य द्रिदहीनागामिकागत्पादिदुःखवहूल-ज्वर-
तापशीतशनेष्मगुरुमपादाशिशिरो गर्भपाश्ववेदनादिदुःखमनुभवति
॥ ८ ॥ मनुष्य वेऽपि यदा स्त्रीपुरुषयोर्न्येवायन्तस्मत्परता यदा
जरायु प्रविशति तदैव कर्मवशाज्जतु शुक्लेण सह जरायु प्रविश्य
शुक्लोणितान्ते प्रवर्तति ॥९॥ तद्वीर्यं जीवप्रवेशात्पञ्चाहात्कसल

भवति अर्द्धमासे पल्लभावनुपेत्य मासे प्रादेशमात्रत्वमापद्यते ॥१०॥ तत प्रभृति वायुवशाच्चैतन्याभावेऽपि मातुरुदरे दुःसहता पव्लेशतयैकत स्यातुमशक्यत्वाद् भ्रमति ॥११॥

इस मनुष्य शरीर को भी प्राप्त कर कुछ लोग अपने पुरातन कुत्सित कर्मों के फलस्वरूप चमार, चाण्डाल, नाई, धोबी, बहेलिया, कुम्हार, जुलाहा, लुहार, सुनार, दर्जी, मुडचिरा, जोगी, हरकारा, मुहंरि, चाकर, चपराती नीच भृत्य, दरिद्र, हीनाङ्ग, अधिवाङ्ग आदि अनेक प्रकार के दुःखमय जीवन में दुःखों का भोग किया करते हैं और मानव जीवन पाने का कोई भी सुख नहीं होता है। इस जीवन में भी कम्मवश, उदर—ताप—शीत—कफ—शूल—नेत्र रोग पद व्याधि—शिरो वदना आदि की अनेक पीड़ाओं का अनुभव किया करते हैं और पूरा जीवन कष्टों में ही बीत जाता है ॥ ८ ॥ इस मनुष्य योनि में जब जन्म धारण किया करता है उस समय में पुरुष स्त्री के साथ सम्भोग किया करता है और जब पुरुष का वीर्य स्त्री की योनि में जानर गर्भ में प्रवेश किया करता है उसी समय में अपने पूर्व सञ्चित कर्मों के अनुसार जन्तु उस वीर्य के साथ जरायु में प्रविष्ट होकर रक्त और वीर्य के कल में रहा करता है ॥ ९ ॥ उस जीवात्मा के प्रवेश के समय में पाँचा दिन बल्ल का रूप धारण किया करता है। अर्थात् वीर्य और रक्त को ढकने वाली किल्ली बन जाता है। पन्द्रहवें दिन में मांस का एक पिण्ड जैसा इमड़ा स्वरूप हो जाया करता है और एक मास में प्रादेश मात्र इसका परिमाण हो जाया करता है ॥ १० ॥ उस समय में भी चैतन्य का अभाव रहत हुए या वायु के वज्र माता के उदर में अग्रतः ताप के बनेक से यह एक स्थान में टिकन में अग्रकत हो जाया करता है और इधर—उधर पुदकता रहा करता है ॥ ११ ॥

मासे द्वितीये पूर्णे पुरुषात्तरमात्रतानुपगम्य मासत्रिनय पूर्ण कर-

चरणाद्यवयवभावमुपगम्य चतुर्षु मासेषु गतेषु सर्वावयवाना सधि-
 भेदपरिज्ञान पचस्वतीतेषु नखानामभिव्यजक्ता पटस्वतीतेषु
 नखगधिपरिस्फुटतामुपगम्य नाभिसूत्रेण पुष्यमाणममेध्यमूत्रसि
 क्ताग जरायुणा वधितरक्तास्थिक्रिमिवनामज्जास्नायुक्नेशादिद्रूपिते
 कृत्सिते शरीरे निवासिन स्वयमप्येव परिदूषितदेह मातुश्च कट्व-
 म्लनवणात्युष्णभुक्तदह्यमानमात्मान दृष्ट्वा दही पूवज-नस्मर-
 णानुभावात्पूर्वानुभूतनरकदु खानि च स्मृत्वातदुं येन च परिदह्य-
 मानो मातुर्देहातिमूनादिरुध्रेण दह्यमान एव मनसि प्रलपति
 ॥१२॥ अहोऽयन्तपापोऽह पूर्वजन्मनि भृत्यापत्यमित्तयोविदग्दृक्षे-
 त्रधनधान्यादिष्वत्यन्त-रागेण पलापोपणार्थं परधनक्षेत्र दिक्
 पश्यतो हरणाद्युपायैरपहृत्प कामाद्यतया परस्त्रीहरणादिव मनु-
 भूय महापापान्याचरन्तं पापैरहमेव एवविधनरक्तानभूनुय पुन
 स्थावरादिषु महादु खमनुभूय सप्रति जरायुणा परिनेष्टतो त-
 दुंखेन वहिस्तापेन च दह्यामि ॥ १३ ॥ मया पोषिता दाराश्च
 स्वकमवशादन्यतो गता ॥१४॥

जब दूसरा मास आरम्भ होता है और वह पूरा हो जाया
 करना है इसका आकार एक पुरष का सा हुआ करता है और तीसरे
 मास के पूण होने पर उसके वर-चरण आदि अवयव उत्प न हो जाया
 करते हैं । चार मास पूण होने पर समस्त अङ्गों को संधियों का जान
 इसको होने लगता है । पाँचवे मास पूण होने पर नखादि मालुम
 होने लगते हैं । छै मास समाप्त होने पर नखों की संधियों की प्रकृता
 हो जाती है । सातव मास में शोम उत्प न हो जाते हैं और आठवे
 मास में इसमें रेत पानी आ गया करना है । नाभि में जुड़े हुए नाग स
 यह पोषण प्राप्त किया करता है । उस रक्षावस्था में इस पर विपदा-
 मूत्र का छिड़काव होता रहता है । यह जरायु में बद्ध रहता है उस
 समय में यह प्राणी रक्त-अस्थि-कीड़े-चर्बी-मज्जा नर्म जीव केनादि

से दूषित एव कुत्सित शरीर मे अपने आपको रहता हुआ देखा करता है । अपनी माता के द्वारा खाये हुए कदु-भ्रम्ल और नमकीन आदि बहुत गर्म भोजन से झुलसता रहा करता है उस समय मे गर्म की बुरी दशा मे पड़े हुए परग दु खित होकर उसको अपने पूर्व जन्मो का स्मरण हो आता है और प्रथम भुवत नारकीय पीडाओ का भी यह स्मरण करके मन ही मन आन्तरिक पीडा मे बहुत ही सन्तप्त हुआ करता है । माता के शरीर के मूत्र की रूक्षता से जलता हुआ यह जीवात्मा उस समय विलाप किया करता है ॥ १२ ॥ यह कहता है—अरे ! मैं बहुत ही अधिक पापात्मा हूँ । मैंने अपने पूर्व जन्मो मे बड़ा भारी अन्याय किया है । भृत्य, सन्तान, स्त्री, घर, खेत, धन आदि मे मेरा बहुत ही अधिक त्याग बड़ा हुआ था । अपनी स्त्री आदि के पोषण ने लिये मैं सदा पराये धन धान्यादि का अपहरण किया करता था और कामा छ होकर पराई स्त्री का अपहरण कर महान् पाप कर्म किया करता था । उन्हीं पापों का यह परिणाम है कि मैं इस समय मे अकेला ही ऐसे पार नरको को भोगता हुआ वारम्बार स्वावर एव कीट—पशु आदि की योनियो मे महान् पौर दुखो का भोग करता हुआ इस समय मे इस झिल्ली मे बद्ध होकर बाहरी ताप और अन्तर्दुःख से झुलस रहा हूँ । ॥१३॥ जिस स्त्री पर मैं इनना मोहित था और उससे पालन मे दटे-बढ़े अनर्थ भी किया करता था वह भी अपने कर्म वश वही चली गयी है ॥१४॥

अहो दुःख हि देहिनाम् ॥१५॥ देहस्तु पापात्सजातस्मात्पाप न कारयेत् । भृत्यमित्तम्लशार्धमन्यद्द्रव्य हृत मया ॥१६॥ तेन पापेन दह्यामि जरायुपरिवेष्टित । दृष्ट्वान्यस्य श्रियं पूर्वं मततोऽहमसूयया ॥१७॥ गर्भाग्निनानुदह्ये यमिदानीमपि पापकृत् । वायेन मनसा वाचा परपीडामकारिणम् । तेन पापेन दह्यामि त्वहमेनाऽतिदुःखिन ॥१८॥ एव घटुन्निध गर्भस्था जतुर्विलय स्वयमेववा

॥१६॥ आत्मानमाश्वास्य उत्पत्ते रनगोत्तर सत्सगेन विष्णोश्चरित-
श्रवणेन व विगुह्यमना भूत्वा सत्कर्मणि निर्वृत्य अखिलजगदतरा-
त्मन सत्यज्ञानानन्दमयस्य शक्तिप्रभावामुच्छितविष्टपवर्गस्य लक्ष्मी-
पतेर्नारायणस्य सकलसुरासुरयक्षगघर्षराक्षसपन्नगमुनिकिन्नरस-
मूहाचितचरणकमलयुग भक्तिवतः समम्यर्च्यं दु सह सत्सारच्छेदस्य
कारणभूत वेदरहस्योपनिषद्भिः परिन्फुट सकललोकपरायण हृदि
निधाय दु खतरमिम मसारागारमतिक्रमयिष्यामीति मनसि भाव-
यति ॥२०॥

हाय ! हाय ! इन देहधारियों को कितना महान् दुःख होता है । यह देह पाप कर्म में ही समुत्पन्न हुआ है । अतएव इसमें पाप कर्म नहीं करने चाहिए । मैंने अपने बुदुप्प, सेवक, मित्र और स्त्री के लिए दूमरो के धनो को अपहरण करके महान् पाप कर्म किया था ॥१५॥१६॥ उन्ही घोर पाप के कारण मैं ही इस समय में जरायु से लिपटा हुआ इस समय में जन भुन रहा हूँ । मुझे पहिले दूमरो की सम्पत्ति को देख कर बड़ी बुद्धन हुआ करती थी ॥१७॥ ओहो ! इस प्रकार के पाप कर्मों को करने वाला मैं अब इस कर्म की अग्नि में भुना जा रहा हूँ ॥१८॥ माता के कर्म में रहने वाला यह जीवात्मा बहुत से अपने कर्मों का स्मरण करके क्षिणप्रता रहा करता है । कुछ समय में अपने आप ही सम्भ्रामित करके बहा करता है । अब मैं जन्म लेकर सदा सत्पुरुषों का साङ्ग किया करूँगा । भगवान् के परम पावन चरित्र का धरण करूँगा । ऐसे उत्तम आचरण में मेरा मन पवित्र एवं विगुह्य हो जायगा फिर मैं स्मरण करके इस समस्त विषय की अन्तरात्मा— सत्य ज्ञान और आनन्दस्वरूप, शक्तिप्रभाव से सोचा को वश में रखन जाने, सब गुरागुर, यश, राक्षस पन्नर्ष, पन्नग और मुनिजन तथा किन्नरों के द्वारा बन्धमान वाले भगवान् सतमी के स्वामी का शक्ति भार के साथ अर्पण, स्मरण किया करूँगा । इस समार का उच्छेद

करने के कारणस्वरूप वेदों के रहस्य उपनिषदा द्वारा समझ में आने वाले सब लोका के परावण भगवान् को अपने हृदयमें विराजमान करके इस महान् दुःखात्मक ससार के कारागार से भी मुक्त होकर उत्तम आनन्दमय पद को प्राप्त कर सँगा । ऐम बहुत से विचार उमके मन में उस गर्भावस्था में आया करते हैं ॥१८—२०॥

यत्तस्तन्मातु प्रभूतिसमये सति गभस्थो देही नारदमुने वायुता परिपाडितो मायुश्चापि दुःखं कुवन्कर्मपाशेन यलाद्योनिमार्गाग्निष्कामन्तव यातनाभोगमेरकालभवमनुभवति ॥२१॥ तेनातिवने-
शेन योनियन्द्रपीडितो गर्भाग्निष्कृतातो नि सजता याति ॥२२॥ त
तु वाह्यवायु समुज्जीवयति । वाह्यवायुस्पर्शसमनतरमेव नष्टमृ-
तिपूर्वानुभूताखलि दुःखानि वस्तमानान्यपि ज्ञानाभादविज्ञायान्-
यन्तदुःखं मनुभवति ॥ २३ ॥ एव वलत्वमापन्नो जतुस्तथापि
स्मवनमूर्खलिप्नदेह जाच्यात्मिकादिपोढचनानोऽपि वस्तुमशक्त
क्षुत्पुषानाडिनो रुदने सति स्तनादिक देयमिति मन्वाना प्रयतन्ते
॥२४॥ एवमनेक देहभोगमन्याधीनतयानुभूयमानो दशादिष्वपि
निवारयितुमशक्त ॥२५॥

हे नारद ! इसी समय में माता के प्रसव का काल उपस्थित हो जाता है । यह गभ में स्थित प्राणी गभ की प्रसव वायु से उत्पीडित होता हुआ अपनी जननी को भी बड़ी भारी वदना देता हुआ कम पाश के बंधन में बरवण योनि के माग से निकलने में सभी यातनाओं की बड़ी भारी पीडा को भोग कर बाहर आता है । जन्म काल की यातनायें भी बहुत ही नष्टदायक होती हैं जैसे किसी का खींच कर भारी दवाब में बढाया जाना है वैसे ही इन प्राणी का अग २ पिच्छी में पीडा का घोर अनुभव उस समय में विद्या करता है ॥२१॥ उस महान घोर कष्टमयान के अंत में होकर बाहिर आता हुआ यह प्राणी ऐसा सना झूठ हो जाता करता है ॥२२॥ जब बाहिर की वायु का स्पर्श होता है तो कुछ चेतना होती है और ससार की

बाहिरी वायु का स्वर्ण होने ही उमको मर स्मृतिमा विरोध हो जाया करती हैं । उमके गर्भ में जो अनुग्रह से वे सभी नष्ट हो जाया करते हैं । वर्तमान दुष्टों का भी ज्ञान उम समय में नहीं रहता है अतः वह बहुत दुष्टिन होता रहता है ॥२३॥ उम वायुवाक्स्या में भी वह ज्ञान और दशा के अभाव के कारण मनुष्य में लगा हुआ पडा रहता करता है और अत्यधिक कष्टों से पीड़ित रह कर भी कुछ कह या कर नहीं पाता है । जब वह रोता है तो लोग उमको धुधिन होकर रोता है यही समझा करते हैं और स्नान पान कराते की चेष्टा किया करते हैं ॥२४॥ इस तरह में देह के बहुत में भोगों को भोग कर दूसरों के अधीन पाकर रहने से जाति के दशन का भी स्वयं निवारण नहीं कर पाता है ॥२५॥

वायव्यभावमात्त मातापिशोरुपाध्यायस्य ताडन मदा पर्यटनशी-
लस्य पानुभस्मपनादियु नीचनं सदा फलहनियतत्वमनुचित्व
यदुभयापाराभासकार्यनियतत्व तद मभर आध्यात्मिक दुष्टमेव
विधमनुभवति ॥२६॥ ततस्तनु तरुण भायेन धनाजंनमजिनस्य रक्षणं
तस्य नाशस्यपादियु वायव्यन्त दुष्टिना मायया मोहिता. कामक्रो-
धादिदुष्टमत्त मदामूषापरायणा परस्त्रपरस्त्रोत्तरणोभायपरायणाः
पुनमित्रजननादिभरणोसायचि आपरायणा मृयाहृत्कारदुपिताः
पुनादियु व्याध्यादिपीडितेषु मत्सु मवंध्याप्ति परित्यज्य रोगा-
दिभि. कवेगिताना ममीषे स्वयमाध्यात्मिकरदुष्टेन परिप्लुभायव्य-
मानप्रकारेण विनामनुवते ॥२७॥ दूरधेरादिव कर्षं विचिन्ना-
विरिपारितम् । ममूढस्य मुटुम्बस्य मय भर्ता वसंतम् ॥२८

इस मर कुछ धून कर पुन उगी सागरिक जात में रेंडना जाता जाया करता है । उम काय दशा में माता-पिता और व्यापकों के द्वारा दण्डित भी किया जाता है । बह बिट्टी में किराया हुआ खेत-पट्टना रहा करता है बरोड़ि म तो उम समय में कुछ ज्ञान ही

होता है और न उसमें शक्ति ही होती है । वह बचपन में भैला-कुचैला और सदा अपवित्र रहा करता है । समस्त बचपन इसी तरह उसका व्यतीत होजाया करता है । उस समय में अनेक नई २ ससार की गतिविधियाँ उसके सामने आनी रहा करती हैं और पूर्णतया पराधीन होकर अध्यात्मिकता रहित रहकर कष्ट भोगा करता है ॥२६॥ इसके पश्चात् जब वह युवा होजाता है तो माया का मोह चारों ओर से उसे घेर लेता है और वास्तविक आत्मोन्नति के कार्य का उस समय भी उसे ध्यान ही नहीं रहा करता है । यह ससार ही परम प्रिय लगा करता है । धन की कमाई ही सर्वोपरि बर्चव्य लगता है । धन की रक्षा और नाश होने पर चिन्ता का अनुभव किया करता है । तरंगता म काम, क्रोध और अहङ्कार उसके मन की दूषित कर दिया करते हैं । पराये धन स्त्री और सुख सम्पदा से ईर्ष्या होती है । रात दिन अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में ही डूबा रहा करता है । पुत्रादि की व्याधि से चिन्ता मग्न होता है तो कभी व्यापार की हानि से चिन्तित हुआ करता है । धन के अभाव के कारण बड़ी भारी चिन्ता से उद्विग्न होकर कुटुम्ब के निर्वाह की चिन्ता से व्यथित रहा करता है ॥२७॥२८॥

मम मूलधन नास्ति वृष्टिश्चापि न वर्पति । अपव पलायित कुत्र गाव किं नागना मम ॥२६॥ बालापत्या च मे भार्या व्याधितोऽह च निर्धन । अविचारा-वृषिर्नष्टा पुत्रा नित्य रुदति च ॥२७॥ भग्न छिन्न तु म मरुत याधवा अपि दूरगा न तम्यते वर्त्त न च राजशात्रानिदु सहा ॥२९॥ रिचवा मा प्रधावन्ने वय जेष्याम्यह रिपून् । व्यधभायाशमश्वाह प्राप्ता प्राप्सुणवा अमी ॥३२॥ एवम-त्यन्वचिन्तापुन स्वदुःखानि निवारयितुमशमोधिर्वाधि भाग्यहीन मा किमर्थं विदधे इति दयमाक्षिपति ॥३३॥ तथा वृद्धत्वमापन्नो

हीयमानसारो जरापलितादिव्याप्तदेहो व्याधिवाध्यत्वादिवमापन्न ।
 प्रकपमानावयवश्वासकासादिपीडितो लोलाविलोचन श्लेष्मव्याप्त
 कठ पुत्रदारादिभिन्नस्स्यमान वटा मरणमुपयामीति चिताबुलो
 मयि मृते सति मर्दाजत ॥३४॥ गृहक्षेत्रादिक वस्तु पुत्रादय कथ रक्षति
 वस्य वा भविष्यति ॥३४॥ मद्धा परैरपहृत पुत्रादीना कथ वर्त्तन
 भविष्यतीति ममतादु खपरिप्लुतो गाढ निश्चस्य स्वनवयसा
 वृतानि वर्त्तानि पुन पुन स्मरन् क्षणे विस्मरति च सततस्त्वास
 न्मरण ॥३५

उस समय मे अनेक विचार उसने हृदय में उठा करते हैं ।
 वह सोचा करता है मेरे पास धन नहीं है क्या नहीं हुई है घेनी मे
 भी कुछ नहीं होगा मेरे अश्वदि पशु भी नहीं आये हैं । मेरे बच्चे
 छोटे २ हैं मैं निर्धन हो गया और रोग ग्रस्त भी रहता हूँ—मेरे बच्चों
 का निर्वाह कैसे होगा ? मेरा घर भी जीर्ण दशा में है—मेरे बच्चों
 भी मुझ त्याग दिया है—शत्रु मुझ मनाता चाहते हैं मैं सभी मायनों में
 हीन और दीन हो गया हूँ—मैं कोई व्यापार भी नहीं कर सकता हूँ—मेरे
 घर पर लोग आते हैं उनसे सात्कार करने की शक्ति नहीं है—॥२६॥३०॥
 ॥३१॥३२॥ ऐसी बहुत—मैं विन्ताओं में डूबकर अपने दुखों को हटाने
 में असमर्थ होकर अपने भाग्य को कोसा करता है और कहा करता है कि
 हे विधाता ! तुम धिक्कार है कि मुझ जैसा भाग्यहीन तूने इस संसार
 में क्यों उत्पन्न किया है । धीरे २ बुढ़ापा आ जाता है तो सभी तरह
 बर्णहीन होजाया करता है । शरीर में झुरिया बालों में सफेदी इन्द्रियों
 की क्रियाशक्ति होजाया करती है । अनेक व्याधियाँ उम्र दुबलता में इन
 प्राणी को घेर लिया करती हैं । इनसे सभी अज्ञ राहित हैं—पाँगी
 इकांत आदि व्याधियाँ कष्ट दिग्ग करती हैं । आँवों में दिखाई नहीं देना
 है—बधिरता भी घेर लेती है । उम्र दशा में उनसे पुत्र-कलत्रादि भी
 पकवा दिया करते हैं उस समय में भी उस यहाँ चिन्ता होती है—मैं

कब मरूँगा और बाद मे ये पुनादि मेरे वैभव की कैसे रक्षा करेंगे कोई दूसरा तो आकर इसे इनसे नहीं छीन लेगा । यदि ऐसा हो गया तो फिर ये शैले जीवित रहेंगे । ऐसे अपने जीवन मे अनुभव निवे गये कर्मों का स्मरण कर दुःख और चिन्ता म डूबा रहता है और अपनी सद्गति का विचार भी उसके मन मे नहीं आता है । यदि कुछ आता भी है तो एक ही क्षण मे वह भूल जाता है । सासारिक माया के मोह मे ही अज्ञानि श मग्न रहते हुए उसका समस्त जीवन व्यतीत हो जाया करता है और मृत्यु का समय निश्चय आजाता है ॥३३—३५॥

ध्याधिपीडितोऽन्तस्तापार्त क्षण शय्याया क्षण मचे च ततस्तत पर्यटन् क्षुत्तूटपरिपीडित विचिन्मात्रमुदक देहीत्यतिकारपण्येन याचमानस्तथापि ज्वराविष्टानामुदक न थ्येयस्करमित्तिद्वेष कुर्वन्मन्दचंतन्यो भवति ॥३६॥ ततश्च हस्तपादाकर्पजे न तु क्षमो रुद्धिर्भवन्धुजनैर्विष्टितो वक्त्रमक्षम स्वाजितधनादिक वस्य भविष्यतीति चितापरो बाष्पाविललोचन कठे घुरघुरायमाणं सति शरीरान्निष्क्रान्प्राणो यमदूर्तैर्भत्स्यमान पाशयत्रितो नरकादीन्पूर्ववदश्नुते ॥३७॥ आमलप्रक्षयाद्यद्वदन्तो धाम्यन्ति धातव ।

तथैव जीविन सर्वं आकर्मप्रक्षयाद् भुशम् ॥३८॥

तस्मात्ससारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम ।

अभ्यसेत्परम ज्ञान ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९॥

ज्ञानशून्या नरा ये तु पशव परिकीर्तिता ।

तस्मात्ससारमाशाय पर ज्ञान समभ्यसेत् ॥४०॥

मानुष्य चैव सप्राप्य सर्वकर्मप्रसाधकम् ।

हरि न सेवते यस्तु कोऽन्यस्तस्मादचेतन ॥४१॥

अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्र मुनीश्वरा ।

आस्थिते वामदे विष्णो नरा याति हि यातनाम् ॥४२॥

उम शरीरान्त के निःश्वसित आने पर यह अनेक व्याधियों से पीड़ित होकर चबड़ाया करता है । श्वा मे पडा हुआ करवटें बव सता रहता है । भूख न्यास स विजग होकर जल नी याचना किया करता है । पुत्रादि के द्वारा यह कहने पर कि ज्वरावस्था मे जल पीना ठीक नहीं है वह मगने ही बुद्धर चेतनाशून्य होजाया करता है । ३६। धीरे २ इतनी अशक्ति हो जाती है कि फिर यह हाथ-पैर भी नहीं हिला डुला सकता है । बान्धव लोग उमे घेर कर रोत हैं किन्तु इसका बोल बन्द हो जाया करता है । मनमे उम समय भी अपने सन्धिन प्रेमव की चिन्ता रहा करनी है । इसको वीन भोगेगा, मैं तो दुनियाँ में जा रहा हूँ । इसकी आँखा में आँसू भर जाते हैं, कण्ठ घुरघुराने लगता है । प्राणों के निकलने के समय आँजाने पर यम के दूत आकर पाश में बाँध लेते हैं और घमकाते हैं और डराते हैं और फिर पहिले की ही तरह नरको को यातना भीषा करता है । ३७। मल को दूर करने के लिये घानों को तपाने के ही समान जैसे शुद्ध एव तपाया जाना है उसी भाति कर्मों के धाय होने तक य प्राणी भी इस सामरिक अग्नि में तपन रहा करते हैं । ३८। अतएव हे दिव्यधर । इस सत्तार की रावाग्नि की लपटी से बचकर प्राणी को ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि बिना ज्ञान के मुक्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होगी । ३९। जो मनुष्य ज्ञान से रहित होते हैं वे पशु के ही समान हुआ करते हैं । अतएव इस सत्तार से छुटकारा पाने के लिए ज्ञान का अभ्यास प्राणी को अवश्य ही करना चाहिए । ४०। यह मानव का शरीर बहुत ही दुर्लभ है । जीवात्मा इसी को प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकता है । जो समस्त कर्मों की निवृत्त करने वाले इस मनुष्य देह को धारण करते भी भगवान् की सेवा और स्मृति नहीं किया करता है और रात दिन सत्तार की भाया के लक्षण मोह में ही पडा रहता है उससे अधिक मूढ एव शक्तानी अन्य कौन होगा ?

हे मूर्खोश्वर वृन्द ! यह व्यग्न ही आश्चर्य की बात है कि समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु के विद्यमान रहते हुए भी मनुष्य मूढ़तावश नरको की घोर यातनायें सहन किया करते हैं ॥४२॥

नारायणे जगन्नाथे सर्वकामफलप्रदे ।
 स्थितेऽपि ज्ञानरहिता पच्यन्ते नरकेऽथहो ॥४३
 सवन्मूत्रपुरीषे तु शरीरेऽस्मिन्मशाश्वने ।
 शाश्वत भावयत्यज्ञा महामोहसमावृता ॥४४
 कुत्सित मांसरक्तार्थं देहं सप्राप्य यो नर ।
 ससारच्छेदकं विष्णुं न भजंस्मोर्गतिपातकी ॥४५
 अहो कष्टमहो कष्टमहो कष्टं हि मूर्खता ।
 हरिध्यानपरो विप्र चाण्डालोऽपि महामुखा ॥४६
 स्वदेहान्निस्सृतं दृष्ट्वा मत्तमूत्रादिकित्त्वियम् ।
 उद्वेगं मानवा मूर्खा किं न याति हि पापन ॥४७
 दुर्लभं मानुष जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशरपि ।
 तत्त्वं ध्वा परलोकार्थं यत्नं बुभुक्ष्याद्विचक्षण ॥४८
 अध्यात्मज्ञानसंपन्ना हरिपूजापरायणा ।
 लभन्ते परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४९
 यतो जातमिदं विश्वं यतश्चैतन्यमश्नुते ।
 यस्मिंश्च विलयं याति स ससारस्य मोचक ॥५०
 निर्गुणोऽपि परोऽनन्तो गुणवानिव भाति यः ।
 तं समभ्यर्च्यं देवेशं ससारात्परिमुच्यते ॥५१

समाप्त काम्य कर्मों का फल प्रदान करने वाले इस जगत् के स्वामी, सर्वेश्वर भगवान् के रहने पर भी ज्ञान से शून्य होने के कारण सांसारिक विषयो में अपने मन को एकदम फँसा कर ऐसे मूढ़ हो जाया करते हैं कि नरको में घोर कष्ट गाले रहते हैं यह बहुत

आत्मर्षे की बात है ॥४३॥ यह मल-मूत्र से भरा हुआ मानव शरीर विनाशशील है । इसको अविनाशी समझ कर इसी के लिये जीवन में सब कुछ किया करते हैं ॥४४॥ जो ऐसे दुर्लभ मानव देह को धारण करके भी हम मगार का उच्छेद कर देने वाले भगवान् विष्णु का भजन स्मरण नहीं किया करता है वह महान् पातकी है ॥४५॥ श्री हरि के ध्यान में परायण रहने वाला आठाल भी महान् सुख के भोगने का अधिकारी होजाना करता है । अत्यधिक आश्चर्य की तो यह बात है कि यह महा मूर्ख पापी मनुष्य अपने देह में मलमूत्रादि कित्तिप को निरस्तना हुआ रातदिन देगबर भी उद्विग्न नहीं हुआ करता है और हमे अनित्य और विनाशशील नहीं समझा करता है ॥४६-४७॥ यह मानव देह अत्यन्त दुर्लभ है । देखगण भी हमसे प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा रखता करत हैं क्योंकि यह ही देह कर्म करने का अधिकारी होता है जोप अन्य भोगो का भोग करने वाले होते हैं । ऐसे मानव देह को प्राप्त करके भी चतुर पुरुषो को परलोक यात्रा की सुखद बनाने का प्रयत्न करना ही चाहिये ॥४८॥ जो आत्मजानी लोग सर्वदा भगवान् विष्णु के पूजन में मग्न रहा करते हैं उनका पुत्र मगार में सीटकर आना दुर्लभ है क्योंकि ये लोग परम पद की प्राप्ति कर लिया करते हैं ॥४९॥ जिन भगवान् में यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ है । जिनमें यह चेतनता तो प्राप्त किया करता है और जिनमें अन्त में लय हुआ करता है वे भगवान् ही हम मगार में छुटकारा दिगाने वाले हैं ॥५०॥ जो निर्गुण होते हुए भी अन्त गुणगणो में मगन्विन से भागिन हुआ करत हैं उन्ही देगबर भगवान् का अर्चन और स्मरण करने में हम मगार में मुक्ति प्राप्त हुना करती है ॥५१॥

॥ अष्टांग-योग वर्णन ॥

भगवन्सर्वमाहयात यत्पृष्ट विदुषा त्वया ।
 ससारपाशवद्धाना दु खानि सुवहूनि च ॥१
 अस्य ससारपाशस्य च्छेदक. कस्य स्मृतः ।
 येनोपायेन मोक्ष स्यात्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२
 प्राणिभि. कर्मजालानि क्रियन्ते प्रत्यह भृशम् ।
 भुज्यन्ते च मुनिश्रेष्ठ तेषा नाश. कथं भवेत् ॥३
 कर्मक्षा देहमाप्नोति देही कामेन बध्यते ।
 कामाल्लोभाभिभूत. स्याल्लोभात्क्रोधपरायण. ॥४
 क्रोधाच्च घमनाश स्याद्धमनाशान्मतिभ्रम. ।
 प्रनष्टबुद्धिमनुज. पुन पाप करोति च ॥५
 तस्माद्देह पापमूल पापकर्मरत तथा ।
 यथा देहभ्रम त्यक्त्वा मोक्षभावस्यात्तथा नद ॥६
 साधु साधु महाप्राज्ञ मतिस्ते विमलोजिता ।
 यस्मात्ससारदु खानो मोक्षोपायमभाप्ससि ॥७

श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! आप तो महान् विद्वान् हैं अनएव मैंने आपसे जो कुछ भी पूछा है वह सभी कुछ सही भाँति आपने समझा कर कह दिया है । आपने इस ससार में फँसे रहने वालों के बहून्-मे दु खों का भी वर्णन किया है ॥१॥ हे तपोधन ! अब आप कृपा कर मुझे यह बतलाइये कि इस ससार के परम घोर पाश को काटने वाला कौन है ? जिस उपाय और साधनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है वही आप वर्णन करने मुझसे समझाइये । हे मुनिश्रेष्ठ ! ससार में प्राणी प्रतिदिन कर्म क्रिया करते हैं और उनके फलों को भी भोगा करते हैं । यह कर्मों के फल भोगने की परम्परा का विनाश कर्म हुआ करना है ॥२॥३॥ कर्मवश ही प्राणी को शरीर की प्राप्ति

हुआ करती है । इस शरीर को प्राप्त कर फिर प्राणी काम से बद्ध होजाया करता है । काम होने से लोभ आकर बड़ा विवा करता है । लोभ से प्रोथ की उत्पत्ति होती है और बुद्धिहीन मनुष्य पाप कर्मों में प्रवृत्त होजाया करता है ॥१५॥ अतएव यह शरीर ही पाप का मूल कारण होता है और यही पापकर्मों में पराधन रहा करता है । इसलिय जिस रीति से इस शरीर का भ्रम छूट जाय और मोक्ष की प्राप्ति होजावे, वही उपाय वृपाकर आप मुझे बतनाइय ॥६॥ श्री सनवजो ने कहा—हे महान् बुद्धिमान नारद ! बहुत अच्छा प्रश्न किया है । आप की बुद्धि बहुत ही निर्मल है जोकि मुझसे सामारिक पीडा से छुडाने के विषय में आप उपाय पूछने की इच्छा रखते है ॥७॥

यस्याज्ञया जगत्सर्वं ब्रह्मा सृजति सुव्रत ।
हरिश्च पालयो रद्रो नाशय स हि मोक्षद ॥८
अहमादिविशेषाता जाता यस्य प्रभावत ।
त विद्यान्मोक्षद विष्णु नारायणमनामयम् ॥९
यस्याभिन्नभिद मर्व यच्चैंगद्यच्च नैगति ।
तमुग्रमजर देव ध्यात्वा दु छात्प्रमुच्यते ॥१०
अविगारमज शुद्ध स्वप्रकाश निरजनम् ।
ज्ञानरूप मदानद प्राहुर्वै मोक्षसाधनम् ॥११
यस्यावताररूपाणि ब्रह्माद्या देवतागणा ।
समचर्यति त विद्याच्छाश्वतस्थानद हरिम् ॥१२
जितप्राणा जितहारा सदा ध्यानपरायणा ।
हृदि पश्यन्ति य सत्य त जानीहि सुखावहम् ॥१३
निर्गुणोर्षवि गुणाधारो लोवानुग्रहरूपधृक् ।
आकाशमध्यग पूर्णस्त प्राहुर्मोक्षद वृणाम् ॥१४

ह मुद्रन ! जिगञे आदेश और विद्वेन से ब्रह्मा इग सम्पूर्ण विग्न की रचना किया करत है, विष्णु पालन करते है और रक्षय

इसका आमूल बूल सहार किया करते हैं वही परात्पर परमेश्वर मोक्ष के दाता हैं ॥१॥ जिनके प्रणाम से अहङ्कार से विशेष तक की रचना हुई है उन्ही अनामय भगवान् नारायण को मोक्ष के प्रदान करने वाला समझ लेना चाहिए ॥६॥ चेष्टा सम्पन्न और चेष्टाहीन अर्थात् स्थावर और जङ्गम समस्त जगत् जिस प्रभु से अभिन्न है उन अत्युग्र, अजर देवेश्वर का ध्यान करने से सात्त्विक दुष्ट से छुटकारा होजाया करता है ॥१०॥ उन्हीं विचार रहित, स्वप्रकाश, निर्मल, निरञ्जन, ज्ञानस्वरूप, जन्म रहित, सदानन्दमय भगवान् को ही एक मात्र मोक्ष का साधन माना जाता है ॥११॥ जिनके अवतारस्वरूपों का ब्रह्मादिक सभी देवता लोग पूजन किया करते हैं उन्हीं श्री हरि को शाश्वत पर प्रदान करने वाला समझना चाहिये ॥१२॥ अपनी प्राण वायु पर नियन्त्रण रखने वाले योगी, आहार पर काबू पाने वाले चान्द्रायणादि व्रतोपवासों के कर्ता सदा ध्यान में मग्न रहने वाले अर्थात् भगवान् के सगुण स्वरूप में मग्न रहने वाले अर्थात् भगवान् के सगुणस्वरूप के उपासन जिन सत्यस्वरूप नारायण का अपने हृदय में दर्शन किया करते हैं उन्ही को मच्छे मुख का प्रदान करने वाला समझतो ॥१३॥ जो गुणा से शून्य होने पर नासारिक प्राणियों पर अनुकम्पा करने के ही लिये गुणा के आधार ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के स्वरूपों को धारण किया करते हैं और जो भक्ता के हृदयाकाश के मध्य में विराजमान रहा करते हैं उन्ही भगवान् को मोक्ष का दाता कहा जाता है ॥१४॥

अध्यक्ष सर्वकार्याणां देहिनो हृदये स्थित ।

अनूपमोऽपिनाधारम्म देव शरणं व्रजेन् ॥१५॥

सर्वं सगृह्य कल्पाते शोते यस्तु जले स्वयम् ।

त प्राहुर्मोक्षदं विष्णुं मुनयस्तत्त्वदर्शिन ॥१६॥

वेदार्ययिदिभ कर्मजैरिज्यते विविधैर्मरुं ।

म एव कर्मफलदो मोक्षदाऽऽत्मजर्मणाम् ॥१७॥

हृद्यवव्यादिदानेषु देवतापितृरूपधृन् ।

भुक्त य ईश्वराऽव्यक्तस्तु प्राहुर्मोक्षद प्रभुम् ॥१८

ध्यात प्रणमितो वापि पूजितो वापि भक्तित

ददाति शाश्वत स्थान त दयालु समर्चयेत् । १९

आधार सर्वभूतानामेको य पुरुष पर ।

जरामरणनिमुक्तो मोक्षद सोऽव्ययो हरि ॥२०

सपूज्य यस्य पादाब्ज देहिनोऽपि मुनीश्वर ।

अमृतत्व भजत्याशु त विदु पुरुषोत्तमम् ॥२१

जो समस्त धर्मों के अधिपति हैं और जो योगिषा के हृदय में पर रहा करते हैं जिनकी उपमा खोजने पर भी नहीं प्राप्त नहीं आ करती है जो सम्पूर्ण विश्व के आधार हैं उन्हीं भगवान् श्री नारायणदेव की शरणागति में जाना चाहिये ॥१५॥ जो कल्याणत में ब नगराचर जातु को अपने उदर में लीन करके स्वयं शरीर सपर भेष की शय्या पर शयन किया करते हैं तत्त्वदर्शी मुनिपण्डित उन्हीं भगवान् को भोगदाता कहा करते हैं ॥१६॥ वेदार्थों के ज्ञाता कर्म-शास्त्री विद्वान् अनेक तरह के यज्ञों के द्वारा जिनका पूजन किया करते हैं वे कर्मों के फलों के देने वाले भगवान् विष्णु देव ही निष्काम भाव से कर्म करने वाले भक्तों को मोक्ष का दान दिया करते हैं ॥१७॥ जो पितरों और देवों के हृद्य-वद्य को पितर रूप और देवस्वरूप धारण कर हृद्य-वद्य का भाग लगाया करते हैं उन्हीं अव्यक्तस्वरूप वाले प्रभु को मोक्ष का प्रदान करने वाला कहा करते हैं ॥ १८ ॥ जो दयालु भगवान् विष्णु प्रणाम करने पर अविनाशी पद प्रदात करते हैं उही कारुणिक प्रभु का पूजन करना चाहिए ॥ १९ ॥ जो समस्त भूतों के एकमात्र आधार हैं और चौबीस तत्वों में पर पुरुष हैं । जो जरामरण में रहित हैं ऐसे भगवान् अब्युन ही मोक्ष जैत परम पुरुष-पार्थक्य दाता हैं ॥२०॥ हे मुनिवर ! देख्योगी मनुष्य जिनके चरण

कमलो का यजन करके अति शीघ्र ही मोक्ष जैसे परम दुलभ अमृत का पान करा दिया करते हैं उ ही भगवान् पुरुषोत्तम को सबशक्तिमान् एव मोक्ष दाता समझना चाहिए । दिना उनकी कृपावलम्ब व मोक्ष कभी भी प्राप्त नहीं होता है ॥२१॥

आनन्दमजर ब्रह्म पर ज्याति सनातनम् ।

परात्परतर यच्च तद्विष्णो परम पदम् ॥२२

अद्वय निगुण नित्यमतीयमनोपमम् ।

परिपूर्णं ज्ञानमय विदुर्मोक्षप्रसाधकम् ॥२३

एवभूत पर वस्तु योगमागविधानत ।

य उपास्ते सदा योगी स याति परम पदम् ॥२४

सवसगपरित्यागी शमादिगुणसयुत ।

कामाद्यैर्वर्जितो योगी लभते परम पदम् ॥२५

कर्मणा केन योगस्य सिद्धिर्भवति योगिनाम् ।

तदुपाय यथातत्त्व ब्रूहि मे वदता वर ॥२६

ज्ञानवश्य पर मोक्ष प्राहुस्तत्त्वार्थचितवा ।

यज्ज्ञान भक्तिमूल च भक्ति कर्मवता तथा ॥२७

दानानि यज्ञा विविधास्तीययात्रादय कृता ।

येन जन्मसहस्रं पु तस्य भक्तिर्भवद्वरी ॥२८

जो जरा (वृद्धता) में रहित आनन्द स्वरूप सनातन परम ज्योति ब्रह्म है और जो परात्पर है वही विष्णु का परमरूप परम लक्षण है ॥२२॥ च प्रभु अद्वितीय निगुण नित्य अनुपम और पून पानम है । एम ही भगवान् विष्णु को जानीजान मानका सफल साधक म ना ॥२३॥ जो या जीवन योगशास्त्र में कपित रीति से भगवान् विष्णु की मन्त्र उपासना किया करते हैं वे परम पद को अवश्य ही प्राप्त होजाया करते हैं ॥ २४ ॥ सभी प्रकार के कर्मों का त्याग करने वाला जन्म-सहस्र गुणों से युक्त कर्मात्मी क विचारों में रहित होता है

वही योगी उस परमपद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ इस प्रकार से कहने पर देवर्षि नारदजी ने कहा—हे वक्ताओ म परम श्रेष्ठ । योगियों का योग किस प्रकार से सिद्ध हुआ करता है ? उसी योग का विस्तृत वर्णन आप कृपा करके मेरे समक्षमे कीजिये ॥२६॥ श्री सनक-देवजी ने उत्तर दिया—तत्वों के अर्थों का चिन्तन करने वाला पुरुष ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति बताया करते हैं और वह ज्ञान भक्ति के द्वारा प्राप्त हुआ करता है तथा भगवद्भक्ति सदा सत्कर्मों के करने वाले को ही प्राप्त हुआ करती है ॥२७॥ जिसने सहस्रो जन्मी मे दान, यज्ञ और तीर्थ यात्रायें की हैं उसी को भगवान् भक्ति का ज्ञान किया करते हैं ॥२८॥

अक्षय परमो धर्मो भक्तिज्ज्ञेन जायते ।

श्रद्धया परया चैव सर्वं पापं प्रणश्यति ॥२९॥

सर्वपापेषु तष्ट्रेषु बुद्धिर्भवति निर्मला ।

सैव बुद्धिः समाख्याता ज्ञानशब्देन सूरिभिः ॥३०॥

ज्ञानं च मोक्षदं प्राहुस्तज्ज्ञानं योगिना भवेत् ।

योगस्तु द्विविधः प्रोक्तः कर्मज्ञानपभेदतः ॥३१॥

क्रियायोगं विना नृणां ज्ञानयोगो न सिध्यति ।

क्रियायोगस्तस्माच्छ्रद्धया हरिमर्चयेत् ॥३२॥

द्विजशुभ्यग्निसूर्याम्बुधातुहृच्चित्रसज्जिता ।

प्रतिमा केशवस्यैता पूज्य एतामु भक्तिन ॥३३॥

कर्मणा मनसा वाचा परपीडापराड्मुख ।

तस्मात्सर्वगतं विष्णुं पूजयेद्भक्तिसयुत ॥३४॥

अहिंसा सत्यमक्रोधा ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।

अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयो समा ॥३५॥

श्रीभगवद्भक्ति का लक्ष्मण श्री अज्ञ हो तो परम धर्म अक्षय होजाया करता है और परमाधिक श्रद्धा से समस्त पाप नष्ट होजाया

करते हैं ॥२६॥ सब पापों के विनाश होने पर बुद्धि में निमंत्रणा आ
जाया करती है । बुद्धिमान् लोग ऐसी बुद्धि का नाम ज्ञान कहा करते
हैं ॥३०॥ ज्ञान ही मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है । वह ज्ञान
योगीश्वरों में हुआ करता है । वह योग ज्ञानयोग और कर्मयोग से
दो प्रकार का होता है ॥३१॥ इन दोनों में कर्मयोग प्रधान होता
है क्योंकि इसके बिना ज्ञानयोग की निधि नहीं हुआ करती है । अतएव
इसकी आवश्यकता है कि प्रथम मनुष्य को कर्मयोग से पूर्ण परायणता
प्राप्त करे और धृष्टा के साथ श्री हरि भगवान् का अर्चन करना
चाहिए ॥३२॥ हे विष ! भगवान् की प्रतिमायें कई रूपों में हुआ
करती हैं—पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय और चिब के स्वरूप
में भगवत्प्रतिमायें हुआ करती हैं । इनमें ही भक्तिभाव के साथ श्री
हरि का यजन करना चाहिए ॥३३॥ मन-बचन और कर्म के द्वारा
विभी भी प्राणी को विभी भी प्रकार की पीडा न देकर सर्वव्यापक
भगवान् विष्णुदेव का अर्चन भक्तिभाव गमन्वित होकर करे ॥ ३४ ॥
चाहे कर्मयोग हो अथवा ज्ञानयोग हो, दोनों ही प्रकार के योग के
बेदों में अहिंसा, मत्स्य, क्रोधाभाव, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (वस्तु का संप्रह
करना) और डाह नहीं रखना परमावश्यक है । सदा दयाभाव रखना
भी नितांत आवश्यक है ॥३५॥

चराचरात्मव विश्व विष्णुरेव सनातन ।

इति निश्चित्य मनसा योगद्वितयमध्यसेत् ॥३६

आत्मवत्सर्वभूतानि ये मन्यन्ते मनीषिणः ।

ते जानन्ति पर भाव देवदेवस्य चक्रिण ॥३७

यदि ऋषादिदुष्टात्मा पूजाध्यानपरो भवेत् ।

न तस्य तुष्यते विष्णुयतो धर्मपति स्मृत. ॥३८

यदि वामादिदुष्टात्मा देवपूजापरो भवेत् ।

दुष्पाचार. म विज्ञेय सबपातरुभि. सम् ॥३९

तप पूजाध्यानपरो यस्त्वसूयारतो भवेत् ।

तत्तप सा च पूजा च तद्ध्यान हि निरथकम् ॥४०

तस्मात्सर्वात्मक विष्णु शमादिगुणतत्पर ।

मुक्तयथमचयेत्सम्यक् क्रियायोगपरो नर ॥४१

चमणा मनसा वाचा सवगोक्रहिते रत ।

समचयति देवेश क्रियायोग स उच्यते ॥४२

सनातन प्रभु विष्णुदेव सम्पूर्ण इस चराचर विश्व में व्याप्त रहते हैं । इस सब सिद्धांत का अपने मनमें मुहूर्त निश्चय परके ही योगों का अनुष्ठान करना चाहिये ॥३६॥ जो बुद्धिशाली मनुष्य अपने ही समान समस्त भूतों को समझा करते हैं वे ही देवाधिदेव भगवान् चक्री के परम भाव को जानते हैं ॥३७॥ यदि कोई क्रोधादि के द्वारा दूषित हृद्ये अतःकरण से युक्त व्यक्ति भगवान् का ध्यान या यजन किया करता है तो उस अचन एव ध्यानमें भगवान् कभीभी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं क्योंकि भगवान् तो धर्म की रक्षा करने वाले कहे जाते हैं ॥३८॥ यदि कामादि दोष से दुष्टचित्त वाला पुरुष देवेश्वर की पूजा किया करता है तो वह दम्भ से पूण हुआ करता है और वह पातकी के ही तुल्य होता है । भगव पूजन में विगुण अतःकरण के होने की नितांत आवश्यकता होती है ॥३९॥ जो व्यक्ति मनमें असूया की भावना रख कर देवाचन तपश्चर्या अथवा भगवद् ध्यान किया करता है तो उसका वह करना धरना सभी कुछ निरथक हुआ करता है ॥४०॥ अतएव कमयोग में सपरता रखने वाला ही मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए शम दम आदि का पूण परिपालन करता हुआ सबव्यापक भगवान् विष्णु का अचन किया करे ॥४१॥ मन वचन और कर्म से सभी प्राणियों के हित में युक्त होकर देवेश्वर का जो यजन किया जाता है, यही कमयोग कहलाता है ॥४२॥

नारायण जगद्योनि सर्वान्तर्धामिण हरिम् ।

स्तोत्रार्थं स्तौति या विष्णु कमयोगो स उच्यते ॥४३॥
 उपवासादिभिश्चैव पुण्यश्रवणादिभिः ।
 पुष्पाद्यैश्चावन विष्णो क्रियायोग उदाहृत ॥४४॥
 एव भक्तिमता विष्णो क्रियायोगरतात्मनाम् ।
 सबपापानि नश्यति पूवजन्मार्जितानि च ॥४५॥
 पापक्षयाच्छुद्धमतिर्वाञ्छति ज्ञानमुत्तमम् ।
 ज्ञानं हि माक्षद नय तदुपाय वदामि ते ॥४६॥
 चराचरात्मके लोके नित्यं चानित्यमेव च ।
 सम्यग्वचचारयद्वीमासद्भिः शास्त्राथकोविदैः ॥४७॥
 अनित्यास्तु पदाथा च नित्यमेको हरिः स्मृतः ।
 अनित्यानि परित्यज्य नित्यमेव समाश्रयत् ॥४८॥
 इहामुत्र च भोगेषु विरक्तश्च तथा भवेत् ।
 अविरक्तो भवेद्यस्तु स ससारे प्रवतते ॥४९॥

जो सर्वानर्थांनी विश्व के परम कारण भगवान् विष्णु का स्तोत्रार्थ के द्वारा स्तवन किया करता है उसका ही कमयोगी कहा जाता है ॥४३॥ व्रत और उत्सव आदि का यथाविधि करना पुराण और धर्म-ग्रन्थों का श्रवण करना पुष्पादि भगवत्प्रिय पदार्थों के द्वारा भगवान् का स्तवन करना यह सब कमयोग के नाम से ही कहा जाया करता है ॥४४॥ कमयोग में पूज्यतया तत्परता रखकर इन भाति में भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले लोगों के पूवजन्मार्जित सबिन्त सम्पूर्ण पापों का विनाश होजाता है ॥४५॥ जब पापों का पूज्य क्षय होजाता है तो विगुण बुद्धि तब शब्दात्तरण होकर उत्तम ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है । यही ज्ञान मोक्षदाता होता है । इसका उपाय हम इसी मन्त्र में बताया गया है ॥४६॥ परम बुद्धिमान् मनुष्य का वर्तक है कि शास्त्रों के यथायथ्य वा हृदयमन्त्र करने में निरुत्साहपणा की सद्गति करने यह विचार कर कि इस चराचर विश्व

कौन २ सी चीज नित्य है और क्या क्या अनित्य एव विनाशशील है ॥४७॥ उसे गहराई से विचार करने पर यह स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा कि इस ससार के सभी पदार्थ अनित्य हैं और केवल एक भगवान् श्रीहरि ही अविनाशी एव नित्य हैं। इसलिये इन सबके लिये विनाश को प्राप्त होने वाला जानकर सबका त्याग करे अर्थात् इन क्षणभंगुर सासारिक पदार्थों में मनको न फँसाकर नित्य श्री हरि का ही सर्वतोभाव में समाश्रय लेना चाहिये ॥४०॥ ऐहलौकिक और स्वर्गादि पारलौकिक भोगों से विरक्त रहना चाहिये। यदि इन पदार्थों से विरक्ति न कर अनुरक्त रहने पर पुनः इस ससार में अवश्य ही आना पड़ेगा ॥४६॥

अनित्येषु पदार्थेषु यस्तु रागी भवेन्नर ।

तस्य गणारविच्छित्ति कदाचि नव जायते ॥५०

शमादिगुणसम्पन्नो मुमुक्षुर्ज्ञानिमभ्यसेत् ।

शमादिगुणहीनस्य ज्ञान नैव च सिध्यति ॥५१

रागद्वेषविहीना य शमादिगुणमयुत ।

हरिध्यानपणे नित्य मुमुक्षुरभिधीयते ॥५२

चतुर्भि साधनेरेभिर्विशुद्धमतिरुच्यते ।

सवग भावियेद्विष्णु सवभूतदयापर ॥५३

क्षराक्षरात्मक विश्व व्याप्य नारायण स्थित ।

इति जानाति यो विप्र तज्ज्ञान यागज विदु ॥५४

योगोपायमतो वक्ष्ये ससारविनिवर्त्तकम् ।

यागो ज्ञान विशुद्ध स्यात्तज्ज्ञान मोक्षद विदु ॥५५

आत्मान द्विविध प्राहु परापरविभेदत ।

द्वे ब्रह्मगो वेदितव्ये इति चाववणो श्रुति ॥५६

जो पुरुष इन सासारिक अनित्य पदार्थों में अनुराग रखता है उसे अवश्य ही इस ससार में आना होगा और उसकी ससार के पाश

से मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती है ॥५०॥ मुमुक्षु पुरुष का तो यही परम कर्त्तव्य होता चाहिये कि वह शम-दम आदि उत्तम गुणों को ग्रहण कर मोक्षाग्राह्य मे रखकर उत्तम ज्ञान के प्राप्त करने का सदाभ्यास करे क्योंकि जिसमे शमादि गुणों की हीनता होती है वह कभी भी ज्ञान की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है ॥५१॥ जो सदा सामारिक राग-द्वेष मे रहित होकर शम-दम आदि गुणों से मुमुग्ध होता हुआ सदा श्री हरि के ही ध्यान स्मरण मे निरत रहा करता है वही मोक्ष की प्राप्ति का सच्चा इच्छुक होता है और मोक्ष पाने का उचित पात्र भी हुआ करता है ॥५२॥ इस तरह से इन चारों साधनों से सम्पन्न रहने वाला जीवात्मा ही विशुद्ध भक्ति वाला होता है और उसका यही परम कर्त्तव्य है कि समस्त प्राणियों पर दया भाव रखकर सर्वव्यापी भगवान् विष्णु का ध्यान स्मरण करना रहे ॥५३॥ भगवान् नारायण क्षीर और अधर सम्पूर्ण विश्व पे व्याप्त होकर स्थित रहा करते हैं । हे विश्वर ! जो इस रीति से ज्ञान रखते हैं उनके इसी ज्ञान की योगजन्य ज्ञान कहा जाया करता है ॥५४॥ अब हम सत्कार से निवृत्ति करा देने वाले योग का उपाय आपको बतलाते हैं । विशुद्ध ज्ञान को ही योग कहते हैं और यही ज्ञान मोक्ष का प्रदाता होता है । यह सरय सिद्धांत है जिसका विद्वज्जन कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ यह आत्मा पर और अणु भेदा से दो तरह का है । जो पर आत्मा है वही परमात्मा है और जो अणु आत्मा है उनी की जीवात्मा कहा जाता है । अथर्व वेद की एह धृति मे बताया गया है कि यह ब्रह्म पर और अणु भेद से दो प्रकार का हुआ करता है ॥५६॥

परन्तु निगुण प्राक्तो ह्यहं नारयुतोजर ।
 तयोभेदविज्ञान याग इत्यभिधीयते ॥५७
 पञ्चभूतात्मने देह य माया हृदये स्थित ।
 अणु प्रोच्यते गदिभ परमात्मा पर स्मृत ॥५८

शरीर क्षेत्रामत्याहुस्तत्स्थ क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
 अव्यक्त परम शुद्ध परिपूर्ण उदाहृत ॥५६
 पदा त्वभेदविज्ञान जीवात्मपरमात्मनोः ।
 भवे तदा मुनिश्चेष्ट पाशच्छेदोऽपरात्मनः ॥६०
 एक शुद्धोऽक्षरो नित्य परमात्मा जगन्मय ।
 नृणा विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते ॥६१
 एकमेवाद्वितीय यत्पर ब्रह्म सनातनम् ।
 गीयमान च वेदातस्नस्मान्नास्ति पर द्विज ॥६२
 न तस्य कर्म कार्यं वा रूप वर्णमर्थापि वा ।
 कर्तृत्व वापि भोक्तृत्व निर्गुणस्थ परात्मनः ॥६३

पर आत्मा अर्थात् परमात्मा गुणो से रहित है और अपर आत्मा अर्थात् जीवात्मा अहङ्कार से युक्त हुआ करता है । इन दोनों में वस्तुतः कोई भेद नहीं होता है और इनमें अभेद होता है क्योंकि एक ही तत्त्व है । इस पारमार्थिक अभेद ज्ञान का ही नाम योग होता है ॥१७॥ यह शरीर क्षेत्र है अर्थात् आश्रय का स्थल है और जो इसमें स्थित रहा करता है वह क्षेत्रज्ञ कहा जाता है वह क्षेत्रज्ञ परम शुद्ध और परिपूर्ण होता है ॥५६॥ इस पञ्चभूतो वाले शरीर में जो हृदय में स्थित साक्षी है उसी को सत्पुरुष अपर कहा करते हैं और जो परमात्मा के अभेद का ज्ञान पूर्ण रूप से होजाया करता है तभी इस अपरात्मा जीव का सत्कार का पाश उच्छिन्न हो जाया करता है ॥६०॥ जगत् में व्याप्त वह परमात्मा एक शुद्ध-अक्षर और नित्य है किन्तु मनुष्यों के भेद के ज्ञान से ही वह भेद वाले के समान दिखलाई दिया करता है ॥६१॥ वेदान्त शास्त्र ग्रही तो बताता है कि वह परमात्मा या जो पर ब्रह्म है वह सन तन, एक और अद्वितीय है । हे द्विजवर ! इसमें पर अन्य कुछ भी नहीं है ॥६२॥ वह परमात्मा निर्गुण है, उसका कुछ भी कर्म एवं कार्य तथा रूप नहीं है । उसका कोई वर्ण भी

मही है। ऐसे निर्गुण परमात्मा में कर्मत्व एवं भोक्तृत्व कुछ भी नहीं होता है। वह तो सर्वदा एक रम रहा करता है ॥६३॥

निदानं सर्वहेतूनां तेजो यत्तजसा परम् ।

किमप्यन्यद्यतो नास्ति तज्ज्ञेयं मुक्तिहेतवे ॥६४॥

शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज ।

तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परमोक्षस्य साधनम् ॥६५॥

सम्पत्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधजगत् ।

परमज्ञानिनामेतत्परब्रह्मात्मकं द्विज ॥६६॥

एक एव परानन्दा निर्गुणं परतः परः ।

भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय ॥६७॥

मायिनो मायया भेदं पश्यन्ति परमात्मनि ।

तस्मान्मायां त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम ॥६८॥

नामरूपा न सद्रूपा माया नंबोभयात्मिका ।

अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी ॥६९॥

मायैवाज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम ।

तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्भेदं जितमायिनाम् ॥७०॥

वही परमात्मा परब्रह्म समस्त कारण कलापो का मूल कारण होता है। सब तेजों का भी परम श्रेष्ठ नेत्र है और वह ऐसा ही है कि जिसमें भिन्न कुछ भी है ही नहीं। मनुष्य को अपनी मुक्ति की प्राप्ति के लिये उमका ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ ६४ ॥ जो 'शब्द ब्रह्ममय' आदि महावाक्य हैं और वेदों में कथित 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य हैं इनके गहन विवेचन करने से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही मोक्ष का परम साधन होता है ॥६५॥ जो लोग ज्ञानहीन होते हैं उनको ही यह जगत् भिन्न ३ प्रकार का दिखाई दिया करता है। हे द्विजवर! जो लोग परम ज्ञानी होते हैं उनको ही यह समस्त जगत् परब्रह्मात्मक ही दिखाई दिया करता है ॥६६॥ पर से भी पर और

निर्गुण ब्रह्म एक ही है किन्तु भेद ज्ञान से वही अनेक प्रकार से भासित हुआ करता है और उस अच्युत भगवान के ही अनेक रूप दिखाई दिया करते हैं ॥६७॥ जिनके ऊपर माया के परदे का आवरण होता है वे उमी माया के कारण मे ही उस परमात्मा म भेद देखा करते हैं । इसलिये हे द्विजवर । मुमुक्षु पुरुष का कर्तव्य यही है कि इस माया को युक्ति के साथ परित्यक्त कर देव ॥६८॥ इस माया का न ता सद्रूप है और न इसका असद्रूप ही होता है और न यह दोनो प्रकार की ही होती है । अतएव इसको भेद बुद्ध उत्पन्न कर देने वाली ही मनमत्ता चाहिए और इसी के कारण भेद की बुद्धि हुआ भी करती है ॥६९॥ हे परमश्रेष्ठ मुनि । अज्ञान शब्द से मया का ही ग्रहण किया जाया करता है । इसलिये आ मत्पुरुष इस माया पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं । उनका सम्पूर्ण अज्ञान विनष्ट होजाया करता है ॥७०॥

सनातन पर ब्रह्म ज्ञानशब्देन कथ्यते ।

ज्ञानिना परमात्मा वै हृदि भाति निरन्तरम् ॥७१

अज्ञान नाशयेद्योगी योगेन मुनिसत्तम ।

अष्टांगं सिद्धयने योगस्तानि वक्ष्यामि तत्त्वत ॥७२

यमाश्च नियमाश्चव आसनानि च सत्तम ।

प्राणायाम प्रत्याहारो धारण, ध्यानमेव च ॥७३

समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम् ।

एषा सक्षेपतो वक्ष्ये लक्षणानि मुनीश्वर ॥७४

अहिंसा सत्यमस्तेय प्रहाचयापरिग्रही ।

अक्रोधश्चानसूया च प्रोक्ता सक्षेपता यमा ॥७५

सर्वेषामेव भूतानामवनेशजनन हि यत् ।

अहिंसा कथिता सद्भिर्योगमिद्धिप्रदायिनी ॥७६

यथाधकथन मच्च धर्माधर्शविवेकत ।

सत्यं प्राहुर्मुनिश्रेष्ठ अस्तेय शृणु साम्प्रतम् ॥७७

ज्ञान शब्द से सनातन परम ब्रह्म का ही बोध होता है और जो ज्ञानी होते हैं उनका हृदयाकाश में निरन्तर परमात्मा भागित होता रहा करता है ॥७१॥ अतएव हे मुनिसत्तम । योगी पुरुष को योग के द्वारा ही इस अज्ञान का विनाश करना चाहिये । इसका पूरा तत्व मैं आपको श्रवण कराता हूँ ॥७२॥ हे मुनिवर । ये इस योग के आठ अङ्ग ये होत हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि । हे मुनीश्वर । अब मैं इन सबके लक्षण भी अति संक्षेप में बतलाता हूँ ॥७३॥ यम जो एक योग का अङ्ग होता है उसके भी कई एक भेद हुआ करते हैं ; अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अक्रोध और अनसूया ये यम के ही परम सक्षिप्त भेद होते हैं ॥७५॥ किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाने का नाम अहिंसा है । इसी अहिंसा को विद्वग्जन सत्पुरुष योग परम सिद्धि प्रदान करने वाली कहा करते हैं ॥७६॥ हे मुनिवर । धर्माधर्म का पूर्ण विचार करत हुये जो यथाथ कथन होता है उसी को सत्य कहते हैं । इसके अनन्तर तीसरे अंग अस्तेय का अर्थ भी श्रवण करिये ॥७७॥

चौर्येण वा बलेनापि परस्वहरण हि यत् ।
 स्तेयमित्यच्युते सदिभरस्तेय तद्विपर्ययम् ॥७८॥
 सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ।
 ब्रह्मचर्यपरित्यागाज्ज्ञानवानपि पातकी ॥७९॥
 सर्वसगपरित्यागी मैथुने यस्तु वर्तते ।
 स चण्डालसमो ज्ञेय सर्ववर्णवहिष्कृत ॥८०॥
 यस्तु योगरतो विप्र विपयेषु स्पृहान्वित ।
 तत्सभापणमात्रेण ब्रह्महत्या भवेन्नृणाम् ॥८१॥
 सर्वसगपरित्यागी पुन सगी भवेद्यदि ।
 तत्सगसगिना सगान्महापातकदोषभाक् ॥८२॥

नादानं हि द्रव्याणामापद्यपि मुनीश्वर ।
 अपरिग्रह इत्युक्तो योगसिद्धिकायक ॥८३
 आत्मनस्तु समुत्कर्षादतिनिष्ठुरभाषणम् ।
 क्रोधमाहुर्धर्मविदो ह्यक्रोधस्तद्विपर्यय ॥८४

पुरा करने का या अत्यपूर्वक दमरे के पदार्थों को अपहरण करने का नाम अस्तेय कहा जाता है । इसके विपरीत जो व्यवहार होता है उसी को 'अस्तेय' कहा जाता है ॥७८॥ सर्वत्र आठो प्रकार के मीथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं इस ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा है । इसके त्याग करने में त्यागी पुरुष भी महान पातकी होजाया करते हैं । अतएव इसका पूर्णतया परिपालन करना परमावश्यक है ॥ ७९ ॥ जो पुरुष समस्त सज्जो वा त्याग करता हुआ मीथुन किया करता है उसको नाण्डाल के ही तुल्य ममस्त वर्णों से बहिष्कृत समझना चाहिये । मीथुन में आध्यात्मिक मार्ग के पामी पुरुष का बड़ा भारी अहित हुआ करता है । हे विप्र ! जो इस योग के मार्ग में गमन करता है उसकी यदि विषयो में मृहा बनी रहती है तो ऐस पुरुष में बार्तालाप भी नहीं करना चाहिये क्योंकि उसके साथ भागण करने में वेदहत्या हो जाया करती है क्योंकि वह वैदिक मार्ग का त्याग करने वाला पतित प्राणी होता है ॥८०॥८१ । एक बार समस्त सज्जो का त्याग कर योगमार्ग में चलने वाला पुन सज्ज करने लग जाता है तो उसके ससर्ग मात्र से ही महान पातक का दोष लग जाया करता है । ॥८२॥ हे मुनिवर ! महान में भी महान आपत्ति के समय के उपस्थित होने पर भी किसी के द्रव्य को छापट कर ग्रहण न करने से ही अपरिग्रह कहा जाता है । इस अपरिग्रह का योग मार्ग वा सिद्धि प्रदान करने वाला बताया गया है । योग सिद्धि में इसका भी अत्यधिक महत्व होता है । ८२॥८३॥ धर्म के जाता, सज्जन अपन समुत्कर्ष के लिये निष्ठुर भाषण करने को ब्राह्मण कहा करते हैं । इसके विपरीत व्यवहार का नाम अक्रोध है । तात्पर्य

यह है कि सदा योगाभ्यासी को परम मृदु एवं मधुर श्रुतिप्रिय भाषण ही करना चाहिये ॥८४॥

धनार्थं रधिकं दृष्ट्वा भृशं मनसि तापनाम् ।

असूया कीर्तिता सद्भिस्तत्यागो ह्यनसूयता ॥८५॥

एव सक्षेपत प्रोक्ता यमा विबुधसत्तम ।

नियमानपि वक्ष्यामि तुभ्य ताञ्छृणु नारद ॥८६॥

तप स्वाध्यायस्तोषा शौचं च हरिपूजनम् ।

सध्यापासनमृष्याश्च नियमा परिकीर्तिता ॥८७॥

चाद्रायणादिभियत्र शरीरस्य विशोषणम् ।

तपो निगदितं सदिभर्योगसाधनमुत्तमम् ॥८८॥

प्रणवस्योपनिषदा द्वादशाणस्य च द्विज ।

अष्टाक्षरस्य मंत्रस्य महावाक्यचयस्य च ॥८९॥

जप स्वाध्याय उदितो योगसाधनमुत्तमम् ।

स्वाध्याय यस्त्यजेन्नूढस्तस्य योगो न सिध्यति ॥९०॥

योग विनापि स्वाध्यायात्पापनाशो भवेन्नृणाम् ।

स्वाध्यायैस्तोष्यमाणाश्च प्रसीदन्ति हि देवता ॥९१॥

दूमरेके ऐश्वर्य को देख कर अपने मन के अन्दर एक प्रकार की क्रुद्धन रखना ही असूया कही जाती है । सत्पुरुष इस तरह की जलन क्रुद्धन के अभाव को ही असूया कहा करते हैं ॥ ८५ ॥ हे शर्षप ! इस रीति से योग के आठ अंगों में से प्रथम जो यम एक अङ्ग है उसके समस्त भेदों का वर्णन करके सुना दिया है । अब हम नियमों का वर्णन करते हैं । हे नारद ! आप उनका समाहित होकर श्रवण कीजिये ॥८६॥ नियमों के भी कई भेद होते हैं—तपश्चर्या स्वाध्याय (वेदाध्ययन) सतोष पवित्रता श्रीहरि पूजन और सध्यापासना जिन नियमों में परम प्रमुख होते हैं ऐसे नियमों याग मास में गमन करने के लिये बताया गया है ॥८७॥ चाद्रायण आदि घम शास्त्रोक्त

महाप्रनो वे द्वारा जिसमें शरीर के मलो का शोधन किया जाता है विद्वान लोग इसी को तपस्या कहा करते हैं। यह तप योग मार्ग का एक परमोत्तम साधन बताया गया है ॥८८॥ प्रणव अर्थात् ॐकार का, उपनिषद् ग्रन्थों का 'नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का 'ओ नमो नारायणाय — इस अष्टाक्षरी मन्त्र का और तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों का जाप स्वाध्याय कहा जाता करता है। इस स्वाध्याय भी योग का एक अत्युत्तम साधन बताया गया है। जो स्वाध्याय का त्याग कर दिया करता है वह महान् मुठ मानव है। ऐसे मनुष्य का योग कभी भी सिद्ध एवं सफल नहीं हुआ करता है ॥ ८९॥ ९० ॥ योग के अथ मार्गों के बिना भी केवल स्वाध्याय के द्वारा ही मनुष्य के पापों का क्षय होजाया करता है क्योंकि स्वाध्याय के द्वारा ससृज हृदय देवगण परम प्रसन्नता प्राप्त किया करत हैं ॥९१॥

जपस्तु त्रिविध प्रोक्तो वाचिकोपाश्रमानम् ।
 त्रिविधेषु च विद्वेद्भू पूर्वोत्पूर्वात्परो वर ॥९२
 मन्त्रस्योच्चारण सम्यक्स्फुटाक्षरपद यथा ।
 जपस्तु वाचिक प्रोक्त सर्वयज्ञफलप्रद ॥९३
 मन्त्रस्योच्चारणे किञ्चित्पदात्पदविचयनम् ।
 स तूपाशुजप प्रोक्त पूर्वस्माद् द्विगुणोर्द्ध्वम् ॥९४
 विधाय ह्यक्षरश्रेण्या तत्तदर्थविचारणम् ।
 स जपो मानस प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायक ॥९५
 जपेन देवता नित्य स्तुवत सम्प्रसीदति ।
 तस्मात्स्वाध्यायसम्पन्नो लभेत्सर्वान्मनोरथान् ॥९६
 यदृच्छालाभसतुष्टि सतोप इति गीयते ।
 सतोपहीन पुरुषो न लभेच्छर्म कुत्रचित् ॥९७
 न जानु काम कामानामुपभोगन शक्नोति ।
 इतोर्द्ध्वक वदा लप्स्य इति कामानु वदन् ॥९८

यह जाप भी वाचिक, उपाशु और मानस भेदों से तीन तरह का हुआ करता है । हे विप्रप्रवर ! यह जाप पहिले की अपेक्षा दूसरा और दूसरे की अपेक्षा तृतीय उत्तम एव श्रेष्ठ माना गया है ॥ ६२ ॥ मुम्पट्ट रूप से अक्षरों और पदों का उच्चारण करके जो मन्त्र को सभी की साफ २ सुनाई देने वाला पडा जाता है उसी को वाचिक जाप कहते हैं । यह मन्त्र जाप सभी यज्ञों का फल प्रदान करने वाला होता है ॥ ६३ ॥ मन्त्र के उच्चारण से प्रत्येक अक्षर और पद का शुद्धाशुद्ध होने के विवेक के साथ जो मन्द छ्वनि से उच्चारण किया जाता है उसको उपाशु जाप कहते हैं । यह वाचिक जाप से दुगुना अधिक फल देने वाला होता है ॥ ६४ ॥ मनमें ही मन्त्राक्षरों की श्रेणी क्रमश बद्ध करके साथ ही उन पदों के अर्थ का विचार रखते हुए जो जाप किया जाता है वही मानस जाप कहा जाता है इससे शीघ्र ही योग की सिद्धि होती है । मानस जाप को अन्य जापों से विशेष माना गया है ॥ ६५ ॥ जाप से निःश्व ही स्तवन प्राप्त करने वाले देवगण परम प्रसन्न होजाया करते हैं । इमीतिथे स्वाध्याय करने वाले पुरुष के समस्त मनोरथ निश्चय ही पूर्ण हो जाया करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ६६ ॥ मत् मार्ग के द्वारा किये गए उचित उद्योग से अपने प्रारब्ध के अनुसार जितना भी जो कुछ प्राप्त होजावे उतने ही में सन्तोष करके परम सन्तुष्ट अपने मनमें रहने को ही सन्तोष कहा कहा करते हैं । जो सन्तोष से हीन रहकर व्यर्थ की दुराशा की भावनायें मनमें भरे रहता है ऐमा अमन्तुष्ट पुरुष कही भी सुख की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥ ६७ ॥ काम उस इच्छा का नाम है जो अपने अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति हो जाने पर भी अपने मनमें शान्ति धारण न कर इससे भी अधिनादिक कामनायें किया करते हैं अर्थात् जिसके हृदय में अनेकानेक कामनाया का जाल बढता ही रहा करता है ॥ ६८

तस्मात्काम परित्यज्य देहसशोपकारणम् ।
 यदृच्छालाभसनुष्टो भवेद्धमपरायण ॥६६॥
 चाह्याभ्यन्तरभेदेन शौच तु द्विविध स्मृतम् ।
 मृज्जलाभ्या वहि शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥१००॥
 अन्त शुद्धिविहीनेस्तु यज्ज्वरा विविधा कृता ।
 न फलति मुनिश्रेष्ठ भस्मनि न्यस्तहृष्यवत् ॥१०१॥
 भावशुद्धिविहीनाना समस्त कर्म निष्फलम् ।
 तस्माद्रागादिक सर्व परित्यज्य सुखी भवेत् ॥१०२॥
 मृदा भारसहस्रैस्तु कुम्भकोटिजलैस्तथा ।
 कृत्वा शौचोऽपि दुष्टात्मा चडालमदृश स्मृत ॥१०३॥
 अन्त शुद्धिविहीनस्तु देवपूजागरो यदि ।
 तमेव ददत हति नरक च प्रपद्यते ॥१०४॥
 अन्तशुद्धिविहीनश्च वहि शुद्धिं करति यः ।
 अलकृत सुराभाण्ड इव शान्तिं न गच्छति ॥१०५॥

यह हृदय में घराबर स्थित कामनाओं का जाल शरीर का शोषण किया करता है इसका त्याग करके यदृच्छा लाभ से तपो करने तथा धर्म में परायण रहना चाहिये ॥६६॥ पवित्रता भी बाहरी और भीतरी भेदा से दो प्रकार की मानी गयी है । मृत्तिका और जल से बाह्य शुद्धि हुआ करती है और दुबलताओं का त्याग कर भाव शुद्धि रखने से आंतरिक शुद्धि होती है ॥१००॥ इन दोनों प्रकार की पवित्रताओं में आंतरिक शुद्धि का बड़ा महत्व है और इसी से वास्तविक कल्याण होता है । यदि कोई आंतरिक शुद्धि से रहित मनुष्य अनेक यज्ञों का भी करने लगे तो उनका कुछ भी फल उनका रूपिनाश करण होने का कारण नहीं मिला करता है और इनका ही हुई आहुतियों का ही मुख्य व्यर्थ हुआ करती है ॥१०१॥ भाव शुद्धि की बड़ी महत्ता होती है । भाव शुद्धि से रहित

मानवों के सभी कर्म निष्पन्न हुआ करते हैं। इसीलिये हृदय में राग द्वेषादि सबका परित्याग करके शुद्ध सम्पन्न होना चाहिये। १०२। सहस्रों भार मिट्टी में और लाखों घड़ों के जल से बाहिरी शुद्धि कर लेने पर भी यदि अन्त करण दूषित है और शुद्ध नहीं होता है तो वह पुरुष एव चाडाल के ही समान हुआ करता है ॥१०३॥ जिसका अन्त करण शुद्ध नहीं होता है और ऊपर से ही वह देवों का यजन किया करता है ता देवगण उगवा महार करके उसको नरकों में ही डाल दिया करते हैं। १०४। जिसका अन्त करण तो विशुद्ध होता नहीं है और उनमें अनेक बुरी २ भावनायें भरी रहा करती हैं। वह पुरुष ऊपरी शुद्धि करके दिखाया करता है उसकी शुद्धता ऊपर से मुम संश्रित ढाल के समान ही है जिसमें अन्दर मदिरा रहा करती है। ऐसे पाखंडी पुरुष को कभी भी शान्ति नहीं मिला करती है। १०५।

मनश्शुद्धिविहीना ये तीर्थयात्रा प्रवृत्तंते ।
 न तान्गुनति तीर्थानि सुराभाङ्गमिवापगा ॥१०६
 वाचा घर्माप्रवदति मनसा पापमिच्छति ।
 जानीयात्ता मुनिर्धेष्ट महापातरिना वरम् ॥१०७
 विशुद्धमानसा ये तु घर्ममात्रमनुत्तमम् ।
 कुर्वन्ति तत्फलं विद्यादक्षय सुखदायकम् ॥१०८
 कर्मणा मनसा वाचा स्तुतिथवणपूजने ।
 हरिभक्तिर्दृढा यस्य हरिपूजेति गीयते ॥१०९
 यगाश्च नियगाश्चैव सक्षेपेण प्रवोचिता ।
 एभिर्विशुद्धमनसा मोक्ष हस्तगत विदुः ॥११०
 यमैश्च नियमैश्चैव स्थिरबुद्धिजितेन्द्रिय ।
 अभ्यसेदासन्सम्यग्योगसाधनमुत्तमम् ॥१११

जिस तरह से मदिरा जिसमें भरी हो उस डोल को पवित्र नदियाँ भी शुद्ध नहीं कर सकती हैं ठीक उसी भाँति जिसका मन निर्धर्म

और पवित्र नहीं होता है वे तीर्थटिन करके भी कभी पवित्र नहीं हो सकते हैं ॥१०६॥ जो मानव अपनी वाणी के द्वारा तो धर्म का पालन किया करता है परन्तु उसके मन में पाप कर्म तथा परस्त्री एवं पराये घनादि का निस्तन बना रहा करता है । वह मनमें विषयो के रस का आस्वादन किया करता है । ऐसे पुरुष को महा पातकियो में परम प्रमुख ही समझना चाहिए ॥१०७॥ जिनका अन्न करण पवित्र होता है वे चाहे ऊगर से साधारण से गाधारण ही धर्म का समाचरण किया करते हैं तो भी उनको उसका कभी न क्षय होने वाला मुख प्राप्त हुआ करता है जो कि परमोत्तम बताया गया है ॥१०८॥ जो पुरुष वनन मन और कर्म से रतवन एवं श्रवण के द्वारा श्री हरि की भक्ति में दृढ़ रहा करता है उसकी वही पूजा श्री हरि की पूजा ही कही जाया करती है ॥१०९॥ हे नारद ! अब तब यम नियमादि का परम मक्षित वर्णन कर दिया है । अब उनके द्वारा जिन पुरुषों का चित्त बद्ध होजाता है उस बातलाते हैं । यह मोक्ष तो उनके हाथों में ही आजाया करता है ॥११०॥ पहिले यम और नियमों के द्वारा जिनकी बुद्धि स्थिरता प्राप्त कर लेवे उनको अपनी इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखकर योग के परम श्रेष्ठ साधन आसन का अभ्यास करना चाहिये ॥१११॥

।दमव स्वस्तिक पीठ सैह वीककुटवीजरे ।

।ीर्म वज्रामन चैव वाराह मृगचैलिकम् ॥११२

।ीञ्च च नालिक चैव मवतोभद्रमेव च ।

।।पभ नागमात्स्ये च वैयात्र चाहं च-द्रवम् ॥११३

।ण्डयातागन शंता रुयभ मीदूनग्मेव च ।

।।कर श्रय वाष्ठ स्थाणु वंजणित तथा ॥११४

।ीम बीरागन चैव योगसाधनवारणम् ।

।यशरगट्यान्यामनानि मुनीन्द्रै वधितानि वै ॥११५

एषामेकतम वद्धू वा गुरुभक्तिपरायण
 उपासको जयेत्प्राणान्द्वन्द्व्वातीतो विमत्सर ॥११६
 प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि तथा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा ।
 अभ्यासेन जयेत्प्राणान्नि शब्दे जनवर्जिते ॥११७
 प्राणो वायु शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रह ।
 प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविध स प्रकीर्तित ॥११८
 अगर्भश्च नगर्भश्च द्वितीयस्तु तयोर्वर ।
 जपध्यान विनागर्भं सगर्भस्तत्तममन्वित ॥११९

मुनिगणो ने योग सिद्धि के लिये तीस आसनो की चर्चा की है उनके नाम निम्न है—पद्म, स्वास्तिक, पीठ सिंह कुक्कुट कुञ्जर, कूर्म, वज्र, वराह मृग चैलिक, द्रौच, नालिक, वृषभ, नाग, मत्स्य, सर्वताम्र, व्याघ्र अध चन्द्र, दण्डवात शैल, स्वभु मुद्गर मकर शैपय, काष्ठ वैकर्णिक स्थाणु भीम और वीरासन ये महया मे तीस है । ये याग की सिद्धि के कारण स्वरूप तीस आसनो का मुनियो ने बतलाया है ११२—११५। योगाभ्यास के द्वारा उपासना करने वाले पुरुष को अपने गुरुदेव के चरणो मे भक्ति का भाव रखते हुए मात्सर्य और द्वन्द्वो से विमुक्त रहकर ही इन उपयुक्त तीस आसनो मे से स्वेच्छया किमी भी एक आसन को सविधि बंधनर प्राणवायु पर विजय प्राप्त करे अर्थात् प्राणायाम वा अभ्यास क्रिया करे ११६। जन कोलाहल से दूर निरान्न एकांत स्थान मही अभ्यास करना चाहिए । पृथ पश्चिम या उत्तर दिशा की आर मुख करके प्राणायाम का अभ्यास करने प्राणायामो की वृद्धि करे ॥११७॥ प्राण शरीर मे स्थित उस वायु का नाम है जिससे यह शरीर सशक्त एवं समर्थ तथा जीवित रहा करता है । आयाम उस वायु के निग्रह को ही कहा जाता है । प्राणायाम शब्द का मन्वित अर्थ प्राणा को बंधन मे करना होता है यह प्राणायाम दो प्रकार का हुआ करता है ॥ ११८ ॥

अगर्भ और सगर्भ भेदों से इसके ये ही वा नाम होते हैं । इन दोनों में सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है । जिसमें कोई भी ध्यान व जाप नहीं होता है वही प्राणायाम अगर्भ कहा गया है । जो सगर्भ प्राणायाम होता है उसमें ध्यान और जाप दोनों ही हुआ करते हैं ॥११६॥

रेचन पूरकश्चैव कुम्भक शून्यकस्तथा ।

एव चतुर्विध प्रोक्त प्राणायामो मनीषिभिः ॥१२०॥

जन्तूना दक्षिणा नाडी विगला परिकीर्तिता ।

सूर्यदेवतका चैव पितृयोनिरिति श्रुता ॥१२१॥

देवयोनिरिति उपाता इडा नाडी त्वदक्षिणा ।

तत्राधिदेवन चन्द्र जानीहि मुनिसत्तम ॥१२२॥

एतपोरभयोमध्ये सुपुम्ना नाडिका स्मृता

अतिसूक्ष्मा मुख्यतमा ज्ञेया सा ब्रह्मदेवता ॥१२३॥

वामेन रेचयेद्वायु रेचनाद्रचक स्मृत ।

पूरयेद्दक्षिणेनैव पूरणात्पूरक स्मृत ॥१२४॥

स्वदेहपरित वायु निगृह्य न विमुञ्चति ।

सम्पूणकुभवत्तिष्ठेत्कुम्भक म हि विश्रुत ॥१२५॥

न गृह्णाति न त्यजति वायुमतर्वाहि स्थितम् ।

विद्धि तच्छून्यक नाम प्राणायाम यथास्थितम् ॥१२६॥

योगीजनो ने इन प्राणायाम को पूरक, रेचक तथा कुम्भक तथा शून्यक के भेदों से चार प्रकार का माना है । १२०। प्राणियों के शरीर में जो दाहिनी नाडी होती है उसका नाम विगला होता है । इस नाडी का देवता सूर्य है । इसलिए इसकी प्रतिद्धि पितृयोनि नाम से होती है । १२१। शरीर के वाम भाग में जा नाडी है उसका नाम इडा है । यह देवयोनि नाम से कही जाती है । हे मुने ! इसका देवता चन्द्रमा है ऐसा तुमको ध्यान रखना चाहिए । १२२। इन दोनों

विंगला और इडा के मध्य में जो एक नाडी है उसका नाम सुषुम्ना है । यह परम सूक्ष्म और परम गुह्य नाडी हानी है । इसका देवता ब्रह्म होता है ॥१२३॥ बाध नभुन म चडाईं द्वई प्राणवायु का रेचन (निवालना) करना चाहिए । इस रेचन की क्रिया के वरम ही स इस प्राणायाम का नाम रेचन प्राणायाम कहा जाता है । नासिका के दक्षिण नभुने (नासिका छिद्र) से इस वायु को भरकर ऊपर चढ़ना चाहिए । इस वायु क पूरण करने के कारण से इसका नाम पूरक प्राणायाम हाता है । १२४। अपने अन्दर चढा कर भरी हुई वायु का बश म बर रोके रहना चाहिए अर्थात् भरे हुए कलश के समान वायु का भरकर स्थित रहना चाहिए । इस तरह से वायु को रोके रखन का नाम कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है । १२५। न तो बाहिर की वायु का ग्रहण करे और न अन्दर की वायु को छो० और न भीतर रोके। वैसा ही बैठा रहे । इस प्राणायाम की अवस्था का नाम शून्यक प्राणायाम कहा जाता है ॥१२६॥

शनै शनै विजेतव्य प्राणो मत्तगजेन्द्रवत् ।

अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयकरा ॥१२७

क्रमेण योजयेद्वायु योगी विगतकल्मष ।

स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मण पदमाप्नुवात् ॥१२८

विषयेषु प्रसक्तानि चेन्द्रियाणि मुनीश्वर ।

समाहृत्य निरृह्णाति प्रत्याहारस्तु स स्मृत ॥१२९

जितेन्द्रिया महात्मानो ध्यानशून्या अपि द्विज ।

प्रयान्ति परम ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१३०

अनिर्जितेन्द्रियग्राम यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।

मूढात्मान व त विद्याद्वयान ध्याम्य न सिध्यति ॥१३१

यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि ।

प्रत्याहृतानान्द्रियाणि धारयत्सा तु धारणा ॥१३२

यह प्राणवायु एकत्र होना हस्ती के तुल्य हुआ करता है । इसको शनै शनै ही अपने वश में करके इस पर विजय प्राप्त करना चाहिए । नहीं तो ऊटपटांग ढङ्ग से प्राणायाम करने पर भी महान् भवानक व्याधिया उत्पन्न होने का भय रहा करता है ॥ १२७ ॥ योग की साधना करने वाले लोग क्रमशः वायु के वेग को रोककर योगाभ्यास करते ता वे निष्ठा हो जाया करते हैं और सभी क्रूर कल्मशों से मुक्त हो जाया करते हैं तथा अन्त समय में परम ब्रह्म के पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१२८॥ हे मुनिवर । विभिन्न विषयों में समासक्त इन्द्रियों को वहाँ से हटाकर टिकाये रखने की ही प्रत्याहार कहते हैं ॥१२९॥ हे द्विज । इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रख कर अपने वश में रखने वाले जितेन्द्रिय महात्मा लोग ध्यान में शून्य रहने पर भी वे उस परब्रह्म स्थान को प्राप्त किया करते हैं जहाँ से पुन लौट कर वासिष्ठ इस मसार में नहीं आया करते हैं । इन्द्रियों को वश में रखने की बड़ी भारी महिमा है ॥ १३० ॥ बिना ही इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त करके जो ध्यान में मलग्न रहने की चष्टा किया करते है उनको महा मोह में पड़े हुये चित्त वाले ही समझ लेना चाहिये क्योंकि ई द्रयजित हुये बिना ध्यान की सिद्धि कभी हो ही नहीं सकती है ॥१३१॥ जिस जिनको देखे उस उगको सबको अपने चित्त में अपने ही समान देखना हुआ विषयों से प्रत्याहृत की हुई इन्द्रियों को धारण किये रहे इसी धारण करने के कारण इस योग के अङ्ग का नाम धारण होता है ॥१३२॥

योगाजितेन्द्रियग्रामस्तानि हृत्वा हृद हृदि ।

वात्मान परम ध्यायेत्सर्वधातारमच्छुतम् ॥१३३

सर्वविश्वात्मक विष्णु सवलोककारणम् ।

विश्वत्पद्मपत्राक्ष चाखुण्डलभूपितम् ॥१३४

दीपवाहुनुदागङ्गा सर्वालिङ्कारभूपितम् ।

पीताम्बरधरं देव हेमयज्ञोपवीतिनम् ॥१३५
 विभ्रत तुलसीमाला कौस्तुभेन विराजितम् ।
 श्रीवत्सवक्षसं देव सुरामुरनमस्कृतम् ॥१३६
 अष्टारे हृत्सरोजे तु द्वादशागुलविस्तृते ।
 ध्यायेदात्मानमव्यक्त परात्परतर विभुम् ॥१३७
 ध्यान सद्भिर्निगदित प्रत्ययस्यैकतानता ।
 ध्यान कृत्वा मुहूर्त्तं वा पर मोक्ष लभेन्नरः ॥१३८
 ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्ष च विदति ।
 ध्यानात्प्रसीदति हरिद्वर्धनात्सर्वार्थसाधनम् ॥१३९
 यद्यद्रूप महाविष्णोस्तत्तद्व्यायेत्समाहितम् ।
 तेन ध्यानेन तुष्टात्मा हरिमोक्ष ददाति वै ॥१४०

योगाभ्यास के द्वारा अपनी सब इन्द्रियों को जीतकर विषयों से उमका प्रत्याहार करने हृदय में हृदय के साथ धारण कर अर्थात् इन्द्रियों की जो विषयों की ओर बहिर्मुखी वृत्ति थी उगको अन्तर्मुखी करने एक मोड़ देने पर सबके धाता—सर्व विश्व स्वरूप भगवान् अच्युत, जो परमात्मा गमस्त लोकों की रचनादि के एक मात्र कारण है, विकसित पद्म दल से सदृश परम गुन्दर नेत्रों वाले—महा मनोगम कनक कुण्डरो ग मुक्तिपति—सम्बो भुजाओं वाले, परम विद्याल अज्ञो से सम्पन्न, सभी, भक्ति रमणीय आभरणों से शोभित, पीत देशमी वस्त्र के धारण करने वाले, गुणों के यज्ञोपवीत को पहिन हुए, सुरती की माया से युक्त, कौमुद्य मणि को धारण करने वाले, दश म्बल में श्रीराम का चिह्न धारण लिये हुए, गमस्त देवागुरो के द्वारा चन्दन चरणों वाले, अच्युत, पर स पर, विभु भगवान् विष्णु देवेश्वर का ध्यान अष्टदशों वाले चारद अगुन विस्तृत हृदय कमल में करना चाहिए ॥ १३३-१३७ ॥ दश उपायों प्रचार से भगवान् को स्मरण करने धिस्त की जा चिन्तन में अदरता और एकाग्रता होनी है उसी को

ध्यान कहा जाता करता है । केवल दो पड़ी तक भी पूर्ण एकाग्रता से किये गये ध्यान से भी प्राणी की मुक्ति हो जाता करती है ॥ १३८ ॥ मुक्ति को परम दुर्लभ इसीलिए कहा जाता है कि दस परमाधिक चञ्चल एवं प्रमादशील बलवान् चित्त को एकाग्र कर ध्यान में स्थिर रखना ही महान् कठिन है । ध्यान करने से पापों का नाश हो जाता करता है और ध्यान के द्वारा मानव मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है । ध्यान में अग्रस्थित रहने वाले पर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हुआ करत है । ध्यान की महिमा के विषय में अधिक कहाँ तक वर्णन किया जावे । इस ध्यान से सभी कुछ सिद्ध हो जाता करता है और फिर कुछ भी शेष प्राप्त करना नहीं रहता है ॥ १३९ ॥ महा-विष्णु के अनेक स्वरूप हैं उनमें जो भी अपने मन को परम सचिन्तन में उसी को चित्त में अर्पित करके ध्यान करना चाहिए । भगवान् विष्णु उसी के ध्यान से प्रसन्न होकर मोक्ष तक प्रदान कर दिया करते हैं ॥ १४० ॥

अचञ्चल मन दुर्याद्ध्येयवस्तुनि सत्तम ।

ध्यान ध्येय ध्यातृभाव यथा नश्यति निर्मरम् ॥१४१

सतोऽमृतत्व भवति ज्ञानामृतनिषवणात् ।

भवेन्निरतर ध्यानावभेदप्रतिपादनम् ॥१४२

सुपुष्पितपरानन्दयुक्तश्चोपरतेन्द्रिय ।

निर्यातदीपवत्सस्थ समाधिरभिधीयते ॥१४३

योगीसमाधयवस्थाया न शृणोति न पश्यति ।

न जिघ्रति न स्पृशति न क्विचिद्धृत्ति सत्तम ॥१४४

आत्मा तु निर्मल शुद्ध सच्चिदानन्दविग्रह ।

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो योगिना भात्यचञ्चल ॥१४५

तिर्गुऽणोपि परो देवो ह्यज्ञानाद् गुणवानिव ।

विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम् ॥१४६

पर ज्योतिरमेयात्मा मायावानिय भाषिनाम् ।
तन्नाशे निर्मल ब्रह्म प्रवाशयति पण्डित ॥१४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! ध्येय स्वरूप मे अपन चित्त को इस तरह से स्थिर करना चाहिए कि ध्येय—ध्यान और ध्याता ये तीनों त्रिपुरी एक रूप हो जावे और अ-यानुसन्धान कुछ भी न रहे ॥ १४१ ॥ इस विधि मे ज्ञानामृत का पान करने से निश्चित रूप मे अमृतत्व की प्राप्ति हो जाया करती है । निरन्तर ध्यान के करते रहने से अभेद का पूर्णतया प्रतिपादन हो जाया करता है ॥ १४२ ॥ इस प्रकार स मुपुत्ति के सहस्र परमानन्दा नन्दकी प्राप्ति करने समस्त इन्द्रियों को उपराम देकर चायु वज्रित स्थान मे दीनक की ली की स्थिति के ही समान जो स्थिति हो जाया करती है उसी को समाधि कहा करते हैं ॥ १४३ ॥ हे मुने ! योगी की उस समाधि की दशा मे ऐसी गति हो जाया करती है कि न तो वह कुछ नुनता है—न देखता ही है—न छूता है—न सूँघता है और न कुछ बोलता है ॥ १४४ ॥ योगियों को उस समाधि की दशा मे परम शुद्ध—निर्मल—वर्जोपाधियों मे युक्त स्थिर परमात्मा का भाग होने लगता है ॥ १४५ ॥ निर्गुण होने पर भी परमात्मा अज्ञान का विनाश हो जाने पर वह पूर्ववत् भावने लगा करता है ॥ १४६ ॥ हे विद्वन् ! यह आत्मा परम ज्योतिर्मय स्वरूप वात्सा है । जो माया के जाल मे फँसे हुए हैं उनकी यह मायाजाल जैसा भासित हुआ करता है । जब इस माया का सहार हो जाता है तो यह फिर परम निर्मल विशुद्ध ब्रह्म के रूप मे प्रकाशमान दिखाई दिया करता है । ॥ १४७ ॥

एकमेवाद्वितीय च पर ज्योतिर्निरञ्जतम् ।

सर्वपामेव भूतानामन्तर्यामितया स्थितम् ॥१४८॥

अणोरणीयान्महतो भहीयान्सनातनात्मा द्वित्वविश्वहेतु ।

पश्यन्ति यज्ज्ञानविदा वरिष्ठा परात्परस्मात्परमविव्रम् ॥१४९॥

अकारादिहकारांतवर्णभेदव्यवस्थित' ।
 पुराणपुरुषोज्जादि शब्दब्रह्मेति गीयते ॥१५०
 विशुद्धमक्षर नित्य पूर्णमाकाशमघघाम् ।
 आनन्द निर्मल शात पर ब्रह्मेति गीयते ॥१५१
 योगिनो हृदि पश्यन्ति परान्मन सनातनम् ।
 अधिकारमज शुद्धं पर ब्रह्मेति गीयते ॥१५२
 घघानमन्वत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुनिमत्तम ।
 ससारतापतप्ताना सुधाकृष्टिमम नृणाम् ॥१५३
 नारायण परानन्द स्मरेत्प्रणवमस्थितम् ।
 नादरूपमनीषम्यमर्द्धं मात्रापरि स्थितम् ॥१५४

परम ज्योतिर्मय-निर्मल और अद्वितीय ब्रह्म ही समस्त प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी के स्वरूप से अवस्थित है ॥१५०॥ वह परमात्मा अणु से भी अणु है और विशाल से भी विशाल है। वह समान ही इग सम्पूर्ण विश्व का कारण है, भ्रान्तियों में पगम श्रंष्ट टुरप ही उसके परम पवित्र परात्पर परात्मा के स्वरूप का दर्शन प्राप्त विमान करते ह ॥ १४६ ॥ जो अकार से आरम्भ करके हजार तक के वर्णों के रूप में स्थित रहता है वही अनादि पुराण पुरुष शब्द ब्रह्म कहा जाता करता है ॥ १५० ॥ ओं विशुद्ध-अक्षर-नित्य-पूण और हृदयाकाश के मध्य में विराजमान है उस आनन्दमय-निर्मल-परमशाक्त परमात्मा का परब्रह्म के स्वरूप में सर्वथ गान किया जाता करता है ॥१६१॥ जो सनातन परमात्मा अजन्मा—विशुद्ध—निर्विकार और परब्रह्म के स्वरूप में गाया जाता है उसी का योगी लोग अपने हृदय में दर्शन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं इन सत्कार के महान् ताप से सन्तप्त पुरुषों के लिये सुधा की वर्षा के समान आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् का एक और ध्यान का बचन कर रहा हूँ। उसका आप ध्यान करिय ॥१५३॥ प्रणव में विराजमान नाद स्वरूप-अनुपम-अर्धमात्रा के ऊपर

मत्स्थित—परमात्-इ स्वप्नव चवदान् श्री नारायण वा ध्यान परमा
पाठिय ॥१५४॥

अकार ब्रह्मणो रूपमुत्तर विष्णुरूपवत् ।
मकार रुद्ररूप त्यादद्वं मात्र परात्मरम् ॥१५५॥
मात्रास्त्रिन्म समाशयाता ब्रह्मविष्णुशिवाधिपा ।
तेषां समुच्चय विप्र परब्रह्मप्रबोधनम् ॥१५६॥
वाच्य तु परम ब्रह्म वाचक प्रणव स्मृत ।
वाच्यवाचनमन्थो ह्युपचार स्योद्विज ॥१५७॥
जपन्त प्रणव नित्य मुच्यन्ते मवपातकं ।
तदभ्यासेन संयुक्ता पर भास्य सभन्नि च ॥१५८॥
जपश्च प्रणव मन्त्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
कोटिसूर्यसम तेजो ध्यायेदात्मनि निमलम् ॥१५९॥
शालग्रामशिलारूप प्रतिमारूपमेव वा ।
यद्यत्पापहरं वस्तु तत्तद्वा चिन्तयद्बुद्धि ॥१६०॥
यदेतद् वैष्णव ज्ञान कथित ते मुनीश्वर ।
एतद्विदित्वा योगीन्द्रो लभते मोक्षमुत्तमम् ॥१६१॥
यस्त्वत्तच्छृणुयाद्वापि पठेद्वापि समाहित ।
स सर्वपापानिमुंक्तो हरिमालोक्यमाप्नुयात् ॥१६२॥

इय ओङ्कार मे अकार ब्रह्म का रूप होता है—उकार विष्णु के स्वरूप वाता है और मकार रुद्रस्वरूप होता है । तथा अक्ष मात्रा परात्मक है ॥ १५५ ॥ इय तीनों मात्राओं के ब्रह्मा, विष्णु और शिव वे स्वामी होते हैं अर्थात् देवता हैं । हे विप्रवर । इन तीनों देवों का समुच्चय ही ॐ परब्रह्म का जापक हुआ करता है । इसीलिये प्रणव का सर्वोपरि स्थान सबत्र सभी के द्वारा माना गया है ॥ १५६ ॥ परब्रह्म वाच्य है और प्रणव अर्थात् ॐ उसका वाचक है । हे द्विजवर । उपचार से इन तीनों परब्रह्म और ओङ्कार मे वाच्य—वाचक सम्बन्ध है ॥१५७॥

जो सदा प्रणव वा जाप किया करते हैं वे समस्त महापापों से मुक्त हो जाया करते हैं और जो इसके जाप का अभ्यास किया करते हैं वे श्रेष्ठ मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ॥ १५८ ॥ ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक इस प्रणव (ॐ) का जाप करता हुआ हृदय में करोड़ों सूर्य के सदृश तेज का ध्यान करना चाहिए ॥ १५९ ॥ उस परम दिव्य तेज का जालग्राम की शिखा के स्वरूप में विष्वा भगवान् की अन्य किसी प्रतिमा के रूप में या पापपहारी अन्य किसी वस्तु के स्वरूप में हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥ १६० ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने यह आपके सामने वैष्णव ज्ञान का वर्णन करके सुना दिया है । इसका ज्ञान प्राप्त करके योगीन्द्र पुरुष परम उत्तम मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ॥ १६१ ॥ जो कोई पुरुष इस विधि-विधान को सावधान वित्त होकर श्रवण किया करता है अथवा पढ़ता है वह सभी पापों से छुटकारा पाकर के अन्त समय में श्री हृदि के परम धाम को अवश्य ही प्राप्त किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥ १६२ ॥



हरिभक्ति से दोनों लोको में सुख की प्राप्ति

समाप्यात्तानि सर्वाणि योगज्ञानि महामुने ।
 इदानीमपि सर्वं ज यत्तृच्छामि तदुच्चताम् ॥१
 योगो भक्तिमत्तामेव सिधयतीति त्वयोदितम् ।
 यस्य तुप्यति सर्वेशस्तस्य भक्तिश्च शाश्वतम् ॥२
 यथा तुप्यति सर्वेशो देवदेवो जनार्दन ।
 तन्गमाद्यहि सर्वे न मुने कारण्यवारिधे ॥३
 नारायण पर देव सर्विदानन्दविग्रहम् ।
 भज सर्वार्थना विप्र यदि मुक्तिमभीप्सति ॥
 त्स्वस्त न हिनन्ति न याधते ग्रहाश्चतस्रः ।
 राक्षसाश्च न चेक्षन्ते नर विष्णुपरायणम् ॥

भक्तिर्हृदा भवेद्यस्य देवदेवे जनार्दने ।
 श्रेयांसि तस्य सिधयन्ति भक्तिमन्तोऽधिवास्तत ॥६॥
 पादौ तौ सफलो पु सा यो विष्णुगृहगामिनौ ।
 तौ करौ सफलो ज्ञेयो विष्णुपूजापरो तु यो ॥७॥

देवपि श्री नारदजी ने कहा—हे महागुने ! आपने योग के सम्पूर्ण भागों का विस्तृत वर्णन करके श्रवण कराने की अनुकम्पा की है । अब हे सर्वज्ञ ! मैं जो भी कुछ पूछना चाहता हूँ उसका भी वर्णन करके मुझसे की कृपा कीजिए ॥११॥ आपने यह कहा था जिन पुरुषों में भगवद्भक्ति हुआ करती है उन्हीं पुरुषों को योग की मिट्टि हुआ करती है । उसी पर सर्वेश्वर भगवान् की प्रसन्नता हुआ करती है । उसको ही सर्वदा वे लिये भक्ति भी प्राप्त हुआ करता है ॥ २ ॥ हे सबसे प्राज्ञा मुनिवर ! आप तो कल्याण के सागर हैं । अब मुझे आप कृपा कर प्यही बतावाइये कि वे सर्वेश्वर देवों के भा देव जनार्दन भगवान् जिस रीति से परम सन्तुष्ट होते हैं उसी विधि की क्या रीति है ? ॥ ३ ॥ श्री मनकाचार्य ने इस प्रकार से नारदजी के द्वारा पूछने पर उत्तर दिया कि हे विप्रवर ! यदि मुक्ति की कामना हा तो तत्त्वदानन्द ध्यानाराधण देवेश्वर का अग्रगण्य भाव से ही भजन करना चाहिए ॥ ४ ॥ जो अनुभूय भगवान् विष्णु का सत्त्वा भाव होता है उसको कोई भी शत्रु पीडा नहीं दे सकते हैं—दुष्टग्रह मार नहीं सकते हैं और राक्षस उसको नेत्र उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं कर सकते हैं ॥ ५ ॥ जिन पुरुषों की देवाधिदेव जनार्दन भगवान् में मुदक भक्ति होती है उसके समस्त श्रेय मिट्ट हो जाया करते हैं । यही कारण है कि भक्त भगवत् अधिक मान जाया करते हैं ॥ ६ ॥ पुण्या के चरणों या विष्णु भगवान् के मन्दिर की आर जाया करते हैं—यही उनी सफलता होती है और जो हृदा भगवान् विष्णु का धर्षन किया करते हैं यही उन करो के पाने की मार्गरता होती है ॥ ७ ॥

ते नेत्रे सुफले पु सा पश्यतो ये जनार्दनम् ।
 सा जिह्वा प्रोच्यते सदिभर्हरिनामपरा तु या ॥८
 सत्य सत्य पुन सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
 सत्त्व गुरुसम नास्ति न देव केशवात्पर ॥९
 सत्य वच्मि हित वच्मि सार वच्मि पुन पुन ।
 अचारेऽस्मिस्तु ससारे सत्य हरिसमचनम् ॥१०
 ससारपाश मुह्यद्द महामोहप्रदायकम् ।
 हरिभक्तिकुठारेण च्छित्त्वात्यतमुखी भव ॥११
 तन्मन सयुत विष्णौ सा वाणी यत्परायणा ।
 ते श्रोत्रे तत्त्वधासारपूरिते लोकवदिते ॥१२
 आनन्दमक्षर शून्यमवस्थात्रितयैरपि ।
 आनाशमध्यग देव भज नारद सततम् ॥१३
 स्थान न शक्यते यस्य स्वरूप वा वदाचन ।
 निर्दोषु मुनिशाहूल द्रष्टु वाप्यकृतात्मभि ॥१४

मनुष्य जिन नेत्रो त भगवद्विग्रह वा श्रवण प्राप्त किया करत हैं
 उन नेत्रों की वह सफलता है अर्थात् नत्र पाने का पूण लाभ वे प्राप्त क
 रिया करत हैं । श्रीहरि के परम पावन नामो का उच्चारण जो जिह्व
 रिया करती है उस जीभ के प्राण होन की यही परम सफलता होत
 है ॥ ॥ मत्स्य और परम सत्य और भुजा उठाकर यह सबथा मत्स्य वा
 पुन कही जाती है कि गुरुदेव के समान कोई तत्व नहीं है और भगवान्
 केशव म पर कोई भी देवता नहीं है ॥ ९ ॥ मैं विष्णु म मध्य वात
 कह रहा हूँ और परम हित ही बात कहता हूँ और बारम्बार परम
 स्तर को याज करके यह कह रहा हूँ कि असार मगार में केवल श्री
 हरि भगवान् का अचन-स्मरण ही मत्स्य है अन्य सब मिथ्या है ॥१०॥
 इस परम भाव मगार का पाण नटन दृष्ट ताता है और यह महागाह क
 जान म ज्ञान दिया करता है । इसका छत्र श्रीहरि भगवान् की भक्ति

भाव हरी कुठार से ही किया जा सकता है । अतएव उसी का समाप्य प्रहण करके मुषी होना चाहिए ॥११॥ उसी मन की सार्थकता है जो भगवान् विष्णु के चरणों की भक्ति में लगा करता है—जो भगवान् के ही गुणानुवाद कीर्तन के रस का समास्वादन लिया करती है वही वाणी मफल होती है । वे ही कान सफल हैं जिनमें भगवत्कथा का स्वर भरता रहा करता है और वे ही कान प्रगमा करने के योग्य हुआ करते हैं ॥१२॥ हे नारद ! जो देवाधिदेव आनन्द स्वरूप है—जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से शून्य है अर्थात् ये तीनों ही दशाएँ उनका स्वरूप नहीं हैं उन्हीं भगवान् को अपने हृदयाकाश के मध्य में विराजमान समझकर सदा उनका ध्यान, स्मरण और यजन करना चाहिए ॥१३॥ हे मुनिशास्त्र ! अकृतात्मा पुनर कभी भी उन भगवान् के स्वरूप तथा स्थान का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं और न उनका दिव्य दशन ही उभरते मिल सकता है ॥१४॥

समस्तै नरणैर्मुक्तो वरुतिःसौ यदा तदा ।

जाग्रदित्युच्यते सद्भिन्नन्तर्गामी सनातन ॥१५॥

तदान्त वरणैर्मुक्त स्वेच्छया त्रिचरत्यमी ।

स्वपन्तित्युच्यते ह्यात्मा यदा स्वापविर्वाजित ॥१६॥

न वाह्यवरणैर्मुक्तो न चान्त वरणैस्तथा ।

अस्वरूपो यदात्मात्तो पुण्यापुण्यविर्वाजित ॥१७॥

गर्वोपाधिजिनिर्मुक्तो ह्यानन्दो निर्गुणो विष्णु ।

परब्रह्ममयो देव सुषुप्त इति गीयते ॥१८॥

भावनामयमेतद् जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

{ विद्युद्विलोम विप्रेन्द्र भज तस्माज्जनादेनम् ॥१९॥

अहिंसा मायमस्तेषु ग्रहणार्थापरिहरी ।

वान यन्त तस्यैव तुष्यत जगता पति ॥२०॥

सप्तभूतदशायुतो निम्नपूजापरायण ।

तस्य तुष्टो जगन्नाथो मधुकैटभमर्दन ॥२१

जिस समय में यह सनातन अन्तर्यामी प्रभु समस्त करणों से युक्त होते हुए भी बरताव किया करता है तभी सत्पुरष इनको जाग्रत कहा करते हैं ॥१५॥ जिस समय में वह आत्मा अन्तःकरण से युक्त होकर अपनी इच्छा के अनुसार विचरण किया करता है उस समय में इनको सुषुप्ति में रहने वाले कहा जाया करता है । जिस समय में स्वापरहित होकर न तो बाह्यकरणों से युक्त होते हैं और न अन्तःकरणों से युक्त होते हैं तथा स्वरूप से रहित और पुण्यापुण्य से भी रहित होते हैं तब वह समस्त उपाधियों में शून्य आनन्दमय-निर्गुण प्रभु परब्रह्ममय, देव सुषुप्त हैं—ऐसा इनको कहा जाया करता है ॥१८॥ हे विप्रवर ! यह सम्पूर्ण जगत् और स्थावर (चराचर) भावनामय है तथा विद्युत् वत् परमाधिक अस्थायी एवम् चञ्चल है अतएव इसमें समुत्पन्न होकर भगवान् जनार्दन का ही भजन करना चाहिए ॥१९॥ जिस मनुष्य में सत्य अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सदगुण विद्यमान हुआ करते हैं उसी पर जगन्नाथ प्रभु पूर्ण रूप से प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२०॥ जो प्राणीमात्र पर दया पूर्ण व्यवहार किया करता है और विप्रो का अर्चन करने में सदा प्रस्तुत रहा करता है उसी पर मधुकैटभ दैत्यों के मर्दन करने वाले जगत् के पति प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२१॥

सत्वयाया च रमते सत्कया च करोति य ।
 रात्सङ्गो निरहकारस्तस्य प्रीतो रमापति ॥२२
 नामसनीर्त्तन विष्णो क्षुत्तृटप्रखलितादिपु ।
 करोति सतत यस्तु तस्य प्रीतो ह्यधोक्षज ॥२३
 या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा ।
 तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपद मुने ॥२४
 असूयारहिता ये तु ह्यहकारविवर्जिता ।
 देवपूजापराशुभैः तेषां तुष्टवति वेश्य ॥२५

तस्माच्छृणुष्व देवर्षे भजस्य सतत हरिम् ।

मा कुरुष्व ह्यहंकार विद्युत्स्नोलभ्रिया वृथा ॥२६

शरीर मृत्युसंयुक्त जीवित चाति चञ्चलम् ।

राजादिभिर्घन वाध्य सम्पद क्षणभङ्गुरा ॥२७

किं न पश्यसि देवर्षे ह्यायुषाढं तु निद्रया ।

हत च भोजनाद्यैश्च विषदायु समाहृतम् ॥२८

जो अनवरत सत्कथाओं का आनन्द लिया करता है तथा स्वयं भी अच्छी २ कथाओं का मनन किया करता है—सदा अहङ्कार से रहित होते हुए संपुष्टों की मगति किया करता है उसी जीवात्मा पर भगवान् की पूर्ण प्रसन्नता हुआ करता है ॥२२॥ जो सुग और निरासा आदि भयवद्भजन से बाध्यक होते हैं उनके रहते हुए भी भगवान् के परम पावन नामों का कीर्तन एवं स्मरण बराबर करता रहता है उसी पर भगवान् किष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२३॥ हे मुनिवर ! जो स्त्री अपने पुण्य कर्मों को प्राण के समान समझती हुई शदा दक्षिण की पुजा से तत्पर रहा करती है जगत् के स्वामी प्रभु उमी पर परम प्रसन्न होकर अपना पद अन्त में उसे दे दिया करते हैं ॥२४॥ जिनमें दूसरों के ऐश्वर्य को देखकर जलन-कुदम नहीं होती है एवं अहंकार का लेश मात्र भी नहीं होता है तथा ऐसा अपना जीवन बनाकर जो मदा देवार्चन में निरत रहा करता है केवल प्रभु उसी पर परम समुष्ट होते हैं ॥२५॥ हे देवर्षे ! अतएव यह भली भाँति मुनिकर समझना यह लक्ष्मी का विलास विजयी के ही समान असमन्त चञ्चल एवं अस्थिर है—इस पर कभी भी व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहिए और सर्वदा श्रीहरि भगवान् की सेवा करनी चाहिए ॥२६॥ यह शरीर मीत का शिकार ही अवश्य होता है अतः यह मानव जीवन स्वल्प समय तक रहने वाला और चञ्चल होता है—न मायूम च न रुमाप्त हा जावे—इसका कुछ भी पता नहीं है—यह प्राप्त धन वा भी है उस पर राजा चाहे जब वाध्य ज्ञान संपत्ता है और

मग्नसिखां क्षणभंगुर हृथा बरती है इनकी स्थिरता पर कुछ भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥२७॥ ह देवर्षे ! आप भी तो स्वयं देखा ही करते हैं—यह प्राप्त आय का आधा भाग तो रात्रि में निद्रा करके ही नष्ट कर दिया जाता करना है । इनके अतिरिक्त आयु का कुछ भाग अपने भ्रात्रणादि के कार्यों में समाप्त हो जाता करता है ॥२८॥

वियदायुर्वानभावाद् वृद्धभावाक्वियद्वृथा ।

वियद्विषयभोगैश्च वदा धर्मान्परिप्यति ॥२९

बालभावे च बाद्धं नये न घटेताच्युताचंनम् ।

वयस्येव ततो धर्मान्कुरु त्वमनहवृत् ॥३०

मा विनाशं यज मुने मग्न ससारगह्वरे ।

वपुर्विनाशनिलयमापदा परम पदम् ॥३१

शरीर भोगनिलय मलाद्यं परिदूषितम् ।

किमर्थं शाश्वतधिया कुर्यात्पाप नरो वृथा ॥३२

असारभूते ससारे नानादु खसमन्वित ।

विषवारो नन्द कर्त्तव्यो निश्चित मृत्युमनुले ॥३३

तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।

देहयोगनिवृत्त्यर्थं सद्य एव जनार्दनम् ॥३४

मानस्यवस्था तथा लोभ कामक्रोधविर्वाजित ।

भजस्व सतत विष्णु मानुष्यमतिदुलभम् ॥३५

आयुका बहुत सा भाग वचन की अज्ञानावस्था के कारण खल बूढ़ में तथा बुद्धता की अशक्तावस्था से अवश्यता में व्यर्थ ही समाप्त हो जाता करता है । आयु का अत्यधिक हिस्सा सामारिक विषयों के सुखोपभोगों में क्षीण होजाया करता है फिर धर्म कृत्यों का अनुष्ठान किया कब जाता है और कितना थोडा-सा समय उनके लिये बचता है ॥२९॥ वचन में और बुद्धाई में तो भगवद्भजन का बनना ही अति कठिन होता है । अतएव आर्यों अहंकार का त्याग कर

जीवन की अवस्था ही में भगवान् का भजन करना चाहिए ॥३०॥ हे मुनिवर ! आप इस मसार के गत्त में पड़कर विनाश को प्राप्त मत होओ । यह मानव देह तो विनाश का ही घर बना हुआ है ॥३१॥ यह शरीर तो मत्तादि से महान् दूषित रहा करता है फिर भी विपरीतों के भोग से इसका विनाश अति शीघ्र हो जाता करता है । मनुष्य व्यथ ही इसको निरंतर बचा रहने वाला समझ कर पाप कर्मों में क्यों रत रहा करता है ? ॥ ३२ ॥ यह मसार तो नाना भाँति के घोरान्तिघोर दुःखों से भरा रहा करता है और यह तार रहित है । इसका तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि इसमें मौन सदा सामने खड़ी रहा करती है ॥ ३३ ॥ अतएव हे विप्रवर ! आप सुनिये मैं बिल्कुल सत्य २ कह रहा हूँ— इस देह-प्राप्ति की निवृत्ति के लिये लोभ-मोह मान और काम क्रोध आदि का पूण त्याग करके शीघ्रान्तिशीघ्र ही भगवान् जगद्गुरु का भजन करना चाहिए क्योंकि यह मानव जीवन का अत्युत्तम समय निकल जाने पर पुन मनुष्य जीवन प्राप्त करना महान् दुःख है ॥३४॥४५॥

कोटिजन्मसहस्रेषु म्धावरादिषु सत्तम ।
 सभ्रातस्य तु मानुष्य कथंचित्परिनम्यते ॥३६
 तत्रापि देवताबुद्धिर्दानबुद्धिश्च सत्तम ।
 भागबुद्धिस्तथा नृणा जन्मात्तरतप फलम् ॥३७
 मानुष्य दुर्लभ प्राप्य यो हरिं नाचरत्सकृन् ।
 मूख योऽस्ति परस्तस्माज्जडबुद्धिरचेतन ॥३८
 दूतम प्राप्य मानुष्य नाचरन्ति च ये हरिम् ।
 तामतीव मूख ना विवक बुध्तिस्तिति ॥३९
 आराधितो जग नाथो ददारयभिमत् फलम् ।
 वस्त न वृद्धयेद्विप्र समाराग्निप्रदीपित ॥४०
 चण्डालादीषु मुनिश्च च विष्णुभवतो द्विजादिव ॥

विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाघम ॥४१

तस्मात्कामादिक त्यक्त्वा भजेत हरिमव्ययम् ।

यस्मिस्तुष्टेऽखिल तुष्येद्यत सर्वगतो हरि ॥४२

हे मुनिवन् ! कगोष्ठो स्नावर यादि भं जन्म पाते २ कही बरयन्त ही कठिनाई से कभी २ यह मानव जन्म प्राप्त हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हे परम श्रेष्ठ ! इसको पाकर भी देवो म बुद्धि का लगाना तथा दान देने मे बुद्धि का होना और भोगा स दूर रहना दूसरे जन्मो के सञ्चित तप एव पुण्य का ही फल हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जा इस परम दुलभ मनुष्य का जीवन पाकर भी श्री हरि के पूजन मे एक बार भी अपना योग नहीं दिया करता है वह महान् जड एव अचेतन ही है । इससे अधिक कौन महागूढ होगा जा ऐसा स्वर्ण अवसर पाकर भी इस मानव जीवन जैसे उत्तम समय को निरक्षर ही छो दिया करता है ॥ ३८ ॥ जा पुरुष इस परम दुलभ मानव शरीर को पाकर भी श्री हरि का पूजन एव भजन नहीं किया करते हैं उन वज्र मूर्खों का विवेक न भासूम कहीं चला जाया करता है जो कि इसको यो ही गंवा दिया करते हैं ॥ ३९ ॥ जगत् के स्वामी प्रभु आराधना करने पर सभी मनोवाञ्छित पदार्थों का प्रदान किया करते हैं । हे विप्र ! फिर बताइये, इस गसाराग्नि से सन्तप्त हाकर भी कौन पुरुष है जो उनका पूजन नहीं करेगा ? ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् की भक्ति वा बडा अधिक महत्व है । जो विष्णु भक्त चाण्डाल भी है वह भक्तिगुण्य द्विज से कही उत्तम मना जाया करता है । जा विष्णु की भक्ति स शून्य द्विज भी है यह श्वपच स भी गया बीता प्राणी हुआ करता है ॥ ४१ ॥ जतएव मनुष्य का परम वृत्तंभ्य यहाँ है कि कामादि की दूषित वामनाओ का परित्याग कर अच्युत श्री हरि भगवान् का सर्वदा अचन भजन और स्मरण करना चाहिए । भगवान् प्रगन्त होने पर सभी सन्तुष्ट हा जाया करत हैं क्योंकि भगवान् सबसे व्यापक रहा करत हैं ॥४२॥

यथा हस्तिपदे सर्वे पदमात्रं प्रलीयते ।
 तथा चराचर विश्व विष्णावेव प्रलीयते ॥४३॥
 आकाशेन यथा व्याप्तं जगत्स्थावरजगमम् ।
 तथैव हरिणा व्याप्तं विश्वमेतच्चराचरम् ॥४४॥
 जन्मनो मरणं नृणां जन्म वै मृत्युसाधनम् ।
 उभे ते निवृत्ते विद्धि तन्नाशो हरिसेवया ॥४५॥
 ध्यात स्मृत पूजितो वा प्रणतो वा जनादेन ।
 ससारपाशविच्छेदो वस्तु न प्रतिपूजयेत् ॥४६॥
 यन्नामोच्चारणादेव महापातकनाशनम् ।
 य समभ्यर्च्य विप्रत्रे मोक्षभाषी भवेन्नर ॥४७॥
 बहो विश्वमहो चित्रमहो विश्वमिदं द्विज ।
 हरिर्नाम्नि स्थिते लोक ससारे परिवर्तते ॥४८॥
 भूयोभूयोऽपि वक्ष्यामि सत्यमेतत्तपोधन ।
 नीयमानो यमभट्टैरशक्तो धर्मसाधनैः ॥४९॥

जिस तरह से हाथी के चरण का चिन्ह इतना विशाल होता है कि उस छोड़ में सभी जीवों और पशुओं के पद चिन्ह समा जाया करते हैं उसी प्रकार से चराचर सम्पूर्ण विश्व एक विष्णु में ही आ जाया करता है ॥ ४३ ॥ जिस तरह यह जङ्गल स्थावर स्वरूप जगत् आकाश में व्याप्त रहा करता है उभी भाँति यह सम्पूर्ण चराचर विश्व श्री हरि में व्याप्त होता है ॥ ४४ ॥ मनुष्यों के जन्म धारण करने का कारण मृत्यु है और यह जन्म मृत्यु का साधक हुआ करता है क्योंकि जिसने जन्म प्राप्त किया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी एवं निश्चित है । इन दोनों का समीप में ही समझना चाहिए । इस जन्म मरण में बड़े भारी बंधनों को मजना पड़ना है । इनका विनाश श्री हरि के सेवन से उत्तरी हुआ एवं प्रसन्नता होने पर ही सकता है और अन्य शक्तों छुटकारा प्राप्त करने का कोई भी साधन इस जगत् में नहीं है ॥४५॥

भगवान् जनादेन तो परम कारुणिक हैं । जीवात्मा का थोडा सा भी
 रज्जान उस ओर सच्चे हृदय से शोता है तो वे स्वल्प से ही ध्यान-
 स्मरण-पूजन और नमन करने पर ही प्रमत्त होकर इस ससार की
 फांसी का छेदन कर दिया करते हैं । ऐसे परम दयानु भगवान् का
 पूजन कौन नहीं करेगा ? ॥४६॥ भगवान् के परम पावन नामोच्चारण
 की बड़ी भारी महिमा है । भगवान् के नाम के केवल उच्चारण करने
 ही में मनुष्य मोक्ष जैसे उत्तम पदके प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया
 करता है ॥ ४७ ॥ हे द्विजवर ! बडे ही आश्चर्य की बात तो यह है
 कि ऐसे महियामय श्री हरि के शुभ नाम के रहते हुए भी लोग इस
 ममार के चक्र में धमण किया करते हैं ॥ ४८ ॥ हे तपोधन ! मैं
 दमी बात को बारम्बार स्पष्ट रूप में कहा है और अब भी कह रहा हूँ
 और यह परम ध्रुव सत्य है कि यदि मनुष्य धम का साधन करेगा तो
 यम के दूत उसे ले जाने में असमय ही रहेंगे ॥४९॥

यावन्नेन्द्रियवेकन्य या वद्वचाधिने वाधते ।

तावदेवाचयेद्विष्णु यदि मुदितमभीप्सति ॥५०

मातुर्गर्भाद्विनिष्क्रालो यदा जन्तुस्तदैव हि ।

मृत्यु सनिहितो भूयात्तस्माद्धमपरो भवेत् ॥५१

{ अहो कष्टमहो कष्टमहोकष्टमिदं वपु ।

{ विनश्वर समाज्ञाय धर्मं नैवानरत्ययम् ॥५२

सत्य सत्य पुन सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते । ✓

दम्भाचार परिपज्य वासुदेव समचक्रैर् ॥५३

भूयो भूया हित वच्मि भुजमुद्धृत्य नारद ।

विष्णु सर्वात्मना पूज्यस्त्वाज्यामूया तथानृतम् ॥५४

{ क्रोधमूलो मनस्ताप क्रोधं सतारव-धनम् ।

{ धमशयवर क्रोधस्तस्मात्त परिवर्जयेत् ॥५५

वाममूलमिदं जन्म काम पापस्य कारणम् ।

यश शयवर कामस्तस्मात्त परिवर्जयेत् ॥१५६॥

यदि मनुष्य मुक्ति चाहता है तो इन्द्रियो मे विवर्णता आने से पूर्व ही रोगो के जाल मे फँसने से पूर्व ही भगवान विष्णु का पूजन कर लेना चाहिए ॥१५०॥ जिस समय मे यह प्राणी अपनी माता के गर्भोदर से बाहिर आता है उनी समय मे यह मृत्यु उसके पीछे रहो लिया करती है । अतएव धर्मों का समाचरण अवश्य ही मनुष्य को करना चाहिए ॥१५१॥ ओहो ! बहुत ही कष्ट की बात तो यह है कि यह शरीर सर्वदा नही रहेगा और नाशवान् है तथा इसका नाश किस समय हो जायगा यह भी पता नही है क्योंकि यह क्षण मे भगुर हो जाने वाला है—यह सब कुछ जान कर भी प्राणी धर्मों का आचरण न करके विषयो मे ही उलझा रहा करता है ॥१५२॥ मैं अपनी भुजा उठा कर इस परम सत्य बात का उद्घोष करता हूँ कि प्राणियो का यही परम कर्तव्य है कि दम्भाचार का त्याग करके भगवान धामुदेव प्रभु का अर्चन करना चाहिए ॥१५३॥ हे नारद ! मैं अपनी भुजा उठा कर नारम्बाण प्राणियो के परम हित की बात कह रहा हूँ कि अपने जीवन मे मनुष्य को सभी तरह से भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए और अमूया तथा असत्य का संबंधा परित्याग करना चाहिए ॥१५४॥ क्रोध बडी भारी बला है इसका त्याग करना परमावश्यक है । क्रोध करने से तनमें सन्तप हुं जाय करता है । क्रोध से समार के वन्धना मे बद्ध होजाना पडना है । क्रोध धर्म का पूर्णतया क्षय कर दिया करता है अतएव इस क्रोध रपोसेहोनु दुर्गुण का त्याग अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१५५॥ यह देह काम (वासना) का मूल है और यह काम पापो का कारण हाता है तथा मुषण को भी नाशक है अतएव इसका त्याग भी कर देना चाहिए ॥१५६॥

समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं वारणं स्मृतम् ।

नृकाणां साधनं च तस्मात्तदपि सत्यजेत् ॥१५७॥

मन एव मनुष्याणा कारणं बन्धमोक्षयोः ।
 तस्मात्तदभिसंयोज्य परात्मनि सुखी भवेत् ॥५५॥
 अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम् ।
 विष्णो स्थिते जगन्नाथे न भजति मनोद्धता ॥५६॥
 अनाराध्य जगन्नाथ सर्वधातारमच्युतम् ।
 ससारसागरे मग्नाः कथं पारं प्रयाति हि ॥६०॥
 अच्युतान्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
 नश्यन्ति सकृत् रोगा मर्त्य सत्यं वदाम्यहम् ॥६१॥
 नारायणं जगन्नाथं वागुदेवं जनादर्दनम् ।
 इतीरयन्ति ते नित्यं ते वै सर्वत्र वन्दिता ॥६२॥
 अद्यापि च मुनिश्रेष्ठं ब्रह्माद्या अपि देवताः ।
 यत्प्रभावं न जानन्ति तं याहि शरणं मुने ॥६३॥

मात्सर्यं सभी बलेशो का कारण है, इसको नरको का साधन
 बताया गया है । अतएव मत्सरता को जो त्याग देना चाहिये ॥५७॥
 यह मन ही एक ऐसा प्रबल है कि इसी में सब दुर्गुण आकर बैठ जाया
 करते हैं और यही एक मात्र बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है ।
 अतएव इसको सब ओर से हटाकर भगवान के चरणों में लगा देना ही
 परम पुरुषार्थ है । सभी सुख की प्राप्ति हाती है ॥५८॥ मुझे इस महा
 मूढ़ मानव के धैर्य पर बड़ा भारी आश्चर्य होता रहता है कि यह ऐसा
 मदोद्धत बना रहा करता है कि परम दयालु प्रभु के होने पर भी
 उनके मजन करने का उसको कभी ध्यान ही नहीं होता है तथा अह-
 निश इसी दुर्निर्वाहारी में डूबा रहा करता है ॥५९॥ सब जगत् के
 धाता भगवान अच्युत की आराधना किये बिना इस महा धोर सत्तार
 सागर से कैसे पार लग सकता है ॥६०॥ मैं यह परम सत्य कहता हूँ
 कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द इन भगवन्नामों की भक्ति पूर्वक
 उच्चारणरूपी औषध से सभी रोग और बाधाएँ विनष्ट हो जाया

करते हैं । ॥६१॥ जा प्राणी सर्वदा नारायण, जगन्नाथ, वामुदेव, पनादेन, इस तरह मे भगवान के नामो का उच्चारण किया करते हैं वे सर्वत्र प्रशंसा के पात्र हुआ करते हैं ॥६२॥ हे मुनिवर । ब्रह्मा-
दिक देवगण भी अभी तक जिनके प्रभाव का पार नहीं प्राप्त कर सके-
हैं उनको शरण ग्रहण करनी चाहिये ॥६३॥

{ अहो मौर्ष्यमहो मौर्ष्यमही मौर्ष्यं दुरात्मनाम् ।
हृत्पदमसस्थित विष्णु न विजानन्ति नारद ॥६४
शृणुष्व मुनिशार्दूल भूयो भूयो वदाम्यहम् ।
हरिः श्रद्धावता तुष्येन्न धर्मेन च वा-धर्य ॥६५
बन्धुमत्त्व घनाढपत्व पुत्रवत्त्व च सत्तम ।
विष्णुमक्तिमता नृणा भवेज्ज-मानि जन्मनि ॥६६
पापमूलमम देह पापकमरतस्तथा ।
एतद्विदित्वा सतत पूजनीयो जनादर्दन ॥६७
पुत्रमित्तकलत्राद्या बहव स्युश्च सपद ।
हरिपूजारताना तु भवन्त्येव न भगव ॥६८
इहामुत्त सुखप्रेप्सु पूजयेत्सतत हरिम् ।
इहामुत्तामुखप्रेप्सु परनिन्दापरो भवेत् ॥६९
धिग्जन्म भक्तिहोनाना देवदेवे जनाद्दने ।
सत्पायदानशून्य यत्तद्धन धिक्पुन पुन ॥७०

हे नारद । इन दुष्ट जीवों की मूढता पर विचार करो कि भगवान विष्णु अन्तर्यामी सदा सबके हृदय कमल में विराजमान रहा करते हैं तो भी यह दुर्भाग्यवश उनका ज्ञान नहीं किया करते हैं ॥६४॥ हे मुनि शार्दूल । आप कान खोल कर सुन लीजिए । मैं जोर दकर कहना हूँ कि भगवान सदा श्रद्धा रखने वालों से ही प्रमत्न रहा करते हैं । वे धन दीनत और व पुत्रोंको को देख कर कभी प्रमत्न नहीं हुआ करते हैं ॥६५॥ हे श्रेष्ठ प्रवर जो भगवान के भक्त होते हैं वे सभी

ज मो म पुत्रो और व धुओ से युक्त हुआ करते हैं तथा धनवान भी होते हैं ॥ ६६ ॥ यह देह पापों का भूत है क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही पाप से होती है । यह सदा पाप बर्षों में ही परायण रहा करता है । इसका कर्तव्य है कि यही सब विचार कर उद्धार और सद्गति कलाभ के लिये भगवान का पूजन करना चाहिए ॥६७॥ जो भगवान के पूजन में सबका त्याग कर निरत रहा करते हैं उनके पास तो पुत्र मित्रादि और विविध सम्पदायें स्वतः ही आकर एकत्रित हो जाया करती हैं ॥६८॥ इसीलिए जो इस लोक और परलोक दोनों में सुख की चाह रखता है उसे सबका त्याग कर केवल श्री हरि का ही पूजन करना चाहिए । जो परब्रह्म प्रभु की निन्दा किया करता है उसको न तो यहाँ कोई सुख प्राप्त होता है और न तो परलोक में ही उसको सुख मिला करता है ॥६९॥ जो मनुष्य देवाधिदेव जनादन प्रभु की भक्ति से हीन है उसके इस जीवन को ही धिक्कार है और जो विपुल वैभव प्राप्त करके भी किसी मुपाय को जान के काम में उसका विनियोग नहीं किया करता है उस धन को भी धिक्कार ही है ॥७०॥

न नमेद्विष्णवे यस्य शरीर कम भेदिने ।

पापानामाकर तद्वै विज्ञयमुनितत्तम ॥७१

सत्पात्रदानरहित यद्द्रव्य येन रक्षितम् ।

चौयण रक्षितमिव विद्धि लोनेषु निश्चितम् ॥७२

तडिल्लोत्रश्रिया मत्ता क्षणमगुरशालिन ।

नाराधयन्ति विश्वेश पशुपाशविमोचकम् ॥७३

मृष्टिस्तु द्विविधा प्रोक्ता दवासुरविभेदत ।

हरिभाक्तियुता देवी तद्धीना ह्यासुरो मता ॥७४

तस्माच्छृणुष्व विप्रद्र ह्यारभक्तिपरायणा ।

श्रुष्टा सवत्र विष्वाता यता भक्ति सुदुल्भा ॥७५

अमूयारहिता ये च विप्रत्राणपरायणा ।

कामादिरहिता ये च तेषा तुष्यति केशव ॥७६॥

समाजं नादिना ये तु विष्णुशुभ्रूपणे रता ।

सत्पापदाननिरता प्रयात परम पदम् ॥७७॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसका शरीर कर्मभेद करने वाला भगवान् विष्णु के लिये नहीं झुगता है उसको पापों की ही छान समझना चाहिये ॥७१॥ जो किसी सत्पाप को दान न देकर उस धन की रक्षा किया करते हैं उस धन को धोर चुराकर ले आया करते हैं ॥७२॥ जो दण-भगुर मानव विष्णु की समक के समान स्वल्प काम लभ रहने वाली लक्ष्मी के भद्र में उन्मत्त होकर अज्ञता के पाश को काटने वाले भगवान् की समाराधना नहीं किया करते हैं वे महान् मूर्ख होते हैं । दैवी और आसुरी के भेदों से यह सृष्टि दो तरह की हुआ करती है । जो श्रीहरि भगवान् की भक्ति किया करते हैं उनकी सृष्टि दैवी बही जाया करती है । जो हरि की भक्ति से हीनो की सृष्टि होती है वह आसुरी सृष्टि कही जाती है ॥७४॥ हे विप्रोन्द्र ! जो श्री हरि भगवान् की भक्ति में परायण होते हैं वे ही श्रेष्ठ जन सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त किया करते हैं क्योंकि यह भगवद्भक्ति परम दुर्लभ वस्तु होती है ॥ ७५ ॥ जिन मानवों में कामादि दोषों का अभाव होता है और अनूया नहीं रहा करती है तथा जो विप्रों के पालन तथा भजन में तत्पर रहा करते हैं उन्हीं पर भगवान् परम प्रमत्त होजाया करते हैं ॥७६॥ जो भगवान् के मन्दिर में सम्भाजन करने की सेवा करते हैं और भगवान् विष्णु की सेवा में तत्पर रहा करते हैं वे निश्चित रूप से परम पद का प्राप्ति किया करते हैं ॥७७॥

शुभादि + महात्म्य

महान् महात्म्य

॥ वेदमालिका उपाख्यान ॥

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्य देवदेवस्य चक्रिण ।

पठता शृण्वता मद्य पापराशि प्रणश्यति ॥०

शाता जितारिपङ्कवा योगेना ।

यजन्ति ज्ञानयोगेन ज्ञानरूपिणमव्ययम् ॥२
 तीर्थस्नानैर्विशुद्धा ये व्रतदानतपोमखं ।
 यजन्ति कर्मयोगेन सर्वघातारमच्युतम् ॥३
 लुब्धा व्यसन्तिनोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम् ।
 अजरानरवन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटका ॥४
 तडिल्लेखाश्रिया मत्ता वृथाहकारद्वृषिता ।
 न यजन्ति जगन्नाथ सर्वश्रेयोविधायकम् ॥५
 हरिधर्मरता शाता हरिपादाब्जसेवका ।
 देवात्केऽपीह जीयन्ते लोकानुग्रहतत्परा ॥६
 कर्मणा मनसा वाचा यो यजेद्भक्तितो हरिन् ।
 स याति परम स्थान सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे नारद । अब मैं देवाधिदेव
 मुदर्शन चक्र के धारण करने वाले भगवान के माहात्म्य का पुन वर्णन
 करता हूँ । जो पुरुष इसका श्रवण किया करते हैं और पठन किया
 करते हैं उनसे सब पापों का समुदाय गलदर नष्ट होजाया करता है
 ॥१॥ शम-दम से युक्त जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और
 मात्सर्य इन छे दोषों को अपने अकुश में रखने वाले और भोग की
 सिद्धि का अहङ्कार न करने वाले साधक पुरुष ज्ञानयोग के द्वारा
 ज्ञानस्वरूप वाले भगवान अच्युत का आराधन किया करते हैं ॥ २ ॥
 जो तीर्थस्नान, प्रतीपवास, दान, तप और यज्ञों के यजन के द्वारा
 अपने पापों का क्षय कर दिया करते हैं । उनकी ही रुचि सर्वपापक
 अच्युत की पूजा में हुआ करती है ॥३॥ जो लोभी, स्वसगी और अज्ञ
 पुरुष हुआ करते हैं वे ही जगत के स्वामी भगवान का पूजन नहीं
 किया करते हैं । ऐसे लोग मूढतावश अपने आपसे ऐसा मानते हैं कि
 सदा ही वे अमर-अमर बने रहेंगे । ऐसे मनुष्य बीड़ों के ही समान
 ममार में पड़े रहा करते हैं ॥४॥ इस सम्पत्ति के मद में जो बिजली

की घमण्ड-दमक के समान ही परम चञ्चल एवं अस्थिर है, उन्मत्त हो कर स्थिर ही घमण्ड बरके दूषित होजाया करते हैं । इसीलिये वे सभी तरह के कल्याणों को करने वाले प्रभु का यज्ञ नहीं किया करते हैं ॥५॥ जो प्राणी श्री हरि भगवान के धर्म में तत्परता रखते हैं और श्री हरि भगवान के चरण कमलों की सेवा किया करते हैं ऐसे महापुरुष दैव के योग से विरले ही इस मृत्युलोक में पुन समागत हुआ करते हैं और वे इस मसार में प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये ही मसार में आया करते हैं ॥६॥ जो नन-वचन और कर्म से भक्ति भाव से समन्वित होकर श्री हरि भगवान का अर्चन किया करता है वह समस्त दिग्ग लोकों में परम श्रेष्ठ पद की प्राप्ति किया करता है ॥ ७ ॥

अश्र्वोदाहरतीममितिहास पुरातनम् ।

पठता शृण्वता चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥८

तत्प्रवक्ष्यामि चरित यज्ञमालिसुमालिनो ।

यस्य श्रवणमात्रेण चाग्निमेघफल लभेत् ॥९

कषिजदामीत्पुरा विप्र ब्राह्मणो र्वर्तेश्वरे ।

वेदमालिरिति कृयातो वेदवेदागपारण ॥१०

सर्वभूयदयायुक्तो हरिपूजापरायण ।

पुत्रमित्रकलत्रार्थ धनाजंनपरोऽभवत् ॥११

अपण्यविक्रय चक्रे तथा च रसविक्रयम् ।

चडालार्थरपि तथा सभापी तत्प्रतिग्रही ॥१२

तपसा विक्रय चक्रे व्रताना विक्रय तथा ।

परार्थ तीर्थगमन कलत्रार्थमकारयत् ॥१३

कालेन गच्छता विप्र जाती तस्य सुताबुधो ।

यज्ञमाली सुमाली च यमलावतिशोभनो ॥१४

इस विषय की पुष्टि के लिये यहाँ पर एक ऐतिहासिक उदाहरण

दिया जाता है । यह इन्द्रियम बांधने वाले और श्रवण करने वाले दोनों के ही समस्त पापों को दूर भगा दिया करता है ॥ ८ ॥ इस विषय में मैं अब यज्ञ माली और गुमाली के चरित का वर्णन करता हूँ । यह ऐसा महत्वपूर्ण परित्र है कि इसके श्रवण करने ही में एक अल्पमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता करता है ॥ ९ ॥ हे विप्रवर ! रंजन नामक मन्वन्तर में एक वेदमाली नाम वाला ब्राह्मण हुआ था । वह ममस्त वेदों और वेदों के अज्ञ शास्त्रों में पारंगामी विद्वान् था ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण धडा ही दयालु था और ममस्त प्राणियों पर पूर्णतया दया का भाव रखता करता था । वह सर्वदा श्री हरि के पूजन में निरत रहा करता था । एक बार वह अपने पुत्र — बलत्र और मित्र के निषेधन सहकर करने में गलत हो गया था ॥ ११ ॥ वह इस धन के मञ्जव करने के लालच में जिन वस्तुओं को बेचने का शासन में निषेध है वह लोभ के चञ्चोभून होने के कारण उन्हें भी बेचने लग गया था । रस का भी विक्रय करता हुआ चाण्डाल आदि से भी लेन-देन की बातचीत करना उसने आरम्भ कर दिया था और उनका दान भी ग्रहण करने लग गया था ॥ १२ ॥ वह अपने निषेध हुए तप और व्रत का विक्रय करने तथा लोगों से दान ग्रहण करने लगा । वह दूसरे लोगों के निषेधन के लोभ में तीर्थाटन करने लग गया था । यह सभी कुछ वह अपनी स्त्री आदि कुटुम्ब के भरण पोषण के लिये ही किया करता था ॥ १३ ॥ हे विप्रवर ! इसी प्रकार से कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उसके यज्ञ माली और गुमाली नामों वाले दो जुड़वाँ पुत्र सम्पन्न हुए थे । ये दोनों पुत्र बहुत ही सुन्दर थे ॥ १४ ॥

ततः पिता कुमारी तावतिस्नेहसमन्वित ।

पोषयामास वात्सल्याद्बहुभिः साधनैस्तदा ॥१५

वेदमालिबंहूपायैर्धनं सपाद्य यत्नत ।

रवधनं गणयामास कियत्स्यादिति वेदितुम् ॥१६

निधिकोटिमहाराणा कोटिकोटिगुणान्वितम् ।

करती है वह चाहे बड़ा भारी विद्वान् हो या परम शान्त तथा महा-
पण्डित हो तो भी उसे क्रोध था जाया करता है । वह चाहे निरुत्तम
ही बुद्धिमान् बशे न हो तथापि वह अत्यन्त मूढ़ बुद्धि वाले के समान
काग कर बैठ करता है ॥ २३ ॥ यह आशा पिशाचिनी है धीर
मनुष्यों को न जीतने योग्य शत्रु के समान ही हुआ करती है । यह
मानवों की प्रतिष्ठा को भङ्ग करने वाली होती है । अतएव बुद्धिमान्
पुरुष को यदि परम शाश्वत सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो इस
आशा का संबंध त्याग कर देना चाहिए ॥ २४ ॥ इस एक मात्र आशा
के होने से मनुष्य की मान प्रतिष्ठा का नाश हो जाया करता है । वह
मनुष्य के तेज, यश, बल, विद्या, मान, वृद्धता और सत्कुलोत्पत्ता आदि
सबको बड़े ही वेग के साथ धूलि में मिला दिया करती है ॥ २५ ॥ जो
मनुष्य आशा से दबा हुआ होगा है वह कुछ देने वाले चण्डाल को भी
अपने से बड़ा एवं अधिक सम्पन्न करता है—यह कितने "भाशव्य" की
शक्ति है ॥ २६ ॥ आशा ने दबा हुआ मानव महत् मोह से उद्धत या हो
जाया करता है । अपमान से होने वाली आत्म श्मति परको तेज-
मान भी नहीं हुआ करती है और उन्हें इस अपमान का कुछ भी दुःख
नहीं होता है ॥ २७ ॥ मैंने भी इसी तरह मानापमान और वर्तव्या-
वर्तव्य कुछ भी विचार न कर अनेक बलेशों को सहन करते हुए मह-
धन दकृष्टा किया है । अब तो मेरा शरीर जीव हो गया है और वृद्धता
से मेरे बल, पराक्रम का भी हरण हो गया है ॥ २८ ॥

इत पर यतिष्यामि परलोचार्थमादरात् ।

एष निश्चित्य विप्रैर्द्र धर्ममार्गं रतोऽभवत् ॥ २९ ॥

तर्दध तद्धन सर्वं चतुर्धा व्यभजत्तथा ।

स्वयं तु भागद्वितमं रवाजितार्थादिपाहरत् ॥ ३० ॥

अप च मार्गद्वितमं पुत्रयोऽभयोर्ददौ ।

स्वनाजितानां पापानां नाशं कर्तुं मनास्तदा ॥ ३१ ॥

प्रपा-तडागाराभाश्च तथा देवगृहान्वहून् ।
 अन्नादीना च दानानि गगातीरे चकार स ॥३२
 एव धनमशेष च विश्राप्य हरिभक्तिमान् ।
 नरनारायणस्थान जगाम तपसे वनम् ॥३३
 तत्रापश्यन्महारम्यमाश्रम मुनिसेवितम् ।
 फलितं पुष्पितैश्चैव शोभित वृक्षसचये ॥३४
 गृणद्भिर् परम ब्रह्म शास्त्रचितापरैस्तथा ।
 परिचर्यापरैर्वृद्धैर्मुनिभिर् परिशोभितम् ॥३५

अब मेरा परलोक के लिये भी कुछ कर्त्तव्य है और गुप्ते चाहिए कि आगे सद्गति प्राप्त करने के लिये मैं कुछ समादर के साथ कुछ करूँ—यही उचित है। हे विप्रवर ! यह मन में विचार करके वह धर्म के कार्यों में लग्न हो गया था ॥३२॥ उसी क्षण में उसने विचार करके अपने सम्पूर्ण धन के चार भाग करके उसमें से दो भाग अपने लिये रखे और शेष दो भागों को दोना पुत्रों को दे दिया था। उसने धनसञ्चित किये हुए पापों का विनाश कर डालने का मनमें निश्चय किया था ॥ ३०-३१ ॥ उस धन से तालाब, उद्यान, मन्दिर और भागीरथी के तट पर बहुत से अन्न क्षेत्र उसने खोल दिये थे ॥ ३२ ॥ उसने अपना बड़े क्लेश से सञ्चित किया हुआ सम्पूर्ण धन इस रीति से विष्णु-भक्ति के कारण विभक्त कर दिया था और फिर वह तपश्चर्या करने के लिये नरनारायण के आश्रम की ओर वन में चला गया था। ॥३३॥ वन में उसने आकर मुनि मण्डल में सेव्यमान उत्कृष्ट रमणीय आश्रम का दर्शन किया था। जसमें फली और पुष्पा से लदे हुए वृक्ष परम शोभायमान हो रहे थे ॥ ३४ ॥ वहाँ उस वन में परम वृद्ध मुनि-गण भगवान् की सेवा में तत्पर हो रहे थे किसी जगह पर कुछ मुनिजोग शास्त्रार्थों का विगन मतन कर रहे थे और कहीं पर परब्रह्म वद का विचार किया जा रहा था ॥३५॥

शिष्ये परिवृत तत्र मुनि जानतिसज्ञकम् ।
 गृणत परम ब्रह्म तेजोराशि ददर्श ह ॥३६
 शमादिगुणभयुक्त रागादिरहित मुनिम् ।
 शीर्षपर्णाशन दृष्ट्वा वेदमालिनं नाम तम् ॥३७
 तस्य जानन्तिरागतो कल्पयामास चार्हेणम् ।
 कदमूलफलाद्यैस्तु नारायणधिया मुने ॥३८
 कृतातिथ्यत्रियस्तेन वेदमाली कृताजलि ।
 विनयावनतो भूत्वा प्रोवाच वदन् वरम् ॥३९
 भगवन्कृतवृत्त्योऽस्मि विगत कल्मष मम ।
 मामुद्धर महाभाग ज्ञानदानेन पडित ॥४०
 एवमुक्तस्ततस्तेन जानतिर्मुनिसत्तम ।
 प्रोवाच प्रहसन्वाग्मी वेदमालि गुणान्वितम् ॥४१
 शृणुष्व विप्रशार्दूल ससारच्छेदकारणम् ।
 प्रवदयामि समालेन दुर्लभ स्वकृतात्मनाम् ॥४२

उस तपोवन वनमे वेदमाली ने तेज के राशि जानन्ति महाभुनि
 का दर्शन किया था जिनको चारो ओर से शिष्यो ने घेर रक्खा था
 और सब परमब्रह्म का वचन कर रहे थे ॥ ३६ ॥ वेदमाली ने शम—
 दमादि सद्गुण गण से सयुक्त—राग, द्वेषादि दोषो से रहित—भूमि पर
 सड़ कर गिरे हुये शुष्क पत्तो का आहार करने वाले महाभुनि का दर्शन
 प्राप्त कर उनको अत्यन्त समादर पूर्णरूप प्रणाम किया था ॥ ३७ ॥ हे
 मुने । उस जानन्ति मुनि ने उस क्षणवत् अतिथि मे साक्षात् भयधान्
 नारायण की बुद्धि करते हुए उसका वन्द, मूल, फलादि क द्वारा
 आतिथ्य-य कर दिया था ॥ ३८ ॥ उस अतिथि सत्वार को स्वी-
 कार करके वेदमाली ने हाथ जाडकर परम विनयता क साथ नम्र
 होकर वक्ताओ मे गरम धौष्ट मुनि से प्रार्थना की थी ॥ ३९ ॥ वेदमाली
 न कहा—हे भगवन् । आज आपसे दर्शन प्राप्त करने में परम कृतकृत्य

हो गया है । मेरे समस्त पापों का समुदाय नष्ट हो गया है । अब आप हे महाभाग ! हे पण्डित प्रवर ! मुझे ज्ञान का दान देकर मेरा उद्धार करिये ॥ ४० ॥ जब वेदमाली ने इस रीति से प्रार्थना की तो मुनि शिरोमणि जानग्नि ने हँसकर उन परम गुणशाली वेदमाली से कहा—
॥ ४१ ॥ हे विप्र शार्दूल ! मैं आपने अब मत्सर के विनाश करने वाले कारण को बतलाता हूँ आप उसका श्रवण परम सावधान होकर करिए । इसका साधन जो पुण्यहीन होते हैं उनमें होना महान् दुर्लभ होगा है ॥४२॥

भज विष्णु पर नित्य स्मर नारायण प्रभुम् ।

परापवाद पंगुन्य कदाचिदपि मा कृया ॥४३

परोपकारनिरत सदा भव महामते ।

हरिपूजापरश्चैव त्यज मूर्खसगागमम् ॥४४

काम क्रोध च लोभ च मोह च मदमत्सरो ।

परित्यज्यात्मबल्लोक दृष्ट्वा शांति गमिष्यमि ॥४५

असूया परनिंदा च कदाचिदपि मा कुरु ।

दमाचारमहकार नैच्छुभं च परित्यज ॥४६

दमा कुरुष्व भूतेषु शुश्रूषा च तथा सताम् ।

त्वया कृताश्च धर्मान्चै मा प्रकाशय पृच्छताम् ॥४७

अनाचारपरान्दृष्ट्वा मोपेक्षा कुरु शक्ति ।

पूजयस्वातिथि नित्य स्वकुटुम्बाविरोधत ॥४८

पत्रं पुष्पं फलवापि दूर्वाभि पल्लवैरथ ।

पूजयन्त्य लगन्नाथ नारायणमकीमत ॥४९

मत्सर से छुटकारा पाने के लिये परात्पर एव नित्य भगवान् विष्णु को स्मरण करना चाहिए और सदा विभु नारायण का ध्यान करना चाहिए । दूसरों की निन्दा और चुपसी कभी नहीं करनी चाहिए ॥४३॥ हे महान् मति वाले ! आपका यही परम ध्येयस्वर कर्तव्य है

किं सर्वदा दूसरो की भलाई करने मे आपको सलज्ज रहना चाहिये ।
 नित्य श्री हरि कं अर्चन किया करो तथा जो मुख्य पुरुष हैं उनका सङ्ग
 कभी नहीं किया करो ॥ ४४ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और
 मात्सर्य इन छँ विनाशकारी शत्रुओ का परित्याग करके समस्त ससार
 को अपन ही सट्टण समझ कर रहने पर परम शान्ति का लाभ होगा ।
 ॥४५॥ असूया और दूसरो की निन्दा कभी भी नहीं करनी चाहिये ।
 केवल दम्भ (दिखावा) के लिये धर्म का समाचरण—अहङ्कार और
 निष्कृता का पूणत त्याग कर देना चाहिये ॥ ४६ ॥ ससार के समस्त
 प्राणियो पर दयाभाव रखो—सत्पुरुषो की सेवा करो और यदि धर्म
 कृत्यो के विषय में कोई भी पूछे कि आपने क्या क्या धर्म कृत्य किये हैं
 या इस समय मे कर रहे हैं ? तो उनको कभी भी प्रकाशित मन करो
 ॥४७॥ यदि कोई दूसरा अनाचार कर रहा हो तो यदि अपने मे शक्ति
 हो तो कभी लापरवाही मत करो उस दूर करदो । अपन कुनवे मे
 कोई विरोध न हय्ने—इस रीति से अपनी शक्ति के अनुसार समागत
 अतिथियो का सत्कार निरय अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४८ ॥ सर्गदा
 निष्काम भाव से पत्र, पुष्प, फल और दुग्धादि उपचारों के द्वारा जगत्
 के स्वामी शिववान नारायण का पूजन करना चाहिये ॥४९॥

देवानृषीन्पितृ श्रापि तर्पयस्व यथाविधि ।
 अग्नेश्च विधिबद्धिप्र परिचर्यापरो भव ॥५०॥
 देवतायनने नित्य समाजंतपरो भव ।
 तथोपलेपन चंद्र कुरुष्व सुसमाहित ॥५१॥
 शीर्णस्फटितसघान कुरु देव ह्ये सदा ।
 मागशाभा च दीप च विट्णारायतने कुरु ॥५२॥
 वदमूलफलर्वापि सदा पूजय माधवम् ।
 प्रदक्षिणनमस्कारे स्तोत्राणा पठनेस्तथा ॥५३॥
 पुराणश्रवण च पुराणपठन तथा ।

वेदात्पठन चैव प्रत्यह कुरु शक्तित ॥५४
 एव स्थिते तत्र ज्ञान भविष्यत्युत्तमोत्तमम् ।
 ज्ञानात्समस्तपापाना मोक्षो भवति निश्चितम् ॥५५
 एव प्रबोधितस्तेन वेदमालिमहामति ।
 तथा ज्ञानरतो नित्य ज्ञानलेशमवाप्तवान् ॥५६

शास्त्र में विहित विधि विधान के अनुसार देव तपण ऋषि तपण और पितृ तपण अवश्य करना चाहिए । हे विप्रत्रवर । अग्नि की भी विधि के अनुसार मेवा अर्थान् हवनादि करना चाहिए ॥५०॥ आपका यही परम कर्तव्य है कि देवता के निवास स्थल की स्वच्छता सदा करत हुए बहुत ही सावधानी से भगवान् की प्रीति प्राप्त करने के उद्देश्य में उनका लेपन भी करते रहना चाहिए ॥५१॥ यदि शीणता के कारण या अथ किसी कारण के होने से देव मंदिर टूट फूट या फट जाये तो उसकी जहाँ की तहाँ मरम्मत करादो तथा भगवान् विष्णु के मंदिर में माग शोभा के सुगन्धन करने के लिये क्षीरक आदि को प्रज्वलित करते रहना चाहिए ॥ ५२ ॥ ससार के बंधन से युक्त होने की इच्छा वाले परम विष्णु भक्त का यही कर्तव्य है कि भगवान् माधव प्रभु का कन्द मूल फल प्रदरिणा प्रणाम और स्तवन आदि के द्वारा नियम अचन करते रहना चाहिए ॥५३॥ अपनी शक्ति के अनुसार प्रति दिन पुराणों का श्रवण पठन एव मनन करत हुए वेदात्पठन शास्त्र के ग्रन्थों को भी पढ़ते रहना चाहिए ॥५४॥ इस विधि से नित्य ही नियम पूर्वक करने से आपको परमोत्तम ज्ञान की प्राप्ति हो जायगी । जब ज्ञान हो जायगा तो सभी पापों का समुदाय नष्ट हो जायगा—इसमें लेश मात्र भी मशय नहीं है ॥५५॥ जिस समय में महर्षि जानन्ति ने उस वेदमालि को इस रीति में उत्तम उपदेश प्रदान किया तो वह वेदमालि भी उसी के अनुसार सब कुछ करने में तत्पर होगया था और फिर उसे कुछ ज्ञान भी प्राप्त हो गया था ॥५६॥

वेदमालि कदाचित्तु ज्ञानरोशप्रचोदित ।
 वोऽहं मम क्रिया केति स्वयमेव व्यचिंतयत् ॥५७
 मम जन्म कथं जातं रूपं कौटुम्बिकं मम ।
 एव विचारणपरो दिवानिशमतद्वित ॥५८
 अनिश्चितमतिभूत्वा वेदमालिद्विजोत्तम ।
 पुनर्जनिन्तिमागम्य प्रणम्येदमुवाच ह ॥५९
 मम चिन्तमतिभ्रान्तं गुरो ब्रह्मविदा वर ।
 कोऽहं मम क्रिया का च मम जन्म कथं वद ॥६०
 'सत्यं सत्यं महाभाग चित्ता भ्रात सुनिश्चितम् ।
 अविद्यानिलयं चित्तं कथं सद्भावमेप्स्यति ॥६१
 ममेति गदितं यत्तु तदपि भ्रान्तिरिष्यते ।
 अहंकारो मनोधम आत्मनो न हि पण्डित ॥६२
 पुनश्च वोऽहमित्युक्तं वेदमाल त्वया तु यत् ।
 मम जात्यादिशून्यस्य कथं नाम करोम्यहम् ॥६३

एक दिन इसी ज्ञान के भेग क उत्पन्न हो जाने पर उसी से प्रेरित होकर वह अपने मन में विचार करने लगा—मैं कौन हूँ और मेरा कर्त्तव्य कर्म क्या है ? ॥५७॥ मरे तत्पार में जन्म प्राप्त होने का क्या कारण है और मरा यह स्वरूप किन प्रकार से हो गया है ? इन सभी बातों पर वह निरालस्य होकर अहनित गहन विचार करने लग गया था ॥५८॥ किन्तु यह द्वित्र वेदमाली कुछ भी निश्चय का प्राप्त न हो सका था । इसलिये वह फिर महामहर्षि प्रवर जानति के समीप में उपस्थित होकर उनका स्नान करके निवेदन करके लगा था ॥ ५९ ॥ वेदमाली ने जानति से प्रार्थना की थी—हे ब्रह्म के ज्ञान रखने वाले मेरे परम श्रेष्ठ गुरुवर ! मेरा मन अत्यधिक भ्रम में पड़ा हुआ है—कि मैं कौन हूँ—मेरा कर्म क्या है और मरा जन्म कैसे हुआ है ? ॥ ६० ॥ महर्षि जानति ने उसका इसका उत्तर इस प्रकार दिया था—हे महा-

यत्न किया करता है वह प्राणी निश्चय ही कर्मों के पाश से विमुक्त होकर परम सुख की प्राप्ति किया करता है ॥७३॥

विश्वामित्रः - मानदः नमः

॥ यज्ञमालि सुमालि चरित्र ॥

वेदमाले सुती प्रोक्ती यावुभौ मुनिसत्तम
 यज्ञमाली सुमाली च तयो कर्मावुनोच्यते ॥१
 तपोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृसचितम् ।
 धन द्विधा कनिष्ठस्य भागमेक ददी तदा ॥२
 सुमाली च धन सख व्रसनाभिरत सदा ।
 अपाशनादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज ॥३
 गीतवाद्यरतो नित्य मद्यपानरतोऽभवत् ।
 वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत् ॥४
 सर्वस्मिन्नशमायाते हिरण्ये पितृसचिते ।
 अपहृत्य पर द्रव्य वारस्त्रीनितोऽभवत् ॥५
 दृष्ट्वा सुमालिन शील यज्ञमाली महामति ।
 बभूव दुःखिनोऽप्यर्थं भ्रातर चेदमब्रवीत् ॥६
 अन्तमयतकष्टेन वृत्तेनास्मत्कुलेऽनुज ।

नहीं है ॥६७॥ "तत्त्वमसि" आदि जो महावाक्य है उनसे प्राप्त होने वाला ज्ञान ही मोक्ष की प्राप्ति का साधन होता है । जिस समय में यह आधारहित ज्ञान सिद्ध हो जाया करता है तभी यह सब ब्रह्ममय भासित हुआ करता है ॥ ६८॥

एव प्रबोधितस्तेन वेदमालिमुं नशीवर ।

मुमोद पश्यन्तात्मानमात्मन्येवाच्युत प्रभुम् ॥६६

उपाधिरहित ब्रह्म स्वप्रकाश निरञ्जनम् ।

अहमेवेति निश्चित्य परा शांतिमवाप्तवान् ॥७०

ततश्च व्यवहारार्थं वेदमालिमुं नोश्वरम् ।

गुरु प्रणम्य जानन्ति सदा ध्यानपरोऽभवत् ॥७१

गते बहुविधे काले वेदमालिमुं नोश्वर ।

वाराणसीपुर प्राप्य पर मोक्षमवाप्तवान् ॥७२

य इम पठतेऽध्याय शृणुयाद्वा समाहित ।

स कर्मपाशविच्छेद प्राप्य सौख्यमद्वाप्नुयात् ॥७३

हे मुनीश्वर । जिस समय में जानन्ति महर्षि ने इस रीति से वेद माली को ज्ञान का उपदेश दिया था तो उस समय में वह अपने आप में अविनाशी प्रभु परमात्मा का दर्शन प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ था ॥६६॥ उस समय में उसको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया था कि उपाधियो रहित—निरञ्जन—स्वप्रकाश ब्रह्म में ही है । ऐसा जब उसको निश्चय होगया तो उसे परमाधिक शांति प्राप्त हो गई थी । ७०। इसके उपरान्त वह वेदमाली व्यवहार की पूर्ति के लिये उस जानन्ति महर्षि के चरणों में प्रणाम करके सर्वदा आत्म चिन्तन के ध्यान में परायण रहने लग गया था ॥७१॥ हे मुनिवर । इस विधि से जब बहुत सा समय व्यतीत हो गया था तो वह वेदमाली अन्त में रावण की पुरी में पहुँच कर मोक्ष को प्राप्त हो गया था । हे मुनिवर ! जो गुरुप इस वेदमाली के ज्ञान एव मोक्ष प्राप्त होने वाली अध्याय का पठन एव

धन किया करता है वह प्राणी निश्चय ही कर्मों के पाश से विमुक्त होकर परम सुख की प्राप्ति किया करता है ॥७३॥

रामानन्द - मान्दर नमः

॥ यज्ञमालि सुमालि चरित्र ॥

वेदमाले सुतो प्रोक्ता यावुभौ मुनिसत्तम
 यज्ञमाली सुमाली च तयो कर्माद्युनोच्यते ॥१॥
 तयोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृमचितम् ।
 धन द्विधा कनिष्ठस्य भागमेक ददौ तदा ॥२॥
 सुमाली च धन सर्व व्यसनाभिरत सदा ।
 अपादानादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज ॥३॥
 गीतवाद्यरतो नित्य मद्यपानरतोऽभवत् ।
 वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत् ॥४॥
 सर्वस्मिन्नाशमायाते हिरण्ये पितृसचिते ।
 अपहृत्य पर द्रव्य वारस्वीनितोऽभवत् ॥५॥
 दृष्ट्वा सुमानिन शील यज्ञमाली महामति ।
 बभूव दु खिनोऽत्यर्थं भ्रातर चेदमब्रवीत् ॥६॥
 अलमयतकष्टेन वृत्तेनास्मत्कुलेऽनुज ।
 त्वमेक एव दुष्टात्मा महापापरतोऽभव ॥७॥

श्रीतनू देवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ । मैंने जो आपको वेदमाली के दो पुत्र यज्ञमाली और सुमाली नाम से बतलाये थे अन्त में उनके कर्मों का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ दोनों भाइयों में से जो यज्ञमाली नाम वाला था उसने अपने पिता के एकचित्त किये हुए धन को दो भागों में विभक्त किया था और एक भाग अपने छोटे भाई को दे दिया था ॥२॥ हे द्विज । यह सुमाली नामक जो वेदमाली का पुत्र था उसने अपने आपको अनेक व्यसनो में पेश किया था और

पित्रा कृतानि सर्वाणि तडागादीनि सत्तम ।
 अपालयत्प्रयत्नेन सदा धर्मपरायण ॥१७
 विश्वाणित धन सर्वं यज्ञमालेमंहात्मन ।
 सत्पात्रदाननिष्ठस्य धर्ममार्गप्रवर्तिन ॥१८
 अहो सदुपभोगाय सज्जनाना विभूतयः ।
 कल्पवृक्षफल सर्वममरंरेव भुज्यते ॥१९
 धन विश्वाण्य धर्मार्थं यज्ञमाली महामति ।
 नित्य विष्णुगृहे सम्यक्परिचर्यारोऽभवत् ॥२०
 कालेन गच्छता तौ तु वृद्धभावमुपागतौ ।
 यज्ञमाली सुमाली च ह्येककाले मृतावुभौ ॥२१

ऐसी दशा सुमाली की देखकर सब ब्रम्हजनों ने उसका परिपालन
 कर दिया था । राजाने भी उसको उचित दण्ड दिया था । हे विप्र !
 उस समय में वह चाण्डाल स्त्रियों का लेकर निर्जन वन में जाकर पड़
 गया था ॥ १५ ॥ हे विप्रवर ! यज्ञमाली की बुद्धि अच्छी थी । वह
 सर्वदा धार्मिक कर्मों में ही तत्पर रहा करता था । सदा सत्कृत
 करते रहने के कारण से इसके समस्त साप धुल गये थे और उसने
 बेरोक टोक अन्न का दान देना भी आरम्भ कर दिया था ॥१६॥ हे
 श्रेष्ठ प्रवर ! यज्ञमाली सर्वदा धर्म कार्यों में सलग्न रहकर अपने पूज्य
 पिता के समारोपित उद्यान तथा तालाब आदि सबका परिपालन
 किया करता था । महान् आत्मा वाले यज्ञमाली का सब धन सत्पात्रों
 के दान आदि धर्म मार्ग में ही व्यय किया जा रहा था ॥ १८ ॥
 अहो ! सत्पुरुषों की विभूति सर्वदा सदुपयोग के ही लिये हुआ करती
 है क्योंकि कल्पवृक्ष के फलों का आस्वादन सदा देखभाल ही किया करते
 हैं अन्यो को उनकी प्राप्ति कभी हुआ ही नहीं करती है ॥ १९ ॥ वह
 महान् मतिमान् यज्ञमाली धर्म के कार्यों में अपने धन को खर्च करके
 भगवान् विष्णु के मन्दिर में सदा जाकर धर्म का ही विस्तार सेवन

क्रिया करता था ॥२०॥ धीरे धीरे समय व्यतीत हो जाने पर वे दोनों भाई यज्ञमाली और सुमाली वृद्ध होकर एक ही काल में मृत्यु के प्रास हो गये थे ॥२१॥

हरिपूजारतस्यास्य यज्ञमालिमहात्मन ।
 हरि संप्रेषयामास विमानं पार्यंदावृतम् ॥२२
 दिव्यं विमानमारुह्य यज्ञमाली महामति ।
 पूज्यमान सुरगणं स्तूयमानो मुनीश्वरै ॥२३
 गन्धर्वैर्गोयमानश्च सेवितश्चाप्सरोगणै ।
 कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसा निधि ॥२४
 कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसा निधि ।
 गच्छन्विष्णुपत्नं दिव्यं मनुज पथि दृष्टवान् ॥२५
 ताडयमानं यमभटं क्षुत्तृडभ्या परिपीडितम् ।
 प्रेतभूतं विवस्त्रं च दुःखितं पाशवेष्टितम् ।
 इतस्ततः प्रधावन्तं विलपतमनाथवन् ॥२६
 क्रोशन्तं च रुदतं च दृष्ट्वा मनसि विव्यथे ॥२७
 यज्ञमाली दयायुक्तो विष्णुदूतान्समीपगान् ।
 कोऽयं भटैर्वाध्यमान इत्यपृच्छत्कृताजलि ॥२८

उम समय में भगवान् विष्णु ने अपने भक्त परम धार्मिक यज्ञमाली को सान के लिये अपने पार्यंदो को विमान लेकर भजा था ॥२२॥ उस समय में महामतिमान् यज्ञमाली दिव्य विमान पर समाह्वित होकर विष्णुलोक को चल दिया था । मार्ग में देवगण उसकी पूजा करने लगे थे ॥२३॥ गन्धर्व गण उसके सामने गान कर रहे थे तथा दिव्य अप्सराएँ उसकी सेवा में तत्पर हो गयी थीं । वह कामधेनु की कृपा में परिपुष्ट होकर विविध आभूषणों से दिभूषित हो गया था ॥ २४ ॥ परम कोमल तुलसी के दलों की मात्रा में उसका शरीर शोभित हो गया था । उम तजस्वी महापुरुष ने विष्णुलोक का जाते हुए मार्ग में अपने

विष्णु दूतो ने कहा—श्री नारायण परायण । हे महाभाग यज्ञमालिन् । इस सुमाली का छुटकारा और प्रसन्नता प्रदान करने वाला उपाय हम आपको बतलाते हैं—आपने जो पूर्वजन्म में महाकर्म किया था अब हम उसी का क्षमोप में वर्णन करते हैं—आप परम समाहित होकर उसको सुनिये ॥ ३६, ३७ ॥ आप अपने पूर्व जन्म में एक विश्वम्भर नामधारी वैश्य थे और उस समय में आपने अगणित बहुत से महान् पाप किये थे ॥ ३८ ॥ किसी सत्कर्म के करने की तो उस समय में आपने अन्दर वासना नाम मात्र को भी नहीं थी । आप सदा अपने माता-पिता से घोर विरोध रखता करते थे । उस समय में आपके बन्धु बान्धवों ने भी आपका परित्याग कर दिया था और आप शोक तथा सन्ताप से अत्यन्त पीड़ित हो गये थे ॥ ३९ ॥ आपको मूख की अग्नि ने अत्यन्त उत्पीड़ित कर दिया था । उस समय में आप एक विष्णु भगवान् के मन्दिर में पहुँच गये थे जहाँ पर वर्षा होने के कारण से कीचड़ हो गई थी ॥ ४० ॥ आपने अपने ठहरने के उद्देश्य से उस कीचड़ को वहाँ से हटाकर साफ किया था । उस कीचड़ के हटाने से वह मन्दिर लीप सा गया था ॥ ४१ ॥ हे द्विजवर । उस देव मन्दिर में आपने रात का निवास किया था । वहाँ पर एक विषधर सर्प था । उसने आपका दशन किया था जिससे आपकी मृत्यु होगई थी ॥ ४२ ॥

तेन पुण्यप्रभावेन उपलेपकृतेन च ।

विप्रजन्म स्वयां प्राप्ता हरिभक्तिस्तथाचला ॥

कल्पकोटिशत साग्रे सप्राप्य हरिसन्निधिम् ।

वगाद्य ज्ञानमासाद्य पर मोक्ष गमिष्यसि ॥४३॥

अजुज पासकिये छे त्व ममुद्धर्तुमिच्छसि ।

उपाय तव वक्ष्यामस्त निबोध महामते ॥४४॥

गोषर्मात्रभूमेस्तु उपलेपनजपताम् ।

दत्त्वोद्धर महाभाग भ्रातर कृपयान्वित ॥४५॥

एवमुक्तो विष्णुदूतैर्मजामाली महामतिः ।
 तत्फलं प्रददौ तस्मै भ्रात्रे पापविमुक्तये ॥४६॥
 सुमाली भ्रातृदत्तेन पुण्येन गतकल्मषः ।
 बभूव यमदूतास्तु तं त्यक्त्वा प्रपलायिता ॥४७॥
 विमान चागत सद्य सर्वभोगसमन्वितम् ।
 तदा मुमाली स्वयानमारुह्य मुमुदे मुने ॥४८॥
 तावुभौ भ्रातरो विप्र मुरवृन्दनमस्वृती ।
 अवापतुर्भूश प्रीति समालिख्य परस्परम् ॥४९॥

उसी बीच ही हटाकर देवालय के तीपन के प्रभाव से यह
 व्रत का जन्म और अचल श्री भगवान की भक्ति प्राप्त हुई है ॥४३॥
 अब आप परम निरोमणि पातकी अपने भाई का उद्धार करने की
 ष्ठा करते हैं तो हम उसका भी उपाय आपको बतलाते हैं आप तो
 जब महान बुद्धि वाले हैं। अब आप उस उपाय का भी ध्यान कर
 लीजिए ॥४४॥ हे महान भाग्य वाले। यदि आप अपने भाई सुमाली
 का बालक से उद्धार करना ही चाहते हैं तो उसको आप गोचर्म मात्र
 भूमि का अर्थात् देवालय की भूमि का पुण्यफल दे दीजिए। इसका उसी
 उद्धार होजायगा ॥४५॥ विष्णु भगवान के दूतों के द्वारा इस तरह
 के कहने पर महान बुद्धिमान यममाली ने अपने भाई की पापों से
 मुक्ति प्राप्त करने के लिये गोचर्ममात्र भूमि के तीपने का पुण्यफल
 दे दिया था। गोचर्म—यह महाभारत के अनुगमन पर्व में बताया हुआ
 भूमि का नाम ही है ॥४६॥ भाई के द्वारा दिये हुये उग पुण्य के
 प्रभाव से सुमाली मुरन्त ही पापों में रहित होकर विमुक्त ही गया था
 और फिर यमदूत उसे छोड़कर भाग पड़े हुये थे ॥४७॥ इसी बीच से
 सम्पूर्ण भोग सामग्रियों में भरा हुआ दिव्य विमान वहीं तयान ही
 प्राप्त हो गया था। हे मुनिवर ! उग समय में वह सुमाली भी उग
 विमान पर बैठकर आगम्य प्रगम्य हुआ था ॥४८॥ उग समय में उन

दोनों भाइयों को देवगणों ने बहुत ही आदरपूर्वक प्रणाम किया था । वे दोनों भाई भी परस्पर में एक दूसरे में आलिङ्गन करके परमाधिक प्रसन्न हुए थे । १४६।

यज्ञमाली सुमाली च स्तूयमानौ महर्षिभिः ।
 गीयमानौ च गधर्वैर्विष्णुलोकं प्रजग्मतु ॥१५०॥
 अवाप्य हरिनालोकं च सुमाली मुनिसत्तम ।
 यज्ञमाली चोपतुस्तौ कल्पमेक मुदान्वितौ ॥१५१॥
 भुक्त्वा भोगान्वहस्तत्र यज्ञमाली महामतिः ।
 तत्रैव ज्ञानसपन्नं पर मोक्षमुपागत ॥१५२॥
 सुमाली तु महाभागो विष्णुलोके मुदान्वितः ।
 स्थित्वा भूमिं पुनः प्राप्य विप्रत्वं समुपागतः ॥१५३॥
 अतिशुद्धे कुले जातो गुणवान्वेदपारगः ।
 सर्वसपत्समापेतो हरिभक्तिपरायणः ॥१५४॥
 व्याहरन्हरिनामानि प्रपेदे जाह्नवीतटम् ।
 तत्र स्नातश्च गगाया दृष्ट्वा विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥१५५॥
 अवाप परमं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम् ।
 उपलेपनमहात्म्यं कथितं ते मुनीश्वर ॥१५६॥

उस समय में यज्ञमाली तथा सुमाली दोनों भाई महर्षिगण के द्वारा स्तुत हुआकर गन्धर्वों के द्वारा गान किये गए थे । इस प्रकार से फिर वे दोनों ही श्री विष्णुलोक की ओर प्रस्थान कर गए थे । १५०। हे परम श्रेष्ठ मुनिवर ! सुमाली और यज्ञमाली दोनों भाई विष्णुलोक में प्राप्त हो गये थे और एक कल्प समय तक बहुत ही आनन्द के साथ वहाँ पर रहने निवास किया था । १५१। महामति यज्ञमाली तो वहाँ पर अनेक भोग का उपभोग करके ज्ञान सम्पन्न होकर वहाँ पर ही मृत हो गया था । १५२। महान भाग्यवाता सुमाली विष्णु लोक में प्रसन्नता पूर्वक निवास करके पुनः इस भूलोक में विप्र का जन्म प्राप्त कर

मनु पत्न हुआ था ॥५३॥ इस जन्म में परम विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुआ था तथा अत्यन्त गुणगणों से युक्त और वेदों का पारंगामी विद्वान् हुआ था । इमके सभीप में सभी सम्पदाएं थी और यह श्री हरि भगवान् की भक्ति में भी परायण हुआ था ॥५४॥ यह उस जन्म में श्री हरि के शुभ पावन नामों का उच्चारण करता हुआ गङ्गा के तीर पर पहुँच गया था । वहा पर इमने भागीरथी गङ्गा के जल में अवगाहन किया था और श्री विश्वेश्वर प्रभु का दशन भी प्राप्त किया था ॥५५॥ अन्त में यह यागियों के भी परम दुर्लभ परम पद को प्राप्त हो गया था । हे मुनिवर । देव मन्दिर के लेपन करने के माहात्म्य का वर्णन करके आपकी गुना दिया है ॥५६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सपूज्यो जगता पति ।
 अवाप्स्यति ये विष्णो मृत्पूजा प्रकुर्वते ॥५७॥
 न तेषा भवन्धस्तु कदाचिदपि जायते ।
 हरिभक्तिरतान्यस्तु हरिवुद्ध्या समर्चयेत् ॥५८॥
 तस्य सुप्यन्ति विप्रैर्द्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
 हरिभक्तिपराणा तु सगिता सगमायन ॥५९॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो महापातक्यानपि ।
 हरिपूजापराणा च हरिनामरतात्मनाम् ॥६०॥
 शुश्रूषानिरता याति पापिनोऽपि परा गतिम् ॥६१॥

अतएव निष्कर्षार्थं यह हुआ है कि सर्वतोभावे में पूजा प्रयत्न करने जगदीश्वर भगवान् का अनन्य अवश्य ही करने चाहिये । जो कोई पुरुष हृदय में कुछ भी कामनायें न रखकर भी भगवान् विष्णु का एक बार भी पूजन कर लिया करत है उनका उद्धार हो जाया करता है ॥५७॥ विष्णु पूजक को फिर कभी भी इन गसार के बन्धन में नहीं पड़ना पड़ना है । जो कोई भी श्री हरि की भक्ति में निरतर मग्न रहने वाले हरि भक्त या भी हरि की बुद्धि से पूजन किया करना है,

हे विप्रवर ! उम पर ब्रह्मा विष्णु और महेश सभी परम प्रसन्न हो
जाया करत हैं । श्री हरि के भक्तों के साथ मगति करने वाले के
सङ्गम मात्र से पापियों के महान पातक भी छूट जाया करत हैं और
मुक्त होजाया करता है । श्री हरि भगवान का पूजन और श्री हरि के
परम पवन शुभ नामा का कीर्तन करने में निमग्न रहने वाले भक्तों
की सेवा करने से भी महान पापी परम श्रेष्ठ गति का पा लिया
करत हैं । १६०—१९१।



॥ गुलिक और उत्तंक की कथा ॥

भूय शृणुष्व विप्रन्द्र माहात्म्य वमनापते ।
 यस्य नो जायते प्रीति श्चानु हरिवधामृतम् ॥१
 नराणा विषयान्धाना ममताबुलचेतसाम् ।
 एवमेव हरेर्नाम सबपापप्रणाशनम् ॥२
 सदृढा न नमेदस्तु विष्णु पापहर नृणाम् ।
 श्वपच त विजानीयात्स्वदाचिन्नासपेच तम् ॥३
 हरिपूजाविहीन तु यस्य वशम द्विजोत्तम ।
 श्मशानमदृश तद्धि कदाचिदपि नो विशेत् ॥४
 हरिपूजाविहीनाश्च चेदविद्विषणस्तथा ।
 गोद्विजद्वपनिरता राक्षसा परिकीर्तिता ॥५
 या वा को चापि विप्रेंद्र विप्रद्वेषपरायण ।
 समचरति गोविन्द तत्पूजा विफला भवेत् ॥६
 अन्वथ योविनाशाय यज्जयन्ति जनादनम् ।
 सा पूजैव महाभाग पूजकानाशु हति वै ॥७

श्री मनकाचाय न कहा—हे विप्रेंद्रवर ! अब आप भगवान
श्री वमनापति के महा महिमामय माहात्म्य का पुन श्रवण करिये ।

श्री हरि भगवान के कथामृत का पान करने से वीर प्रसन्नता प्राप्त नहीं किया करता है अर्थात् सभी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ १ ॥ सात्त्विक ममता से परम व्याकुल चित्त वाले, विषयो म एव दम अन्धे होजाने वाले गनुषो के समस्त पापों का विनाश केवल एक श्री हरि का नाम ही कर दिया करता है ॥२॥ मानव मात्र के पापों को हरण करने वाले भगवान् विष्णु को जो जीवन में एक बार भी प्रणाम नहीं किया करता है उससे एक स्वपत्र के समान ही कभी भाषण नहीं करना चाहिये ॥३॥ हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ । जो घर ऐंता है जिसमें कभी श्री हरि भगवान का अर्धन नहीं हुआ हो उस घर को शमशान के समान ही परम अपवित्र समझ कर उसमें कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥४॥ जो मानव श्री हरि का कभी भी यजन नहीं किया करते हैं देवा से जो द्वेष भाव रखते हैं और गो तथा विप्रों से जो द्वेष भाव रक्खा करते हैं उनको शास्त्रोंमें साक्षात् राक्षय बताया गया है ॥५॥ हे विप्रवर । जो ब्राह्मणों में द्वेष भाव रखते हुये श्री हरि का अपन भी करता है तो उसकी वह हरि पूजा व्यर्थ ही ही जाया करती है ॥६॥ हे महाभार । जो किसी दूमरे के श्रेय का विनाश करने के उद्देश्य को लेकर भगवान जनादन प्रभु का पूजन किया करते हैं उनकी वह की हुई पूजा उनका ही सहार कर डाला करती है ॥७॥

हरिपूजाकरो यस्तु यदि पाप समाचरेत् ।

तमेव विष्णुद्वेष्टार प्राहुस्तत्त्वार्थकोविदा ॥८॥

ये विष्णु निरता सति लोकानुग्रहतत्परा ।

धर्मनार्यरता शश्वद्विष्णुरूपास्तु ते मता ॥९॥

कोटिजन्माजितं पुण्यं विष्णुभक्तिं प्रजायते ।

दृढभक्तिमता विष्णो पापत्रुद्धिं कथं भवेत् ॥१०॥

जन्मकोट्यजित पाप विष्णुपूजार्तात्मनाम् ।

क्षयं याति क्षणादेव तेषां स्यात्पापघ्नी कथम् ॥११॥

हरिपादोदक यस्तु कणमान विवेदपि ।
 स स्नात सर्वतीर्थेषु विष्णो प्रियतरो भवेत् ॥१५
 अकालमृत्युश्च मन भवं व्याधि विनाशनम् ।
 सर्वदु खोपशमन हरिपादादक स्मृतम् ॥१६
 नारायण पर धाम ज्योतिषा ज्योतिरुत्तमम् ।
 ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषा मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१७
 अत्राप्युदाहरतीममितिहास पुरातनम् ।
 पठता शृण्वता चैव सचपापप्रणाशनम् ॥१८
 आसीत्पुरा कृत्रयुगे गुलिको नाम लब्धक ।
 परदारपरद्रव्यहरः सततोद्यत ॥१९
 परनिदापरो नित्य जन्तूपद्रवकृत्तथा ।
 हतवान्ब्राह्मणान् गाश्च शतशोऽथ सहस्रश ॥२०
 देवम्बहरण नित्य परस्वहरणे तथा ।
 उद्युक्त सर्वदा विप्र वीनाशानामधीश्वर ॥२१

जो एक बणमात्र भी भगवान विष्णु का चरणामृत का पान करता है उसको समस्त लता शी चाहिए कि समस्त उत्तमोत्तम लीपों में स्नान कर लिया है । चरणोदक का पान करने वाला प्राणी भगवान का परम प्रिय होजाया करता है । भगवान के चरणों से स्पर्श किया हुआ उदक अर्थात् चरणामृत अकाल में हानि वाली मृत्यु वा हटा दिया करता है । समस्त व्याधियों को दूर कर दिया करता है और सभी प्रकार के प्राणी को होने वाले कष्टों का विनाश करने वाला इसको बनजाया गया है । १६। जो महान आत्मा वाले पुरुष ज्योतिषों में उत्तम ज्योति परम धाम नारायण को प्राप्त हुआ करते हैं उनका निश्चय ही शाश्वत मुक्ति प्राप्त हुई है । १७। इस विपन्न की पुष्टि के लिए भी एक ऐतिहासिक घटना का आश्रयान श्रवण कराया जाता है । इसके पठन एवं श्रवण करने से प्राणियों के सब पाप निश्चित रूप से

मरु हो जाया करते हैं यदि वे भ्रम्यार्ग का समाश्रय ग्रहण करते हैं तो पापों का नाश अवश्य हो जाता है । १५८। पहिले मत्स्यमुष ने एक बहे-
लिया था जिसका नाम गुलिक था । वह पराई स्त्रियों को तथा पराये
धन को झपटने को तैयार रहा करता था । १५९। उसका स्वभाव
ही ऐसा था कि हमेशा दूसरो की बुराई करके वह महान उपद्रव
मचाता रहा करता था । उसने अपने जीवन काल मे सहस्रो ही गौ
और ब्राह्मणों को मारकर महान पाप किये थे । १६०। वह नीचो का
सरदार था । वह सदा ही देव द्रव्य तथा दूसरों के धन को सर्वदा
छीन लिया करता था । १६१।

तेन पापात्यनेकानि कृतानि सुमहाति च ।
न तेपा शक्यते बक्तु सकृपा वत्सरकोटिभि ॥२२
स कदाचिन्महापापो जतूनामन्तकीपम ।
सौवीरराज्ञो नगर सर्वेश्वरसमन्वितम् ॥२३
योपिदिभभूयिताभिश्च सरोभिनिर्मलोदकं ।
अलकृत विपणिभिर्ययी देवपुरोपमम् ॥२४
तस्योपवनमध्यस्थ रम्य बेशवमन्दिरम् ।
छादित हेमकयशशं हृष्ट्वा व्याधो मुद ययौ ॥२५
हराम्यत्र सुवर्णानि बहूनीति विनिश्चितम् ।
जगामाभ्यन्तर तस्य कीनाशश्चौर्यनीलुप ॥२६
तत्रापश्यद् द्विजवर शात तत्त्वार्थकोविदम् ।
परिचर्षापर विष्णोस्तक तपसा निधिम् ॥२७
एकाकिन दयालु च निस्पृह ध्यानलोलुपम् ।
चौर्यान्तराण्कर्तारं त दृष्ट्वा लुब्धकोमुने ॥२८

उस बहेलिय ने अनेक साधारण और महान् पातक किये थे
जिनसे पूरी सद्यः का गिनाना या बताना बरोडो वर्षों मे भी
कठिन है । १२२। वह तो सभी प्राणियों के लिये मायागुण ममराज के ही

समान महान् भीषण था । उस महापातकी ने एक समय में सीवीर
 राज के दिव्य नगर में प्रवेश किया था जो सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्यों से
 भरा पूरा था । जिसमें दिव्याभरणों से विभूषित स्त्रियाँ थी और जो
 निर्मल जल से परिपूर्ण सरावरो से समन्वित था तथा भरीपूरी अनेक
 दूकानों से देव नगर के समान समलकृत उत्तम नगर था ॥ २३।२४ ॥
 उस नगर में एक उद्यान था जिसके मध्य में एक विष्णु का मन्दिर
 था उस मन्दिर की शिखर पर भुवण के कलश चढ़े हुए थे । उन
 कलशों को देखकर उस बहेलिये के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई थी । २५।
 वह उन कलशों को चोरी करने के लिए अत्यन्त लालच से भरा हुआ
 ढाकू उस मन्दिर में अन्दर घुस गया था । उसने अपने मनमें यह
 विचार किया था कि यहाँ पर मुझे बहुत सा भुवर्ण प्राप्त हो
 जायगा ॥ २६॥ वहाँ पर उस बहेलिये ने भगवान् विष्णु की सेवा में
 परायण, नरक को समझने में कुशल शम दम आदि से सुसम्पन्न तप
 को खान परम श्रेष्ठ द्विज उत्तङ्ग को देखा था ॥ २७॥ हे मुनिवर ! उस
 बहेलिये ने उस परम दयालु स्पृहा से शून्य और ध्यान में मग्न अकेले
 द्विज को देखकर चोरी करने के कार्य में विघ्न के समान समझा
 था ॥ २८॥

द्रव्यजात तु देवस्य हर्तुं कामोऽतिसाहसी ।
 उत्तक हतुमारेभे विधृतासिर्मदोद्धत ॥ २६
 पादेनाक्रम्य तद्वक्षो जटा संगृह्य पाणिना ।
 हतुं कृतमर्ति व्याधमुत्त व प्रेक्ष्य चाव्रवीत् ॥ २७
 भो भो साधो वृथा मा त्व हनिष्यसि निरागसम् ।
 मया किमपराद्ध ते तद्वदस्व महामते ॥ २८
 कृतापराधिना लोक शक्ता शिक्षा प्रकुर्वते ।
 नहि सौम्य वृथा घ्नन्ति सज्जना अपि पापिन ॥ २९
 विरोधिष्वपि मूर्खेषु निषीक्ष्यापस्थितान् गुणान् ।

विरोधं नहि कुर्वति सज्जना शक्तचेतस ॥३३॥
 बहुधा बाध्यमानोऽपि यो नर क्षमयान्वित ।
 समुत्तम नर प्राहुर्विष्णो प्रियतर सदा ॥३४॥
 सुजनो न याति वैर परहितपुद्धिविनाशकालेऽपि ।
 छेदेऽपि चन्दनतह मुरभयति मुख कुठारस्य ॥३५॥

बतएव परम साहसी मदीडन बहेलिये ने उस देवद्रव्य का हरण करने की इच्छा से अपनी तलवार उठाकर विघ्न स्वरूप उस उत्तम द्विज की मार डालने की इच्छा की थी ॥ ३३ ॥ वह उस उत्तम के वश स्थान पर अपने वैर रखकर उसकी चोटी परत कर मारने के लिये समुत्तम व्याघ्र को देखकर बहने लगा ॥ ३४ ॥ उत्तम ने उस बहेलिये से कहा—हे साथी ! आप मुझे निरथक ही मारना चाहते हैं । मैंने तो आपका कुछ भी अपराध नहीं किया है । हूँ महा मतिमान् । यदि मुझसे आपका कोई अपराध बन गया होता आप अताइये ॥ ३५ ॥ इस सत्कार में अपराध करने वालों को ही समथ पुरुष दण्ड दिया करते हैं । हे लीम्ब ! जो सज्जन पुरव होत हैं वे पापियों को भी व्यथ नहीं मारा करते हैं ॥ ३६ ॥ परम शांत चित्त वाले सज्जन विरोध करने वाले मुखों में भी उनके केवल पुण्य गण पर इगान देकर उनमें भी विरोध नहीं किया करते हैं ॥ ३७ ॥ जो बहुत बार समझाने पर भी क्षमा कर दिया करते हैं उसको उत्तम श्रेणी का मनुष्य कहा जाया करता है और वह भगवान् विष्णु का भी परम प्रिय माना है ॥ ३४ ॥ दूसरे क हित सम्पादन करने की इच्छा वाला सुजन पुरुष विनाश के समय में भी वैर नहीं निवाला करता है । चन्दन का वृक्ष काटने के लिये कुठार अपने ऊपर पड़ने पर भी उसकी धार को सुगन्धित कर दिया करता है ॥ ३५ ॥

अहो विधि सुबलवान्यायते बहुधा जनान् ।

सबसगविहीनोऽपि बाध्यते हि दुरा मना ॥३६॥

अहो निष्कारण लोके बाधन्ते बहुधा जनान् ।
 सबसगत्रिहीनोऽपि बाध्य ते पिशुनैर्जनैः ।
 तथापि सांभ्रूवाधन्ते न समानान्कदाचन ॥३७
 भृगमीनसज्जनानां तृणजलसतोपविहितवृत्तीनाम् ।
 लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणधैरिणो जगति ॥३८
 अहो बलवती माया मोहयत्यखिल जगत ।
 पुनर्मित्रकलत्रार्थं सर्वं दुष्टेन योजयेत् ॥३९
 परद्रव्यापहारेण बलत्र पोषित त्वया ।
 अन्ते तत्सर्वमुत्सृज्य एक एव प्रयाति वै ॥४०
 मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजा ।
 ममेदमिति जतूना ममता बाधते वृथा ॥४१
 यावदजयति द्रव्यं बाधवास्तावदेव हि ।
 धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापर ॥४२

अहो ! यह प्रारब्ध बहुत ही अधिक बलवान् होता है । वही प्राणियों को सदा पीडा दिया करता है । उन्हीं के कारण से सब प्रकार के सज्जनों से रहित भी प्राणी दुःखात्माओं से कष्ट भोगा करता है ॥३६॥
 अहो ! ससार में यह मनुष्य निष्कारण ही जीवा को पीडा पहुँचाया करता है । जो किसी से भी कुछ प्रयोजन नहीं रखता करता है उसको भी चुगल छोर लोग कष्ट एवं पीडा पहुँचाया करते हैं । ये लोग अपनी बराबरी रखन वाला को दुःख नहीं दिया करते हैं और जो साधु पुरुष होते हैं उन्हीं को सताया करते हैं ॥३७॥ विचार करके देखने की बात है कि भृग-मीन और सत्पुरुष तृण जल और सतोप वृत्ति से ही अपनी आजीविका चनाया करते हैं ता भी वहेलिये लांग-धीवर और पिशुन (वदमाण) लोग बिना ही किसी कारण के इन से ही अपना बर बाधकर उट गया करते हैं ॥३८॥ अहा ! यह माया बहुत ही अधिक प्रबल है । यह अपनी अस्मृत शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को मोह में

डाल दिया करती है। पुत्र-मित्र और स्त्री के बहाने से यह सभी को वष्ट्र में डाल दिया करती है ॥३६॥ अरे ? मूढ ! तू दूसरों का धन छीनकर और सनाकर अपने पुत्रादि कुटुम्ब का पोषण किया करता है किन्तु जब अन्त समय आता है तब इन सबको यही पर छोड़कर अकेला ही यहाँ से कूच कर दिया करता है। उस समय में कोई भी साथ नहीं दिया करता है ॥४०॥ यह मेरे माना-पिता-पुत्र और भार्या हैं— इन तरह की ममता प्राणियों को निरर्थक ही कष्ट में डाले रहा करती है ॥४१॥ यह मनुष्य जब तक धन कमाता है तभी तक ये सब उसका साथ दिया करते हैं। असमर्थ होने पर कोई भी किसी का साथ नहीं दिया करता है किन्तु धर्माधर्म दोनों ही लोगों में साथ रहते हैं और सभी भी साथ नहीं छोड़ा करते हैं। ४२॥

धर्माधर्मो जितेद्रव्यौ पोषिता येन ये नरा ।
 मृतमग्निमुखे हुस्वा घृतान्न भुञ्जते हिते ॥४३
 गच्छन्त परलोक च नर तु ह्यनुतिष्ठत ।
 धर्माधर्मौ न च धन न पुत्रा न च वाधवा ॥४४
 काम समृद्धिमायाति नराणा पापकर्मिणाम् ।
 काम सक्षयमायाति नराणा पुण्यकर्मणाम् ॥४५
 वृथैव व्याकुला लोका धनादीना सदाजने ॥४६
 यद्भावि तद्भवत्येव यवभाष्य न तद्भवेत् ।
 इति निश्चितवृद्धीना न चिन्ता वाधते क्वचित् ॥४७
 दंत्राधीनमिद सर्वं जगत्स्थावरजगमम् ।
 तस्माज्जन्म च मृत्यु च दैव जानाति नापर ॥४८
 यत्र कुत्र स्थितस्यापि यद्भाष्य तद्भवेद् ध्रुवम् ।
 लोकस्तु तत्र विज्ञाय वृथायास करोति हि ॥४९

धर्म या अधर्म से तच्छिक्त किये हुए धन से जिनका धरण-पोषण किया है वे ही पुरुष उसके मर जाने पर उसको अग्नि में छोड़कर जमा

शाने हैं और धृत मिश्रित अन्न को उड़ाया करते हैं ॥४३॥ परलोक
 म गमन करने वाले पुरुष के पीछे या साथ केवल अपने जीवन काल में
 किए हुए धर्म तथा अधर्म ही जाया करते हैं शेष अतुल वैभव घर महल और
 परमप्रिय बाधुगण सभी यहाँ पर ही रह जाया करते हैं। जिनके ब्रह्माण
 के नियम प्राणी समस्त जीवन का समय घुना दिया करता है ॥४४॥ जो
 पाप कर्मों के करने वाले प्राणी होते हैं उनकी कामनाएँ दिन दूनी बढ़ती
 ही जाया करती हैं किन्तु इसके विपरीत पुण्यात्मा पुरुषों की कामनाएँ
 कम हो जाया करती हैं ॥४५॥ मनुष्य इस ससार में धन का लचक
 करने के नियम व्यर्थ ही म वेचन रहा करते हैं ॥४६॥ जो भी कुछ होने
 वाला है वही हुआ करता है और जो नहीं होने वाली है वह कभी भी
 हो ही नहीं सकती है—इस ज्ञान से जिनकी बुद्धि परिपक्व होती है
 उन्हें चिन्ता कभी भी नहीं मताया करती है ॥४७॥ यह चक्राचर
 सम्पूर्ण जगत् के ही अधीन है। अतः जन्म और मृत्यु का भी ज्ञान
 है देव को ही हुआ करता है अन्य कोई भी नहीं जान सकता है ॥४८॥
 यह मनुष्य चाहे जहाँ पर भी हो जा उसकी होनहार होती है वह कभी
 पर किसी न किसी रीति से अवश्य ही होकर रहेगी मिट नहीं सकती
 है। साथ इस बात का ज्ञान रखकर भी बुधा ही परिश्रम किया करते
 हैं और मरत मिटते रहा करते हैं ॥४९॥

अतो दुःखं मनुष्याणां जमतापुलनेतमाम् ।
 महापापानि धृत्वापि परान्पुष्यन्ति यत्नतः ॥५०॥
 अजितं च धनं सर्वं भुञ्जते यांघरा मदा ।
 स्वयमेतत्तमो मृद्वस्तस्यापन्नमश्नुते ॥५१॥
 इति श्रुत्वाण तमृगिणिमुच्य भयविह्वलः ।
 गुनिकं प्राञ्जलिं प्राह क्षमस्येति पुनः पुनः ॥५२॥
 मरममस्य प्रभावेण हरिमग्निधिमात्मनः ।
 गतपापा मुग्धवचसः स्युतापीदमश्वीन् ॥५३॥

के चरणामृत का स्पर्श होते ही वह लुब्धक पाप रहित हो गया था । फिर दिव्य विमान पर समाकूट होकर उत्तङ्ग महा मुनि से कहने लगा था—गुलिक ने कहा—हे मुनि शार्दूल ! आप मेरे गुरु हैं । हे सुव्रत ! आपकी ही कृपा से मैं महापातकों के कञ्जुक से मुक्त हो गया हूँ ॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके इस उपदेश से ही भरा मय सन्नाप दूर हो गया है । और मेरे समस्त पापों का समुदाय भी बड़े ही वेग के साथ नष्ट हो गया है ॥६३॥

हरिपादोदक यस्मान्मयि त्व मिक्तवान्मुने ।
 प्रापितोऽस्मि त्वया तस्मा तद्विष्णो परम पदम् ॥६४॥
 त्वयाह तारितो विप्र पापादस्माच्छरीरत ।
 तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन्मत्कृत तत्क्षमस्व च ॥६५॥
 इत्युक्त्वा देवबुसुर्ममुनिश्रेष्ठ समाविरन् ।
 प्रदक्षिणाश्रय कृत्वा नस्मयार चत्वार स ॥६६॥
 ततो विमानमारुह्य सर्वकामसमन्वितम् ।
 अप्सरोगणसकीर्णं प्रपेदे हरिमन्दिरम् ॥६७॥
 एतद् दृष्ट्वा वि स्मतोऽसौ ह्युत्त करतपसा निधि ।
 शिरस्यजलिमाधाय तुष्टाव नमतापतिम् ॥६८॥
 तेन स्तुतो महाविष्णुर्दत्तान्वरमुत्तमम् ।
 वरेण तेनोत्त वोऽपि प्रपेदे परम पदम् ॥६९॥

ह मुनिवर ! आपने भरे पातकी शरीर पर भगवान् का चरणामृत छिड़का था । इसी से आप मुझे भगवान् विष्णु के परम धाम में पहुँचा रहे हैं ॥ ६४ ॥ हे विप्रवर ! आपने ही भरे इस पापयुक्त शरीर से मुझे उद्धार कर दिया है । अतएव मैं आपकी सेवा में सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ । हे विद्वन् ! मैंने जो कृष्ण भी दुष्करतार आपने साथ किया है उस अ प क्षमा कर दीजिए ॥६५॥ इस तरह मैं प्रार्थना करने उभर मुनिवर पर दत्त कुमुदो जी वृष्टि जी भी और फिर तीन पश्चिमा

रके उनके घरणो से प्रणाम किया था ॥६६॥ इसके अनन्तर वह
मन्म कामनाओं से भरे-पूरे उम गरम दिव्य विमान पर चढ़कर आस-
ओं के झुण्ड के मध्य में स्थित होकर विष्णुपीठ में पहुँच गया था ।
म अद्भुत घटना को देखकर उत्तङ्क मुनि को बहुत विस्मय हो गया
॥ और फिर वह तपस्विः महामुनि हाथ जोड़कर ब्रह्मनाथ भगवान्
की स्तुति करने लग गये थे ॥६६॥ उनके स्तवन करने पर भगवान् ने
उनको उत्तम वरदान दिया था । उम वरदान के प्रभाय से उत्तङ्क मुनि
को परमपद की प्राप्ति होगये थे ॥६६॥



॥ उत्तंक को विष्णुपद मिलना ॥

वि तत्स्तोत्र महाभाग यथ तुष्टो जनार्दन ।
उत्त क पुण्यपुरुष कीदृश लब्धवान्वरम् ॥११
उत्त वस्तु तदा विप्रो हरिध्यानपरायण ।
पादोदकस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा तुष्टाव भक्तित ॥२
ननोऽस्मि नारायणमादिदेव जगन्निवास जगदेवचन्द्रमु ।
चक्राब्जशाङ्गसिंघर महात स्मृतातिनिघ्न शरण प्रपद्ये ॥३
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विघाता सृजत्यमु लोकसमुच्चय च ।
यत्क्रोधतो हति जगच्च रुद्रस्तमादिदेव प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥४
पद्मापति पद्मदलायताक्ष विचित्रवीर्य निखिलेकहेतुम् ।
वेदान्तवेद्य पुरुष पुराण तेजोनिधि विष्णुमह प्रपन्न ॥५
आत्माक्षर सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मनः ज्ञानाविदा शरण्य ।
ज्ञानैश्वर्यो भगवाननादि प्रसीदता द्यष्टिसमष्टिरूप ॥६
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदा वरिष्ठ ।
नित्य प्रपन्नातिहर परात्मा दयाबुधिर्मे वरदस्तु भूयात् ॥७
देवपि श्री नारदजी ने कहा— हे महाभाग । यह रत्न त्रयी-

सा है जिसका श्रवण कर भगवान् जनार्दन प्रभु प्रसन्न होगये ये श्री महान् पुण्यत्मा उत्तङ्क ने कौनसा वरदान प्राप्त किया था ? ॥१॥ श्री मनकाचार्य ने कहा—ब्राह्मण उत्तङ्क तो सर्वदा श्री हरि के ध्यान में ही मग्न रहा करते थे । उन्होंने श्री हरि के चरणामृत का महा माहात्म्य को जब देखा था तो वे भक्तिभाव से समन्वित होकर भगवान् का स्तवन करने लग गये थे ॥२॥ उत्तङ्क मुनि ने कहा था—मैं आदि देव-पुराण पुरुष-जगत् के आधार-जगत् ने एक मात्र बन्धु भगवान् नारायण को सादर प्रणाम करता हूँ । शंख चक्र गदा-पद्म शार्ङ्ग धनुष और खड्ग की धारण करने वाले तथा भक्ति के सहित स्मरण करने वालों की पीडा को नष्ट करने वाले महा विष्णुदेव के चरण कमलों की मैं शरण लेता हूँ ॥३॥ जिनकी नाभि में समुत्पन्न कमल से उद्भूत हुए ब्रह्माजी इन समस्त लोकों की रचना किया करते हैं और जिनके क्रोध से समुत्पन्न हुए रुद्रदेव इस सम्पूर्ण विश्व का सहार किया करते हैं उन्हीं आदि देवेश्वर भगवान् विष्णु की सेवा में मेरा सादर प्रणाम समर्पित है ॥४॥ लक्ष्मी के स्वामी कमल दल के समान परम सुन्दर एवं विजाल नेत्रों वाले, अत्यद्भुत बल पराक्रम से समन्वित, सबके एक मात्र कारण, वेदान्त के ग्रन्थों के द्वारा जानने में आने वाले परम पुराण पुरुष, तेज की धान भगवान् विष्णु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५॥ आत्मा, अक्षर, सबमें व्यापक, अच्युत नाम-धारी अप्रधान ज्ञानस्वरूप हैं । ज्ञानवान् पुरुष ही उनकी शरण ग्रहण किया करते हैं । वे एक मात्र ज्ञान के द्वारा ही जाने जा सकते हैं । ऐसे द्यष्टि, समष्टि स्वरूप अनादि भगवान् मुझ पर प्रसन्न होवें । ६। अनन्त वीर्य वाले, निर्गुण, अजन्मा तथा ब्रह्मा, विष्णु रुद्र आदि के अवतार स्वरूपों में गुणवान्, ज्ञान के दाताओं में परम श्रेष्ठ, शरण करने वालों की पीडा को सदा दूर करने वाले कृपा के सागर परमात्मा मुझे वरदान प्रदान करें । ७।

य. स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभेदैर्जगद्यथावत्स्वकृत प्रविष्टः ।
 त्वमेव तत्सर्वमनन्तसार त्वत्त पर नास्ति यत्. परात्मन् ॥८
 अगोचरं यत्तव शुद्धरूप मायाविहीन गुणजातिहीनम् ।
 निरञ्जन निर्मलमप्रमेय पश्यन्तिसन्त. परमार्थसज्ञम् ॥९
 एकेन हेम्नैव विभूषणानि यानानि भेदत्यमुपाधिभेदात् ।
 तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा ॥१०
 यन्मायया मोहितचेतसस्त पश्यन्ति नात्मानमपि प्रसिद्धम् ।
 त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम् ॥११
 विभु ज्योतिरनीपम्य विष्णुसज्ञ नमाम्यहम् ।
 समस्तमेतदुद्भूत यतो यत्र प्रतिष्ठितम् ॥१२
 यतश्चेतन्यमायात यद्रूप तस्य र्धं नमः ।
 अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम् ॥१३
 परमानन्दचिन्मात्रं वासुदेव नतोऽस्म्यहम् ।
 हृदयगुहानिलय देव योगिभि परित्सेवितम् ॥१४

जो इस स्थूल-सूक्ष्म आदि अनेक भेदों से युक्त जगत् की रचना
 करके अपने द्वारा रचित किये गये इस जगत् में अपने आप ही प्रविष्ट
 रहा करते हैं । हे परमात्मन् ! आप ही वह अनन्तसार सब कुछ हैं
 क्योंकि आपसे पर अन्य कुछ भी नहीं है ॥८॥ आपका माया, गुण
 और जन्म से रहित शुद्ध स्वरूप है वह नितान्त निर्मल, निरञ्जन और
 अप्रमेय है उस परमार्थस्वरूप आपका दर्शन सत्पुरुष ही किया करते हैं या
 हर मरुते हैं ॥९॥ समस्त आभूषण एक ही सुवर्ण के हुआ करते हैं
 किन्तु विभिन्न उपाधियों से उनके अनेक भेद हो जाया करते हैं इस
 प्रकार से वह सर्वेश्वर प्रभु अखिलात्मा एक ही हैं किन्तु अह्मा, विष्णु
 आदि के अनेक भेदों वाले दिखलाई दिया करते हैं ॥१०॥ उनकी माया
 बहुत ही प्रबल है । उस माया से जिन पुरुषों का चित्त
 मोहित होनाया करता है वे उन परम प्रसिद्ध आनन्द स्वरूप का भी

दर्शन नहीं कर पाते हैं और जब वे माया रहित होजाया करते हैं तभी उनको वे आत्म स्वरूप से दिखाई देते हैं । १११। जो भगवान सब में व्यापक हैं और ज्योति स्वरूप हैं जो अनुपम हैं, जिन प्रभु से इस सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति हुई है और जिसके ही स्वरूप में यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है उन्हीं श्री महा विष्णु देवेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ । ११२। जिन प्रभु चैतन्य का समागमन होता है और जिनका स्वरूप ही चैतन्य है उनकी सेवा में मेरा प्रणाम है। जिनका वचन प्रमाणों के द्वारा नहीं किया जा सकता है और जिनका कोई भी आधार नहीं है तथा जो आधार और आधेय दोनों ही हैं उन परमानन्दस्वरूप चिन्मय भगवान् वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। जो हृदयर्पी गुडा में शयन करने वाले और योगिजनो के द्वारा सब्यमान हैं । ११३-११४।

योगानामादिभूत त नमामि प्रणवस्थितम् ।

नादात्मक नादबीज प्रणवात्मकमव्ययम् ॥१५

सद्भाव सच्चिदानन्द त वन्दे तिग्मचक्रिणम् ।

अजर साक्षिण त्वम्य ह्यशङ्कमनमगोचरम् ॥१६

निरञ्जनमनताडय विष्णुरूप नतोऽस्म्यहम् ।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि सत्त्व तेजो बल धृति ॥

वासुदेवात्मकान्याहु क्षेत्र क्षेत्रज्ञमेव च ।

विद्याविद्यात्मक प्राहु परात्परनर तथा ॥१७

अनादिनिधन ज्ञान सर्वघातारमच्युतम् ।

ये प्रपन्ता महात्मानश्चेपा मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१८

वर वरेण्य वरद पुण्य सनातन सर्वगत सगस्त

नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मिभूयो नतोऽस्मि

भूयोऽपि नतोऽस्मि भूय ॥२०

यत्पादतोय भवगोचरं यत्पादपाशुत्रिमलत्तसिः

यन्ताम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रभेः पुरुष भजामि ॥२१

जो प्रभु योगो के आदिभूत हैं और प्रणव के रूप में विराजमान हैं उन देवदेव भगवन् को मैं प्रणाम करता हूँ । जो नादस्वरूप, नाद के बीज, प्रणवात्मक एवं अच्युत हैं । जो सद्भाबनात्मक और परम सच्चिदानन्दस्वरूप, मुद्रार्णव चक्र के धारण करने वाले देव हैं उनकी सेवा में मेरा प्रणाम है । जो अन्नर, अमर, साक्षी, मन वाणी के अगोचर हैं, जो अनमन नामधारी, निरञ्जनस्वरूप उन विष्णु भगवान् को मैं समाहर पूर्वक प्रणाम करता हूँ । इन्द्रिया, मन, बुद्धि, सत्व, तेज, वन, धृति, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन सबमें भगवान् वामुदेव वारो अश विद्यमान होता है । भगवान् वामुदेव ही विद्या और अविद्या तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम है ॥१५—१८॥ जो महान् आत्मा वाले, जन्म-मरण से रहित और जन्मदमादि गुणों से सम्पन्न एवं सबका पोषण करने वाले भगवान् अच्युत की शरणागति ग्रहण किया करते हैं उनके तो वायें हाथ में मुक्ति रहा करती है ॥१६॥ सर्वश्रेष्ठ शिरो मणि, वरण करने के योग्य वरदानदाता सनातन, पुराण पुरुष, सब में भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम अपि है । तथा मैं उन प्रभु को बारम्बार एवं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ जिनका चरणा-मृत इस ससाररूपी रोग का महान् श्रेष्ठ चिकित्सक है और जिनके चरण से स्पर्श की हुई रज निर्मल कर दिया करती है । जिन प्रभु का परम पावन नाम दुष्कर्मों को दूर भगा दिया करता है उन्हीं अप्रमेय पुरुष श्री भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

सद्रूप तमसद्रूप सदसद्रूपमव्ययम् ।

तत्तद्विलक्षण श्रेष्ठ श्रेष्ठात् श्रेष्ठतर भजे ॥२२

निरञ्जन निराकार पूर्णमाकाशमध्यगम् ।

पर च विद्याविद्याभ्या हृदम्बुजनिवासिनम् ॥२३

स्वप्रकाशमनिर्देश्य महता च महत्तरम् ।

अणोरणीयाममज सर्वोपाधिविर्वाजितम् ॥२४

यन्नित्य परमान द पर ब्रह्म सनातनम् ।
 विष्णुसज्ञ जगद्धाम तमस्मि शरण गत ॥२५
 य भजन्ति क्रियानिष्ठा य पश्यति च योगिन ।
 पूज्यात्पूज्यतर शान्त गताऽस्मि शरण प्रभुम् ॥२६
 य न पश्यन्ति विद्वांसो य एतद्वचाप्य तिष्ठति ।
 सवत्समादधिक नि य नतोऽस्मि विभुमव्ययम् ॥२७
 अन्त वरणसयोगाज्जीव इत्युच्यते च य ।
 अविद्यावायरहित परमात्मेत गीयते ॥२८
 सर्वात्मक सवहेतु सवकमफलप्रदम् ।
 वर वरेष्वभजन प्रणतोऽस्मि परात् परम् ॥२९

जिनका स्वरूप सन् और असत् दोनों ही प्रकार का है अर्थात् जो चेतन और जड दोनों ही रूपों वाले हैं । जो इन दोनों रूपों से भी विलक्षण हैं उन श्रेष्ठ से भी उत्कृष्ट प्रभु को मेरा प्रणाम है । २२। जो मदा निरञ्जन निराकार परिपूर्ण और हृदयाकाश के मध्य में विराजमान है जो इस धिया और अविद्या से पर है हृदय कमल में निवस करने वाले स्वप्रकाश अनिर्देश्य महान् से महान् तथा सूक्ष्माति सूक्ष्म है । जो जन्मरहित एव समस्त उपाधियों से शून्य नित्य परमानन्दमय, सनातन परब्रह्म है उ ही इस सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भगवान् विष्णु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २३। २४। २५ ॥ कर्मों में निष्ठा रखने वाले पुरुष जिनका भजन किया करते हैं और योगीजन योग्याभ्यास के द्वारा जिनका दशन प्राप्त किया करते हैं उ ही पूज्य प्रवरो के भी परम पूजनीय शम दमान् गुणा से विभूयित भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ । २६। जो परम दयालु प्रभु स सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को व्याप्त करके विराजमान है उनका विद्वज्जन अङ्गभाव में दशन प्राप्त नहीं कर पाते हैं उन सर्वाधिक विभु निय भगवान् अभ्युत को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २७। जो अन्त करण के संयोग होने से जीवात्मा

हे जाया करते हैं और अविद्या के कार्य से रहित अवस्था से पर-
 आत्मा कहे जाया करते हैं और अविद्या के कार्य से रहित अवस्था में
 रमात्मा कहे जाया करते हैं उन्हीं मर्त्यात्मक, सबका हेतु तथा समस्त
 ज्यों का फल प्रदान करने वाले, परम श्रेष्ठ, वरण करने के योग्य पर-
 मा भी पर प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

सर्वज्ञ सर्वग ज्ञान सर्वान्निर्यामिण हरिम् ।

ज्ञानात्मक ज्ञाननिधि ज्ञानसस्य विभु भजे ॥३०

नमान्यह वेदनिधि मुरारि वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम् ।

सूर्येन्दुवत् प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्र खगस्वरूप च पतिस्वरूपम् ॥३१

सर्वेश्वर सर्वगत महान्त वेदात्मक वेदविदा वशिष्ठम् ।

ता वाङ्मनोऽञ्चित्यमज्ञन्तशक्ति ज्ञानैकवेद्य पुरुष भजामि ॥३२

इन्द्राग्निकालासुग्पाशिबायुसोमेशमार्तण्डपुरन्दरार्थम् ।

य पानि लोकान् परिपूर्णभावस्तमप्रमेय शरण प्रपद्ये ॥३३

सहस्रशीर्षं च सहस्रपाद सहस्राबाहु च सहस्रनेत्रम् ।

सगस्तयज्ञं परिजुष्टमाद्य नतोऽस्मि तुष्टिप्रदगुप्रवीर्यम् ॥३४

कालात्मक बालविभागहेतु गुणत्रयातीतमह गुणज्ञम् ।

गुणप्रिय कामदसस्तमगमतीन्द्रिय त्रिष्वभुज वितृष्णम् ॥३५

निरीहमग्र्य मनसाप्यगम्य मनोमय चान्नमय निरूढम् ।

विज्ञानभेद प्रतिफलरूप न वाङ्मय प्राणमय भजामि ॥३६

सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, परम शान्त, ज्ञानात्मक,
 ज्ञान के निधि ज्ञान में स्थित और विभु का भगवान महाविष्णु
 देव की मैं सेवा करता हूँ ॥ ३० ॥ जिनका एक निश्चित स्वरूप में
 प्रकाशन, वेदान्त का विज्ञान ही किया करता है उन्हीं वेद की निधि
 भगवान मुरारि को मैं प्रणाम किया करता हूँ । चन्द्र और सूर्य के
 स्वरूप में उज्ज्वल नेत्रो वाले, गरुड पक्षी जिनका आत्मीय स्वरूप है
 तात्पर्य यह है कि जो उसके पति के स्वरूप में विराजमान है उस
 सर्वेश्वर, सर्वगत, वेदात्मक, वेदों के ज्ञाताओं में महान श्रेष्ठ, मन, वाणी

के द्वारा अचिन्तनीय, अद्वन्द्व शक्ति, एवमाय ज्ञान के द्वारा ही जाने जा सकने वाले परम पुरुष प्रभु की मैं उपासना करता हूँ ॥३१॥३२॥ जो प्रभु इन्द्र, अग्नि, वात, निश्च्युति, वरुण, वायु, सोम शिव, सूर्य, चंद्र प्रभृति अनेक मूर्तियों के द्वारा समस्त लोको का परिपालन किया करते हैं उन्हीं परिपूर्ण भाव वाले अप्रमेय भगवान् विष्णु की शरणा-गति में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥ सबव्यापकता के कारण जा सहस्रो ही शिर, कर, चरण और नेत्रो वाले है । सभी प्रकार के यज्ञ जिनकी सेवा और प्रसन्नता करने ही के लिए किये जाया करते हैं उन परमोन्नत, पराक्रम से सम्पन्न तथा अपने परम प्रिय भक्तो को सन्तोष प्रदान करने वाले भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुणो से पर, काल के स्वरूपधारी, काल के विभाजन के कारण, गुणो के ज्ञाता, गुणो पर प्यार करने वाले, प्राणियो की कामनाओ को पूर्ण करने वाले, सद्ग शून्य, अतीन्द्रिय तृष्णा से रहित, विश्व के भोक्ता, निरीह, अगम, मन के द्वारा अगम्य, मनोमय, अन्तमय आदि कोशो मे व्यापक, विनावादि भेदो मे सम्पन्न, समर्थ, जान दाड्मय है और न प्राणमय ही है ऐसे भगवान् का मैं समाश्रय ग्रहण करता हूँ ॥३५॥३६॥

न यस्य रूपं न बलप्रभावी न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम् ।
जानन्ति देवा कमलोद्भवाद्या

स्तोष्याम्यहं तं कथमात्मरूपम् ॥२७

ससारसिंधो पतितं कदर्यं मोहाकुलं कामजतेन बद्धम् ।

अकीर्तिभाजं पिशुनं कृतघ्नं सदाशुचिं पापरतं प्रमृश्यामि ।

दयाम्बुधे पाहि भयाकुलं मा पुन पुनस्त्वा शरणप्रपद्य ॥३८

इति प्रसादितस्तेन दयालु कमलापति ।

प्रत्यक्षतामगात्तस्य भगवास्तेजसा निधि ॥३९

अतसीपुष्पसक्ताश फुलपङ्कजलोचनम् ।

किरीटिन कृण्डलिन हारकेयूरभूषितम् ॥४०
 श्रोवरासकोस्तुभधर हेमयज्ञोपवीतिनम् ।
 नामाविन्यस्तपुक्ताभ्रधेनानतनुच्छविम् ॥४१
 पीताम्बरधर देव वनमालाविभूषितम् ।
 तुलसीकोमलदलैरचिनाद्भि महाद्युतिम् ॥४२
 किंकिणीनूपुराद्यैश्च शोभित गरुडध्वजम् ।
 दृष्ट्वा ननाम विभ्रेन्द्रो दाण्डवति - तिमण्डले ॥४३

ब्रह्मादि देवगण भी जिनके स्वरूप, बल, प्रभाव, कर्म और प्रमाण को नहीं जान पाते हैं उन आत्मरूप प्रभु की मैं किम प्रकार से स्तुति करूँ ॥३७॥ हे भगवान् ! मैं तो इस राक्षारूपी महान् मायार में तराडूबी ले रहा हूँ—मोह में महान् मुग्ध, नदयं, सहस्रो मनोरथों से बंधा हुआ, अकीर्ति का पात्र, पिशुन, कृतघ्न, सर्वदा अशुचि, पाप परायण, परमाधिक क्रोध वाला एवं भयभीत भेरी हे दया के सागर ! आप रक्षा कीजिएगा । मैं बारम्बार आपकी शरण ग्रहण करता हूँ । ॥३८॥ जिन समय में महामुनि उत्तङ्क ने कमलापति भगवान् की इस तरह से स्तुति की थी उस समय में भगवान् को दया आ गयी थी और तब के निधि भगवान् उस मुनि के समक्ष में प्रत्यक्ष हो गये थे । ॥३९॥ अलपी के पुष्प के समान वर्ण वाले, विक्रमित कमल के सहस्र नेत्रों में युक्त, मुकुट, कृण्डल, हार और वाजूबन्दा से विभूषित, श्रीवत्स और कोस्तुभ गणि को धारण करने वाले, गुर्वर्ण का यज्ञोपवीत पहिने हुए, और अपनी गुन्दर नासिका में धारण किये हुए मुक्ता की दमक से बडने वाली शरीर की कान्ति में युक्त, पीताम्बर धारी, वामाला पहिने वाले, परमाधिक तेजस्वी बटि किङ्कणी और नूपुरों से शोभित, गरुडध्वज परम देवेश्वर भगवान् का दगन प्राप्त कर उन विप्रप्रवर उत्तङ्क ने भूमि पर उनके समक्ष करणों में दण्ड के समान पड कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ॥४०--४३॥

अभ्यर्पिचद्वरे पादावुत्त को हर्षवारिमि ।

मुरारे रक्ष रक्षेति व्याहरन्नान्यधीस्तदा ॥४४

तमुत्थाप्य महाविष्णुरालिंग दयापर ।

वर वृणुष्व वरसेति प्रोवाच मुनिपुङ्गवम् ॥४५

असाध्य नास्ति किञ्चित्ते प्रसन्ने मयि सत्तम ।

इतीरिता समाकर्ण्या ह्युत्त कश्चक्रपाणिना ।

पुन प्रणम्य ता प्राह देवदेव जनाद्दंनम् ॥४६

किं मा मोहयसीश त्व किमन्यौर्देव मे वरे ।

त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मातरेष्वपि ॥४७

कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्ष पिशाचमनुजेष्वपि यत्र तत्र ।

जातस्थ मे भवतु केशव ते प्रसादात्त्वय्येव

भक्तिरबलाव्यभिचारिणी च ॥४८

एवमस्त्विति लोकेश शङ्खप्रातेन सस्पृशन् ।

दिव्यज्ञान ददौ तस्मे योगिनामपिदुर्लभम् ॥४९

अब य चित्त वाले उत्तङ्क मुनि ने प्रार्थना की थी—हे मुरारे ! रक्षा करो— रक्षा करो । इस प्रकार से विनय करते हुए उसने अपने हर्ष के आँसुओं से श्री हरि के चरणों को भिगो दिया था । ४४। उसी समय महाविष्णु भगवान् ने दया बरके उसको उठाकर आलिङ्गन किया था और उस मुनि श्रेष्ठ से कहा—हे वरस ! तुम अपना अभीष्ट वर माँगलो ॥४५॥ भगवान् ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! मैं तुझ पर परम प्रसन्न हूँ । अब तू अपने लिये किसी भी बात को असाध्य मत समझे । भगवान् चक्रपाणि के इस भाषण का श्रवण कर उराक देवादिदेव प्रभु को पुन प्रणाम करके धोले । ४६। हे ईश ! क्या आप मुझे फिर मोह में डालना चाहते हैं । हे देवेश्वर ! मुझे अब अन्य वरदानों ने क्या करना है । मैं तो यही चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तरो मे मेरी भक्ति आपके श्रीचरणों में सुदृढ़ बनी रहे । ४७। मैं कर्मानुसार पत्नी, कीट, मृग, सप राक्षस,

पिशाच और मनुष्य जिस किसी भी योनि में रहें आपकी परम कृपा से उसी योनि में मेरी आपके चरणों में अविचल अनन्य भक्ति बनी रहे । ४८। इस तरह से उतङ्क मुनि के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् ने 'तयाम्तु'—यह कहकर अपने शिखर के कोने से उसका स्पर्श कराके उसको उसी समय में योगियों को भी दुर्लभ ज्ञान प्रदान कर दिया था । ४९।

पुनः स्तुवन्तं विप्रेन्द देवदेवो जनादर्दन ।
 इदमाह स्मितमुखो हस्ता तच्छिरसि न्यसन् ॥५०
 आराधय क्रियायोगिमां सदा द्विजसत्तम ।
 नरनारायणस्थान ब्रज मोक्ष गमिष्यसि ॥५१
 त्वया कृतमिदं स्तोत्रं यं पठे सततं नर ।
 सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षभागी भवेत्तत ॥५२
 इत्युक्त्वा माधवो विप्रं तत्रैवातर्दधे मुने ।
 नरनारायणस्थानमुक्ताकोऽपि सती ययौ ॥५३
 तस्माद्भक्तिं सदा कार्यां देवदेवस्य चक्रिण ।
 हरिभक्तिं परां प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥५४
 उक्तं को शक्तिभावेन क्रियायोगपरो मुने ।
 पूजयन्माधवं नित्यं नरनारायणाश्रमे ॥५५
 ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं सच्छिन्नद्वैतसंशयं ।
 अवाप दुरवाप वै तद्विष्णो परमं पदम् ॥५६

जिस समय वह विप्र उतङ्क पुन भगवान् का स्तवन करने लगे तो तब देवदेव जनादन प्रभु ने उसके मस्तक पर अपना हाथ रख कर मुस्कराते हुए श्री भगवान् ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अब तुम सर्वदा क्रिया योग के द्वारा मेरी आराधना करने के लिये नारायण के आश्रम (बदरिकाश्रम) में चले जाओ । तुम्हारी निश्चय ही मुक्ति हो जायगी ॥ ५० । ५१ ॥ जो भी कोई मनुष्य आपके द्वारा किये गये इस स्तोत्र

का सर्वदा पाठ करेगा वह इसके प्रभाव से समस्त मनोरथो को भोग कर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करेगा ॥ ५२ ॥ हे मुनिवर ! भगवान् माधव उस विप्र में इतना बहकर बही पर अन्तर्हित होगये थे । उसी समय में वह उक्त क भी नर-नारायण के आश्रम में चले गये थे ॥५३॥ इसीलिये देवो के देव भगवान् सुदर्शन धारण करने वाले की भक्ति सम्पूर्ण मनोरथो को पूर्ण करने वाली होती है ॥५४॥ हे मुनिवर ! वह उक्त क मुनि फिर नर-नारायण के आश्रम में क्रिया योग से भक्ति-भाव के साथ निरत्य ही नारायण प्रभु का पूजन किया करते थे । ऐसा करते हुए वे विज्ञान के बड़े विद्वान् हो गये थे । फिर उनका द्वैतरूपी मशम कट गया था । इसीलिये अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने वाला विष्णु भगवान् का परम पद उनको प्राप्त हो गया था ॥५५, ५६ ॥

पूजितो नमितो वापि सस्मृतो वापि मोक्षदः ।

नारायणो जगन्नाथो भक्ताना मानवर्द्धन ॥५७

तस्मान्नारायण देवमनतमपराजितम् ।

इहामुत्र सुखप्रेप्सु पूजयेद्भक्तिसयुत ॥५८

यः पठेद्दिदमाख्यान शृणुयाद्वा समाहितः ।

सोऽपि सर्वाघनिर्मुक्त प्रयाति भवन हरे ॥५९

जगत् के स्वामी भगवान् सदा ही अपने भक्तो के मान की वृद्धि करने वाले होते हैं । भगवान् ऐसे महान् दयालु हैं कि वे अर्चन—अभिवादन और स्मरण मात्र से ही मोक्ष प्रदान कर दिया करते हैं । ॥५७॥ अतएव जिस मनुष्य को इस लोक में और परलोक में निरतिशय सुख प्राप्त करने की कामना हो उसे परम भक्ति की भावना से अदन्त—अपराजित भगवान् नारायण का पूजन करना चाहिए ॥५८॥ जो कोई परम समाहित होकर इस उत्तम उत्तम मुनि के आख्यान का श्रवण विद्या करता है अथवा श्रवण करता है वह अपने कृत सम्पूर्ण

पापों से मुक्त हो जाया करता है और अन्त में श्रीहरि के ही परम धाम को प्राप्त हो जाता है । ५८ ।



॥ जयध्वज चरित्र ॥

भूय शृणुष्व विप्रेन्द्र माहात्म्य परमेष्ठिन ।
 सर्वपापहर पुण्य भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ॥१
 अहो हरिश्चा लोके पापघ्नी पुण्यदायिनी ।
 शृण्वता वदना चैव तद्भाक्ताना विशेषत ॥२
 हरिभक्तिरमास्वादमुदिता ये नरात्तमा ।
 नमस्सरोम्यह तेभ्यो यत्सङ्गान्मुक्तिभाङ् नर ॥३
 हरिभक्तिपरा ये तु हरिनामपरायणा ।
 दुर्वृत्ता वा मुवृत्ता वा तेभ्यो नित्य नमो नम ॥४
 समारसागर तर्तुं य इच्छेन्मूनिपु गव ।
 स भजेद्धरिभक्ताना भक्तान् वै पापहाणि ॥५
 दृष्ट स्मृत पूजितो वा घ्यात प्रणमितोऽपि वा ।
 समुद्धरति गोविंदो दुस्तराद् भवसागराद् ॥६
 स्वपत् भुञ्जन् व्रजस्तिष्ठन्नतिष्ठ श्र वदस्तथा ।
 विन्तयेद् यो हरेर्नाम तस्मै नित्य नमो नम ॥७

श्री मनवाचार्थ महर्षि ने कहा—हे विप्रेन्द्र । परमोत्तम स्थान में विराजमान भगवान् के माहात्म्य का आप ध्वज करिये । भगवान् का परमपावन मंत्र असीत शुभ चरित्र समस्त पापों का विनाश करने वाला है तथा पुण्य स्वरूप और मनुष्यों को भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला होता है ॥ १ ॥ अहो ! यह श्री हरि भगवान् की कथा इस सागर में पापों का विनाश करने वाली और पुण्य प्रदायिनी होती है । यह विष्णु ने मत्त श्रोता और भक्ता दोनों ही का विशेष

उपकार किया करती है ॥ २ ॥ वे परमोत्तम मानव हैं जो श्री हरि के चरणारविन्द की भक्ति के रस का समास्वादन करके परम प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ । क्योंकि उनके सङ्ग करने का ही अतुल्य प्रभाव होता है कि मनुष्य इतने माय से ही मुक्ति के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है ॥ ३ ॥ श्री हरि की भक्ति और हरिनाम स्मरण में परायणता रखने वाले पुरुष पहिले चाहे सञ्चरित्र या दुःखरित्र कैंने भी रहे हो उनकी सेवा में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो भी कोई इस महान् घोर सप्तार रूपी महा सागर से पार होने की इच्छा रखता हो उसको चाहिए कि वह श्रीहरि के भक्तों की सर्वदा सेवा किया करे क्योंकि सब पापों के हरण करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥ गोविन्द ऐसे महा कृपालु हैं कि वे अत्यन्त कठिनाई से तरने के योग्य इस भव सागर से दर्शन-स्मरण-अर्चन-अभिवादन और ध्यान करने ही से उद्धार कर दिया करते हैं ॥६॥ जो कोई खाता-पीता, चलता-फिरता, उठता-बैठता और बोलता-सोता हुआ भी श्री हरि के शुभ नामों का कीर्तन एवं स्मरण किया करता है उसको बारम्बार प्रणाम है ॥७॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ।

येषां मुक्तिं करस्यैव योगिनामपि दुर्लभा ॥८

/ अत्राप्युदाहर तीममितिहास पुरातनम् ।

वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥९

आसीत् पुरा महीपालः सोमवंशसमुद्भवः ।

जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥१०

विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः ।

दीपदानरतश्चैव सर्वभूत दयापरः ॥११

स कदाचिन्महीपालो रेवातीरे मनोरमे ।

विविन्नकुमुमोपेतं कृतवान्विराणुमन्दिरम् ॥१२

स तत्र नृपणादूर्ध्वं सदा रामार्जने रत ।
 दीपदानपरश्चैव विशेषेण हरिप्रिय ॥१३॥
 हरिनामपरो नित्य हरिससक्तमानसः ।
 हरिप्रणामनिरतो हरिभवनजनप्रिय ॥१४॥

श्री भगवान् की भक्ति में प्रेम रखने वाले महानुभाव हैं उनका भाग्य परम धन्य है और महान् धन्य है क्योंकि योगिजनों की भी परम दुर्लभ भगवद्भक्ति से प्राप्त मुक्ति उनकी मुर्ती में ही सदा रहा करती है ॥१३॥ इस विषय की पुष्टि करने वाला और श्रोता तथा वक्ता दोनों के पापों को दूर भगा देने वाला एक परम प्राचीन ऐतिहासिक आठव्यान उदाहरण के स्वरूप में आपाको बतलाते हैं ॥१४॥ बहुत ही पुराने समय में पन्द्र वय में एक जयद्वज नाम वाले परम प्रसिद्ध राजा हुए थे जो भगवान् नारायण के परम भक्त थे ॥१०॥ वह राजा भगवान् विष्णु के मन्दिर को सदा अत्यन्त स्वच्छ रखता करते थे और वहाँ पर दीपक का भी समुचित प्रबंध करने पर रखा था । वह राजा महा कारुणिक स्वभाव का था और ममस्त प्राणियों के साथ दया पूर्ण व्यवहार सबदा किया करते थे ॥११॥ एक बार उस राजा ने देवा नदी के तीर पर एक अतीव रमणीय 'चक्र-विचित्र पुण्य वाटिनाथो में युक्त भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाया था ॥१२॥ वह राजा सर्वदा स्वयं उग में मुहारी लयाकर उसे झाड़ना रक्षा करता था क्योंकि उस राजा के हृदय में भगवान् विष्णु में बहुत अधिक प्रेम भाव रहा करता था ॥१३॥ वह राजा सदा ही भगवान् विष्णु के शुभ नामों का कीर्तन किया करता था और उसका हृदय सर्वदा ही भगवान् विष्णु के प्रेम में मग्न रहा करता था । वह सदा ही विष्णु के शरणों में प्रणाम किया करता था तथा श्री विष्णु के परम भक्त थे उन का भी अत्यधिक प्रेम रहता था ॥१४॥

योगिहोत्र इति नामो ह्यामीतम्य पुरोहित ।

जयध्वजस्य चरितं दृष्ट्वा विस्मयमागत ॥१५॥
 यदाचिदुपविष्ट त राजान विष्णुतत्परम् ।
 अपृच्छद्वीतिहासस्तु वदवेदागपारग ॥१६॥
 राजन्परमधमज्ञ हरिभक्तिपरायण ।
 विष्णुभक्तिमता पु सा श्रेष्ठोऽर्जुन भरतपंथ ॥१७॥
 समाजनपरो नित्य दीपदानरयन्तया ।
 तन्मे वद महाभाग किं त्वया विदितं फलम् ॥१८॥
 सपादनेन वर्तिता तैल सपादनेन च ।
 सयुवनोऽसि सदा भद्रं यद्विष्णागृहमाजने ॥१९॥
 कर्मण्यन्यानि मत्स्येव विष्णो प्रीतिं वराणि च ।
 तथापि किं महाभाग एतयोः सततोद्यत ॥२०॥
 सर्वार्थिना महापुण्य नरेश विदितं च यत् ।
 तद् ब्रूहि मे गुह्यतमं प्रीतिमयि तवास्ति चेत् ॥२१॥

उस राजा के पुरोहित वीतिहास नाम वाले थे जो राजा जय
 ध्वज के इस उत्तम चरित्र को देखकर अत्यंत विस्मित हास्ये थे ॥१५॥
 प्रसिद्ध पुरोहित वीतिहोत्र न उस राजा से कहा था जबकि राजा विष्णु
 की उपासना करने ध्यान मग्न बैठे थे । यह वीतिहास स्वयं वेद
 वेत्ताज्ञ के पाठगामी विद्वान् थे । वीतिहोत्र ने कहा—हूँ परम धमज्ञ ।
 आप तो विष्णु भक्ति में सदा परायण रहा करते हैं । हे भरतपंथ
 राजन् । मैं समझता हूँ कि आप भगवान् विष्णुदेव की भक्ति करने वालों
 में परम श्रेष्ठ महा पुत्र हैं ॥१६॥१७॥ मैं देखता हूँ कि सदा ही विष्णु
 मंदिर में पूजा स्वच्छता रखी करते हैं और नियमित दीपदान भी
 किया करते हैं । अतएव मैं आपसे यही पूछना चाहता हूँ कि आपने इन
 कर्मों का क्या सुफल समझ रखा है ? ॥१८॥ आप सदा ही विष्णु मंदिर
 के लिये तैल बेटी का पूरा प्रबंध करते रहा करते हैं और सदा बहुत
 ही अधिक स्वच्छता का ध्यान रखते हैं ? ॥१९॥ भगवान् विष्णु की

निशि रामोपभोगार्थं शयित तत्र कामिना ॥३३
 ब्रह्मन्स्ववस्त्रप्रातेन कियद्देशः प्रमाजितः ।
 यावन्त्यः पाशुकणिकास्तत्र समाजिता द्विज ॥३४
 तावज्जन्मकृत पापं तदैव क्षयमागतम् ।
 प्रदीप स्यापितस्तत्र सुरतार्थं द्विजोत्तम ॥३५

उस बन्धुमती के उदर से मैं दण्ड के सुनाम वाला प्रसिद्ध
 वाण्डाल समुद्रगन्त हुआ था । मैंने भी भरपेट बड़े से बड़े घोर महा
 ताप बर्भक किये थे । मैं सर्वदा ब्राह्मणों से द्वेष किया करता था । मेरा
 पक्षी वर्त्तव्य बन गया था कि मैं सदा पराई स्त्री और दूसरो का धन
 ताका करता था । मैंने अनमिनती ब्राह्मणों और गौत्रों का बध कर
 डाला था । पशु-पक्षियों का तो कहना ही क्या है उनको मार गिराना
 मेरा अत्यन्त साधारण काम था ॥२०॥३०॥ मैंने दूसरो के घरों से
 बहुत सा मुबर्ण चुराया था । मैं अहविश मंदिरों का पान किया करता
 था और लोगों के माग को रोक लिया करता था ॥३१॥ मैं पशु-पक्षी
 तथा मृगों के लिये जो साक्षात् यमराज के ही समान बन गया था ।
 एक समय की बात है कि मैं कामदेव की पीडा से अत्यन्त सन्तप्त होकर
 स्त्री के साथ रमण करने की मेरी इच्छा हुई थी एवान्त स्थल की
 विन्ता में मैं एक स्त्री की साथ में लेकर एक शूंग विष्णु मन्दिर में
 प्रविष्ट हो गया था । राति के समय में तो मैं उस स्त्री के साथ विषय
 भोग करने के लिये कामावेश में था ॥३२॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर
 मैंने अपने एक वस्त्र के छोर में थोड़ी सी धूमि को झाड़-पटकार
 कर साफ किया था क्योंकि वहाँ मुझे रमण करना था । वहाँ पर मैंने
 जितने भी धूमि के कणों को सुहार कर हटाया था उतने ही जन्मों का
 किया हुआ सञ्चिन पाप उसी क्षण में मेरा नष्ट हो गया था । हे
 द्विजवर ! फिर मैंने उस अग्धकार में राति क्रीडा करने के लिए एक
 दीपक प्रज्वलित किया था ॥३४॥३५॥

म वन्तर के सत्य युग में रैवण नाम वाला एक वेद वेदाङ्ग म पारङ्गत पण्डित हुआ था ॥२४॥ वह उन लोगों को भी यज्ञों का यजन करा दिया करता था जो शास्त्र के विधान के अनुसार यज्ञों के करने का अधिकार नहीं रखा करते थे और साथ ही वह ग्राम याजक भी था । दूसरों की चुगली करने में भी उसे बड़ा आनन्द आया करता था । वह अत्यन्त निष्ठुर स्वभाव का व्यक्ति था और शास्त्र म जिन पदार्थों के बेचने का निषेध किया गया है उन रसमदि पदार्थों का भी विक्रय किया करता था ॥२५॥ इस प्रकार के बहुत से निषिद्ध कर्म करने के कारण उसके बन्धु बान्धवों ने उसका बहिष्कार कर छोड़ दिया था । इसी कारण से शनै २, वह दरिद्र दुःखित और दुबल अङ्गों वाला होकर राग-ग्रस्त होगया था ॥२६॥ एक समय की बात है कि वह घन की प्राप्ति के लिये ऐंमे ही इधर-उधर मारा मारा भटका करता था कि इसी में धूमता हुआ वह जब कि खाँती और दमा से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था नर्मदा नदी के तट पर पहुँच कर वही पर मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२७॥ हे मुनिवर । उसके मृत्युगत हो जाने पर उसकी भार्या बन्धुमती स्वेच्छाचार का व्यवहार करने लग गयी थी । अतएव बान्धवों ने उसका भी परित्याग कर दिया था ॥२८॥

तस्या जातोऽस्मि चाण्डालो दण्डकेतुरिति श्रुत ।

महापापरतो नित्य ब्रह्मद्वेषपरायण ॥२६

परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुर्हिसक ।

गावश्च विप्रा बहवो निहता मृगपक्षिण ॥३०

मेरुतुल्यमुवर्णानि बहून्यपहृतानि च ।

मयपानरुता नित्य बहुशो मार्गरोचकृन्तु ॥३१

पशुपक्षिमृगादीना जन्तूनामन्तकोपम ।

कदाचित्कामसतप्तो गतुकामा रति स्त्रिय ॥३२

शून्य विष्णुर्गृह दृष्ट्वा प्रविष्टश्च स्त्रिया सह ।

निशि गमोगभोगार्थं शयित तत्र वामिना ॥३३
 ब्रह्मन्स्वधस्यप्रातेन विषददेश प्रमाजित ।
 यावन्त्य पान्शुर्गणिवान्त्र ममाजिना द्विज ॥३४
 तावज्जन्मकृत पाप तदेव क्षयमागतम् ।
 प्रदीप स्थापितस्तत्र मुरतार्यं द्विजोत्तम ॥३५

उस वन्धुमनी के उदर में मैं दण्ड के मुनाम वामा प्रमिड
 पाश्र्चाम ममुरा-न हुआ था । मैंने भी भरपेट बड़े से बड़े घोर महा
 पाप कर्म किये थे । मैं तबंदा ब्राह्मणों से डरे रहिवा करता था । मेरा
 यही कर्तव्य बन गया था कि मैं मदा पराई स्त्री और दूमरी का धन
 ताजा करता था । मैंने अनगिनती ब्राह्मणों और गौमा का ब्रह्म कर
 खाला था । पशु-गणियों का तो बर्ना ही क्या है उनका मार किराना
 मेरा अग्र्य-त माधारण काम था ॥३०॥३०॥ मैंने दूमरी के घरों में
 बहून का सुवर्ण पुराया था । मैं अश्विन मंदिर का पान किया करता
 था और लोगों के माय को रोक लिया करता था ॥३१॥ मैं पशु-पक्षी
 तथा मृगा के नियम का माश्राण्य यमराज के ही समान बन गया था ।
 एक समय की बात है कि मैं कामदेव की पीडा में अग्र्यन्त मग्न होकर
 स्त्री के माय रमण करने की मेरी इच्छा हुई थी एवान्त स्वयं की
 बिना मैंने एक स्त्री को माय के मेकर एक मून्ध विष्णु मन्-दर में
 प्रविष्ट होगया था । रात्रि के समय में तो मैं उस स्त्री के माय विषय
 भोग करने के मिय कामावेश में था ॥३२॥३२॥ ह ब्रह्मन् । वही पर
 मैंने अपने एक बग्न क छार में पाही भी भूमि को साह नटवार
 कर मार दिया था क्योंकि वही मुझे रमण करना था । वही पर मैंने
 जिनके भी भूमि के कणों को सुगर कर हटाया था उनमें ही जग्गी का
 किया हुआ मन्त्रिबद पाप उसी क्षण में मरा मट्ट हा गया था । हे
 द्विजवर ! इस मैंने उग अग्र्यकार में शत्रि कीडा करने के लिए एक
 बीरर पत्राविन किया था ॥३४॥३५॥

तेनापि मम दुष्कर्म नि शेष क्षयमागतम् ।
 एव स्थिते विष्णुगृहे ह्यागता पुरवालका ॥३६
 जागोष्यमिति मा ता च हतवत प्रमह्य वै ।
 आवा निहत्य ते सर्वे निवृत्ता पुररक्षका ॥३७
 यदा तदैव सप्राप्ता विष्णुदूताश्चतुर्भुजा ।
 त्रिरोटकु डलधरा वनमालाविभूषिता ॥३८
 तैस्तु सश्रेयितावावा विष्णुदूतैर कन्मपै ।
 दिव्य विमानमारुह्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥३९
 दिव्यदेहधरो भूवा विष्णुलाकमुपागतौ ।
 तत्र स्थित्वा ब्रह्मरत्नशत साग्र द्विजोत्तम ॥४०
 दिव्यभोगसमायुक्तौ तावत्वाल दिवि स्थितौ ।
 ततश्च भूमिभागेषु देवयोगेषु वै क्रमात् ॥४१
 तेन पुण्यप्रभावेण यदूना वशसभव ।
 तेनैव मञ्जुता मपत्तथा राज्यमकंटकम् ॥४२

उस दीधन को जलाने में क्योंकि वह विष्णु मंदिर में जाया
 गया था चाहे मरा उद्देश्य भीवातिनीच ही क्योंकर रहा था मेरे सम्पूर्ण
 दुष्कर्मों के पाप नष्ट होगये थे । उसी बीच में उग विष्णु भगवान् के
 मन्दिर में चौकीदार आकर प्रविष्ट हो गये थे । उन्होंने मुझको स्त्री
 के साथ दुष्कर्म करने वाला छिनरा समाचार बाँध दिया था और मुझे
 वे सुरी तरङ्ग में पीटने लग गये थे । जिस समय में पीटते थे उन चौकी-
 दारों ने हम दोनों के दम निजान लिया था उसी समय में तुरन्त ही चार
 भुजाओं के धारण करने वाले भावान् विष्णु के दूत वहाँ आकर
 उपस्थित हुए । वे विष्णु भगवान् के ही समान मुकुट-नृसिंह-
 वनमाला आदि सब परम विभूषित थे ॥३६॥३७॥३८॥ उन पाप रहित
 विष्णु दूतों की प्रेरणा प्राप्त करके हम समस्त भागों में परिपूर्ण उस
 दिव्य विमान में समाहित हुए ॥ ३६ ॥ फिर हम परम दिव्य देह

धारण करते दिव्यु लोह म पट्टैव गये थे । हे ब्रह्मन् वही पर हम
 ब्रह्मात्री के लेइ गये वन्ना तब आनन्दपूर्वक निवास करने रहे थे । इससे
 परचात् परम दिव्य भोगो का उपभोग करने इन ही समय पर्यन्त
 स्वर्ग का निवास किया था वही पर भी स्वर्गोप मुद्रा का उपभोग करने
 के पश्चात् अब देवभोग से इस भूमण्डल म मरा जन्म हुआ है ॥ ४० ॥
 ॥४१॥ उसी पुत्र के प्रभाव से मरा इस यदुवन्त म जन्म हुआ है और
 उसी महापुत्र के प्रभाव से मुने यह ब्रह्म विहीन राज्य और अतुन
 सम्पदा प्राप्त हुई है ॥४२॥

ब्रह्मन्ट्वोपभोगार्थमेव श्रेया ह्ययात्तमान् ।
 भवत्तथा कुर्वन्ति ये मतस्तेषा पुण्य न वेद्मघटम् ॥४३
 तस्मात्समाजने नित्य दीपदाने च भक्तम ।
 यनिष्ठा परया भक्तया ह्यह जातिस्मरा मन ॥४४
 य पूजयेज्जगन्नाथमनाथो विगतस्पृह ।
 सर्वपापविनिर्मुक्त प्रयाति परम पदम् ॥४५
 अरक्षोऽपि यत्कर्म कृत्वेमा श्रियमागत ।
 भक्तिमदिभ प्रशांतश्च त्रि पुन सम्यगर्चनात् ॥४६
 इति भूपरय श्रुत्वा वीतिहासः द्विजात्तम ।
 अनन्तपुष्टिगापन्नो हरिपूजापरोऽभवत् ॥४७
 तस्मान्बहुण्यै विप्रेन्द्र देवा नारायणोऽप्यय ।
 जाननोऽमानता यापि पूजनाता त्रिभुविन्द ॥४८
 अनित्या वाधवा सर्वे विभयो नैव शाश्वत ।
 नित्य मन्निहिता मृत्यु मन्व्या धर्ममग्रह ॥४९

हे ब्राह्मणदेव । मैं उन उरभाग के निर ऐसा करने ही यह धर्म
 प्राप्त किया है । जो मन्त्रन लेता ही करता ही उरके महान् पुण्य के
 रिपय म मुने कुछ भी न नही है ॥४३॥ हे माजी । इसी कारण म
 भवमान् के मन्त्र म बुझाती देन के मन्त्रार्थ से मैं मन्त्र रक्षा करता हूँ

और सदा ही दीपक को प्रज्वलित किया करता है वयो कि इसक महत्त्व का पूर्व जन्म वा अनुभव है और मुझे सब स्मरण भी है ॥४४॥ इसमें कुछ भी मन्द्बुद्धि नहीं है कि जो कुछ भी स्पृहा न रखकर भगवान् जगदीश्वर का सर्वदा अर्चन किया करता है और एवान्त म उनका स्मरण तथा ध्यान करता रहता है वह सब किय हुये पापों से छुटकारा पाकर परम पद को अन्त में प्राप्त किया करता है ॥४५॥ मुझे देखो, मेरी अन्दर से मदिच्छा न होने पर भी जिस कर्म के बन पड़ने से ही ऐसे ऐश्वर्य का प्राप्त होगया हूँ तो फिर जो धर्म दमादि गुणों से मुसम्पन्न पुरुष भक्ति श्रद्धा के साथ भली भाँति ध्यान किया करते हैं उनके महान् पुण्य के विषय में क्या वर्णन किया जा सकता है ॥४६॥ यह श्रेष्ठ द्विज नीतिहोत्र राजा क द्वारा कथित इन वचनों का श्रवण कर परम प्रसन्न हुये और फिर वे तभी से भक्ति भाव पूर्वक भगवान् विष्णु का पूजन करने में तत्पर हो गये थे ॥४७॥ इसलिये हे विप्रवर ! यह कान खोलकर सुन लो । भगवान् नारायण अच्युत प्रभु बड़े दयालु हैं । चाहे जानबूझ कर करे या अनजाने में ही उससे बन पड़े तो अपने पूजन करने वाल व्यक्ति को वे अवश्य ही मोक्ष दे दिया करते हैं ॥४८॥ यह ससार के बन्धु-बान्धव और पुत्र क्लृप्त सभी अनित्य हैं और छोड़े से समय का इनका मेलना है । धन तो ऐसा चञ्चल और अस्थिर पदार्थ है कि कभी किसी के पास सदा टिकता ही नहीं है । ससार में मौन मुँह बाये सामने खड़ी रहा करती है न मालूम वह कब आवर पकड़ ले क्योंकि यह शरीर तो नाशवान और क्षणभंगुर है । अतएव मनुष्य का यही परम कर्तव्य है कि धर्म का सप्रह सवदा करता रहे क्योंकि धर्म ही परलोक और परब्रह्म में सवदा साथ रहा करता है ॥४९॥

अज्ञो लोको वृथा गव करिष्यति महोद्धत ।

वार्धं सतिहितापायो धनादाना क्रिमुच्यते ॥५०॥

जन्मकोटिसहस्रेषु पुण्यैः समुपार्जितम् ।
 तेषां भविष्यन्मवेच्छुद्धा देवदेवे जनार्दने ॥५१॥
 सुलभं जाह्नवीस्नातं तववातिथिपूजनम् ।
 सुलभा सर्वयज्ञाश्च विष्णुभक्तिः सुदुर्लभा ॥५२॥
 दुर्लभा तुलसीसेवा दुर्लभा सगम सताम् ।
 सर्वभूतदया चापि सुलभा यस्य कस्यचित् ॥५३॥
 सत्सगस्तुलसीसेवा हरिभक्तिश्च दुर्लभा ॥५४॥
 दुर्लभं प्राप्य मनुष्यं न तथा गमयेद् बुधः ।
 अर्चयेद्धि जगन्नाथं सारमेतद् द्विजोत्तम ॥५५॥
 तत्तु यदीच्छति जनो दुस्तरं भवसागरम् ।
 हरिभक्तिपरो भूयादेवदेवः सायनम् ॥५६॥

अज्ञानी मनुष्य निरर्थक ही उदघत स्वभाववंश धन, जन्, रूप, यौवन आदि पर गर्व किया करते है । जब यह नाशवान् और अस्थिर है तो इसी से सम्बन्धित अन्य वतान्दि की बात ही क्या है ॥५०॥ यह भगवद्भक्ति आमाम नही है । जिन्होंने लाखो करोडो जन्मो मे अतुल पुण्य का सञ्चय किया है उनकी देवेश्वर भगवान मे विषुद्ध भक्ति हुआ करती है ॥५१॥ यह गङ्गा स्नान सुलभ है । अतिथि पूजन भी आसान है । सब यज्ञो का यजन करना भी सहज है, परन्तु विष्णुभक्ति का होना परम दुर्लभ है और महान कठिन है ॥५२॥ इस ससार मे ये दो ही पदार्थ परम दुर्लभ हुआ करते है । एक तो तुलसी सेवा और दूसरा सन्तो का महागम । समस्त प्राणियो मे यह दया का होना भी किन्ती २ के लिये सुलभ होता है । ५३ । सत्पुरुषो की गति, तुलसी सेवा और श्री हरि के चरण-कमल की भक्ति ये परम दुर्लभ हैं ॥५४॥ इन परम दुर्लभ मनुष्य का शरीर पाकर भी जो इस जीवन के समय को यो ही सामारिक माया मोह के जाल मे पँत कर व्यथ दुनियादारी ने कामो मे ही नही गँवाते है वही वास्तव मे बुद्धिमान

और विद्वान हैं । इसलिये हे द्विजवर ! सार की बात यही है कि मनुष्य को जगन्निवृत्ता भगवान् श्री हरि का सदा भक्ति पूर्वक अर्चन, स्मरण और कीर्तन करना चाहिये ॥५५॥ यदि मनुष्य इस दुस्तर महान् घोर सप्सारूपी सागर से पार होकर वास्तविक आत्म कल्याण की कामना रखता है तो उसे श्री हरि की भक्ति मद् कुछ त्याग करके करनी चाहिये । भगवान् विशुद्ध भावना के भूखे हैं और हार्दिक भक्ति ही से वे प्रसन्न हुआ करते हैं । इस मानव जीवन में यही एक रसायन है ॥५६॥

भ्रातराश्रय गोविन्द मा विलम्ब कुरु प्रिय ।
 आसन्नमेव नगरं कृतातस्य हि दृश्यते ॥५७॥
 नारायण जगद्यानि सवकारणकारणम् ।
 समचयस्व विप्रेन्द्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥५८॥
 सर्वाधार सर्वयोनि सर्वा तर्पामिण विभुम् ।
 ये प्रपन्ना महात्मानस्ते कृताथा न मशय ॥५९॥
 ते वद्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्कार्या विशेषत ।
 येऽर्चयति महाविष्णु प्रणतार्तिप्रणाशनम् ॥६०॥
 ये विष्णुभक्ता निष्कामा यजति परमेश्वरम् ।
 त्रि सप्तकुलसयुक्तास्ते याति हरिमन्दिरम् ॥६१॥
 विष्णुभक्ताय यो दद्यान्निष्कामाय महात्माने ।
 पानीय वा फल वापि स एव भगवत्प्रिय ॥६२॥
 विष्णुभक्तिपराणा तु शुश्रूषा बुधते तु ये ।
 ते यन्ति विष्णुभुवनं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥६३॥

हे भाई ! परम कृपालु भक्त वत्सल भगवान् गोविन्द का समान्तर ग्रहण करो । हे त्रिजवर ! इसके करने में क्षणमात्र का भी विलम्ब नहीं करना चाहिए । क्योंकि यमराज का बुलावा चाहे जिस क्षण में आ सकता है और उसी पुरी निरुद्ध ही वर्तमान है ऐसा समझ

लो ॥५७॥ हे विप्रवर । यदि इस ससार से छुटकारा पाकर मुक्त होने की इच्छा हो तो सम्पूर्ण कर्णों का भी कारण जगत की योनि भगवान नारायण का पूजन करना चाहिये ॥५८॥ इस सम्पूर्ण विश्व के आधार चराचर जगत के सबके कारण सभी के अर्थात् प्रभु की जो शरणागति में चले जाया करते हैं वे महात्मा अपने मानव जीवन में सकल एक कृत्य होजाया करते हैं इसमें कुछ भी सदेह नहीं है ॥५९॥ जो अपने चरणों में प्रणव पुष्पा की पीडाओं का दूर भगा दिया करते हैं ऐसे महा विष्णु भगवान की जो अर्चना किया करते हैं वे भक्त गण भी पूजन व दान और अभिवादन करने के पात्र बन जाया करते हैं । ६०। जो विष्णु भगवान के भक्त कामना सरहित होकर भगवत का अर्चना किया करते हैं उनके पूजन की बड़ी महिमा है । वे स्वयं ही नहीं अपितु अपनी वक्षीस पीडियों के सहित श्रीहरि के धाम में इस पुष्प के प्रभाव में प्रवेश प्राप्त किया करते हैं । ६१। जो महापुरुष निष्काम भाव से भावदभक्तों को जन एव फल आदि अर्पित करके उनका सादर सत्कार किया करते हैं वे ही भगवान को प्रिय हुआ करते हैं ॥६२॥ जो भगवान की भक्ति में निमग्न महात्माओं की सेवा किया करते हैं वे भी महा प्रणय काल तक विष्णु लोक में निवास प्राप्त किया करते हैं ॥६३॥

ये यजति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा ।
 त एव भुवन सर्वं पुनति स्वाघ्रिपाशुना ॥६४॥
 देवपूजापरो यस्य गृहे धमति सवदा ।
 तत्रैव सवदेवाश्च तिष्ठति श्रीहरिस्तथा ॥६५॥
 पूज्यमाना च तुनसी यस्य तिष्ठन्ति वैशमनि ।
 तत्र सवाणि श्रयानि वद्धत्यहरहृद्विज ॥६६॥
 शानप्रामशिनारूपो यत्र तिष्ठति वैशव ।
 न वाघने ग्रहास्त्रय भूतवेतालकादय ॥६७॥

शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ।
 यत्र सनिहितस्तत्र भगवान्मधुसूदन ॥६८॥
 यद् गृहे नास्ति देवर्षे शालग्रामशिलार्चनम् ।
 श्मशानसदृशं विद्यात्तद् गृहं शुभवर्जितम् ॥६९॥
 पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि च द्विज ।
 सांगा वेदास्तथा सर्वं विष्णो रूपं प्रकीर्तितम् ॥७०॥
 भक्त्या कुर्वति ये विष्णो प्रदक्षिणचतुष्टयम् ।
 तेऽपि याति परं स्थानं सर्वकर्मनिवर्हणम् ॥७१॥

जो भक्त स्वयं कुछ भी हृदय में कामना नहीं रखते हुये श्री हरि की ओर हरि के भक्तजना की पूजा किया करते हैं उनका भी इतना पुण्य प्रभाव होता है कि वे अपने चरणों की स्पर्श की हुई रज से समस्त भूयन को पवित्र कर सकते हैं ॥६४॥ भगवान् शङ्कर अथवा भगवान् नारायण का पूजन करने वाला मनुष्य जिसके घर में निवात किया करता है उसके घर में समस्त देवगण के सहित लक्ष्मी और नारायण की स्वयं आना पड़ता है ॥६५॥ हे द्विजवर ! जिसके घर में तुलसी की पूजा हुआ करती है उस पुरुष के सभी श्रेय प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हुआ करत है ॥६६॥ शालग्राम शिला के स्वरूप भगवान् वैशव जिस घर में विराजमान रहा करते हैं वहाँ पर घुरे प्रहू भूत, वेनालादि का कुछ भी चारा नहीं चला करता है ॥६७॥ जहाँ पर भगवान् शालग्राम की शिला विराजमान हो वह स्थान महान् तीर्थ और तपोवन के ही समान हुआ करता है क्योंकि उसमें सादात् भगवान् मधुसूदन पदापण किया करते हैं ॥६८॥ हे देवर्षे ! जिस घर में शालग्राम की शिला का अर्चन नहीं हुआ करता है वह घर तो श्मशान के ही समान होता है और विगी भी शुभकार्य के करने के योग्य नहीं होता है ॥६९॥ हे द्विजवर ! पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र, वेद और वेदा के अङ्ग शास्त्र ये सब भाषान विष्णु का ही स्वरूप हैं ॥७०॥

जो मनुष्य श्रद्धा भक्ति के साथ भगवान विष्णु की जो चार परिक्रमा भी कर लेते हैं उनके सम्पूर्ण दुष्कर्मों का विनाश होजाया करता है और अंत में वे परम धाम में प्रवेश प्राप्त किया करते हैं । ७१।



॥ सुधर्मा का भाषण ॥

अत पर प्रवक्ष्यामि विभूति वेंष्णवी मुने ।
 या शृण्वता कीतयता सद्य पापदायो भवेत् ॥१
 वैश्रवतेऽनरे पूर्वं शक्रस्य च वृहस्पते ।
 सवाद मुमहान्नासीत् यदयामि निशाम्य ॥२
 एकदा सबभागाढ्यो विबुधं परिवारित ।
 अप्सरोगणसखीर्णो वृहस्पतिमभाषत ॥३
 वृहस्पते महाभाग सवतत्राथकोविद ।
 अतीतब्रह्मण नल्पे मृष्टि कीदृग्विधा प्रभा ॥४
 इन्द्रस्तु कीदृश प्रोक्ता । वबुधा कीदृशा स्मृता ।
 तेषा च कीदृशा कम यथावद् वक्नु महसि ॥५
 न ज्ञायते मया शक्र पूर्वैद्युश्चरित विधे ।
 वतमानदिनस्यापि दुजय प्रतिभाति मे ॥६
 मनव समतीताश्च तान् वक्तुमपि न क्षम ।
 यो विजानाति त तेऽद्य वक्ष्यामि निशाम्य ॥७

श्री मननाचायजी ने कहा—हे मुन । अब मैं आपसे समझ में वेंष्णवी विभूति का वणन करता हूँ । इस वेंष्णवी विभूति का श्रवण और कीर्तन करने का न पुण्य के पाप नुर त ही विनष्ट होजाया करते हैं ॥१॥ प्राचीन काल में अवस्वत म व तर म इन्द्र और वृहस्पति का इस विषय में बहुत कुछ वार्तालाप हुआ था । उसी को मैं अब आपको

श्रवण कराता हू । उने मुनिय ॥२॥ एक समय बी बात है कि तमस्त स्वर्गीय सुखोपभोगो के धनी देवराज महन्द्र का देवगण और अप्सरार्यों घेरे दृय बैठे थे । उस समय मे इन्द्र ने मुरुगुरु बृहस्पतिजी से कहा था ॥३॥ इन्द्रदेव ने कहा—ह प्रभो ! आप तो सभी तत्वों के गूढार्थ को समझने में परम कुशल हैं । हे महाभाग ! हे बृहस्पतिजी ! आप यह कृपा कर बताइय कि ब्रह्माजी के बल्प में यह सृष्टि किस प्रकार की थी ? ॥४॥ उस समय में इन्द्र वीन था, देवता कौन २ थे और उनका कर्म किस प्रकार का था । इसका उचित रीति से वर्णन कीजियेगा ॥५॥ मुरुगुरु बृहस्पतिजी ने महेन्द्र के द्वारा निवेदन की हुई इन सब बातों को सुनकर उत्तर दिया था—हे इन्द्र ! मैं ब्रह्माजी के प्रथम दिन के भी समाचार को नहीं जानता हूँ और वर्त्तमान दिन के भी उनके वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करना भी मेरी शक्ति, सामर्थ्य की सीमा के बाहिर की बात है । मैं उमको भी नहीं जानता हूँ ॥६॥ जो-जो अब तक मन्वन्तर समाप्त हो चुके हैं मैं उनके विषय में भी कुछ भी वर्णन नहीं कर सकता हूँ । किन्तु जो इन सबका वृत्तान्त ठीक तरह से ज्ञानत है और इन सबका पूष ज्ञान रखते हैं उनका पूरा पता मैं आपको बतलाता हूँ ॥७॥

मुधर्म इति विख्यात कश्चिदास्ते पुरे तव ।
 भुञ्जानो दिव्यभोगाश्च ब्रह्मलोकादिहागत ॥८॥
 स वा एतद्विजानाति कथयामि निशामय ।
 एवमुक्तस्तु गुरुणा शक्रस्तेन समन्वित ॥९॥
 देवतागणसञ्चूर्णं मुधमनिलय ययो ॥१०॥
 समागत देवपति बृहस्पतिसमन्वितम् ।
 दृष्ट्वा यथार्हं देवर्षे पूजयामास सादरम् ॥११॥
 मुधमणाश्रित शक्रो दृष्ट्वा तच्छ्रियमुत्तमाम् ।
 मनसा विस्मयाविष्ट प्रोवाच विनयान्वित ॥१२॥

अतीनग्रहकल्पस्य वृत्तान्तं वेत्ति चेद् बुध ।

तद् द्रष्टुमिह ममावात एतन् प्रष्टुं मयाजरः ॥१३

गतनिद्राश्च देवाश्च येन जानामि मुव्रत ।

तद्ददम्याधिरः यस्मादस्मद्भघोरनि दिवि स्थितः ॥१४

गृह्यनिबन्धो नै ब्रह्मा—एक गुह्यमी नाम वासे वर्ति इम आपसी
 ही पुरी में निवास किया करते हैं जो अभी २ ब्रह्माभी के लोक में से
 परम दिव्य बर्तों के भोगों का उपभोग करते हैं पर समाप्त हुये हैं
 ॥१३॥ वे इन सब बातों के विषय में अवश्य ही जान सकते हैं । मेरे इस
 निवेदन बिचे हुये क्षण पर आप अपना टीका दे, ध्यान देकर इसका
 श्रवण कर सीखियेगा । इन्द्रदेव अपने गुरु के द्वारा बड़े ज्ञान पर उनके
 साथ ही उदरक सब देवताओं का साथ में सब सुरजन ही उम गुह्यमी-

लोगो को भी अधिक समय तक उस ब्रह्मलोक में विराजमान रहे हैं ?
॥११॥

तेजसा यशसा कीर्त्या ज्ञानेन च परन्तप ।
दानेन वा तपोभिर्वा कथमेतादृश प्रभो ॥१५
इत्युक्तो देवराजेन सुधर्मा प्रहसस्तदा ।
प्रोवाच विनयाविष्ट पूर्ववृत्त यथाविधि ॥१६
चतुर्षु गसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
एकस्मिन् दिवसे शक्र मनवश्च चतुर्दश ॥१७
इन्द्राश्चतुर्दश प्रोक्ता देवाश्च द्विविधा पृथक् ।
इन्द्राणां चैव सर्वेषां मन्त्रादीनां च वासव ॥१८
तुल्यता तेजसा लक्ष्म्या प्रभावेण बलेन च ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहित ॥१९
स्वायम्भुवो मनु पूर्वं ततः स्वारोचिपस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुपस्तथा ॥२०
वैवस्वतो मनुश्चैव सूर्यसावर्णिश्चत ।
नवमो दक्षमावणि मवंदेवदिते रत्न

इन्द्र भी हुआ करते हैं पत्नी वि प्रत्येक मनु का इन्द्र पृथक् होता है । इन्द्र के साथ ही म प अनेक प्रकार के देवता भी बलग २ चौदह ही हुआ करते हैं । हे इन्द्र देव । सब इन्द्रों का और मनुओं का तेज, लक्ष्मी, धन और प्रभाव एक समान ही हुआ करता है और उनमें कुछ भी अन्तर नहीं होता है । अब मैं उन सबके नामों का भी उल्लेख कर वर्णन करता हूँ । आप परमाधिक समाहित होकर उनका श्रवण कीजिए ॥१८॥१९॥ सबसे प्रथम होने वाले मनु का नाम स्वायम्भुव मनु है । इसके पश्चात् क्रम से स्वारोचिष—उत्तम—तामसा—रंभत—चाक्षुष—वैवस्वत और आठवें मनु सूर्य सावणि हुए हैं तथा नवम मनु का नाम दत्त सावणि था । ये सभी मनु देवगण के हितप्रद कार्यों में निरत रहा करते हैं ॥२०॥२१॥

दशमो ब्रह्मासावर्णिधर्मसावर्णियस्तत ।

ततस्तु रुद्रसावर्णी रोचमानस्तत स्मृत ॥२२

भौत्यश्चतुर्दश प्रोक्त एते हि मनव स्मृता ।

देवानिन्द्राश्च वक्ष्यामि श्रणुष्व विबुधर्षभ ॥२३

यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

शचीपति समाख्यातस्तेषामिन्द्रो महामति ॥२४

पारावताश्च तुपिता देवा स्वारोचियेऽन्तरे ।

विपश्चिन्नाम देवेन्द्र शर्वसपत्तमन्वित ॥२५

मुधामानस्तथा गत्या शिवाश्चाप प्रतदंता ।

तेषामिन्द्र मुनाचिश्च मृतीये परिवीनित ॥२६

मुना पाराहुराश्चैव गुत्याश्चामुधिपन्तथा ।

तेषामिन्द्र शिव प्रागन शक्रन्ताममरेऽन्तरे ।

विभर्तामा ददपति पञ्चम परिवीनित ॥२७

अभिभाभादयो देवा गण्डेऽपि च तथा शृणु ।

धार्पाता विमुद्या प्रोचतास्तेषामिन्द्रो मनोजय ॥२८

इन सबके बाद दशम मनु हुए हैं उनका नाम ब्रह्म सावर्णि मनु था । इसके पश्चात् धर्म सावर्णि—शुद्ध सावर्णि और रोचमान मनु हुए हैं जिनका वर्णन स्मृतियों में भली भाँति से हुआ है ॥२२॥ भौत्य नाम वाले मनु चौदहवें मनु कहे जाते हैं । इस तरह से मैंने आपके सामने इन चौदह मनुओं का वर्णन करके मुना दिया है । हे देव शिरोमणे ! अब मैं चौदह इन्द्रों और उनके समय में होने वाले देवगणों का वर्णन करता हूँ । आप मुनिये ॥ २३ ॥ सर्व प्रथम जो स्वायम्भुव नाम वाले मनु हुए थे उस मन्वन्तर के देवता 'याम' इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे । और याम नामक देवगण का इन्द्र महान मति वाले शचीपति हुए थे ॥२४॥ इसके पश्चात् जब स्वारोचिन मन्वन्तर आया तो उस मन्वन्तर में पारावत और तुषित नामधारी देवता हुए थे और उस समय में होने वाले इन्द्र का नाम विपश्चिन था । उसके समीप में सम्पूर्ण सम्पदायें विद्यमान रहा करती हैं ॥२५॥ तीसरे मन्वन्तर में मुधामा, सत्य, गिव और प्रतदन नाम वाले देवगण हुये थे । इन देवों के इन्द्र का नाम सुशान्ति था ॥२६॥ इसके पश्चात् तामस मन्वन्तर चौथा होता है । इस मन्वन्तर के देवगण सुन, पाराहर, सुत्य और असुधी नामक हुये हैं । इन सब देवताओं के इन्द्र का नाम शिव था । विभ्र नाम वाले पाँचवें इन्द्र हैं ॥२७॥ उनके देवगण अमिताम प्रभृति हुए हैं । इसके पश्चात् षष्ठ मन्वन्तर होता है । उसका भी आप ध्वज करिये । इस मन्वन्तर में आर्य आदि देवगण हुए हैं और इन देवताओं के इन्द्र का नाम मनोजव था ॥२८॥

आश्रित्यवमुरुद्राद्या देवा ध्रुवम्बतेऽन्तयरे ।

इन्द्र पुरन्दर प्रोक्त्वा सर्वकामसमन्वित ॥२९॥

अप्रमेयाश्च विबुधा मुतपाद्या प्रकीर्तिता ।

विष्णुपूजाप्रभावेण तेषामिन्द्रो वलि स्मृत ॥३०॥

पाराद्या नवमे देवा इन्द्रश्चाद्भुत उच्यते ।

सुवासनाद्या विबुधा दशमे परिकीर्तिता ॥३१
 शान्तिर्नाम च तत्रेन्द्र सर्वभोगसमन्वित ।
 विहङ्गमाद्या देवाश्च तेषामिन्द्रो वृष स्मृत ॥३२
 एकादशे द्वादशे तु निबोध कथयामि ते ।
 ऋभुर्नाम च देवेन्द्रो हरिनाभास्तथा सुरा ॥३३
 सुनामाद्या तथा देवास्त्रयोदशतमेन्तरे ।
 दिवस्पतिर्महावीर्यंस्तेषामिन्द्र प्रकीर्तित ॥३४
 चतुर्दशे चाक्षुषाद्या देवा इन्द्र शुचि स्मृत ।
 एव ते मनव प्रोक्ता इन्द्रा देवाश्च तत्त्वत ॥३५

इसके पश्चात् सप्तम मनु वैवस्वत हुए थे । इस मन्वन्तर
 में आदित्य वसु और रुद्र प्रभृति देवता थे और इन देवगणों के सब
 मनोरथों से परिपूर्ण इन्द्र का नाम पुरन्दर है ॥३२॥ आठवें मन्वन्तर
 में जिमका नाम सूर्य मारुति है अप्रयेय सुतया आदि देवगण हुए हैं
 और भगवान् विष्णु की पूजा के प्रभाव से इनके इन्द्र का नाम धन्ति
 है ॥३०॥ नवम मन्वन्तर में पाराश प्रभृति देवगण और अद्भुत नाम
 वाला होता है तथा दशम मन्वन्तर में सुवासना आदि देवता होते हैं
 तथा इस मन्वन्तर में जो सम्पूर्ण भोग के योग्य पदार्थों से सुसम्पन्न
 शान्ति नामधारी इन्द्र हुआ करता है । ग्यारहवें मन्वन्तर में विहङ्गम
 प्रभृति नाम वाले देवगण होते हैं । और वृष नाम वाला उन देवगणों
 का राजा इन्द्र होता है ॥३१॥३२॥ अब आपके समक्ष मैं बारहवें
 मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ इसका भी आप श्रवण कीजिए । इस
 बारहवें मन्वन्तर के देवता हरिनाभ है और इसके इन्द्र का नाम
 ऋभु हाता है ॥३३॥ त्रहवें मन्वन्तर के देवगणों का सुनाम आदि
 कहा जाता है तथा इसके इन्द्र का नाम दिवस्पति होता है जो कि
 महान् वीर्यवान् हाता है ॥३४॥ चौदहवें मन्वन्तर के देवता चाक्षुष
 आदि हुआ करते हैं तथा इन्द्र का नाम शुचि होता है । इस तरह से

मैंने चौदह मन्वन्तरों में होने वाले देवता और इन्द्रों के नाम आदि का वर्णन करके भली भाँति आपको सुना दिया है ॥३५॥

एवस्मिन्ब्रह्मादिवसे स्वाधिकार प्रभु जते ॥३६॥

लोनेषु सर्वसर्गेषु सृष्टिरेकविधा स्मृता ।

कर्त्तारो बहव सति तत्सख्या वेत्ति कोविद ॥३७॥

मयि स्थिते ब्रह्मलोके ब्रह्माणो बहवो गता ।

तेषां सख्या न सख्यान्तु शक्तोऽस्म्यद्य सुरोत्तम ॥३८॥

स्वर्गलोकमपि प्राप्य यावत्काल शृणुष्व मे ।

चत्वारो मनवोऽतीता मम श्रोश्चातिविस्तरा ॥३९॥

स्थातव्यं च मयात्रैव युगकोटिशत प्रभो ।

तत परं गमिष्यामि कर्मभूमिं शृणुष्व मे ॥४०॥

मया कृतं पुरा कर्म वक्ष्यामि तव सुव्रत ।

वदता शृण्वता चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥४१॥

अहमास पुरा शक्रं गृध्रं पापो विशेषतः ।

स्थितश्च भूमिभागे वै अगेक्ष्यामिषभोजन ॥४२॥

ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्माजी के एक ही दिन में अपना । सभास कर लिया करते हैं ॥३६॥ समस्त सर्गों में सृष्टि तो एक ही प्रकार की हुआ करती है किन्तु उस सृष्टि के करने वाले अनेक हुआ करते हैं उनकी सख्या को शास्त्रों में परम कुशल पुरुष ही जाना करते हैं ॥३७॥ मैं जिस समय में ब्रह्मा लोक में निवाम करता था । उस समय में बहुत से ब्रह्मा व्यतीत हो चुके थे । हे सुर श्रेष्ठ । वे सख्या में इतने अधिक थे कि उनकी गिनती में भी आपको बताने में असमर्थ हूँ ॥३८॥ अब इस स्वर्ग लोक में आये हुए मुझको तितना समय व्यतीत हुआ है उसका भी समाचार आप सुन लीजिये । मेरे वहाँ रहते हुये भी मेरे सामने चार मन्वन्तर हो चुके हैं । मेरी सम्पत्ति अनाव विस्तृत है ॥३९॥ हे प्रभा । मैं यहाँ पर अभी एक खब युगो

तक निवास करूँगा । इसके पश्चात् इतने लम्बे समय तक स्वर्गिय सुख भोग करके कर्म भूमि पर जाऊँगा ॥४०॥ हे पुत्रत । मैंने अपने जो भी कर्म किये थे उनका अब मैं वर्जन करके आपको सुनाता हूँ । इस आश्रयान का जो कोई भी मनुष्य श्रवण करता है अथवा कथन किया करता है उनके सम्पूर्ण पापों का विनाश होजाया करता है ॥४१॥ हे महेंद्र ! प्रथम जीवन मे मैं एक गिद्ध पत्नी था जो सदा ही मंसि का भक्षण किया करता था ॥४२॥

एकदाह विष्णुगुहे प्राकारे सस्थित प्रभो ।

पतितो व्याघस्यास्त्रेण साय विष्णोर्गृहागमे ॥४३

भयि कङ्कतप्राग् भयणो मासलोलुप ।

जग्राह मा स्ववक्त्रेण श्वभिरन्येश्चरन्द्रुत ॥४४

वहन्मा स्वमुखेनैव भीतोऽन्यैभंपणस्तथा ।

गत प्रदक्षिणाकार विष्णोस्तन्मन्दिर प्रभो ॥४५

तेनैव तुष्टिमापन्नो ह्यन्तरात्मा जगन्मय ।

मम चापि गुणश्चापि दत्तावन्परम पदम् ॥४६

प्रदक्षिणाकारतया गतस्यापीदृश फलम् ।

सप्राप्त विरुद्धश्रेष्ठ किं पुन सम्यगर्चनात् ॥४७

इत्युक्तो देवराजस्तु सुघर्मण महारमना ।

मनसा प्रीतिमापन्नो हरिपूजारतोऽभवत् ॥४८

तथापि निर्जरा सर्वे भारते जन्मलिप्सव ।

ममर्चयति देवेश नारायणमनामयम् ।

तानर्चयन्ति सतत ब्रह्माद्या देवतागणा ॥४९

हे प्रभो ! एक समय की घटना ऐसी हुई थी कि मैं एक भय-
वान विष्णुदेव के मन्दिर की जो चारो ओर से बनी हुई थी वही
पर जाकर बैठा हुआ था । उसी समय मे एक व्याघ्र ने चुपचाप आकर
मुझे बाण से मार कर गिरा दिया था । मेरा शरीर मृत होकर विष्णु

भगवान् के मन्दिर के आगम में आकर गिर गया था ॥४३॥ मेरे प्राण उस समय तक कण्ठगत हो रहे थे और मरने ही वाला हो रहा था कि एक मरे भाँस के लालची श्वान ने आकर मुझे दबोच डाला था । इसी बीच में अथ कुत्ते भी वहाँ पर मुझे देखकर एकत्रित होगये थे । जब बहुत से कुत्ते आकर उसके पीछे झपटे तो वह उनके डर से भयभीत होकर मुझको अपने हाथ में दबाये हुए ही विष्णु भगवान् की परिक्रमा करता हुआ उम मन्दिर में दौड़ा था ॥४४॥४५॥ जब मय परमात्मा न जा सभी का अतरात्मा है इसी मत्स्य से परम प्रसन्न होकर मुझको और उम श्वान को दोनों को परम पद प्रदान कर दिया था ॥४६॥ विवश और भयभीत होकर प्रदक्षिणा के आकार में घूमने ही में ऐसा उत्तम फल जब ब्रह्म ने दे दिया था तो व देवों में परम श्रेष्ठ । विधिवत् जानपूर्वक भगवान् का भलीभाँति पूजन करने का जो फल होता है उसके विषय में तो कहा ही गया जा सकता है ॥४७॥ महानुभाव मुद्यम ने द्वारा इस भाँति से बहे जाने पर देवराज इंद्र अपने मनम आधिपति प्रमत्त होकर श्री हरि की पूजा करने में निरत हो गये थे ॥४८॥ इसी रीति से अथ देवगण भी इस कम भूमि भारत वष में जन्म ग्रहण करने की इच्छा से अनामय भगवान् नारायण का भजन करने लग गये थे ॥४९॥

नारायणानुस्मरणोद्यताना महात्मना त्यक्तपरिग्रहाणाम् ।
 कथं भवत्युग्रभवस्य बधस्तत्सङ्गलुब्धा यदि मुक्तिभाज ॥५०॥
 ये मानवा प्रति दिन परिमुक्त्वा सङ्गा

नारायणं गच्छन्वाहनमर्चयन्ति ।

ते सर्वपापनिवारं परितो विमुक्त्वा
 विष्णो पदं शुभनरं प्रतिपाद्यन्ति ॥५१॥
 ये मानवा निगतरागपरावरजा नारायणं
 सुरगुरुं सततं स्मरन्ति ।

ध्यानेन तेन हतकिन्विपचेतनास्ते

मातु पयोधररस न पुन पिबति ॥५२

ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषा

कृष्णाघ्नपद्मभजने रतचेतनाश्च ।

ते वै पुनति च जगति शरीरसगात्

सभापणादपि नतो हरिरेव पूज्य ॥५३

हरिपूजापरा यत्र महात शुद्धबुद्धय ।

तत्रव सकल भद्र यथा निम्ने जल द्विज ॥५४

हाररेय परो बन्धुहरिरेय परा गति ।

हरिरेव तत पूज्या यतश्चैतन्यकारणम् ॥५५

स्वगापत्रांफनद सदानद निरामयम् ।

पूजयस्य मुनिश्रेष्ठ पर श्रेयो भविष्यति ॥५६

जब इस प्रकार म सत्सङ्ग होने पर महालोलुप जीव भी मुक्ति के अधिकारी हो जाया करते हैं तो महात्मा लोग जो नित्य नारायण का स्मरण करते हैं और परिवार के लोगों से भी मोह नहीं किया करते हैं उनको यह ससार का उद्य बन्धन कैसे हों सकता है ? ॥५०॥ जो मनुष्य नि सकांष होकर गरुड के वाहन वाले नारायण देव का पूजन किया करते हैं वे सब पापों से छुटकारा पाकर विष्णु के परम शुभ ग्राम में प्रवेश करते हैं ॥५१॥ जो पर और अपर का ज्ञान रखने वाले राग से रहित होकर सदा मुरगुरु भगवान नारायण का स्मरण अर्चन और ध्यान किया करते हैं वे इससे ही निष्पाप होजाया करते हैं और फिर जन्म धारण कर अपनी माता के स्तन का पान नहीं किया करते हैं ॥५२॥ श्रीकृष्णचन्द्र व चरणारविन्द में अपना मन रमाने वाले और उनका भजन करने वाले जो मनुष्य होते हैं उनकी हारकथा के श्रवण करने से सभी प्रकार के पाप निरस्त होजाया करते हैं । उनके परम पुण्य का इतना प्रभाव हुआ करता है कि वे

अपने सङ्ग एवं सम्वापण के द्वारा ही जगत् के जीवों को पवित्र कर दिया करते हैं । अतएव निष्कर्षार्थं यही निश्चयता है कि श्री हरि के चरणों का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए । ५३ । त्रिम स्थान में श्री हरि के भजन करने में तत्पर प्राणी शुद्धि वृद्धि वाले उदार चित्त मनुष्य निवास किया करते हैं वहाँ पर सभी सद्गुण ढालू भूमि में पानी के समान ही एकत्रित हो जाया करते हैं ॥५४॥ इस जगत् में केवल श्री हरि भगवान् ही परम बन्धु हैं, श्री हरि भगवान् ही परम गन्धि हैं और श्री हरि भगवान् ही धैर्य के कारण हैं अतएव श्री हरि भगवान् ही परम पूज्य हैं ॥५५॥ हे मुनियो मे उत्तम ! स्वर्गीय सुखों के उपभोगों को तथा मोक्ष का प्रदान करने वाले सर्वदा आनन्दमय, निरामय भगवान् का सदा पूजन करना चाहिये । इसी से परमाधिक धैर्य प्राप्ति होगी ॥५६॥

पूजयति हरिं ये तु निष्कामाः शुद्धमानसा ।
 तेषां विष्णु प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान् प्रयच्छति ॥५७॥
 यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वा सुसमाहितः ।
 स प्राप्नोत्यश्वमेधस्य फलं मुनिवरोत्तम ॥५८॥
 इत्येतत्ते समाह्वयत हरिपूजाफलं द्विज ।
 सकोवविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्वथयामि ते ॥५९॥

जो मनुष्य सदा विना ही किसी कामना के विशुद्ध मन के द्वारा श्री हरि का भजन किया करते हैं भगवान् विष्णु उन पर अपने चित्त में परम प्रसन्न होकर उन मनुष्यों के सभी मनोरथों को पूर्ण कर दिया करते हैं ॥ ५७ ॥ हे मुनिवरों मे उत्तम ! जो मनुष्य समाहित चित्त वाला होकर इस परम पावन कथा का श्रवण किया करते हैं अथवा इनका अध्ययन किया करते हैं वे निश्चित रूप से आश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्यफल प्राप्त करते हैं ॥ ५८ ॥ हे द्विजवर ! इस तरह से मैंने यह श्री हरि भगवान् के अर्चन का फल सक्षेप एवं

विस्तार से कहार सुना दिया है । अब आप अब क्या सुनना चाहते हैं ? ॥५६॥



॥ भगवन्नाम स्मरण से मुक्ति ॥

आप्यात भवता सर्वं मुने तत्स्वार्थकोविद ।
 इदानीं श्रोतुमिच्छामि युगानां स्थितिलक्षणम् ॥१॥
 साधु साधु महाप्राज्ञ मुने लोकोपकारक ।
 युगधर्मान्प्रवक्ष्यामि मवल्लोकोपकारकान् ॥२॥
 धर्मो विवृद्धिमायाति नान्नि वस्मिश्चिदुत्तम ।
 तथा त्रिंशत्तमायानि धम्म एव महीतले ॥३॥
 कृतं त्वेतां द्वापरं च कलिश्चेति चतुस्रुगम् ।
 दिव्यैर्द्वादशभिर्ज्ञेयं वत्सारेस्तत्र सप्तम ॥४॥
 सध्यामन्ध्याशयुक्तानि युगानि सदृशानि वै ।
 कालतो वेदितव्यानि इत्युक्तं तत्स्वदर्शिभि ॥५॥
 आद्यकृतयुगं प्राहुस्ततस्त्रेताविधानकम् ।
 ततश्च द्वापरं प्राहुः कलिमल्पं विदुः क्रमान् ॥६॥
 देवदानवगधर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।
 नासन्कृतयुगे विप्र सर्वे देवसमा स्मृता ॥७॥

देवपि भगवान् श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर ! आप ती तत्स्वार्थों के ज्ञाता महान् गनीधी हैं । आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रह करके सभी कुछ बणन करके सुना दिया है । अब मैं इन युगों की स्थिति और उनके लक्षणों के विषय में पूछने की अभिलाषा रखता हूँ ॥१॥ श्री सनकाबाब जी ने इस कथन का उत्तर देते हुए कहा था—हे लोको के उपकार करने वाले परम मनिशासन ! हे मुनिवर ! बहुत ही अच्छा और उत्तम प्रश्न आपने किया है, अब मैं समस्त लोका की भलाई करने

धाले युगो के धर्मों का वर्णन करता है ॥२॥ हे उत्तम प्रवर ! समय सदा समान गति से नहीं चला करता है । इस भूमण्डल पर एक समय से ऐसा आता है कि धम की वृद्धि हुआ करती है और एक ऐसा भी समय आता है कि धम क्षीण होन लगता है । ३॥ युग चार हुआ करते हैं—सत्ययुग—त्रेता—द्वापर और कलियुग ये इन चारो के नाम हैं । इन का एक चतुर्गुण कहा जाया करता है । ये चारो युग देवगणो के दिग्ग्य बारह वर्षों के ही हुआ करते हैं ॥४॥ सत्त्वदर्शी महापुरुषो ने यह बनाय है कि सभी युगो म स ध्या और स ध्याश हुआ करते हैं अतएव इनमे युक्त ही सब युगो के यथोचित काल के द्वारा समझ लेना चाहिए ॥५॥ सबसे प्रथम कृतयुग होता है । उसके पीछे त्रता—द्वापर और सबक अ त मे कलियुग आया करता है । इसी क्रम को शास्त्रो मे बताया गया है ॥६॥ हे विप्रवर ! शास्त्रो मे स्पष्टतया ऐसा बताया गया है कि जब सब से पूर्व आरम्भ मे कृतयुग आता है तो उस समय मे देव दानव-य प्रव यक्ष राक्षस और पन्नग आदि भेद कुछ भी नहीं थे । सभी देवा के ही समान शुद्ध शरीर और विशुद्ध भावनाओ वाल थे ॥७॥

सर्वे हृष्टाश्च धर्मिष्ठा न तत्र क्रयविक्रयो ।
 वेदाना च विभागश्च न युगे वृत्तसंज्ञये ॥८
 ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा स्वाचातत्परा ।
 सदा नारायणपरास्त्वोध्ययानपरायणा ॥९
 कामादिदोषनिर्मुक्ता शमादिगुणतत्परा ।
 धमसाधनचित्ताश्च गतासूया अदाभिका ॥१०
 सत्यवाच्यरता सर्वे चतुराश्रमधर्मिण ।
 वेदाध्ययनमपना सबशाम्त्रविचक्षणा ॥११
 चतुराश्रमयुक्तेषु कामणा काययोनिना ।
 अकामफनमयोगा प्रयानि परमा गतिम् ॥१२
 नारायण वृत्तयुग शुक्लवण मुनिमत्र ।

त्रेताधर्मान्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहित ॥१३

धर्मं पादुरता याति त्रेताया मुनिसत्तम ।

हरिभ्यु रक्तता याति विशिचत्क्लेशान्विता जनाः ॥१४

वह कृतयुग का काल कूल ऐसा ही था कि उस समय में सभी हृष्ट-गुष्ट और धर्म में पर धनता रखने वाले प्राणी थे । उस समय में किसी भी उदाय का क्रय-विक्रय नहीं हुआ करता था तथा वृतयुग में वेदों के ऋक् यजु-साम और अथर्व ये चार विभाग भी नहीं हुये थे चारों वर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र सब अपने ही धर्म पर ममाहर्त रहा करते थे । सभी लोग सर्वदा भगवान् नारायण की भक्ति भाव तथा तप करने में लगन रहा करते थे ॥ ६ ॥ उस समय में कामादि दायों का विकार किसी के भी मन में नहीं रहा करता था और सभी लोग शम-दम आदि सद्गुणा में समन्वित रहा करते थे । सब लोगों के हृदय में सर्वदा धार्मिक चरमों के सम्पन्न करने की लगन रहा करती थी । दूतों के गुणों में भी दोषों का उद्भावन करना तथा दम्भमय व्यवहार करना नाम मान को भी कृतयुग में नहीं था ॥१०॥ सभी लोग सामान्यतया सत्य भाषण ही किया करते थे—वेदों का अध्ययनाध्यापन—तथा चारों आश्रमों का यथावत् परिपालन किया करते थे । सब लोग शास्त्रों के ज्ञान में महान् कुशल थे ॥ ११ ॥ जब भी समय प्राप्त हुआ करता था उसी के अनुसार चारों ही ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ और सन्यास इन आश्रमों का परिपालन सर्वथा निष्काम भाव से अपना परम कर्तव्य समझ कर ही किया करते थे और सभी लोग अन्त में परमोत्तम सद्गति को प्राप्त किया करते थे ॥१२॥ सत्ययुग में भगवान् नारायण निर्मल शुक्ल वर्ण से विभूषित रहा करते थे । यही कृतयुग का धर्म तथा स्वरूप का वर्णन है । अब त्रेता युग हमने पीछे आया करता है । उसका वर्णन मैं करता हूँ आप परमाधिक समाहित चित्त वाले होकर उसके धर्मों और स्वरूप का वर्णन ध्वनि कीजिए

॥१३॥ हे परमश्रेष्ठ मुनिवर । त्रेतायुग मे घर्म का वर्ण पाण्डुर होजाया करता है । भगवान् विष्णु का वर्ण भी रक्त हो जाया करता है । इस युग मे मनुष्यो की कुछ २ बलेशो की प्राप्ति होने लगती है ॥१४॥

क्रियायोगरता सर्वे यज्ञकर्ममु निष्ठिता ।

सत्यव्रता ध्यानपरा सदाध्यानपरायणा ॥१५

द्विपादो वर्तते घर्मो द्वापरे च मुनीश्वर ।

हरि पीतत्वमायाति वेदश्चापि विभज्यते ॥१६

अमत्यनिरताश्चापि केचित्तत्र द्विजोत्तमा ।

घ्राह्याणाद्याश्च वर्णा स्यु केचिद्वागादिदुर्गुणा ॥१७

केचित्स्वर्गापिवर्गार्थं विप्र यज्ञा-प्रबुधते

केचिद्धनादिकामाश्च केचित्त्वल्मपचेतस ॥१८

धर्माधर्मो समौ स्याता द्वापरे विप्रसत्तम ।

अधमस्य प्रभावेण क्षीयते च प्रजास्तथा ॥१९

अल्पायुषो भविष्यति केचिच्चापि मुनीश्वर ।

केचित्पुण्यरतान् दृष्ट्वा अमूया विप्रबुधते ॥२०

कलिस्थितिं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहित ।

धम कलियुगे प्राप्ते पादेनैकेन वतते ॥२१

प्राय त्रेता मे सभी लोग यज्ञकाण्डो मे निरत रहा करते हैं और अधिकांशत यज्ञ कर्म किया करते हैं । सत्य का स्वाभाविकतया पालन न करके त्रेता मे सत्य का व्रत लोग धारण किया करते हैं—भगवान् का ध्यान भी किया करते हैं और ध्यान मग्न रहा करते हैं ॥१५॥ हे मुनिवर । द्वापर मे वही घर्म जो कृतयुग मे पूण-त्रेतामें तीन पाद और अब त्रेता के पीछ आन वाल द्वापर युग मे दो ही पाद रहजाया करता है । भगवान् विष्णु का वर्ण पाल हो जाया करता है और चार भागो मे वेदा का भी विभाजन हो जाया करता है ॥१६॥ हे द्विजोत्तम । द्वापर मे लोग निर्याभ पूण भी कुछ त्याग करने लग जाया करते हैं

तथा ब्राह्मणादि परमोत्तम वर्णों में भी रागादि दुर्गुणों का प्रवेश होता हुआ दिखलाई दिया करता है ॥१६॥ हे विप्र ! सभी वर्णों द्वारा मेरे मन्त्रों का क्रिया करते हैं—कोई स्वर्ग प्राप्ति के लिये तो कोई पापों से छुटकारा पाने के लिये यज्ञादि कर्मों को क्रिया करते हैं । कुछ दूषितान्त-करण वादी धर्म की कामना के निमित्त ही कर्मों में प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥१७॥ हे विप्रप्रवर ! द्वारा ऐसा युग है जिसमें धर्म और अधर्म संभला वा—सा स्वरूप धारण कर लिया करते हैं । अधर्म का ऐसा दुष्ट प्रभाव भी इस युग में हुआ करता है कि माता-पिता के नामने ही उनकी सन्तान धर्मपुत्री बनी जाया करती है ॥ १६ ॥ इस युग में कुछ दोषों के होने के कारण ही कुछ लोगों की धर्म अल्प हो जाया करती है । प्रायः प्राणियों का ऐसा स्वभाव हो जाया करता है कि कोई पुण्य कर्म करता है तो उसमें दोष निकालने लग जाया करते हैं ॥२०॥ यहाँ तक तीव्रते द्वारा युग का वर्णन करके अब मैं चतुर्थ युग कर्मयुग के धर्म-स्वरूप और लक्षणों का वर्णन करता हूँ इसको आप परम सावधान होकर सुनें । कर्मयुग के आने पर धर्म एक पाद अर्थात् चतुर्थ भाग ही शेष रह जाया करता है ॥२१॥

तामस युगमासाद्य हरि कृष्णत्वमेति च ।
 य कश्चिदपि धर्मात्मा यज्ञाचारान्करोति च ॥२२
 य कश्चिदपि पुण्यात्मा क्रियायोगरतो भवेत् ।
 नर धर्मरतं दृष्ट्वा सर्वेऽमूया प्रबुर्वते ॥२३
 व्रताचारा प्रणश्यति ज्ञानयज्ञादयस्तथा ।
 उपद्रवा भविष्यति ह्यधर्मस्य प्रवर्धनात् ॥२४
 असूयानिरता सर्व दम्भाचारपरायणा ।
 प्रजाञ्चाल्पायुष नर्वा भविष्यति कलौ युगे ॥२५
 युगधर्मा समाख्यातान्त्वया सक्षेपतो मुने ।
 कलि विस्तारतो यूहि त्वं हि धर्माविदा धर ॥२६

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तम ।
 किमाहारा किमाचारा भविष्यति कलियुगे ॥२७॥
 शृणुष्व मुनिशार्दूल सर्वलोकोपकारक ।
 कलिधर्मान्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम् ॥२८॥

यह युग तामस है । इसमें श्री हरि का वर्ण भी कृष्ण हो जाया करता है । यह ऐसा समय है कि इसमें कोई धर्मात्मा प्राणी यज्ञादि करेगा या कोई पुण्यशील प्राणी कर्म काण्ड का परिपालन करेगा तो उन धर्म परायण प्राणियों के गुणों में दोषों के छूँढने का प्रयत्न किया करते हैं ॥२२॥२३॥ कलियुग में बहुधा अधर्म का प्रचार बढ़ जाने से धर्म-ज्ञान—यज्ञ आदि सबका लोप सा हो जाया करता है और पारो और उपद्रव ही उपद्रव होने लगते हैं ॥२४॥ इस युग में सभस्त धर्म के कार्यों में जो भी थोड़े बहुत कही पर होते हुए दिखलाई भी देते हैं तो उन सभी में गुणों में दोषों का निकालना स्वाभाविक सा होगया है । लोग केवल दिखावा और दम्भ के ही लिये धर्मों का आचरण किया करते हैं । सबके ही अन्त करण दूषित होते हैं तथा प्रजा भी अल्प आयु वाली हो जाया करती है ॥ २५ ॥ देवपि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर । आपने बहुत ही संक्षेप में सभी युगों का वर्णन करके मुना दिया है । मेरी इस समय में यह प्रार्थना है कि अब आप बस महाधोर कलियुग के धर्मों का कुछ विस्तार से वर्णन करिये । आप तो धर्मों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं ॥२६॥ हे मुनि श्रेष्ठ । इस कलियुग में ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कंसा आहार किया करते हैं और कंसा आचरण करने लगते हैं ॥२७॥ मनवाचार्य जी ने उत्तर दिया—हे मुनिशार्दूल । आप तो ममस्त लोगो के उपकार करने में सलग्न रहा करते हैं । मुनिये मैं अब इस कलियुग के धर्मों का वर्णन विस्तृत रूप में करता हूँ और जो भी यथार्थ स्वरूप इसका है वही आपके सामने बतलाता हूँ ॥२८॥

सर्वे धर्मा विनश्यति कृष्णे कृष्णत्वमागते ।

तस्मात्कलिर्महाघोर. सर्वापातकसकरः ॥२६
 ब्राह्मणा. क्षत्रिया वैश्या. शूद्रा धर्मपराङ्मुखा ।
 घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजा वेदपराङ्मुखा ॥३०
 व्याजधर्मास्ता. सर्वे असूयानिरतास्तथ. ।
 वृथाहकारदुष्टाश्च सत्यहीनाश्च पण्डिता ॥३१
 अहमेवाधिक इति सर्वेऽपि विवदति च ।
 अधर्मलोलुपा सर्वे तथा वैतडिका नरा ॥३२
 अत स्वल्पामुप सर्वे भविष्यति कलौ युगे ।
 अल्पामुष्ट्वान्मनुष्याणा न विद्याग्रहण द्विज ॥३३
 विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मा वर्तन्ते पुन ।
 व्युत्क्रमेण प्रजा सर्वा त्रियते पापतत्परा ॥३४
 ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णा मनीर्यते परस्परम् ।
 कामक्रोधपरा मूढा वृथामतापपीडिता ॥३५

भगवान् विष्णु का रग कृष्ण हो जाने पर जबकि महाघोर कलियुग आगया तो सभी धर्म नष्ट होने लग जायेंगे यह महान् घोर कलियुग समस्त पापों का भी मकर कर देने वाला होता है ॥२६॥ इस महान् घोर कलियुग के आजाने पर ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग अपने २ धर्म—कर्मों से मुछ मोडने लग जायेंगे । निरर्थक वर्णों का घमण्ड करके द्विजगण वेदों का अध्ययन—अध्यायन एकदम छोड़ देंगे । सबके हृदय में कपट का प्रादुर्भाव होगा धर्म का आचरण जो कुछ भी करेंगे वह दिखाने मात्र का ही होगा वास्तविकता लेश मात्र भी उनमें नहीं होगी । लोग असूया से युक्त होकर दूरगो के गुणों में भी दाप निकाला करेग । जो पण्डित और विद्वान् जब होंगे वे भी मन्य से हीन हो जावेंगे । ॥३०॥३१॥ इस कलियुग में अपने आप को ही थोड़ा बनाकर लोग परस्पर न गम्भीर विवाद और कतह किया करेंग । सभी वर्णों के मनुष्य धर्म न। त्यागकर अधर्म में तत्पर होत हुए

वितण्डावाद करने में ही अपनी कर्त्तव्य परायणता समझते हैं ॥३२॥
 यही कारण है कि इस कलियुग में सभी लोग अत्यल्प आयु वाले हो
 जायेंगे । हे द्विजवर ! आयु के कम होने के कारण पूण विद्या नहीं
 पढ सकेंगे । जब पूरी विद्या ही न होगी तो विद्या (ज्ञान) के अभाव होने
 पर अधर्म की वृद्धि हो जाना एक स्वाभाविक बात है । सब लोगों की
 प्रवृत्ति पाप कर्मों की ओर ही हो जायगी । पाप परायणता होने से
 किसी भी कर्म का क्रम नहीं रहेगा और सभी प्रजा मरने लगेंगी-
 ॥३३॥३४॥ वर्णों में विशुद्धता का अभाव हो जायगा ब्राह्मण आदि
 सभी वर्णों के लोग परस्पर में सकर हो जायेंगे । सम्पूर्ण प्रजा में मूढता
 का साम्राज्य छट जायगा सभी लोग काम-क्रोध आदि में फँस कर
 निष्प्रयोजन स तृप्त होकर स्वयं उत्पीडित हुआ करेंगे ॥३५॥

शूद्रतुल्या भविष्यति सर्वे वर्णा कलौयुगे ।
 उत्तमा नीचता याति नीचाश्चोत्तमता तथा ॥३६
 राजानो द्रव्यनिरतास्तथा ह्यन्यायवर्तिन ।
 पीडयति प्रजाश्चैव करैरत्यर्थं योजितं ॥३७
 शववाहा भविष्यति शूद्राणां च द्विजातय ।
 धर्मस्त्रीष्वपि गच्छति पतयो जारघामिण ॥३८
 द्विपन्ति पितर पुत्रा भर्तार च स्त्रियोग्रखिला ।
 परस्त्रीनिरता सर्वे परद्रव्यपरायणा ॥३९
 मत्स्याभिषेण जीवन्ति ब्रह्मन्शचाप्यजीविकाम् ।
 घोत्रे कलियुगे विप्र सर्वे पापरता जना ॥४०
 सनामसूयानिरता उपहास प्रबुवंते ।
 सरित्तीरेषु कुद्दालैर्वापयिष्यन्ति चौपधी ॥४१
 पृथ्वी निष्फलता याति वीज पुष्प विनश्यति ।
 वेश्यानावण्यशीलेषु स्पृहा कुवन्ति योपित ॥४२

इम महान् चार कलियुग म सभी वर्णों के मनुष्यों के आचरण

शूद्रों के ही समान हो जायेंगे । जो अत्युत्तम वर्णों के लोग हैं उनका इतना अधिक पतन हो जायगा कि वे महान नीच जैसे प्रत्युत नीचों में भी गये-बीते वर्णों वाले हो जायेंगे और नीच वर्णों के लोग उत्तम बन कर गमान में आगे बढ़ने को प्रयत्नशील हुआ करेंगे ॥ ३६ ॥ शासक यग राजा आदि अयाय करके करों के द्वारा प्रजा के द्रव्य को छसोटने लगे और सब प्रकार से अपनी प्रजा के मनुष्यों को सताया करेंगे ॥ ३७ ॥ द्विजलोग शूद्रवर्ण के मृतको का उठाकर ले जायेंगे तथा अपनी पाणि परिणीता पत्नी के होन पर भी जार वर्म (पराई स्त्रिया से भोग) करने में तत्पर हो जायेंगे ॥ ३८ ॥ यह कलियुग ऐसा है कि इसमें पुत्र अपना कर्तव्य का पालन न करते हुए पिता से द्वेष किया करेंगे और नारियाँ अपने ही पति के साथ द्वेषभाव रखना करगी । समस्त प्राणी गदा दूसरों की स्त्रिया का और धन को अपहृत करने की प्रवृत्ति रखना करेंगे ॥ ३९ ॥ हे विप्र ! जब यह महान् घोर कलियुग का समय आ जायगा तो उस समय में मनुष्यों की जीविका मछलिया के मांस से ही हुआ करेगी सभी मनुष्य ऐसे पाप वर्मों में तत्पर हो जायेंगे कि उन्हें अपने वर्मों से द्वेषभाव हो जायगा अर्थात् उचित काम अच्छा ही नहीं लगेगा ॥ ४० ॥ जो भी कोई अपने धर्म का पालन किया करने उनमें गुणों में भी दोष खोजकर उनकी मजाक बनाया करेगा । घोर कलियुग जब आ जायगा तो दिव्य औपधियाँ स्वयं उत्पन्न नहीं हुआ करगी और लोग बुदाला से नदियों के तीर पर खुदाई करके औपधिया का बन किया करेंगे ॥ ४१ ॥ भूमि में ऊपरता हो जायगी जिसके कारण सब पत्थरों के बीज तथा पुष्प समाप्त हो जाया करेंगे । गृह स्थापन में रहने वाली स्त्रियाँ भी बेश्याओं के समान रूप लावण्य तथा शीतस्वभाव की इच्छाएँ किया करगी अर्थात् पत्थरों जसा अपना मन सहन और घेप भूया पसन्द किया करगी ॥ ४२ ॥

धमविप्रयिणो धिप्रा स्त्रियश्च भगविक्रया ।

वेदविक्रयवाध्नान्ये शूद्राचाररतः द्विजा ॥४३
 साधूना विधवाना च वित्तान्यपहरन्ति च ।
 न यजानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा द्रव्यलोलुपा ॥४४
 धर्माचार परित्यज्य वृथावादैर्विपज्जिता ।
 द्विजा कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृश्राद्धादिका क्रिया ॥४५
 अपान्नेष्वेव दानानि प्रयच्छन्ति नराधमा ।
 दुग्धलोभनिमित्तेन गोषु प्रीतिं च कुर्वन्ते ॥५६
 न कुर्वन्ति तथा विप्रा स्नानशौचादिका क्रिया ।
 अवाले कर्मनिरता भविष्यति द्विजाधमा ॥४७
 साधुनिन्दापराशचैव विप्रनिन्दापरास्तथा ।
 न कस्यापि मनो विप्र विष्णुभक्तिपर भवेत् ॥४८
 यज्विनश्च द्विजा नैव धनार्थं राजक्विर ।
 ताडयन्ति द्विजान्दुष्टा वृष्णे वृष्णत्वमागते ॥४९

ब्राह्मण लोग अपने धर्म को बचकर पैसा कमाया करेग और नारियाँ अपनी योनि के द्वारा धनोपाजन किया करेगी । द्विज शूद्रो के समान धर्मावरण करने वाले हों जायये तथा वेदो के शान वा विक्रय किया करे गे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणो मे धन प्राप्त करने का बडा भारी लालच उत्प न हो जायगा । ये लोग कोई भी व्रत-उपवास न कर साधु गुरुषो के और विधवा स्त्रियो के धन का अपहरण करने लग जायगे ॥४४॥ शारदोक्त धर्म के समस्त आचरणो का परित्याग करके द्विजगण विवाद प्रसत होते हुए केवल दम्भ के लिये ही पितृ-श्राद्ध आदि कर्मो को क्रिया करे गे ॥४५॥ इस कलियुग में ऐसे अधम मनुष्यो की अधिकता हो जग्यभी कि वे जो दान के पात्र नही होंगे उ हो लोंगो को दान किया और धर्म भान भान रख कर केवल दूध के प्राप्त होने के ही लालच से गो-मवा किया करे गे । जब दूध न रहेगा तो गौशो को घर मे बाहिर निजाग दिया करे गे । कोई भी गो मवा करने को धर्म

नही समझेगा ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण लोग नित्य स्नान—जीव आदि अपनी परमावश्यक क्रियाओं का त्याग करके अक्षय्य में कर्म करने के कारण अधम हो जायेंगे ॥ ४७ ॥ कलियुग में लोग साधु एवं सत्पुरुषों की निन्दा किया करेंगे और हे विप्रवर ! भगवान् विष्णु की भक्ति में किसी का भी मन नहीं लगा करेगा ॥ ४८ ॥ भगवान् कृष्ण के कृष्णवर्ण हो जान पर दुष्ट राजाओं के परनदुष्ट सेवक यज्ञों के यजन करने वाले लोगों को तथा ब्राह्मणों को कष्ट दिया करेंगे ॥ ४९ ॥

दानहीना नरा सर्वे घोरे कलियुगे गुणे ।

प्रातिग्रह प्रकुर्वति पतितानामपि द्विजा ॥५०

कले प्रथमपादेऽपि विनिदन्ति हरि नरा ।

युगान्ते च हरेर्नामा नव कश्चिद्विद्विष्यति ॥५१

शूद्रस्त्रीसगनिग्ता विधवासगलोलुपा ।

शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कल्पी द्विजा ॥५२

विहाय वेदसन्मार्गं कुपथाचारसगता ।

पापण्डाश्च भविष्यन्ति चतुराश्रमनिदका ॥५३

न च द्विजातिशूद्रा कुर्वति चरणोद्भवा ।

द्विजातिधर्मान्गृह्णन्ति पाषण्डलिगिनोऽधमा ॥५४

कापायप रवीताश्च जटिला भस्मधूलिता ।

शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्ति कूटयुक्तिपरायणा ॥५५

द्विजा स्वाधारमुत्सृज्य परपावन्नभजित ।

भविष्यन्ति दुरात्मान शूद्रा प्रव्रजितास्तथा ॥५६

हे मन्त्रिवर ! जब अधिक घोर कलियुग का समय उपस्थित हो जायगा तो कोई भी दान नहीं किया करेगा और द्विजगण महान् पतितों से भी दान लिया करेंगे ॥ ५० ॥ इस कलियुग के प्रथम चरण के आने पर ही मनुष्य विष्णु भगवान् की निंदा करने में प्रवृत्त हो जाया करते हैं । जब इस युग का अंतिम समय आता है तब तो कोई भी विष्णु

का नाम भी नहीं लिया करे गे ॥ ५१ ॥ कलियुग मे द्विजगण शूद्रो की स्त्रियो के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया करे गे और प्राय मनुष्य विधवाओ के साथ व्यभिचार करने के लिये बहुत लालायित रहा करे गे । द्विजगण शूद्रो का अन्न-सेवन बड़ी पुश्री के साथ किया करे गे ॥ ५२ ॥ वेद मार्ग जो परम धृष्ट है उसको बहुधा सभी छोडकर दूषित एव बुरे-बुरे मार्गों को अपनाया करे गे । सभी लोग पाखण्डी हो जायगे और चारो आश्रमो का पालन करना तो दर की बात है इनकी उलटी बुराई किया करे गे ॥ ५३ ॥ कलियुग म शूद्र तथा नीच वन के लोग ही धर्म के उपदेश देने वाले बन जाया करे ग । ये लोग कूट बुक्ति से सम्पन्न होकर गह्रा वस्त्र धारण कर जटा जूट बडाकर भस्म शरीर पर रमा कर महात्मा बन जाया करे ग । शूद्र लोग द्विजों की सेवा करना त्याग देंगे और स्वयं द्विजो जसा धर्म पालन किया करे गे तथा महान् पाखण्डी बन जाया करे ग । प्राय पापञ्चुलित्सी और बौद्ध जैसे हो जावेंगे ॥५४॥५५॥ द्विजगण अपन धर्म का त्यागकर दूसरो की बनाई हुई रसोई खायेंगे और दुष्ट एवम् मन्यासी बनकर भूमि पर पूजा के पात्र बन जावेंग ॥५६॥

उत्वाचजीविनस्तत्र भविष्यन्ति क्ली मुने ।
 धर्महीनास्तु पापडा वापाला भिदायोऽग्रमा ॥५७
 धर्मविध्वसशीलाना द्विजाना द्विजसत्तम ।
 शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यति ह्यधिरह्योत्तमासनम् ॥५८
 एते नाम्ये च बहवो नगररत्नपटादिका ।
 पापडा प्रच रप्यति प्रायो वेदविनूषका ॥५९
 गीतवा दन्नगुशला क्षुद्रधर्मसनाश्रया ।
 भविष्यति क्ली प्रायो धर्मविध्वसना नरा ॥६०
 अल्पद्रव्या वृथालिगा वृथाएकारदूषिता ।
 हतारि परवित्ताग गपिनारो नराधमा ॥६१

प्रतिप्रहपरा नित्य जगदुन्मागशालिन ।

आत्मस्तुतिपरा सर्वे परनिदापरास्तथा ॥६२

विश्वस्नघातिन क्रूरा दयाघमविदजिता ।

भविष्यन्ति नरा विप्र कलौ चाघमवाधवा ॥६३

हे मुनिवर ! इस कलियुग में प्रायः मनुष्य घूस-रिश्वत खाने में परायण हो जायेंगे और धर्म विहीन पाखंडी लोग तथा अधम पुरुष कापानिक और भिक्षु बन जावेंगे ॥ ५७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! शूद्र लोग उच्च आसन पर विराजमान होकर घम को नष्ट करने के शीरीन द्विजगणों को उपदेश दिया करेंगे ॥५८॥ ऐसे ही लोग नग्न रहकर तथा गे हूए वस्त्र धारण कर बहुत सा पाखंड किए हुए वेदों की और वैदिक धर्म की बुराई करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण किया करेंगे ॥५९॥ मानविशाम कश्चनता प्राप्त कर अनेक क्षुद्र पशुओं का समाश्रय ग्रहण कर चारों ओर घूमते हुए निखाई दग जो कि इस कलियुग में मनुष्य धम का विध्वंस करने वाले हैं जायेंगे ॥ ६० ॥ ऐसी नराधमों के पास द्रव्य बहुत थोड़ा होगा और वे धम का पालन तो शिल्बुल नहीं किया करेंगे कि तु धम के ऊपरी विहन धारण कर व्यर्थ ही धार्मिक बनने का बोरा अभिमान रखना करेंगे और सबदा दूसरों के धन का अपहरण करने की ताक में ही रहना करेंगे ॥६१॥ सभी लोग दान दण्ड करने की इच्छा किया करेंगे और गतार में नीच स्वभाव का समाप्त करने में ही प्रसन्न हुआ करेंगे । इन लोगों का यही वृत्त व्य होगा कि हमेशा दूसरों की निन्दा किया करें तथा अपनी प्रशंसा की शीघ्र होकर रहेंगे । ॥६२॥ हे विप्रवर ! इस कलियुग में प्रायः प्राणी क्रूर पशु बनने लगे— विश्वागतघाती—दया और धर्म में शून्य और कवच अधर्म का प्रचार करने लगे कि वे घम दना करेंगे ॥६३॥

परमायुश्च भविता तदा वपाणि पाडश ।

पारे कलियुग विप्र पचयवा प्रमूयते ॥६४

सप्रवर्षाष्टिवर्षाश्च युवानोज्ञ पते जरा ।
 स्वकमत्यागिन सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तय ॥६५॥
 याचकाश्च द्विजा नित्य भविष्यति कनी युगे ।
 परावमाननिरता प्रहृष्ट परवेशगनि ॥६६॥
 तत्रत्र निदानिरता वृथाविश्र भिणो जना ।
 निदा कुर्वति सतत पितृमातृमुतेषु च ॥६७॥
 वद त वाचा धर्माश्च चेतसा पापलालुषा ।
 धनविद्यावयोमत्ता सवदु खपरायणा ॥६८॥
 व्याधितस्वरर्दुभक्ष पीडिता अतिमायिन ।
 प्रवश्यति वृथवाभी न विचाय च दुष्कृतम् । ६९॥
 धममागप्रगतार तिरस्कुवति पापिन ।
 धमकार्ये रत च वृथाविश्र भिणो जना ॥७०॥

इस महान् घोर कलियुग का काल जब आकर उपस्थित हो
 जायगा तो मनुष्या की सोलह वष की ही रह जायगी । घोर कलियुग
 में पाँच वष की आयु वाली स्त्रियों के स तति हो े लग जायगी ॥६४॥
 सात-आठ वष का मनुष्य जवान समझा जाया करेगा और इसके
 पश्चात् बुढापा आकर उनको घेर दिया करेगा । उस समय म सभी
 लोग अपने कम धर्मों का त्याग कर दिया करेगे । प्राय सब हृन्धन
 हो जायग और अपनी आजीविका को नष्ट कर दिया करेगे ॥ ६५ ॥
 इस घोर कलियुग में नित्य प्रति ब्राह्मण बहे जाने वाल लोग याचना
 किया करेगे । सत्ता ही दूमरों के घर में पहुँच कर अपमानित होग और
 फिर भी प्रमन्न रहा करेगे ॥ ६६ ॥ मनुष्य कथम ही विश्वास रखकर
 जब अमपन्नता प्राप्त करेग निन्ता किया करेगे और सबदा सभी लोग
 अपन माता पिता तथा पुत्रों की निन्ता किया करेगे ॥ ६७ ॥ मनुष्य
 इस घोर कलियुग में कवल वचना ही से धम-धम पुकारा करेगे पर तु
 अपने हृन्ध में पापा की बुढामनाएँ भरे रहा करेगे । प्राय मनुष्य धन

घोवन और ज्ञान के घमण्ड में मग्न होकर सभी प्रकार के कष्टों को भोगा करे गे ॥६८॥ इस महामाया के पाश में मजबूती से जकड़े हुए मनुष्य अहंनिष्ठ अपने दूषित वृत्तिपूर्ण पापकर्मों के कारण से रोग-चार और दुःख में पीड़ित हुआ करे गे । किसी भी दूमरे के पाप का विचार किये बिना ही चाहे जो कुछ मुँह में कह दिया करे गे ॥६९॥ पापात्मा प्राणी इस कलियुग में जो भी कोई धर्म के मार्ग का नायक होगा उसका तिरस्कार कर दिया करे गे । जो भी कोई धार्मिक कर्मों में प्रीति एवं श्रद्धा रखेगा उसको निश्चाय विश्वास रखने वाला ब्रह्म करे गे । ६०।

भविष्यति कलौ प्राप्ते राजानो म्लेच्छजातय ।

शूद्रा भैक्ष्यरताश्चैव तेषां शुश्रूषणे द्विजा ॥७१

न शिष्यो न गुरु कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।

न भार्या न पतिश्चैव भवितारोऽन सकरे ॥७२

कलौ गते भविष्यति धनाढ्या अपि याचका ।

रसविक्रयिणश्चापि भविष्यति द्विजातय ॥७३

धर्मकबुकसवीता मुनिवेषधरा द्विजा ।

अपण्यविक्रयस्ता अगम्यागामिनस्तथा ॥७४

वेदनिदापराश्चैव धर्मशास्त्रविनिदका ।

शूद्रवृत्त्यैव जीवति नरवगर्हा द्विजा मुने ॥७५

अनावृष्टिभय प्राप्ता गगनासक्तदृष्टय ।

भवत्यति कलौ मर्त्या सर्वे क्षुद्भयकातरा ॥७६

वक्ष्णफलाहारास्तापसा इव मानवा ।

आत्मानं तारयिष्यति अनावृष्ट्यान्निदुधिता ॥७७

जब कलियुग का प्रभाव जम आया तो उस समय में राजा म्लेच्छ ही हुआ करने गे, शूद्र जन भिक्षा-याचना किया करे गे और द्विज-गण उनकी सेवा में रत रहेंगे ॥ ७१ ॥ कलियुग में एक ऐसी घोर

मङ्कटता का समय आ जावेगा कि उमम शिष्य-गुरु पिता-पुत्र और भार्या तथा पति का कुछ भी पना ही नहीं चला करेगा क्योंकि सभी वस्तु-व्य विमुञ्चना के शिकार हो जायगा ॥ ७२ ॥ कलियुग की ऐसी महिमा है कि जब यह अपना आधिपत्य जमा लेगा तो धनी वही जान वाग लोग भी याचना वृत्ति करने लगेंगे और जा द्विज होग व भी रस-विक्रय का महान् दूषित वम बड़ी प्रसन्नता से किया करेगा ॥ ७३ ॥ द्विजगण धम का जामा पहिन कर महामुनियो जैमा बेश धारण करके जिन वस्तु-व्य का वेवना शास्त्र मे निषिद्ध बताया गया है उनका भी बचने का काय करने जग जायग तथा जा नारियाँ गमन करने के अयोग्य हैं उनका साथ भी गमन किया करेगा ॥ ७४ ॥ हे मुनिवर ! द्विजगण स्वय ही ब्रह्म की और धर्म शास्त्रो की निंदा किया करेगा द्विज स्वय शूद्रा की वृत्ति से अपनी आज्ञाविका करके मरक व पा बनने चल जायग ॥ ७५ ॥ इम कलियुग मे अनावृष्टि होने के कारण सभी वर्णों के मनुष्य भूख-प्यास से अत्यन्त कातर होकर आकाश में आर तावा करे ॥ ७६ ॥ उस समय मे जब अनावृष्टि हागी तो पर दु खित हुए मनुष्य तपस्विनो के ही समान विवश हाकर फल कन्द और पत्रो का आहार करके अपन उदर का भरण किया करेगे परमाधिक कष्ट स समय बिताया करेगे ॥ ७७ ॥

कामार्ता ह्रस्वदेहाश्च लुब्धाश्चाघर्मन्तपरा ।
 वत्री मव भविष्यति स्वल्पभाग्या बहुप्रजा ॥७८॥
 स्त्रिय स्वपापणवरा वश्यानावप्यशीनिवा ।
 पतिवाक्यमनादृत्य सदान्य हृत परा ॥७९॥
 दु शाना दुष्टगोनपु करिष्यति सदा स्मृहाम् ।
 अमदृता भविष्यति पुष्टानु कुनागता ॥८०॥
 चोरोदभयभीनाश्च काष्ठयन्त्राणि कुर्मत ।
 दुर्मि श्वरपाडाभिस्तोवोपद्रुता जना ॥८१॥

गाधूमानयवान्नाढ्ये देशे यास्यति दुःखिता ।
निधाय ह्यत्रमाणि प्रेरयत्त वच शुभम् ॥८२॥
स्वसायसिद्धिपर्यन्तं बहुता बुवतेजना ।
भिक्षावश्चापि मित्रादिस्नेहसवधयन्त्रिता ॥८३॥
अन्नापाधि निमित्तेन शिष्यान् हृणति भिक्षव ॥८४॥

इमं महान् घोर कालयुगं मया प्रायः सर्व ही काम वासना म
दुःखिनः—वच म ठान—लाभी और अधम परायण हूँ जाँचन । इसी
नियम म द भाम्य दान तथा आश्रित न तति बाल मा हुआ करे म ॥७८॥
इमं कालयुग मे नारिमा वेण्याओ के तुल्य रूप—शील रखकर अपने
शरीर कः भरण पापण क्रिया करे गी और अपने पतिदेव क वचनो के
त मानती हुई सदा ही दूसरो क घरों मे पडी रहता अच्छा समझ गी
॥७९॥ मित्रयो म दुःखीत्वना अधिक हुआ करनी और जा दुःखी त
लोग होंगे उनके साथ ही स्पृहा किया करे गी । जो मित्रयो बुनीत
होगी वे भी अग्य पुण्या के साथ असत् आचरण करने लग गी ॥८०॥
बहुधा मनुष्यो को चो—डाकू आदि क भय त भयभीत होकर घरों
के द्वि ड लगाने की रहता हागा । प्रायः कालयुग म दुःखि का
भय हाता ही रहेगा लोग दधर उधर पर छोड भागत रहा करेगे ॥८१॥
जा दश गहूँ—त्री आदि धान्यो से परिपूर्ण हागा वही पर परम दुःखित
होने हूय पहुँच जाया करे म । वहाँ कोई सु दर काय बताकर शुभ
वचनो का उच्चारण करत हुए अपन काय का सिद्धि जय तरु हागी
मित्रता रक्षता करे म । शैवी मन्त्र घ दिवाकर स्नेह के साथ भिन्ना की
साधना किया करे म ॥ ८२॥८३ ॥ य भि तावृत्ति करके भरण पापण
करने वाले भिन्नु नोग अन्न की प्राप्ति के मनोरथो म गाया का अपना
शिष्य बनाव म ॥८४॥

उभाभ्यामथ पाणिभ्या जिर रघूवन मित्रय ।

शुर्वेद्या गुरुमनु, णामाज्ञामुत्तमवति च ॥८५॥

पापडालापनिरता पापडजनसंगिन ।
 यदा द्विजा भविष्यति तदा वृद्धि वनिर्वाजन् ॥८६
 यदा प्रजा न यक्ष्यति न होष्यति द्विजानय ।
 तदैव तु क्लेशेषु द्विगुणेषु विचक्षणै ॥८७
 अधमवृद्धिभविता बालमृत्युरपि द्विज ।
 सबधमपु नष्टेषु याति नि श्रीकृता जगत् ॥८८
 एव क्लेशे स्वरूप ते कथित विप्रसत्तम ।
 हरिभक्तिपरानेषु न बलिर्वाधते वञ्चित् ॥८९
 तप पर वृत्तयुगे प्रेताया ध्यानमेव च ।
 द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव बली युग ॥९०
 यत्कृते दशभिवर्षेस्त्र ताया शरदा च यत् ।
 द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कली ॥९१

स्त्रिया अपने दोनो हाथो से शिर पुजा कर अर्घ्य दोनो बरो से शिर पुजाने के अप लक्षण को करती हुई अपने से बडो की ओर पति की आज्ञा को नही माना करेगी ॥८५॥ जिस समय मे द्विजगण पाषण्डियो से बाने क्रिया करेंगे तथा ढागियो की सङ्गति किया करेगे सभी समाप्त लेना कि कलियुग की वृद्धि हो गई है ॥८६॥ जिस समय मे प्रजा के मनुष्य देवो का यजन करना त्याग दें उसी समय मे कलियुग की वृद्धि हो जाने का विचक्षण पुरुषो को अनुमान कर लेना चाहिए ॥८७॥ हे द्विजवर । जिस समय मे सभी प्रकार से धम का विनाश होने लग जायगा तब अधम की अल्पधिक वृद्धि होगी—छाटे २ बालको की मृत्यु होने लग जायगी और समस्त जगत् श्रीहत एव निधन होकर दरिद्री हो जावेगा ॥८८॥ हे परम श्रेष्ठ द्विज । आपने सामने इस प्रकार से इस कलियुग का स्वरूप और प्रभव का वर्णन कर दिया है । इसका प्रभाव समस्त मनुष्यो पर हुआ करना है कि तु जो मनुष्य भगवान् की भक्ति किया करते हैं उन पर कलियुग की कुछ भी बाधाए मही

हुआ करती है ॥८६॥ कृतयुग में तपस्या की ही श्रेष्ठता हुआ करती है—त्रतायुग में दान को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है । द्वापर युग में यज्ञादि को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है । इस कलियुग में दान का विशेष महत्त्व होता है । ६०। जो धर्म कम सयुग में दश वर्ष में फल प्रदान किया करता है—जा त्रता युग में एक वर्ष तक करने में पुण्य फल दिया करता है—द्वापर में जो धर्म-कर्म एक मान में फल देता है वही धर्म का कम इस कलियुग में एक अर्हनिश में फल दे दिया करता है और चौबीस घण्टों में ही धर्म कर्म की सिद्धि हो जाया करती है ॥६१॥

ध्यायन्कृते यज्ञयज्ञैश्च्रेताया द्वापरेऽच्ययन् ।
यदाप्नोति त तदाप्नोति पत्नी सकीर्त्य कशपम् ॥६२॥
अहोरात्र हरेर्नाम कीर्तयति च ये नरा ।
पुत्रवति हरिपूजा वा न कलिर्वाधते च तान् ॥६३॥
नमो नारायणायति कीर्तयति च ये नरा ।
निष्कामा वा स्वामा वा न कलिर्वाधते च तान् ॥६४॥
हरिनामपरा ये तु घोरे कलियुग द्विज ।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्वाधत हि तान् ॥६५॥
हरिपूजापरा य च हरिनामपरायणा ।
त एव शिवतुल्यश्च नाथ काया विचारणा ॥६६॥
समस्तजगदाधार परमाथस्वरूपिणम् ।
घोरे कलियुग प्राप्ते विष्णु ध्यायन् सीदति ॥६७॥
अहो अनि सुभाग्यास्ते सर्वद्वै वेशवाचरा ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधमविर्वाजित ॥६८॥

सत्ययुग में दान करने पर जो फल प्राप्त हुआ करता है—वेता में यज्ञादि के करने पर श्रित पुण्य की फल प्राप्ति हुआ करती है और जो द्वापर में भगवत् वा अथन करने से फल प्राप्त होता है वही फल

इस कलियुग में केवल श्री हरि भगवान् के कीर्तन करने से ही मिल जाया करता है ॥६२॥ जो मनुष्य रात दिन श्री हरि भगवान् के नाम का स्मरण किया करते हैं अथवा भगवान् विष्णु का अर्चन किया करते हैं यह धीरे धीरे कलियुग भी उनको कभी बाधा नहीं दिया करता है । भगवान् के चरणों के आश्रय की इस कलियुग में अत्यधिक महिमा है ॥६३॥ जो भी कोई मानव निष्काम भाव से या सकाम भावना में 'नमो नारायणाय — इस मंत्र का जाप किया करते हैं वह घोरतः धीरे धीरे कलियुग भी उनको बाधा नहीं दिया करता है ॥६४॥ हे द्विजवर ! जो इस महान् धीरे कलियुग में भावान् श्री हरि के नाम में प्रार्थना करने हैं वे ही कृष्ण व एव सफल जीवन वाले हैं । श्रीहरि नाम से भी मानवों को यह कलियुग बाधा तथा पीडा नहीं दिया करता ॥६५॥ जो जन श्रीहरि की पूजा में तत्पर रह कर सदा भगवान् का कीर्तन एवं स्मरण किया करते हैं वे साक्षात् भगवान् शिव ही तुल्य होते हैं । इसमें थोड़ा सा भी श्रद्धा करने की आवश्यकता नहीं है ॥६६॥ कलियुग के प्रभाव में बचने के लिये श्री विष्णु का समाश्रय ही एकमात्र उपाय है जो इस सम्पूर्ण विश्व के आधार स्वरूप परमात्मनः भगवान् विष्णु का इस धीरे कलियुग में ध्यान स्मरण किया करते हैं वे कभी भी कष्ट नहीं उठाया करते हैं ॥६७॥ समस्त प्रकार के धर्म कर्मों से रहित इस महान् धीरे कलियुग के समय में किसी भी तरह से एक बार भी भगवान् श्री केशव का अर्चन कर लिया करता है उसको परमाधिक सोभाग्यशाली ही समझ लेना चाहिए ॥६८॥

यूनातिरिक्तदोषाणां कश्चि वेदोक्तकर्मणाम् ।

हरिस्मरणमेवान् सम्पूर्णत्वविधायकम् ॥६९॥

हरे केशव गोविन्द वामुदेव जगन्मग ।

इतिरस्ति ये नित्यं नहि तावाधते वलि ॥१००॥

शिव शंकर रुद्रश शीलपठ त्रितोचन ।

इति जल्पन्ति ये वापि कलिस्तान्नापि वाधते ॥१०१
 महादेव विरूपाक्ष गगाधर मृडाव्यय ।
 इत्य वदति ये विप्र ते कृतार्था न सशय ॥१०२
 जनादन जगन्नाथ पीतावरधराच्युत ।
 इति वाप्युच्चरतीह न च तेषा कलेभयम् ॥१०३
 ससां सुलभा पु सा पुनदारधनादय ।
 घोरे कलियुगे विप्र हरिभक्तिस्तु दुर्लभ ॥१०४
 कमश्रद्धाविहीना ये पापडा वेदनिदवा ।
 अधमनिरता नैव नरकार्हा हरिस्मृते ॥१०५

वेदा में जो कम बतलाये गये हैं उनमें जो कुछ भी कभी रह जाया करती है उसको तथा जो अतिरिक्तता हुआ बरती है उसको और इनके कारण होन बाल दोषा में जो अपणता रहा करती है इसकी पूणता इन कलियुग में एकमात्र श्रीहरि के लीला गुण और नामों के स्मरण के द्वारा ही होती है । ॥८६॥ जो पुरुष नियम ही नियम में श्रद्धा भक्ति पूर्वक रहे हरे । हे ब्रह्म ! हे गाविन्द ! हे वासुदेव ! हे जग मय । — हम रीति से कीर्तन किया करते हैं उनको यह कृत्स्न कलियुग कोई भी बाधा नहीं पहुँचाया करता है ॥१००॥ अथवा ना पुण्य हे शिव ! हे शङ्कर ! हे रुद्र ! हे ईश ! हे नीलकण्ठ ! हे त्रिभोजन ! इस प्रकार से भगवान् शङ्कर के नामों का कीर्तन किया करते हैं उनका भी कलियुग की बाधायें नहीं हुआ करती हैं ॥१०१॥ हे विप्र तो मनुष्य हे महादेव ! हे विरूपाक्ष ! हे गङ्गा धर ! हे मृड ! हे अव्यय ! — इस तरह से भगवान् शिव के प्रथम पावन नामों का कीर्तन किया करते हैं व हम ममार में परम धर्म हैं हममें तत्त्व भी मन्त्र नहीं है ॥१०२॥ किम्वा जा हे जना दन ! हे जग नाथ ! हे पीताम्बर धारिन् ! हे अच्युत ! — इस तरह से भगवन्नामों का उच्चारण किया करते हैं उनको भी हम मरान

दोषपूर्ण कलियुग का कुछ भी भय नहीं रहा करता है ॥१०३॥ इस गगार में जन्म ग्रहण करके मनुष्यों को पुत्र-कलत्र और धन वैभव आदि का प्राप्त होजाना तो मुलभ होता है किन्तु हे विप्रवर ! इस घोर कलियुग में बिना भगवान की कृपा के हुये श्रीहरि की भक्ति का प्राप्त होना महान दुर्लभ है ॥१०४॥ जिन मनुष्यों की कर्मकाण्ड में बिल्कुल श्रद्धा नहीं हुआ करती है तथा महान् पाषण्ड करने वाले, वेदों को निन्दा करने वाले और सदा अधर्म में ही परायण रहा करते हैं वे पुरुष भी यदि श्री हरि भगवान के शुभ नामों का स्मरण किया करते हैं तो कभी भी वे नरक की धातनाओं के भोगने के पात्र नहीं हुआ क हैं ॥१०५॥

वेदमार्गवहिष्ठाना जनाना पापकर्मणाम् ।

मन. शुद्धिविहीनाना हरिनाम्नेव निष्कृति ॥१०६

दैवाधीन जगत्सर्वमिद रथावरजगमम् ।

यथाप्रेरितमेतेन तथैव कुरुते द्विज ॥१०७

शक्तित सर्वकर्माणि वेदोक्तानि विधाय च ।

समर्पयेन्महाविष्णौ नारायणपरायण ॥१०८

समर्पितानि कर्माणि महाविष्णौ परात्मनि ।

सपूर्णता प्रयात्येव हरिस्मरणमात्रतः ॥१०९

हरिभक्तिरताना च पापबधो न जायते ।

अतोऽर्निदुर्लभा लोके हरिभक्तिदुःरात्मनाम् ॥११०

यहो हरिपरा ये तु कलौ घोरे भयकरे ।

ते सुभाष्या महात्मान सत्सगरहिता अपि ॥१११

हरिस्मरणनिष्ठाना शिवनामरतात्मनाम् ।

सत्य समस्तकर्माणि याति सपूर्णता द्विज ॥११२

जो चित्त न भविन्नता रखता करते हैं अर्थात् जिनका चित्त शुद्ध एवं निष्कण्ट नहीं होता है जो वेद विहित मार्ग से बहिष्कृत होते

हैं ऐसे महा पापात्मा पुरण का भी श्री हरि के नामों का स्मरण एव कीर्तन करने से उद्धार होजाय करता है ॥१०६॥ हे द्विज । यह सम्पूर्ण जगत् देव के ही अधीन रहा करते हैं । देव के द्वारा जैसी भी प्रेरणा प्राप्त होती है इस मसार के सभी प्राणी वसी ही चेष्टा किया करते हैं । यह एक परम निष्ठान्त की बात है कि बेवेच्छा के बिना वे एक क्षण भी तप्त से मम नहीं हुआ करता है ॥१०७॥ भगवान के परम एव अनन्य भक्त का यही कर्त्तव्य है कि अपनी शक्ति के अनुसार सम्पूर्ण वेद विहित कर्मनुष्ठानों को करके उन सबको भगवान महा विष्णु की ही सेवा में समर्पित कर देना चाहिये ॥१०८॥ परात्पर भगवान की सेवा में समर्पित किये हुये सब कर्म श्री हरि के स्मरण मात्र से ही परिपूर्णता को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥ १०९ ॥ जो मनुष्य श्री हरि भगवान की भक्ति में परायण रहा करते हैं उनको कभी पापों वा बन्धन नहीं हुआ करता है । अतएव यह श्रीहरि भगवान की धडा भक्ति दुष्ट-दुरात्माओं में होना बहुत ही फाँटन हुआ करता है ॥११०॥ इस घोर कलियुग में एक बहुत ही आश्चर्य की बात यह है कि इसमें जो श्री हरिभक्ति तत्पर रहा करते हैं ॥१११॥ हे द्विजवर । जो मनुष्य श्री हरि भगवान के स्मरण में अथवा शिव भगवान के नाम में निष्ठा रखकर निरन्तर परायण रहा करते हैं उनके समस्त कर्म परिपूर्ण हो जाया करते हैं ॥११२॥

अहो भाग्यमहो भाग्य हरिनामरतात्मनाम् ।

त्रिदशैरपि ते पूज्या किन्त्येवंहुभाषितै ॥११३

तस्नात्समस्तलोकाना हितमेव भयोच्यते ।

हरिनामपरान्मर्त्यान्नि कलिर्वाधते क्वचित् ॥११४

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥११५

एव न नारदो विप्रा सनवेन प्रबोधित ।

परा निर्वृत्तिमापन्न पुनरेतदुवाच ह ॥११६

भगवन्सर्वंशास्त्रज त्वयातिक्कृणात्मना ।

प्रकाशित जगज्ज्योति पर ब्रह्म सनातनम् ॥११७

एतदेव पर पुण्यमेतदेव पर तप ।

पुण्डरीकाक्षस्य स्मरण सधपापविनाशनम् ॥११८

भगवान् श्री हरि के नाम से जिन मनुष्यों का मन रमण किया करता है उनका भाग्य परम धन्य है । उनके सौभाग्य की क्या सराहना की जावे ? अधिक कहाँ तक कहा जावे देवगण भी उन भक्तों का समादर-सन्धार करने की उत्कृष्ट अभिलाषा किया करते हैं ॥११३॥ अतएव इस समय में मैं सभी प्राणियों के परम हित की बात बतना चाहूँ कि श्री हरि भगवान् के नाम स्मरण से तत्परता रखने वाले मनुष्यों को यह कल्पियुग कैसा ही घोर क्यों न हो, कष्ट में नहीं डाल सकता है ॥११४॥ हे द्विन्द्वर ! इस महान् घोर कल्पियुग में श्री हरि का नाम विष्णु का नाम ही मेरा जीवनाधार है । इस कल्पियुग में अब किसी भी प्रकार से गति है ही नहीं । कोई उद्धार का मार्ग नहीं है और अब कोई भी ऐसा अधोप साधन भी नहीं है ॥११५॥ महा महर्षि सृतजी ने कहा—हे विश्वे ! श्री मनवावायजी के द्वारा इस रीतिसे उपदेश देने पर देवर्षि श्रीनारदजी परम प्रमत्त एवं सुधी होकर इस तरह से प्रायना करन लगे थे ॥११६॥ श्री नारदजी ने कहा—हे भगवान् आप सौ सभी शास्त्रों के तत्वों के ज्ञाता हैं । आपसे हृदय में बहुत अधिक करुणा भरी हुई है । यही कारण है कि आपने इस समय में जगज्ज्योति सनातन ब्रह्म परमात्मा के गरुडस्वरूप का कथन करके मेरे तानने प्रवृत्त किया है ॥११७॥ भगवान् पुण्डरीकाक्ष प्रभु का स्मरण समस्त पापों को दूर भगा देने वाला है । पशु नाम का ध्यान सर्व भीतक परम पुण्य है और यही परमो वृष्ट तपश्चर्या है ॥११८॥

॥ शिक्षा-निरूपण ॥

श्रुत्वा सनदन स्पेत्थ वचन नारदो मुनि ।
 असतुष्ट इव प्राह भ्रातर त सनदनम् ॥१
 भगवन्सर्वमाख्यात यत्पृष्ट भवतो मया ।
 तथापि नात्मा प्रीयेत शृणवन्हरिकथा मुहु ॥२
 श्रूयते व्यासपुत्रस्तु क्षुभ परमधर्मवित् ।
 सिद्धि सुमहती प्राप्ते निर्विण्णोवातर वहि ॥३
 ब्रह्मन् पु सस्तु विज्ञात महता सेवन विना ।
 न जायते कथ प्राप्ते ज्ञान व्यासात्मज शिशु ॥४
 तस्य जन्म रहस्य मे कर्म चाप्यस्य शृण्वते ।
 समाख्याहि महाभाग मोक्ष शास्त्रार्थं विद्भवान् ॥५
 शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्ति ममासत ।
 या श्रुत्वा ब्रह्मतत्त्वज्ञो जायते मानवो मुने ॥६
 न हायनेनं पलितेनं वित्तेन न वधुभि ।
 ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचान स तो महान् ॥७

देवपि श्री नारदजी सनन्दनजी के इस प्रकार के वचन का प्रवण करके अपने भाई सनन्दनजी से अस-तुष्ट से होते हुए यह बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् । मैंने आपसे जो कुछ भी पूछा था वह आपने सभी मेरे सामने वर्णन करके सुना दिया तो भी बारम्बार श्रीहरि भगवान् की कथा को सुनते हुए मेरी आत्मा में सन्तुष्टि नहीं हो रही है ॥ २ ॥ ऐसा सुना जाना है कि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी के पुत्र श्री शुकदेव जी परमाधिक धर्म के ज्ञाता विद्वान् हैं और बाहर-भातर सभी और से निर्देह को प्राप्त होकर महती सिद्धि का प्राप्त हो गये हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मन् । विना महान् पुरुषों की सेवा-सङ्गति के पुरुष का ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुआ करती है फिर श्री वेदव्यासजी के पुत्र श्री शुकदेवजी के ज म ब्रह्म

करने का तथा कर्म का रहस्य श्रवण करने का परम हृष्ट्युक्त है अनएव
 भरे समक्ष में उसे ही आप बतलाने की कृपा कीजिये ॥५॥ श्री सनन्दन
 जी ने कहा—हे विप्र ! मैं अब परम सक्षेप में श्री शुक्रदेव जी की
 उत्पत्ति का वर्णन करूँगा उसको आप मुनिये । हे मुने ! यह श्री गुरु
 देवजी की उत्पत्ति की कथा ऐसी अद्भुत महिमा से परिपूर्ण है कि
 जिसका श्रवण करके मानव ब्रह्म के तत्त्व का ज्ञाता हो जाया करता
 है ॥ ६ ॥ बहुत से वर्षों के लगा देन पर और वृद्धता प्राप्त करके घन
 और बन्धुओं के द्वारा श्रेयि गणों ने धर्म का समावरण किया था किन्तु
 फिर भी कोई महस्व प्राप्त न कर सका । हम लोगो में तो जो अनुष्ठान
 होता है वही महान् माना जाया करता है । ॥ ७ ॥

अनूचानं कथं ब्रह्मन्पुमान्भवति मानसम् ।

तस्य कर्म समाचक्ष्व श्रोतुं श्रीगुरुहस्तमम ॥८॥

शृणु नारद वक्ष्यामि ह्यनूचानस्य लक्षणम् ।

यज्ज्ञात्वा साग वेदानामभिज्ञो जायते नर ॥९॥

शिक्षा कल्पो द्योत्तरण निरस्त ज्योतिष तथा ।

छन्द शास्त्र पठेनानि वेदागानि त्रिदुर्बुधा ॥१०॥

श्रग्वेदोप यजुर्वेद सागवेदा ह्ययवंप ।

वेदाश्चत्वार रात्रिं प्रोवाच धम निरूपये ॥११॥

सागान्नेदान्गुरोरोऽस्तु नमघोते द्विजोत्तम ।

मोक्षदानं प्रभवति नाऽप्यथा कथं वाटिभि ॥१२॥

अर्गाना लक्षणं वदति वेदानां शक्तिं विष्णुरात् ।

स्वस्वमागु महार्घज्ज सागेषु तेषु मातृ ॥१३॥

प्रश्नभागागमनुलम्बया मम कृता द्विज ।

सऽज्ञानं कथयिष्यामि साग्मेया मुनिशिष्यम् ॥१४॥

दर्शनं श्री नारदजी ने कहा — हे मानस प्रशान्त करने वाले ।

हृष्ट्युक्त ! अब मैं तुझे श्री गुरुहस्त की कृपा का वर्णन करूँगा ।

अनुचान किस प्रकार से हुआ करता है ? उस अनुचान का क्या कर्म होता है ? मेरे हृदय में इसके ही ध्येय करने का महान् कीर्तन उत्पन्न हो रहा है ॥ ८ ॥ श्री मनन्दनजी ने कहा—हे नारद ! अब आप समाहित होकर सुनिये । मैं अनुचान का ही लक्षण आपको बतलाता हूँ जिम्हारे मनुष्य जान करके अज्ञो के सहित समस्त वेदों का पूर्णज्ञान हो जाया करता है ॥ ९ ॥ बुधना के द्वारा यह बतलाया गया है कि वेदों के छँ अङ्ग शास्त्र हुआ करते हैं उनके नाम ये होते हैं—प्रथम जिज्ञा वेदाङ्ग शास्त्र है—पिर कल्प है, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छडवाँ छन्द' शास्त्र होता है ॥१०॥ धर्म के निरूपण करने के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वण वेद—ये चार ही वेद बताये गये हैं ॥११॥ जो पुरुष उपर्युक्त छँ अङ्ग शास्त्रों के सहित इन सम्पूर्ण चारों वेदों का अध्ययन किया करता है और विधिपूर्वक गुरु की सेवा में उपस्थित होकर पढ़ता है वही श्रेष्ठ द्विज अनुचान ही सक्ता है अग्यथा भन ही करोठी ही ग्रन्थों का अध्ययन किया कर अनुचान नहीं हो सक्ता है ॥ १२ ॥ श्री नारजी ने कहा—हे मानद ! आप तों अङ्ग शास्त्रों के सहित इन समस्त चारों वेदों के महान् विद्वान् ही और हम सागों में आप ही परमार्थिक अभिज्ञ हैं सो अब आप कृपया इन चारों वेदों का तथा छँओ उक्त अङ्गों का विस्तारपूर्वक लक्षण बतलाइये ॥१३॥ श्री मनन्दनजी ने कहा—हे द्विज ! आपन ता यह बडा भारी प्रश्ना का भार मरे ऊपर डाल दिया है क्योंकि यह तो महान् अनुचित है कि विस्तार सहित इनका वर्णन किया जावे किन्तु अब आपकी ऐंगी ही उदाहृत अभिवापा ध्यान करन की है ता मैं इन सबका मात्र परम महोदय मुनिश्चिन रूप में आरद समय में ब³ना ॥१४॥

स्वर प्रधान जिज्ञाया कीर्तित मुनिभिर्द्विजैः ।

वेदाना वेदविद्भिन्नु तच्छृणुष्व वदामि ते ॥१५॥

आचिन गापित चैव मानिक च स्वगान्तरम् ।

वृत्तान्ते स्वर शास्त्राणा प्रयोक्तव्य विशेषत ॥१६

एकातर स्वरो ह्यप्सु गाथा शुद्धयतर स्वर ।

सामसुभ्यतर विद्यादेतावत् स्वरतोन्तरम् ॥१७

ऋक्सामयजुरगानि ये यज्ञपु प्रयुजते ।

अविजानाद्विशिक्षायास्तेषा भवति विस्वर ॥१८

मत्रो हीन स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्ता न तमथमाह ।

स एव वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोपराधात् ॥१९

उर कठ शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।

सवनान्याहुरेतानि सामवायर्द्धतोन्तरम् ॥२०

उर सप्त विवार स्यात्तथा षष्ठस्तथा शिर ।

नवशक्तोसि व्यक्तासु तथा प्रावचनो विधि ॥२१

(सर्वे प्रथम शिक्षा शास्त्र उन छँ पूर्ण वर्णित अङ्गो मे आता है । द्विजगणा ने और मुनियो ने शिक्षा में स्वर की प्रधानता वर्णित की है तथा वदो के वेत्ताओ ने भी ऐसा ही बतलाया है । अब आप उसका ही श्रवण कीजिये । मैं आपको बतलाता हूँ ॥ १५ ॥ आर्चिक—गायिक और सामिक स्वरान्तर होता है । स्वर शास्त्रो का कृता त म विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए ॥१६॥ अपों मे एकातर स्वर होता है और गाथा शुद्धयतर स्वर हाना है तथा सामो म भ्य तर स्वर ही जान लना चाहिए—इतना ही स्वरान्तर होता है ॥ १७ ॥ जा लोग यणो म ऋक् साम यजु के अङ्गो का प्रयोग किया करते है विशिषा क अभि जान से उनका विस्वर हो जाया करता है ॥ १८ ॥ स्वर म और वण से विहीन म व्र का प्रयोग करना व्यथ ही होता है और उसने कुछ भी प्रयोजन निष्क रही हुआ करता है अपितु स्वर के अपराध स वह म व्र का प्रयोग करने वाला अपन शत्रु का वज्र के द्वारा इन्द्र के ही समान यजमान का वनन किया करता है ॥ १९ ॥ उर स्थान षष्ठ और शिर इन तीन स्थाना वो वाङ्मय म शवन उहा गया है अथवा गाम वो

भी अर्द्धानोऽन्तर कहा गया है । २०१ उर स्थल सप्त विचार होता है तथा कण्ठ और शिर भी होता है । व्यक्ताओ बवशक्त है उसी भाँति शब्दचन विधि है । २१।

कठकालाप वृत्तोपु तैत्तिराट् करकेषु च ।

ऋग्वेदे सामवेदे च वक्नव्य प्रथम स्वर ॥२२

ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते ।

उच्च मध्यम सघात स्वरो भवति पार्थिव ॥२३

तृतीय प्रथम ऋष्टा कुर्वत्याङ्कुरकान् स्वरात् ।

द्वितीयाद्यास्तु मद्रातास्तैत्तिरीयाश्चतु स्वरात् ॥२४

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोश्च चतुर्थक ।

मद्रा ऋष्टो मुनीश्वरारागान् कुवति सामगा ॥२५

द्वितीय प्रथमावेतो नाडिभाल्लविनी स्वरो ।

तथा शतपथा वेतो स्वरो वाजसनेपिनाम् ॥२६

एते विशेषतः श्लोका स्वराङ्गं सार्वभौदिकम् ।

इत्येतच्चरित सर्वं स्वराणा सार्वभौदिकम् । २७

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणा चरित यथा ।

अल्पग्रथ प्रभृतार्थ सामवेदाग मुत्तमम् ॥२८

कण्ठ—कलाप—वृत्तो मे और तैत्तिराट् करको मे ऋग्वेद मे और सामवेद मे प्रथम स्वर ही कहना चाहिए ॥२२॥ ऋग्वेद तो द्वितीय और तृतीय के द्वारा होता है । उच्च मध्यम का सघात पार्थिव स्वर होता है ॥२३॥ करक स्वरो को करकी हुई मे तृतीय प्रथम ऋष्टा होनी है । द्वितीयाद्य मद्रात है और तैत्तिरीय चार स्वरो के हाते है ॥२४॥ प्रथम-द्वितीय और तृतीय एव चतुर्थक मद्रा ऋष्ट सामवेद का गान करने वाले मुनीश्वर रागो का करते है । २५। ये प्रथम और द्वितीय नाडिभाल्लवित स्वर होते है । तथा वाजसनेपिको के ये दोना शतपथ स्वर होते है । ॥२६॥ विशेष रूप से ये स्वर सभी वेदो मे होने वाले होते है—ऐसा

कहा गया है। यह इनका ही सब स्वरों का सार्व वैदिक चरित है। १२७।
सामवेद में जिम प्रकार का स्वरों का चरित है वह मैं बतलाऊंगा।
ग्रन्थ तो बहुत ही अल्प है किन्तु अर्थ बहुत अधिक है। सामवेद का
अङ्ग अत्युत्तम होता है ॥२८॥

तान राग स्वर ग्राम मूर्च्छनाना तु लक्षणम् ।
पवित्र पावन पुण्य यथा तुभ्य प्रकीर्तितम् ॥२६
शिक्षामाहृद्विजातीनामृग्यजु साम लक्षणम् ।
सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्रैकविंशति ॥३०
ताना एको न पचाशदित्यतत् स्वरमडतम् ।
षड्जश्च ऋषभश्च गाधारो मध्यमस्तथा ॥३१
पचमो धवतश्चैव निषाद सप्तम स्वर ।
षड्जमध्यम गाधारस्त्रयो ग्रामा प्रकीर्तिता ॥३२
भूर्ल्लोकाच्चापरे षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यम ।
स्वर्गाभ्राच्चैव गाधारो ग्राम स्थानानि त्रीणि हि ॥३३
स्वराणां तु विशेषण ग्रामरागा इति स्मृता ।
विंशतिमध्यमग्रामे षड्ज ग्रामे चतुर्दश ॥३४
तानान् पचदशेच्छति गाधारे सामगायिनाम् ।
नदी विशाला मुमुक्षी चित्रा चित्रवतीमु ॥३५

तान राग स्वर ग्राम और मूर्च्छना का लक्षण परम पवित्र पावन
(पवित्र बनाने वाला) और पुण्यमय होता है जैसा कि आपको मैंने बर्णित
करके बतलाया है ॥२६॥ यह द्विजातियों को शिक्षा कही जाती है जो
ऋग् यजु और साम का लक्षण है। स्वर सात होते हैं—ग्राम तीन होते
हैं और मूर्च्छना एकत्रिस हुआ करती हैं ॥ ३० ॥ तान इवयावन
हुआ करती हैं—यह इनका ही स्वरों का मण्डल हुआ करत है। अब
उन सप्त स्वरों के नाम बतलाये जाते हैं—षड्ज—ऋषभ—गा धार-
मध्यम—पचम—धवत और निषाद प सात स्वर हैं। षड्ज—मध्यम और

७ गांधार—ये तीन ग्राम कीर्तित किये गये हैं ॥३१॥३२॥ इन ग्रामों के तीन ही स्थान हुआ करने हैं—भूर्लोक में अपर में पञ्च होता है और भुवर्लोक में मध्यम होता है । स्वर्गाक्ष में गांधार हुआ करता है । ॥३३॥ विशेष रूप से स्वरो के ग्राम राग बहे गये हैं । मध्यम ग्राम में शीम होते हैं और पञ्च ग्राम में शोदह हुआ करता है ॥३४॥ सामगा-पिपा की गांधार में पञ्च तानों की इच्छा किया करता है । अब मूर्च्छनाओं के नाम निर्दिष्ट किये जाते हैं—नदी—विशाला—समुखी—विश्रा-चित्रवती—मुखा और बला ये देवा की सात मूर्च्छनाएँ भक्त लेनी चाहिए ॥३५॥

बला चाप्यथ विज्ञेया देवाना सप्त मूर्च्छना ।
 आप्यायिनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कर्पादिनी ॥३६॥
 मैत्री च वाहता चैव पितृणा सप्त मूर्च्छना ।
 पञ्जे तूत्तरमद्रास्याहपभे चाभिरूहता ॥३७॥
 अश्वक्राता तु गांधारे तृतीया मूर्च्छना स्मृता ।
 मध्यमेखुल सौवीरा हृषिक्रा पचमे स्वरे ॥३८॥
 ध्रुवते चापि विज्ञेया मूर्च्छना तूत्तरा मता ।
 निपादे रजनी विद्याट्टपीणा सप्त मूर्च्छना । ३९॥
 उपजीवति गधर्वा देवाना सप्त मूर्च्छना ।
 पितृणा मूर्च्छना सप्त तथा यक्षान शशय ॥४०॥
 ऋषाणा मूर्च्छना सप्तवास्त्विमा लोकिरा स्मृता ।
 पञ्ज प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षम ॥४१॥
 पितृन् प्रीणाति गांधारो गधर्वान् मध्यम स्वर ।
 देवान् पितृ नृपौशनेव स्वर प्रीणाति पचम ॥४२॥

आप्यायिनी—विश्वभृता—चन्द्रा—हेमा—कर्पादिनीमैत्री—वाहती—
 ये सात मूर्च्छनाएँ पितृवर्णों की हुआ करती हैं । पञ्च में उत्तर मद्रा
 जाती है और अक्षर में अश्वक्रता हुआ करती है ॥३६॥३७॥ गांधार
 में अश्वक्राता तीसरी मूर्च्छना बनायी गयी है । मध्यम में खुल छी-

सलितपद-अक्षर-गुण मे समृद्ध होना है—इस प्रकार मे दश गुणों से मुक्त गान होता है। चौदह गीत के दोष हुआ करते हैं उनके निम्नांकित नाम हैं—शक्ति-भाषण-भीति-उद्युष्ट-अनुनासिक-वाकस्वर-ऊर्ध्वगन-स्थान विवर्जित विस्वर-विरम-विश्लिष्ट-विप्राहत व्याकुल-नालहीन ॥४४॥४५॥ जो आचार्य लोग होने हैं और पण्डितगण पदच्छेद के इच्छुक होते हैं। स्त्रियाँ मधुर गुण को चाहती हैं तथा इन जन निकृष्ट गुण को चाहा करते हैं ॥४६॥ अब समस्त स्वरों के वर्णों के विषय मे बतलाया जाता है जो प्रत्येक स्वर के भिन्न २ मान जाते हैं—पङ्कज स्वर पद्म दल की आभा वाला होता है। ऋषभ स्वर शुक के पिञ्जर के समान वर्ण से युक्त हुआ करता है। भुवर्ण की सी आभा वाला गांधार स्वर हुआ करता है। कुन्द के पुष्प के तुल्य मध्यम स्वर का वर्ण होता है ॥४७॥ पञ्चम स्वर कृष्ण वर्ण से युक्त होता है और धैवत स्वर को पीत वर्ण माला जाना जाता है। निपाद स्वर मे सभी वर्ण हुआ करते हैं—ये तने ही स्वरों के वर्ण होते हैं ॥४८॥ पञ्चम, मध्यम और पङ्कज—ये दोनो स्वर ब्राह्मण कहे गये हैं और ऋषभ तथा धैवत ये दोनो स्वर त्रिय वर्ण वाले होते हैं ॥४९॥

गांधारश्च निपादश्च वैश्यावर्द्धन वै स्मृतौ ।

शूद्रत्व विधिनाद्धेन पतितत्वात्प्रसशय ॥५०॥

ऋषभो मूर्च्छितवर्जितो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र ।

निपतित मध्यमरागे स निपाद पाङ्कज विद्यान् ॥५१॥

यदि पञ्चम स्वरों विरमते गांधारश्चातर स्वरों भवति ।

ऋषभो निपादसहिस्त पञ्चममीदृश विद्यात् ॥५२॥

गांधारस्याधिपत्येन निपादस्य गतागतं ।

धैवतस्य च दौबल्यान् मध्यम ग्राम उच्यते ॥५३॥

ईपत् स्मृत्यो निपादस्तु गांधारश्चाधिको भवेत् ।

ध्रुवत रुपितो यत्र स पञ्चमस्य ईरित ॥५५

अतरस्वरसयुक्तकार्कलि यत्र दृश्यते ।

त तु साधारित विद्यात् पञ्चमस्य तु कंशिकम् ॥५५

कंशिक भावयिस्वा तु स्वरं सर्वं समतत ।

यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कंशिकमध्यम ॥५६

गान्धार और निषाद ये दोनो पंचपाचद्वय कहे गये हैं तथा अर्द्ध विधि से पतित व होने के कारण से गूढत्व होता है—इसमें संशय नहीं है ॥५०॥ मूर्छित वज्रिन ऋषभ और ध्रुवत के महित जहाँ पर पञ्चम होता है वह निषाद मध्यम राग होता है और उसको निषाद एवम् पाञ्चन जानना चाहिए ॥५१॥ यदि पञ्चम स्वर विराम को प्राप्त होना है और गान्धार अन्तर स्वर हो जाता है तो उसको इस प्रकार का पञ्चम ही जानना चाहिए ॥ ५२ ॥ गान्धार स्वर के आधिपत्य के द्वारा और निषाद स्वर के प्रतापों से तथा ध्रुवत स्वर की दुबलता से मध्यम ग्राम कहा जाया करता है ॥५३॥ निषाद स्वर ईषत्स्पृष्ट होता है और गान्धार अधिक होता है तथा जहाँ पर ध्रुवत स्वर कम्पित होता है वह पञ्चम ग्राम कहा गया है ॥ ५४ ॥ अन्तर स्वर से गयुक्त जहाँ पर कार्कलि दिखलाई दिया करता है तो उसकी पञ्चमस्य कंशिक साधारित समझना चाहिए ॥५५॥ सभी ओर से समस्त स्वरो के द्वारा कंशिक को भावयित करके जिससे मध्यम म न्यास किया जाता है उसी से कंशिक मध्यम होता है ॥५६॥

भावतिर्दृश्यते यत्र प्राधान्य पञ्चमस्य तु ।

पश्यप कंशिक प्राह मध्यमप्रोममभम् ॥५७

गैतिगेप विदु प्राजा धैतिकारुप्रवादनम् ।

वेति वाधस्य सजेय गधर्वस्य प्ररोचनम् ॥५८

य नामगायां प्रथम स धेणोमध्यम स्वर ।

यो द्वितीय स गान्धारस्मृत्तोपरत्तृपभ स्मृत ॥५९

चतुर्थं पङ्क इत्याहुः पचमो धैवते भवेत् ।
 पष्ठो निपादो विज्ञेयः सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ॥६०॥
 पङ्क मयूरो वदति गावो रभति चर्षभम् ।
 अजाविके तु गांधार क्रीचो वदति मध्यमम् ॥६१॥
 पुष्प साधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम् ।
 अश्वस्तु धैवत वक्ति निपाद वक्ति वृञ्जरः ॥६२॥
 कठादुत्तिष्ठते पङ्क शिरसस्त्वृषभः स्मृतः ।
 गांधारस्त्वनुनासिचय उरसो मध्यमः स्वरः ॥६३॥

जहाँ परपञ्चम की प्रधानता से काकलि दिखलाई दिया करती है उसको कश्यप मध्यम ग्राम से समुत्पन्न कौशिक कहते हैं ॥ ५७ ॥ प्राज्ञगण धेतिकामु प्रवादन को गेतिगेय कहते हैं और गन्धर्व का प्ररोचन वेतिवाद्य की सजा वाला होता है ॥५८॥ जो साम गान करने वालो का प्रथम स्वर होता है वह धेणु का मध्यम स्वर हुआ करता है । जो द्वितीय स्वर होता है वह गान्धार है और तृतीय ऋषभ माना गया है ॥५९॥ चतुर्थ स्वर पङ्क कहा गया है और धैवत में पञ्चम मे होता है । छठवाँ स्वर निपाद जानना चाहिए और सप्तम स्वर पञ्चम कहा गया है ॥६०॥ मयूर (मोर) पक्षी सर्वदा पङ्क स्वर का उच्चारण किया करता है । गीए सदा ऋषभ स्वर मे ही रँमाया करती है । अजाविक मे गान्धार स्वर होता है तथा क्रीञ्च मध्यम स्वर मे बोला करता है ॥६१॥ पुष्पो के साधारण विकास के समय मे कोयल पञ्चम स्वर मे बोलती हे । अश्व सर्वदा धैवत स्वर मे ही बोला करता है और हाथी निपाद स्वर मे बोलता है ॥६२ ॥ पङ्क घर कष्ट से उठा करता है और ऋषभ स्वर शिर से उठने वाला कहा गया है । गांधार स्वर अनुनासिक कहा गया है जो नासिका से ही समुत्पन्न होता है । मध्यम स्वर उरः स्वन से उठता है ॥६३॥

उरसः शिरसः कठादुत्थितः पञ्चमः स्वरः ।

ललाटात् धैवत विद्यानिपाद सर्वसधिजम् ॥६४
 नामा कण्ठमुरस्तालु जिहवादताश्च सथित ।
 पद्भिः सजायते मस्मान् तस्मान् पङ्कज स्मृत ॥६५
 वायु समुत्थितो नाभे कण्ठशीर्षं समाहित ।
 नदत्तृपभवद्यस्मात् तस्मान् ऋषभ उच्यते ॥६६
 वायु समुत्थितो नाभे कण्ठशीर्षं समाहित ।
 वानि गधवह् पुण्यो गाधारस्तेन हेतुना ॥६७
 वायु समुत्थितो नाभेऽरौ हृदि समाहित ।
 मधिप्राप्तौ गहि वरदो मध्यमत्व समुत्थने ॥६८
 वायु समुत्थितो नाभेरूरो हृत्कठनोहत ।
 पचस्थानात्स्थितस्यास्य पचमत्व विधीयत ॥६९
 धैवत च निपाद च वजयित्वा तु तादृभौ ।
 जेषान्पच स्वरास्त्वन्य पचस्थानोत्थितान् त्रिदु ॥७०

पञ्चम स्वर के उठने के तीन स्थान माने गये हैं यह उर स्थल
 म कण्ठ म खोर गिर म तीना स्थाना म उठना है । धैवत स्वर का
 उ स्थान ललाट मे जानना चाहिये और निपाद स्वर समस्त मधियो से
 समुत्पन्न होता है ॥६५॥ यह पङ्कज स्वर नाभिका कण्ठ उर स्थल
 तातु जिहवा और हाठ इन छे स्थाना म सथय प्राप्त करने जाता
 होता है । क्योंकि वह उपर्युक्त छेथा स्थानों म सजात हुआ करता है
 इगोनिय इसका नाम 'पङ्कज—यह पङ्क गया है ॥६५॥ नाभि के स्थान
 म उठा हुआ वायु फिर कण्ठ और गिर म समाप्त हुआ करता है
 अर्थात् टपकता है और इसी कारण म एगवा नाम ऋषभ स्वर कहा
 गया है । कदन का तात्पर्य यह है कि सभी स्वरा क नाम, त्रिया और
 अथ क अनुपपत्ती पङ्क गये हैं ॥६६॥ नाभि स्थल से समुत्पन्न वा
 कण्ठ और शीर्ष म जाकर टपकता है फिर वह पुण्य वायु
 बहुत त्रिया करता है । इसी कारण मे गाधार नाम स्वर

गया है ॥६७॥ नाभि से उठा हुआ वायु उर म्बल और हृदय में समाहित होजाता है । क्योंकि यह मध्यम ही प्राप्त होजाता है अतएव इस वरद स्वर का नाम मध्यम पद गया है ॥६८॥ नाभि से उठकर उर स्थान हृदय और कण्ठ में समाहित होकर बाहिर प्रकट होता है । यह पाँच स्थानों वाला है अतएव इसका नाम पञ्चम हो गया है ॥६९॥ धैवत और निपाद इन दो स्वरो को व्रजित करने अथ विद्वान् शप सभी स्वरो को पाँच स्थानों में समुत्थित मानते हैं ॥७०॥

पचस्थानस्थित त्वेन सवस्थानानि धामते ।

अग्निगीतस्वर पङ्कज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते ॥७१॥

सामेन गीतो द्वाधारे विष्णुना मध्यम स्वर ।

पचमस्तु स्वरो गीतस्त्वयै वति निधारय ॥७२॥

धैवतश्च निपादश्च गीतो तु बुरुणा स्वरो ।

आद्यस्य देवन ब्रह्मा पङ्कजस्याप्युच्यते बुधे ॥७३॥

तीक्ष्ण दोष्ट प्रकाश त्वाहपभस्य हुताशन ।

गाव प्रणीते तुप्यति गाधारस्तेन हेतुना ॥७४॥

श्रुत्वा धैवोपतिष्ठति सौरभेया न सशय ।

सोमस्तु पचमस्यापि देवत ब्रह्मराट् स्मृतम् ॥७५॥

निह्नासो यस्य बुद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत् ।

अतिसधीयते यस्मादेतान् पूर्वोत्थितान् स्वरान् ॥७६॥

तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्व विधीयते ।

निपीदति स्वरा यस्मानिपादस्तन रेतुना ॥७७॥

पाच स्थानों में स्थित होने के कारण ये सभी स्थान धारण किये जाते हैं । पङ्कज स्वर अग्निदेव के द्वारा गाया हुआ है ॥७१॥ गाधार स्वर सोमदेव के द्वारा गाया जाया करता है और भगवान् विष्णु के द्वारा मध्यम स्वर का गान होता है । पञ्चम स्वर तो आपके ही द्वारा (नाश्वजी के द्वारा) गाया गया है । ऐसा निश्चय समझ

नीत्रिए ॥७२॥ धैवत और निपाद ये दो स्वर तुम्बर के द्वारा गाये गये हैं । ध्रुवजनों के द्वारा धाय पद्ज स्वर का देवता ब्रह्माजी को बत-साया जाता है ॥७३॥ परमाधिक तीक्ष्ण, दीप्त और प्रकाश वाला होने से ऋषभ स्वर का अधिष्ठाता देवता हुताशन होता है । प्रणीत किये जाने पर गौरी परम सन्तुष्ट हुआ करती है इसी हेतु से इस स्वर को गान्धार कहा जाता है ॥७४॥ इसमें कुछ भी गणय नहीं कि इस स्वर का श्रवण करके ही सौरभेय उपस्थित होजाया करती है । पञ्चम स्वर का देवता सौम्य होता है और यह ब्रह्माण्ड कहा गया है ॥७५॥ त्रिमका निह्लास है और बुद्धि ग्राम को प्राप्त करके सोम के समान इन पूर्वोस्थित स्वरो को सन्धित करती है । इसी कारण से इस स्वर का नाम धैवत पड गया है । चयोकि जिसमें स्वर नियोजित होते हैं उसी हेतु से निपाद यह नाम स्वर का होगया है ॥७६॥७७॥

सर्वाश्चाभिभवत्येष यदादित्योस्य दैवतम् ॥७८॥
 दारवी गात्रवीणा च द्वे वोग गान जातिषु ।
 सामवी गात्रवीणा तु तस्यास्त्व शृणु लक्षणम् ।
 गन्धवीणा तु सा प्रोक्ता यस्या गायति सामगा ॥७९॥

प्रणव प्राक् प्रयु जीत व्याहृतीस्तदनतरम् ॥८१॥
 सावित्रीवानुधवन ततो वी गानमारभेत् ॥८२॥
 प्रमार्यंचागुली सर्वा रोपयेत् स्वरमडलम् ॥८३॥
 नवागुलीभिरगुष्टमगुष्टेनागुली स्पृशेत् ।
 विरला नागुली कुर्यान् मूले चीतान्न सस्यशेत् ॥८४॥

यद् गभी का अभिभूत कर देता है जब कि इसका देवता आश्विन होता है । गान जानियो में दो ही वीणा होती हैं । एक

दारवी वीणा होती है जो लकड़ी से रचित हुआ करती है और दूमरी गात्र वीणा होती है । स्वर और व्यञ्जन से संयुक्त, अगुली और अंगुष्ठ से रञ्जित जो होती है वह गात्र वीणा कही जाती है । जिस पर साम गान करने वाले गाया करते हैं । साम की जो गात्र वीणा होती है उसका लक्षण आपने श्रवण किया है ॥७८॥७९॥ अपने दोनों हाथों को पूर्णतया संयत करके रखने चाहिये जोकि जानुओं के ऊपर के भाग में स्थित होवे और अपने गुरुदेव की ही अनुकृति करनी चाहिए । जिससे कि अन्य-बुद्धि न होवे । सर्व प्रथम प्रणव (ओंकार) का प्रयोग करना चाहिये और इसके अनन्तर व्याहृतियों का प्रयोग करे । सावित्री की भाँति अनुवचन करे और इसके पश्चात् गान का आरम्भ करना चाहिये ॥८०—८२॥ समस्त अंगुलियों को प्रसारित करके स्वरमण्डल का रोपण करना चाहिये ॥८३॥ नौ अंगुलियों से अंगुष्ठ को और अंगुष्ठ से अंगुलियों का स्पर्श करना चाहिये । मूत्र में अंगुलियों को विरत नहीं करे और इनका सस्पर्श नहीं करना चाहिये ॥८४॥

अगुष्ठाणेणता नित्य मध्यमे पर्वणि स्पृशेत् ।
 मात्राद्विमात्र वद्धाना विभागार्थे विभागवित् ॥८५॥
 अगुलीभिर्द्विमात्र तु पाणे सव्यस्य दर्शयेत् ।
 त्रिरेखायस्य दृश्येत सिद्धि तत्र विनिदिशेत् ॥८६॥
 स पर्व इति विशेषेण शेषमन्तरमन्तरम् ।
 पर्वान्तर साममुचक्रुक्षु कुर्यान्ति लातरम् ॥८७॥
 स्वरान् मध्यमे पर्वमु मुनिविष्टन्निवशयेत् ।
 न चात्र वपयेत् किञ्चिदगस्या वपव बुध ॥८८॥
 अघस्तन मद न्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम् ।
 अभ्रमध्ये यथा विद्युत् दृश्यते मणिसूत्र इव ॥८९॥
 गृपच्छेदविवृतीना यथा वातेषु कर्तरी ।

कूर्मोद्भानि च संहृत्य चेतो दृष्टि दिशन्मनः ॥६०
 स्वस्य प्रशान्तो निर्भीतो वर्णामुच्चरयेत् बुधः ।
 नासिपायास्तु पूर्वैर्ण हस्त गोवर्णवद्धरेत् ॥६१

अंगुष्ठ के अग्रभाग से नित्य ही मध्यम पर्व मे उनका स्पर्श करना चाहिये कि विभागार्थ मे माथा द्विमात्र बढ़ो का स्पर्श करे । ६५। तद्य कर की अंगुलियो मे द्विमात्र को दर्शित करना चाहिये । जिमकी त्रिरेखा दिखाई देवे वहाँ पर सिद्धि का निर्देश करना चाहिए ॥ ६६ ॥ उसको पर्व समझना चाहिये । शेष अन्तर अन्तर ही होना है । मामों मे पर्वान्तर और षट् मे तिसानन्तर करे । ६७। मध्यम पर्वो मे स्वरो को भली भाँति निविष्ट करते हुए मुनेवेशित्व करना चाहिए । द्युम बुध पुष्य को चाहिए जिमी भी अङ्ग के अवयव को कम्पित नहीं करे ॥६८॥ मीथे की ओर मृत्तिका को रखकर हस्त को यथाक्रम रखे । जिम प्रकार से वाद्यों के मध्य मे मणिमूत्र के तुल्य विद्युत् तट्टिकाई

यथा दधिनि सर्पि स्यात्वाष्ठम्यो वा यथानला ॥६५

प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत्स्वरगता श्रुति ।

स्वराःस्वरस्य सङ्गाम स्तुरसधिमनुत्वणम् ॥६६

अविच्छिन्न सम कुर्यात्सूक्ष्मच्छायातपोपमम् ।

अनागतमतिक्रान्त विच्छिन्न विपमाहृतम् ॥६७

तन्वन्तमस्थितात च वर्जयेत्कर्पणं बुध ।

स्वरस्थानात् च्युतो यस्तु स्व स्थानमति वर्तते ॥६८

विस्वर सामगा ब्रूयुर्विरवनामिति वीणिन ।

अभ्यामार्ये द्रुता वृत्ति प्रयोगार्ये तु मध्यमाम् ॥६९

हस्त के अग्रभाग मे अपनी दृष्टि को विनिष्ट करके शास्त्र के अर्थ वा अनुचिन्तन करना चाहिए । मुख और हस्त के द्वारा अच्छी तरह से वाक्य वा प्रचार करे ॥६२॥ जैसे ही वर्णों का उच्चारण करे उसी भाँति इसको समाप्त कर देना चाहिए । अति हुनन नहीं करे और निहंणन भी न करे, न प्रगामन करे और न कम्पन करना चाहिए ॥ ६३ ॥ शब्द के द्वारा व्योम मे जित्त प्रकार से गति हुआ करती है उसी तरह से सामो का सम गायन करना चाहिये । जैसे सुचरण करने वाले मीना का मार्ग उपलब्ध नहीं हुआ करना है ॥६४॥ अथवा आकाश मे विहगो की जैसे श्रुति हुआ करती है उसी के समान स्वरो मे रहन वाली श्रुति होती है । जित्त रीति से दही मे घृत विद्यमान रहा करता है और दिखलाई नहीं देता अथवा काष्ठ मे स्थित जैसे अग्नि रहा करता है तथा बहुत कुछ प्रयत्नो के करने पर ही यह प्राप्त हुआ करते हैं उसी भाँति स्वरगता श्रुति भी होती है । स्वर से स्वर का सङ्गाम, अनु स्वग स्तुरसन्धि का जा अविच्छिन्न है उसे सम करे । सूक्ष्मछाया तप के समान अनागत, अतिक्रान्त, विच्छिन्न, विप, आहृत तन्वन्त, अस्थितान्त कर्पण वा बुधजन के द्वारा वर्जित कर देना चाहिये । स्वर स्थान से जो च्युत हो और अपने स्थान का अतिवर्तन कर देता है उसको नामगान करने वाले विस्वर कहत हैं और वीणी साग उसे विरक्त कहा करत है ॥६५—६९॥

शिष्याणामुपदेशार्थं कुर्यात् वृत्ति विलम्बिताम् ।
 गृहीतग्रथ एव तु ग्रन्थोच्चारणशिक्षकान् ॥१००॥
 हस्तेनाध्यापयेच्छिष्यान् शीक्षेण विधिना द्विज ।
 ऋष्टस्य गृध्रानि स्थान ललाटे प्रथमस्य तु ॥१०१॥
 भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयो ।
 कठस्थान चतुर्थस्य मद्रस्य रसनोच्यते ॥१०२॥
 अतिस्वारस्य नीचस्य हृदि स्थान विधीयते ।
 अगुष्टस्योत्तमे ऋष्टो ह्यगुष्टे प्रथम स्वर ॥१०३॥
 प्रदेशिन्या तु गाधार ऋषभस्तदनतरम् ।
 अनामिकाया षड्ज तु कनिष्ठाया तु धैवत ॥१०४॥
 तस्याधस्ताच्च योन्यास्तु निषाद तन निर्दिशेत् ।
 अपर्वत्वादमध्यत्वादव्ययत्वाच्च नित्यश ॥१०५॥
 मद्रोहि मदीभूतस्तु परिस्वार इति स्मृत ।
 ऋष्टेन देवा जीवति प्रथमे न तु मानुषा ॥१०६॥

अध्यास के अर्थ में द्रुत वृत्ति को तथा जिस समय में अपने शिष्यों को उपदेश दिया जावे उस समय में वृत्ति को विलम्बिता कर देनी चाहिए । ग्रन्थ के उच्चारण करने के शिक्ष को इसी प्रकार से ग्रन्थ गृहीत हुआ करते हैं ॥१००॥ द्विज को चाहिए कि शिक्षण की जो विधि है उसी के अनुसार हस्त के द्वारा शिष्यों को अध्ययन कराना चाहिये । ऋष्ट का मूर्धा में स्थान है और प्रथम का स्थान ललाटे में हुआ करता है । दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में द्वितीय का तथा तृतीय का स्थान दोनों कानों में हुआ करता है । चतुर्थ का ऋष्ट स्थान है और मद्र का स्थान रसना कहा जाया करता है ॥ १०१॥१०२॥ नीच अतिस्वार का स्थान हृदय में किया जाता है । अगुष्ट के उत्तम में ऋष्ट और अगुष्ट में प्रथम स्वर होता है ॥१०३॥ प्रदेशिनी अगुष्ठी में गा-धार स्वर रहता है और उसमें अनंतर ऋषभ रहा करता है ।

अनामिका मे पङ्कज स्वर का वास है तो कनिष्ठका अँगुली मे घँवत रहता है ॥१०४॥ और उसके नीचे के भाग मे वहाँ पर निपाद का विनिर्देश करना चाहिए । अर्षत्क, अमध्यत्क और कित्य ही अव्ययत्व होने के कारण से मन्द्र मन्दीभूत होना है और परिस्वार इत नाम से कहा गया है । क्रुष्ट से देवगण जीवित रहा करते हैं ॥१०५॥१०६॥

पशवस्तु द्वितीये न गधर्वाप्सरसस्त्व नु ।
 अधजा पितरश्चैव चतुर्थस्वर जीविन ॥१०७॥
 मद्रत्वेनोप जीवति पिशाचामुर राक्षस ।
 अतिस्वारेण नीचेन जगत्स्थावरजगमा ॥१०८॥
 सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकं स्वरेः ।
 दीप्तायताकरुणाना मदुमध्यमयोस्तथा ॥१०९॥
 श्रुतीना यो विशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते ।
 दीप्ता मद्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव च ॥११०॥
 अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु कृष्णा श्रुति ।
 श्रुतयो या द्वितीयस्य मृदुमध्यायता. स्मृता. ॥१११॥
 तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक् ।
 आयतात्व भवेन्नीचे मृदुतात्व विपर्यये ॥११२॥

पशुगण द्वितीय के द्वारा जीवित हैं और इनके पश्चात् तृतीय से मध्यर्ष तथा अप्सरायें जीवित रहा करते हैं । अग्धज और पितृगण चतुर्थ स्वर के द्वारा जीवित होते हैं ॥१०७॥ पिशाच और राक्षस सब मद्रत्त्व के द्वारा उपजीवित हुआ करत हैं । मेष जगत् के जितने भी स्थावर तथा अद्रुम हैं वे सब अनिस्वार नीच के द्वारा जीवित रहा करते हैं ॥१०८॥ जितने भी भूत हैं वे सभी सामिक स्वरो के द्वारा धारण किये जाया करते हैं । दीप्त, आयत, करुणो वा तथा मृदु और मध्यम श्रुतियो का जो भी विशेषनामो का जाता होता है वह आश्चर्य नहीं कहा जाया करता है । म-द्र, द्वितीय और चतुर्थ में दीप्त होती है ।

वतिसार, तृतीय और ऋष्ट्र मे कण्ठा श्रुति हुआ करती है । द्वितीय की जो श्रुति होती है वे गृधु, मध्य और आयत कही गयी हैं ॥१०६—१११॥ उन सबके भी पृथक् २ लक्षणों को मैं अब बतलाता हूँ । नीच मे आयतात्व होता है और बिपर्यय मे मृदु तत्व हुआ करता है ॥११२॥

स्वे स्वरे मध्यमत्व तु तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ।

द्वितीये विरता या तु ऋष्ट्रश्च परतो भवेत् ॥११३

दीप्ता ता तु विजानीयात् प्राथम्येन मृदु स्मृतः ।

अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते ॥११४

तथा मन्त्रे भवेद्दीप्ता साम्नश्चैव समापने ।

नातितरश्रुति कुर्यात् स्वरयोर्नापि चातरे ॥११५

त च ह्रस्वे च दीर्घे च न चापि पुटिसंज्ञके ।

द्विविधा मतिः पदात्स्थितसधिः सहोष्मभिः ॥११६

स्थानेषु पचस्वेतेषु विज्ञेय पुट संज्ञिकम् ।

स्वरतराविरतानि ह्रस्व दीर्घ घुटानि च ॥११७

स्थिति स्थानेष्व शेषाणि श्रुतिवत्स्वरतो वदेत् ।

दीप्तामुदात्ते जानीयाद्दीप्ता च स्वरिते विदुः ॥११८

अनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गधर्वा श्रुतिसपदम् ।

उदात्तरचानुदात्तश्च स्वरितप्रवितो तथा ॥११९

निघातश्चेति विज्ञेय स्वरभेदश्च पचधा ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आविकस्य स्वरत्रयम् ॥१२०

अपने स्वर मे मध्यम होता है उसकी समीक्षा करके ही प्रयोजित करना चाहिए । द्वितीय मे जो विरता है वह ऋष्ट्र के परे होवे ॥११३॥ उसको दीप्ता जानना चाहिए और प्राथम्य से मृदु कहा गया है । यहाँ पर ही जो विरता है वह चतुर्थ से प्रवृत्त होती है ॥११४॥ उसी रीति से मन्त्र मे दीप्ता होती है और साम के समापन मे होती

है। स्वरों की अतिर श्रुति नहीं करनी चाहिये और अन्तर में भी न करे ॥११५॥ और उदात्तों ह्रस्व, दीर्घ, पुटि गणना में भी नहीं करना चाहिये। उच्चो के साथ पदान्तर स्थान गन्धि दो प्रकार की गति होती है ॥११६॥ इन पाँच स्थानों में पुटि लगाना जानना चाहिये। स्वरा-न्तर बिरल और ह्रस्व दीर्घ पुटि ॥११७॥ स्थिति स्थानों में अक्षरों की श्रुति के समान स्वर में ध्वनि जानना चाहिये। उदात्त में दीप्ता जाने और दीप्ता स्वरित में जानने हैं ॥११८॥ अनुदात्त में मृदु जाननी चाहिये। गणयं श्रुति की सम्प्रदा को उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, द्रवित और निपात, इस तरह से स्वरों के भेद पाँच प्रकार के जानते हैं। अब हमें आगे आचार के तीन स्वरों को बहूना ॥११९—१२०॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीय स्वरितस्वर ।
 यस्योदात्त इत्युक्त. स एवस्वरितात्पर. ॥१२१
 प्रथम. प्रोच्यते तज्जर्मं चात्रान्य स्वरान्तरम् ।
 वर्णस्वारोत्तीतस्वर. स्वरितो द्विविधः स्मृत ॥१२२
 माश्रिवो वर्ण एव तु दीर्घस्तूच्चरितादनु ।
 स तु सप्तविधो ज्ञेय. स्वार. प्रत्यस्य दर्शनात् ॥१२३
 पदेन तु स विज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृश ।
 सप्त स्वरान् प्रयु जीत दक्षिण श्रवण प्रति ॥१२४
 आचार्यं विहितं शास्त्रा पुत्र शिष्यं हितैषिण. ।
 उच्चादुच्चतर नास्ति नीचान्नीचतर तथा ॥१२५
 वंस्वयस्वार सज्ञाया किञ्चान स्वार उच्यते ।
 उच्चनीचस्य यन्मध्य साधारणमिति श्रुतिः ॥१२६

उदात्त, अनुदात्त, तीसरा स्वरित स्वर यथावादात्त इस तरह से कहा गया है और वह ही स्वरित से पर होता है ॥१२१॥ उसके ज्ञान रखने वालों के द्वारा प्रथम कहा जाया करता है और यहाँ पर अन्य स्वरान्तर नहीं है। वर्णस्वार और अतीत स्वर—इस प्रकार से

स्वरित दो प्रकार का बनाया गया है । १९२२। मात्रिक और वर्ण और उच्चरित के पश्चात् दीर्घ होता है । वह स्वार प्रत्य के दर्शन से सात प्रकार का जानना चाहिये । १९२३। जो जहाँ पर जिस प्रकार का होना है वह पद के द्वारा ही जानने में योग्य होता है । दक्षिण श्रवण के प्रति सात स्वरों का प्रयोग करना चाहिये । यह आचार्यों का विहित शास्त्र है जो कि अपने पुत्र और शिष्यों के हितैषी होते हैं । उच्च में अधिक उच्च नहीं होता है तथा नीच से अधिक नीच भी नहीं होता है । १९२४। १९२५। वैस्वर्य स्वार सजा में किम स्थानवाना स्वार कहा जाता है । जो उच्च-नीच के मध्य में सधारण है, मध्युनि है । १९२६।

तस्वार स्वारसजाया प्रतिजानति दीक्षिता ।
उदात्तो निपादगाधारावनुदात्त श्रयभ धैवती ॥१९७
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्ज मध्यमपञ्चमा ।
यत्र बह्वपरा ऊष्मा जिह्वामूल प्रयोजना ॥१९८
सामप्याजापथेन्मात्रा प्रकृत्यैव स्तावला ।
जात्य क्षप्रोभिनिहित स्वर व्यजन एव च ॥१९९
तिरा विगम प्रश्लिष्टोपावृश्च सप्तम ।
स्वराणामहमेतेषा पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥१९०
उद्दिष्टाना तवान्यायमुदाहरणमेव च ।
गपत्तार गव वापि ह्यक्षर स्वरित भवेत् ॥१९१
न चोदात्ता पुरस्वस्य जात्य स्वार स उच्यते ।
दू उवगौ यशशतावापयेते पवी चरचिन् ॥१९२
अनुदात्तो प्रत्यये तु विद्यान् क्षैप्रस्य लक्षणम् ।
ए आ आष्यामुदात्ताभ्यामकारो निहितश्च ॥१९३
अकारो यत्र लुपति तर्माभिनिहित विदु ।
उदात्तपूर्वं यत्राचिच्छादनि स्वरित भवेत् ॥१९४

उस स्वार को स्वार सज्ञा में शैक्षिकगण जानते हैं। उदात्त में निषाद और गान्धार होते हैं तथा अनुदात्त में ऋषभ और धैवत हुआ करते हैं ॥१२७॥ पङ्कज, मध्यम और पञ्चम ये स्वर स्वरित से प्रभूत होने वाले हुआ करते हैं। जहाँ पर क ख पर ऊष्म और जिह्वा मूल के प्रयोजन वाले हुआ करते हैं १२८। उसको भी मात्रा आज्ञापित करे प्रकृति ही से रसा कला है। स्वर व्यञ्जन ही आर्ष, क्षैप्र, अभिनिहित, तिरा, विराम, प्रविलष्ट और सातवा अपावृत्त हाता है। मैं अब इन स्वरो म पृथक् २ लक्षणों को बतलाऊँगा ॥१२६॥१३०॥ उद्दिष्टों के तथा ग्वाय उदाहरण भी वर्णन करूँगा। समकार अथवा सव भी अक्षर स्वरित होता है १३१। उसके आगे उदात्त न हो तो वह आत्य स्वार कहा जाया करता है। इ-उ वर्ण जब उदात्त होते हैं तो कही पर यव उत्पन्न हुआ करते हैं १३२। अनुदात्त प्रत्यय में तो क्षैप्र का लक्षण जान लेना चाहिए। ए ओ इन उदात्तों से जो अकार निहित है जहाँ पर अकार सुप्त होजाया करता है उसको ही अभिनिहित कहा करते हैं। उदात्त पूर जो कुल भी होता है वह छन्द में स्वरित होता है १३३।१३४॥

एष सर्वबहुस्वारस्तोर व्यञ्जन उच्यते ।

अवग्राहात् पर यत्र स्वरिता स्यादनतरम् ॥१३५

तिराविराम न विद्यादुदात्तो यद्यवग्रह ।

इकार यत्र पश्येयुरिवारेणैव समतम् ॥१३६

उदात्तमनुदात्तेन प्रविलष्ट त विचारय ।

स्वरे चेत्स्वरिता यत्र विवृता यत्र सहिता ॥१३७

एतत् पादात् वृत्तास्य लक्षणं शास्त्रे नोदितम् ।

तान्य स्वर सज्ञात्वेन श्रुप्यन्ते क्षैप्र उच्यन्ते ॥१३८

ते गन्वनाभिनिहितस्त्रोर्व्यञ्जन उच्यते ।

तिरो विरामो विपरिपिने प्रविलष्टो हीर्दगोर्वण ॥१३९

पादवृत्त ऋद्विदे स्वरा सप्तौवमादय ।

उच्चादेकाक्षरात् पूर्वात्स्वर यद्यदिहाक्षरम् ॥१४०

स्वारायाद्जात्यदजांनामेषा प्रकृतिरुच्यते ।

चवारस्त्वादिन सारा क प पु स्फुति शास्त्रत ॥१४१

यह सब बहू स्वार है उनके द्वारा अभ्यञ्जन कहा जाया करता है । जहाँ पर अवप्राह से पर अनन्तर स्वरित होता है । १३५। तिरवि-
राम उसको जान केना चाहिए यदि उदात्त अवग्रह हो । जहाँ पर
इकार से ही मधुन इकार को देख १३६। अनुदात्त के साथ उदात्त यदि
प्रसिष्ट हो तो विचार करे । यदि जहाँ पर स्वर म स्वरित हो और
बड़ा महिमा निवृत्ता हो यह पदान्त वृत्ति का लक्षण शास्त्र के द्वारा
नोदित है । सजात्यक साथ अ य स्वर न हो तो वह श्रुप्यप्र मक्षप्र कहा
जाया करता है । १३७। १३८। वे मन्वन्ताभि निहित है और उनस ऊति
क निये अभ्यञ्जन है । ही ई गोवण निष्कपित से तिरोविराम है । १३९।
ऋद्विद म पादवित्त है । इस प्रकार से स्वर सात ही हुआ करते हैं ।
पूव म रहन वाले उच्च एकाक्षर स यदि यहाँ पर जो कोई स्वर
अक्षर हो तो स्वारा पाद जात्यदजों की यह प्रकृति कही जाया करती
है । शास्त्र म चार ही आदि म सार हैं क प पु स्फुति ॥१४०॥१४१॥

उदात्त चंक्नीचे वा जुहोप्रिस्त्रन्निदर्शनम् ।

इकाराते पदे पूव उकारे परत स्थिते ॥१४२

ह्यस कप विजानीयाव्येधावीनान् न मशय ।

इकाराते पदे चैवोत्तरद्वय परे पदे ॥१४३

दीघ कप विजानीयात् छागध्रुव्विति निदर्शनम् ।

प्रगादीघास्तु विज्ञेयात् पच सध्यक्षरेषु वै ॥१४४

मन्या यथा न इन्द्राभ्या जया ह्रस्वा प्रकीर्तिता ।

अथेवाामुदात्तानामनुदात्ता प्रत्यया यदि ॥१४५

निवकप विजानीयादुदात्ता प्रत्यया यदि ।

यप्रद्विप्रभृतीनि स्फुटदात्तान्य क्षराणि तु ॥१४६

नीच वोच्च च परतस्तत्रोदात्ता विदुर्बुधा ।

न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ॥१४७

उदात्त में अथवा एक वीच में जुहोप्रिसत् निदर्शन है । पूर्व इकारान्त पद में परत उकार के स्थान होने पर इसको किस प्रकार जाने । इससे मेधावियों को कोई गणय नहीं होता है । १४२। और इकारान्त पद में जो पर पद में दो उकार हो तो दीर्घ का कैसे जानना चाहिए । इसमें छागणुपु—यह निदर्शन उपस्थित है । पाच माध्य-क्षरो में तीन दीर्घ जान लने चाहिए । १४३। १४४। जिस प्रकार से मन्थ न हो इन्द्रो के द्वारा ह्रस्व प्रवर्तित हुए ही जान लने चाहिए । यदि उदात्त प्रत्यय होवे तो शिव रु य जान लेवे । य प्रद्वि प्रभृति उदात्त अक्षर ही होवे तो नीच अथवा उच्च पर में होवे वहाँ पर बुध जन उदात्त ही जाना करते हैं । रेफ में अथवा इकार में वहाँ पर भी द्विर्भाव नहीं हुआ करता है ॥१४६। १४७॥

न च वर्ग द्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ।

चतुर्थे तु तृतीये न द्वितीये प्रथमेन तु ॥१४८

आद्यमत्य च मध्य च स्वराक्षरेण षोडशेत् ।

अनन्त्यश्च भवेत् पूर्वा ह्य तश्च परतो यदि ॥१४९

तत्त मध्ये यमस्तिष्ठेत् स्ववर्णं पूर्ववर्णयो ।

वर्गात्यान् शवसं साढं मनस्यैर्वापि सयुताम् ॥१५०

दृष्ट्वा यमा निवतन्ने अदेशिश्मिवाध्वगा ।

तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादिपर पदम् ॥१५१

द्वौ तृतीयौ हकारश्च हकारादि पर परम् ।

अनुस्वारोपधामूला तान् क्वचिन् क्रमत परम् ॥१५२

रह पूर्व सयुते चाप्युत्तर क्रमनेक्षर ।

सयोगो यत्र दृश्येत व्यञ्ज न विरते पदे ॥१५३

पूर्वाङ्गनहित कृत्वा परागादौ निवेशयेत् ।

सयोगे स्वरित यग उद्घात प्रतन तथा ॥१५४

पूर्वाङ्गम् तद्विजा नीयाद्यनारभ पर हि तत् ।

सयोगात् विजानीयात् पर सयोग नायकम् ॥१५५

बभी भी द्वितीय वर्गों में नहीं है और चतुर्थ में भी नहीं होता है । तृतीय के साथ चतुर्थ तथा प्रथम के साथ द्वितीय नहीं हुआ करता है । १५८। आद्य-अ न और मध्य स्वरादि के द्वारा पीड़ित करना चाहिये । यदि अत पर में हो तो अत्यपेक्ष्य म हा जाया करता है ॥ १५६ ॥ वहाँ पर मध्य में यम स्थित रहा करता है और पूर्ण वर्णों में स्वर्ण स्थित रहा करता है शपम—इनके अथवा अतस्थो के साथ गधुन वर्णों के अंत में होने वाले को देखकर यम निवृत्त हो जाया करते हैं जिस तरह में माग में गमन करने वाले अथे गिन को देखकर निवृत्त हो जाते हैं । तृतीय और चतुर्थ चतुर्थादि से पर पर हो—दो तृतीय और हकार हकारादि से पर पद हो—अनुस्वार रोपधामूल हो तो उनको वहीं पर क्रम से पर को रह पूर्व सयुत हान पर अंतरा उत्तर को क्रमण किया करता है । जहाँ पर सयोग दिखलाई देवे । पद के विरत हान पर व्यञ्जन होवे ॥ १५०-१५३ ॥ तो पूर्वाङ्ग को आदि में करके पराङ्गादि में निवेशित करना चाहिए । जहाँ पर सयोग में स्वरित हो तथा उद्घात प्रतन हावे उसको पूर्वाङ्ग जानना चाहिये और जिसके द्वारा आरम्भ होता है वह पर होता है । सयोग में पर को सयोग का नायक समझना चाहिए ॥ १५४ ॥ ॥ १५५ ॥

समुवनस्य तु वणस्य यत्पर पूर्वमक्षरम् ।

अनुस्वार पदातश्च क्रमज प्रथम स्वर् ॥१५६

स्वरभक्ति-नया रेफ पूर्वपूर्वाङ्गमुच्यते ।

पादादौ चानादादौ च सयोगावग्रहपु च ॥१५७

य शब्द इति विज्ञया गान्य स य इति स्मृत ।

पादादावप्यविच्छे मयोगाते च तिष्ठताम् ॥१५८
 वर्जयित्वा रहपाणामपादेश प्रहृश्यते ।
 स्वसयुक्तो गुरुर्ज्ञेय सानुस्वाराग्रिम स्फुट ॥१५९
 अणु शेषो ह्रिगोवापि युगलादि र विस्फुट ।
 यदुदात्तमुदात्त तद्यत् स्वरित तत्पदे ॥१६०
 भवति नीच यन्नी च नीचमेव तद्यत्प्र च ।
 पश्यतदपि नीच अग्नि मुतो मिश्रमिद वयद्मपावह ॥१६१
 प्रिय दूत घृता चित्तमति शब्दस्तु नीचत ।
 अववेप्वेव मुतेप्वेव यज्ञेषु कलशेषु च ॥१६२
 शतेषु सपवित्रेषु नीचाच्चार्यते श्रुति ।
 हारिवरुणवरेण्येषु धारापुरुषेषु स्वरतिरेफ ॥१६३

मयुक्त वर्ण का जो पर पूर्व अक्षर हो अनुस्वार और पदान्त अपने प्रत्यय में क्रम से समुत्पन्न हो, स्वर भक्ति तथा रेफ पूर्व पूर्वाङ्ग कहा जाया करता है। पाद के आदि में और अपाद के आदि में—सयोग और अवग्रहों में य शब्द, ऐसा जानना चाहिए। जो अन्य है वह य, ऐसा कहा गया है ॥ १५६, १५७ ॥ पाद के आदि में, अविच्छेद में भी और सयोग के अन्त में स्थित रहने वाले रह वागों को वर्जित करके अपादेश प्रकृष्ट रूप से दिखलाई दिया करता है। अपने से समुक्त गुरु समझना चाहिए और अनुस्वार के सहित अग्रिम स्फुट है। ॥ १५८, १५९ ॥ अणुशेष ह्रिगोवा भी युगलादि रवि स्फुट है। जो उदात्त है वह उदात्त है जो उस पद में स्वरित नीच होता है। जो नीच है वह नीच ही है या प्रच्छन्न है। पश्य वह भी नीच है, अग्नि मुतो मिश्रमिद वयद्मपावह प्रिय दूत घृत चित्त मतिशब्द नीच है। अवका म ही, मुतो में ही, यज्ञा म और कलशों में शते म और सपवित्रा में नीच में श्रुति उच्चारण की जाती है। हारि, वरुण, वरेण्यो में, धारा पुरुषो म स्वरतिरेफ है ॥१६०-१६३॥

विश्वनरोकारश्च शेषास्तु रचरिता नरा ।
 (द्वी वरुणोवस्वरत उद्भूतमत्ववरुण धारेचौरु धारामुखधारे
 स्व दोहते । मान्त्रिक वा द्विमात्र वा स्वयतेस्यतेवयद्विचक्षरम्)
 तस्यादितोद्धं मात्र वै शेष तु परतो भवेत् ॥१६४
 अदीर्घं दीर्घमकुर्यात् द्विस्वर यत् प्रयुज्यते ।
 कपोत्स्वरिताभिगीता ह्रस्ववर्षण मेव च ॥१६५
 निमेषकाला मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति चापरे ।
 ऋवतरा तुल्ययोगा वा कंश्चिदेव मुदीयते ॥१६६
 समामेवग्रह कुर्यात्पदे चात्रानुमहितम् ।
 येतोक्षरादितिकरण पदातस्य ता विदु ॥१६७
 (मर्वत्र मित्र पुत्रसखि शब्दा अहिशतक्रतो वग्राह्या ।
 आदित्यविप्रतात वेदाश्च सत्पति गोपति वृत्रहा समुद्राश्च ।
 स्वरपुत्रोदेवयवश्चारितं देवतातये ।)
 चिकितिश्च धचैव तावत् गृह्णाति पडिता ।
 विवृत्तायश्चस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम् ॥१६८

और विश्वनरोकार है शेषतुरचरित नर है । (द्वी वरुणो
 वस्वरत उद्भूतम मन्त्रवरुण धारेचौरु धारा मुखधारे स्वदोहते—मान्त्रिक
 है अथवा द्विमान्त्रिक है । स्वयते स्वयते यदि वृक्षरम्) उसके आदि मे
 अद्धं मात्र है शेष तो पर मे होता है । १६४। जो अदीर्घ है उसे दीर्घ के
 समान करना चाहिए जो द्विस्वर प्रयुक्त किया जाता है । कपोत्स्वरित
 मे अभिगीत है और ह्रस्व वर्षण ही होता है । १६५। निमेष काल मात्रा
 होती है और दूसरे यह बहुत है कि विद्युत् काला है । अवतरा अथवा
 तुल्य योगा होती है—इस प्रकार से कुछ लोको के द्वारा कहा जाया
 करता है । १६६। समास मे अवग्रह करे और यहाँ पर अनुमहित पद है ।
 ये तो क्षरादिति वरुण है उगवो पद त का जाने । १६७। (सब जगह
 मित्र पुत्र, सखि शब्द अहिशा वृत्रोवग्राह्य है । आदित्य, विप्र तात

और वेद—मत्पति, गोपति, बृधहा और समुद्र । स्वर पुत्रोदेव यव और अरिति देवतातये) चि विनि और घ ही तब तक पण्डित ग्रहण किया करते हैं । चार निवृत्तियाँ हैं जिनको जानना चाहिये, यह मेरा मन है ॥१६८॥

अक्षराणा नियोगेन तासा नामानि मे शृणु ।
 ह्रस्वादिवत्सानुगृता वत्सानुसारिणी वाप्रे ॥१६९॥
 पाक्वत्युभयो ह्रस्वा दीर्घा वृद्धा पिपीलिकाः ।
 चत मृणा विवृत्तीना अतर मात्रिक भवेत् ॥१७०॥
 अद्धं मात्रैः मन्येपामन्येपामाणुमात्रिकम् ॥१७१॥
 आपद्यने मन्ारो रेफोप्पामु प्रत्ययेष्य नुस्वारम् ।
 पलयेष परमवर्णं स्पन्नेषु चोत्तमापनिम् ॥१७२॥
 नन्ाराते पदे पूर्व स्वरे च परतः स्थिते ।
 अन्ाररन्तमित्याहृतन्ारेण त् रज्यते ॥१७३॥
 नन्ाराते पदे पूर्व व्यजनैश्च यवोत्पि ।
 अद्धं मात्रा त् पूर्वस्य रज्यते स्वणुमात्रया ॥१७४॥
 नन्ार स्वरमयुवनश्चतुर्बुवनो विधीयते ।
 रेफो रगश्च लोपश्च गानुस्वारोपि या वचनित् ॥१७५॥

अक्षरों के नियोग ने उनके नाम अब आप मुतने पद्य करिए । आगे बगानुमात्रिणी की तरह ह्रस्वादि के मुख्य बद् अनुगृता है ॥ १६९ ॥ दोनों में पाक्वती ह्रस्वा—दीर्घा—वृद्धा पिपीलिका है । चारों निवृत्तियों का अन्तर मात्रिक होता है ॥ १७० ॥ अर्द्धों का अद्धं मात्रैक होता है और अर्द्धों का अणु मात्रिक हुआ करता है ॥१७१॥ येन ऊर्ध्वो मन्ार भाग्यत जाता है । आपद्य में भी अनुस्वार जाता है । मन् वेन पर मवर्णं और स्पन्नेषु में उत्तमापनिम् है ॥१७२॥ मन्ारात्प पदे में पूर्व स्वर के होने पर और पर भाग में उपन होने पर अन्ार रज्यम्—लेगा बजने है और मन्ार में रज्यव

किया जाता है ॥१७३॥ नकारान्त पद के पूर्व में होने पर यवहियों में व्यञ्जनों के द्वारा पूर्वा की अर्धमात्र अणु मात्रा से रञ्जित की जाया करती है ॥ १७४ ॥ स्वर मयुक्त नकार और चतुर्युक्त विधान किया जाता है । रेफ-रङ्ग-और लोप अथवा वही पर सानुन्वार भी होता है ॥१७५॥

हृदयादुत्तिष्ठते रङ्ग कास्येन समन्वितः ।
 मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वानिति निदर्शनम् ॥१७६
 यथा सौराष्ट्रकानार्य अरद्वि इत्यभिभाषते ।
 एव रङ्ग प्रयोक्तव्यो नारदेतन्मता मम ॥१७७
 स्वरागदुदवाश्चैव ङणनमा सहोष्मभि ।
 चतुर्णां पदजातीनां पदात्ता दश कीर्तिता ॥१७८
 स्वर उच्च स्वरो नीच स्वर स्वरित एव च ।
 व्यञ्जना न तु वर्न्ते यत्र तिष्ठति स स्वर ॥१७९
 स्वरप्रधान भोस्वर्यामात्रायां प्रतिजानते ।
 मरियद्ब्यजन विद्यात्मूत्रवच्च स्वर विदुः ॥१८०
 दुर्जलस्य यथा राष्ट्र हस्ते बलवान् नृप ।
 दुर्बल व्यजन तद्वद्धरेत बलवान्स्वर ॥१८१
 उभावश्च विवृत्तिश्च शापसा रेफ एव च ।
 जिह्वामूलमुपधमा च गतिरष्टविधोष्मण ॥१८२

रग-नास्य से समन्वित हृदय से उठता है । मृदु और द्विमात्र है हृदयवान्—यह नि दर्शन होता है ॥ १७६ ॥ जिस प्रकार से सौराष्ट्र देश में रहने वाली नारियाँ "अरद्वि" यह बोला करती हैं । इस प्रकार से रङ्ग का प्रयोग करना चाहिए । हे नारद ! यह मेरा मत है ॥१७७॥ स्वराग दुदवा ही ऊष्म नञ्च वर्णों के साथ ङणनम् चारपद ज्ञातियों के दश पदान् कीर्तित सिद्ध गये हैं ॥ १७८ ॥ स्वर उच्च होता है, स्वर नीच होता है और स्वर स्वरित होता है । जहाँ पर वह स्वर स्थित

हुआ करता है वहाँ पर व्यञ्जन नहीं होते हैं ॥ १७० ॥ ग्वर जिसमें प्रधान होता है ऐसे हीस्वर्य को आचार्य्य जानते हैं । व्यञ्जन को मणि के समान जानना चाहिए और स्वर को मूत्र के तुल्य समझना चाहिए जिस मूत्र में मणियाँ गिराकर रक्की जाया करती हैं ॥ १८० ॥ किसी बलहीन राजा के राष्ट्र को जिस प्रकार में बलवान् नृप हरण कर लिया करता है ठीक उसी भाँति दुर्बल व्यञ्जन को बलवाली स्वर हरण कर लेता है । १८१। उमाव और निवृत्ति, शपस और रेफ, जिह्वामूल, उपध्मा, यह आठ प्रकार की ऊमा गणना वर्ण की गति हुआ करती है । १८२।

स्वरप्रत्ययाविवृत्ति सहितायो तु या भवेत् ।
 विसर्गस्तत्र मतव्यस्तालव्यश्चाङ्ग जायते ॥१८३
 मध्यक्षरे परे सघी प्राप्तसुप्तो यवौ यदि ।
 व्यजनाख्या विवृतिस्तु स्वराख्या गति सहिता ॥१८४
 ऊध्मात् विरतेयत्र सम्भावो भवति क्वचित् ।
 विवृत्तिर्या भवेत्तत्र स्वराख्या ता विनिर्दिदशेत् ॥१८५
 यद्योभावप्रसधानमुकारादि पर पदम् ।
 स्वरात् तादृश विद्याद्यदन्यत् व्यक्तभूष्मण ॥१८६
 प्रथमा उत्तमाश्चैव पदातेषु यदि स्थिता ।
 द्वितीय स्थानमापन्ना शपसप्रत्ययो यदि ॥१८७
 प्रथमानूपम समुक्ता द्वितीयान्निव दशयित् ।
 न चैतान्प्रतिजानीयात् यथा मत्स्य क्षुरोप्तरा ॥१८८
 छन्दोमान च वृत्त च पादस्थाना निकारणम् ।
 ऋच स्वच्छन्दवृत्तास्तु पादास्तक्षरमानस ॥१८९

सहिता में जो स्वर प्रत्यया विवृत्ति होती है वहाँ पर विसर्ग ही मानना चाहिये और यहाँ पर ताल०५ हुआ करता है ॥ १८३ ॥ मध्यक्षर में, पर सन्धि में यदि यव प्राप्त सुप्त होवे तो प्रति महिता

षष्ठ्यजनाक्षय विवृत्ति स्वराक्षया होती है ॥ १८४ ॥ जहाँ पर ऊष्मान्त विरत होता है तो वही पर सम्भाव होता है । वहाँ पर जो विवृत्ति होती है उसको स्वराक्षया ही विनिदिष्ट करना चाहिये ॥ १८५ ॥ यदि ओ भावप्रसंधास हो और उकारादि पर पद हो उस प्रकार की को स्वर त ही समझना चाहिये और अन्यत् ऊष्मा का व्यक्त है ॥ १८६ ॥ यदि प्रथमा और उत्तमा पदा तो मे स्थित होवे और द्वितीय स्थान को समाप न हो और यदि ष ष स प्रत्यय हा तो प्रथमों को द्वितीय के समान ऊष्म संयुक्त दिखाना चाहिये । इनको जिस तरह से मत्स्य धुरोन्सराभा को जानना है वैसा नही प्रति जानना चाहिए ॥ १८७ ॥ छन्दोभाव वृत्त और पादस्थान ये तीन कारण है । ऋचाएँ स्वच्छन्द वृत्त वाली और -पादास्तक्षर मानस होती है ॥ १८६ ॥

ऋग्वर्ष्यान् स्वरभक्ति च छन्दो मानेन निर्दिदशेत् ।
 प्रत्ययेत सहारेफमिगीते स्वरभक्त्या ॥ १६०
 ऋवर्णो तु प्रथक् रेफ प्रत्ययस्तु वृथा भवेत् ।
 विद्याल्लघुमकार तु यदि तूष्माण संयुत ॥ १६१
 ऊष्मणैव हि संयुक्त ऋवारो यत्र पीड्यते ।
 गुरुवर्णं स विज्ञेयस्तृच चात्र निदर्शनम् ॥ १६२
 ऋपभ च गृहीत च वृहस्पति पृथिव्या च ।
 निऋत्तिपचमा ह्यत्र ऋकारा नात्र सशय ॥ १६३
 शपसहरादौ रेफ स्वरभक्तिर्जायते द्विपदसाधौ ।
 इउवर्णाभ्यां हीना नवचिदेकपदाक्रम विपुक्ता ॥ १६४
 स्वरभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता ऋकारे रेफ एव च ।
 स्वरोदा व्यजनोदा च विहिताक्षरचिन्तकं ॥ १६५
 शपसेषु स्वरोदयां हकारे व्यजनोदयाम् ।
 शपशेष विवृत्तां तुहकोर संवृता विदु ॥ १६६

ऋग्वर्षा को और स्वरभक्ति को छन्द के मान न ही निर्दिष्ट

करना चाहिए । प्रत्यय से रेफ के साथ स्वरभक्ता से मान करता है । १९०। श्रवण में रेफ पृथक् होता है और प्रत्यय तो वृषा हो जाता है । यदि ऊष्माण समुत्त हो ना लघु मन्तार को जानना चाहिए । १९१। ऊष्मा के द्वारा संयुक्त जहाँ पर श्रवण पीडित करता है उसको गुरु वर्ण जानना चाहिये । यहाँ पर तु ष निदर्शन है । १९२। श्रवण, गृहीत, बृहस्पति और पृथिव्या, यहाँ पर निष्कृति पञ्चमा है जो श्रवण से होती है, इसमें मशय नहीं है । १९३। श ष स ह्रादि में रेफ स्वर भक्ति होता है । द्विपद सन्धि से ३—३ वर्णों से हीना वही पर एव पराक्रम विभुता होती है ॥ १९४ ॥ स्वर भक्ति दो प्रकार की बड़ी गई है— श्रकार में और रेफ में विहिनादार चिन्तको ने बह स्वरोदा और व्यञ्जनोदा नामों द्वारा बनलाई है । श ष भो में स्वरोदया और ह्रकार में व्यञ्जनोदया, श ष श्रेय निवृत्ता और ह्रकार में सञ्ज्ञा जानते हैं ॥ १९५ १९६ ॥

स्वरभक्ति प्रथु जान स्त्रीपरिष्वलुवर्जना ।
 इकारचप्युकार चानसदीर्यै तयैव च ॥ १९७
 सयोगपरच्छापर विसर्जनीय द्विमात्रक चैव ।
 धवसातिक च नङ् मसानुस्वार प्रटत च ॥ १९८
 घस्या पाद प्रथमो द्वादशमात्रास्तथा तृतीयोपि ।
 अष्टादशा द्वितीय समापन्न पञ्चदशमात्र ॥ १९९
 यस्यालक्षणमुक्त या त्वन्या सा स्मृता विपुला ।
 अक्षराणा लघुह्रस्वमसयोगपर यदि ॥ २००
 तत्सयोगोत्तरे विद्यान् गुरुधीरक्षराक्षराणिनु ।
 विवृत्तिर्मत्र दृश्येत स्वारस्यैवाप्रत स्थित ॥ २०१
 गुरुस्वारमविज्ञेय शोप्रस्तन न विद्यते ।
 अष्टप्रकार विज्ञेय पदाना स्वरलक्षणम् ॥ २०२

स्वर भक्ति का प्रयोग करने का नाम स्त्री पारि का यजना

होती है । इकार और उकार, चानस दीर्घ, मयोग परच्छापर, विस-
 जंतीय और द्विमात्रक, व्यवसातिव, नट् मसानुसार प्रकृत है ॥ १६७ ।
 १६८ ॥ त्रिमका प्रथम षाड् द्वादश मात्रा वाला है तथा तृतीय भी
 उसी प्रकार का है । अकारह मात्रा वाला और पन्द्रह मात्रा वाला
 समापन है ॥ १६९ ॥ त्रिमका लक्षण कहा है और जो अन्या है वह
 विपुला बही गयी है । अकारो का यदि लघु ह्रस्वम गयोग पर हो
 उगवे मयोगोचर मे गुरु धीरक्षर हो जहाँ पर ऐसी विवृत्ति दिखलाई
 देवे वही स्वारस का ही भागे स्थित है ॥२००, २०१ ॥ गुरुस्वार मवि-
 शेष है वही पर दीर्घ नहीं होता है । पक्षो का स्वर लक्षण आठ प्रकार का
 जानना चाहिये ॥२०२॥

अतोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्त नीच स्वरितम् ।

मध्योपत स्वरित द्विरदात्तमित्येता अष्टौ पद सज्ञा ।

अग्नि सोम प्रवोवीर्तं हविषा स्वरवनस्थति अतमंध्यमयो-
 ताम्मुदमनुनिपात्य आचारम्वरितमुपमर्गे द्विर्नोचसाध्यात
 इति स्वरितत्पराणि यानि स्युर्द्वारापरक्षाराणि तु । सर्वाणि
 प्रचयस्था न्यु पोदात्त निहन्यन्त ॥२०३

प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात्स्वर बुध ।

स्वरित केवचो यत्र मदुस्तत्र निपातयेत् ॥२०४

पच विधिआचार्यक नाम गुण न्याम करण प्रतिज्ञोच्चारणा
 अप्रोच्यते श्रेय गनु यैश्य प्रतिज्ञातोच्चारणा यस्य कस्य
 चिद्वर्णस्य करण नोपलभ्यते प्रतिज्ञा तत्र वीढ व्याकरणम् हि
 तज्ञातम् ॥२०५

तु बुध भयद्विगिष्टविश्रावस्वादयश्च मध्या ।

गाम मुनिभूत करण स्वरगोश्रम्या-नेव जानीयु ॥२०६

गोशेमाग्नि मदारक्षेद श्रीपादसंनम् नेतुम् ।

जीर्णो हार प्रवृद्ध ग् नूपगिःस्रज्ञ चिन्तयेत् ॥२०७

गरद् विपुषो पीतादुपगुम्धान मित्यने ।

यावद्वासन्तिकी रात्रिमध्यमा पयुं पस्थिता ॥२०८
 आम्नपालाशविल्वाना अपामार्गशिरिषयो ।
 वाग्यत. प्रातरत्याय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥२०९
 खादिरश्च कदम्बश्च कर् वीर करजयो ।
 सर्वैकटकिना पुण्या क्षीरिणश्च यशस्विन ॥२१०

अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, मीष स्वरित, मध्यो-
 मत स्वरित, हिसुदात्त ये इतनी आठ पद सज्ञाये हैं । अग्नि, मोम,
 प्रबोबोयं, हविषा, स्वर वनस्पति, अन्तमंध्य ममोताभ्युद—अनुनिपात्य
 काय से स्वरित, उपसर्ग मे द्विर्नीच यह आख्यान है—ये स्वरित पर जो
 है द्वारा परक्षर मव प्रथयस्य उपोदात्त निहनन किया जाता है ॥२०३॥
 जहाँ पर प्रचय दिखलाई देवे वहाँ पर बुध पुरुष स्वर का इनन करे ।
 जहाँ पर केवल स्वरित हो वहाँ पर मृदु का निपातन करना चाहिये
 ॥ २०४ ॥ पाँच प्रकार का आचार्यक होता है, नाम सुख, न्यास करण,
 प्रतिशोच्चारणा । यही पर श्रेय वैश्य कहा जाता है यह प्रतिशोच्चा-
 रणा है । जिस किसी वर्ण का करण उपलब्ध नहीं होता है वहाँ पर
 प्रतिज्ञा है और तदात्मक बीड व्याकरण है ॥२०५॥ तुम्बरू भवद्विशिष्ट
 विश्वावसादि गन्धर्व हैं । सामो निभूत करण स्वर सौम्य होने से नहीं
 जानना चाहिये ॥ २०६ ॥ कौशेयानि, सदारक्षोद श्रीपाद दर्शन, हेतु
 जीर्णोद्धार, प्रबुद्ध, खसूपमिन् ब्रह्म का चिन्तन करे ॥ २०६ । २०७ ॥
 शरद विपुवतोऽतीत से उपकाल मे उद्यान इष्ट होता है जब तक वास-
 न्तिकी रात्रि मध्यमा पयुं पस्थिता होनी है ॥ २०८ ॥ आम्र, पलाश,
 विल्व, अपामार्ग, शिरीष, इनकी दातुन प्रात काल मे उठकर मोनवती
 होते हुए करना चाहिए ॥ २०९ ॥ खदिर, कदम्ब, करवीर, ये सब
 कष्टकी पुष्प हैं और जो क्षीर वाले हैं वे यशस्वी हैं ॥२१०॥

तेनास्य करण सौम्य माधुर्यं चोप जायते ।

वर्णाश्च कुरुते सम्यक् प्राचीनीदवतियंथा ॥२११॥

त्रिफला लवणाद्येन भक्षयेच्छिष्यक' सदा ।
 अग्निमेधाजनन्येषा स्वर वर्णकरी तथा ॥२१२
 कृत्वा चावश्यकामा जाठर पर्धुपास्य च ।
 पीत्वा धूम घृत चैव शुचिभूर्त्वा ततो वदेत् ॥२१३
 मद्देगोपक्रमेत्पूर्वं सर्वशाखा स्वय विधिः ।
 सप्तमत्रानतिक्रम्य यथेष्टा वाचमुत्सृजेत् ॥२१४
 न ता समीरयेद्वाच न प्राणमुपरोधयेत् ।
 प्राणानामुपरोधेन वंस्वर्यं चोपजायते ॥२१५
 स्वर व्यजन माधुर्यं लुप्यते नाय सशयः ।
 कुतीर्यादागत दग्धमपवणेश्च भक्षितम् ॥२१६

इन्ने इसका करना गोक्ष्य होता है और माधुर्य उपजात हुआ करता है । प्राचीनीश्वरि के समान वर्णं सम्यक् करता है ॥ २११ ॥ शिष्य का सदा लवणाद्य के साथ त्रिफला का भक्षण करना चाहिये । यह अग्नि मेधा की जननी होती है तथा स्वर और वर्ण की भी करने वाली है ॥२१२॥ आवश्यक घर्षों को करने और जठर का पर्धुपासन करके धूम और घृत का पान करके परम शुचि होकर इनके उपरान्त में बोलना चाहिये ॥२१२॥ सर्व प्रथम मन्द स्वर से आरम्भ करना चाहिये सब शाखाओं में यही विधि है । सात मन्त्रों का अतिक्रमण फिर यथेष्ट वाणी का उरगर्ग करना चाहिये ॥२१४॥ उम वाणी का समीरण नहीं करे और पुण्य का उपरोध भी नहीं करना चाहिये । क्योंकि पुण्यों के उपरोध करने से विस्वरता समुत्पन्न होजाया करती है ॥२१५॥ यहाँ पर स्वरो का और व्यञ्जनो का माधुर्य सर्वथा सुप्त हो जाया करता है, इन्ने तत्रिक भी मध्य नहीं है । कुतीर्य से आगत, दग्ध और अपवणों के द्वारा भक्षित होता है ॥२१६॥

न तस्य परिमोक्षोस्ति पापाहेरिव त्रिन्विपात् ।
 मुतीर्यादागत जग्धु स्वप्नात् मु प्रतिष्ठितम् ॥२००

मुस्वयेण स्ववक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजति ।
 न बरालो न लवोष्टो न च सर्वानुनासिनः ॥२१८
 गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमहति ।
 एकचित्तो निरुद्धान्तः स्नाता गानपिबञ्जितः ॥२१९
 स तु वर्णान् प्रयुज्जीत दतोष्ठः यस्य शोभनम् ।
 पचविद्या न गृह्णन्ति चडास्वब्धाश्च ये नराः ॥२२०
 अत्रमाश्व सरागाश्च येषां च विमृत मनः ।
 शनैर्विद्या शनैरर्थानारारहेत्यत्रतं शनैः ॥२२१
 शनैरध्वमु वर्तेत योजनान्न परं यजेत् ।
 याजनानां पश्यन्तु शनैर्याति पिपीनिका ॥२२२
 अगच्छान्वैननेयापि पदमेव न गच्छति ।
 न हि पापहता वाणी प्रयागात् वक्तुमहति ॥२२३

उमरा विश्वम न पापादि के ही समान परिभाष नहीं होता
 है । सुभीष न भाषण स्वस्वान और गुरुनिष्ठित वा अरुत बरे ॥२१७॥
 मुग्धर स्वर न युक्त भाषे मुग्ध न प्रयुक्त विद्या ब्रह्म (वेद) भाषित
 नव दोष हुआ करता है । बराल मध्ये ओष्ठों न युक्त और सर्वानु-
 नासिन वाता नहीं होता आदिप । गद्गद और बद्ध जिह्वा वाता
 प्रयोगों का बरत क योग्य होता है । एक में चित्त के लगाने वाता
 उद्घाटित न स्थित स्वान विद्या हुआ और ज्ञान न विपरिणत होकर
 बोधे ॥२१८॥२१९॥ वर्णों का प्रयोग उगी को करता आदिप विगके
 दोष और हाठ लाभन हों । ये ज्ञान वर्तेत पांच विद्या का पश्य
 नहीं विद्या करता है जो नर पाप है स्वभ्य है धारणी और शानो से
 युक्त है नव विद्या मन् १६२१ होता है । विद्या का जनी २ और
 अवी वा भी जनी २ पत्र के ही समान भाष ह्य बरे ॥२२०॥२२१
 मानों न धार न बरत वाता आदिप और यात्रन न अधिक बरत
 नहीं बरत आदिप । तिल विद्या (ओठी) धारे धीरे मँवडो ६ प्रती

तत्र मयन पर जाया करती है ॥२२२॥ न मयन करने वाला गण्ड एक कदम भी नहीं जा सकता है चाहे उसकी गमन शक्ति कितनी ही बड़ी है । पाद से हत हुई वाणी प्रयोगों को बोलने में योग्य नहीं हुआ करती है ॥२२३॥

वधिरस्येव अल्पस्य विदग्धा वामलोचना ।
 उपाशुनरित चैव गोघ्रोते वित्तसन्निव ॥२२४
 अपिरुष सहस्रेषु सदेहेष्वेव वर्तते ।
 पुस्तक प्रत्यघात नाधीत गुरुसन्निधौ ॥२२५
 गजतेन सभामध्ये जारगर्भेव कामिनी ।
 अञ्जनस्य क्षय दृष्ट्वा बल्मोरस्य तु सञ्चयम् ॥२२६
 अवश्य दिवस धुर्याद्दानाध्ययन कर्मसु ।
 यत् कीट पाशुभिलेक्ष्यो बल्मीक क्रियते महान् ॥२२७
 न तत्र बलसानार्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम् ।
 सहस्रगुणिता विद्या शतश परिकीर्तिता ॥२२८
 आगमिष्यति जिह्वाश्रे रथलान्निम्नामेवोदकम् ।
 हृषानामिव जात्यानां अर्द्ध रात्राद्द शायिनाम् ॥२२९
 न हि विद्यायना निद्रा विर नेत्रेषु तिष्ठति ।
 न भोजनविलयी स्यान्न च नारिनिवधन ॥२३०

वधिर के सन्त की वाम नाचना की भाँति ही विदग्धा होती है । जो विषय रूप में अस्त के समान ही उपाशु चरित वा अध्ययन किया करना है वह अधिकृत महमों में स देहा म ही रहा करता है । पुस्तक के प्रत्यघ द्वारा जो अध्ययन विद्या है तथा किसी मुषोर्य गुरु के समीप में उपस्थित रहकर अध्ययन नहीं किया है वह गुरुय बन्धो भी विद्वानों की सभा के मध्य में जारगुह्य से गर्भ के धारण करने वाली कामिनी के समान ही जोभा प्राप्त नहीं किया करता है । अञ्जन का क्षय और बल्मीक वा सञ्चय देखकर अपने सम्पूर्ण दिवस को दान

यद्यपि मेधा मे गुणो के द्वारा भी मुधुदा के बिना भी बिद्या प्राप्त हो जाया करती है किन्तु उस बिद्या की कोई सफनता नहीं हुआ करती है । जिस प्रकार से यौवन वाली कामिनी वन्द्या होने के कारण सफल नहीं होती है । यह इतना मिथा ग्रन्थ है जो मैंने आपको बतलाया है यह केवल दिक् माय ही है अर्थात् परमाधिक सूक्ष्म स्वरूप मे ही समुद्दिष्ट किया है । इस धारा वेदो के अङ्ग शास्त्र वा ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्म के ही गमान हो जाया करता है । २३३-२३७।



कल्पवर्णन में गणेश पूजा, ग्रहशांति तथा श्राद्ध निरूपण

अथात् सप्रवक्ष्यामि कल्पग्रन्थ मुनीश्वर ।
 यस्य विज्ञान माग्नेन स्यान् कर्म कुशलो नर ॥१
 नक्षत्र कल्पो वेदाना सहिताना तथैव च ।
 चतुर्थं स्यादगिरस शांति कल्पश्च पञ्चम ॥२
 नक्षत्राधीश्वराख्यात विस्तरेण यथातमम् ।
 नक्षत्र कल्पे निर्दिष्टे ज्ञातव्य तदिहापि च ॥३
 वेदकल्पे विधान तु ऋगादीना मुनीश्वर ।
 घमायं काम मोक्षाणा सिद्धयं प्रोक्त सविस्तरम् ॥४
 मन्त्राणामुपयश्चैव छन्दास्त्वय च देवता ।
 निर्दिष्टा सहिताकल्पे मुनिभिस्तत्स्वर्दाशिभि ॥५
 तद्देवागरमे कल्पे षट्कमाणि सविस्तरम् ।
 अभिचार विधानेन निर्दिष्टानि स्वयभुवा ॥६
 शांति कल्पे तु दिव्याना भीमाना मुनिसत्तम ।

तथातीरिक्षोत्पाताना शातयो ह्यमुदिता पृथक् ॥७

इसके अन्त-रर इसीलिये हे मुनीश्वर । मैं अत्र कल्प ग्रन्थ का वर्णन करूँगा जिसके विज्ञान भाग से ही मनुष्य कम्म-कृपाल होजाया करता है ॥१॥ वेदों का और उसी भाँति संहिताओं का नक्षत्र करण होता है । चतुर्थ आङ्गिरस कल्प होता है और पाँचवा शांति कल्प हुआ करता है । २॥ नक्षत्रों के अधीश्वर विस्तार के भाग ठीक ठीक बनला दिये है । नक्षत्र कल्प में जो निदिष्ट किया गया है वह यही पर भी जान लेना चाहिए ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वर ! वेद कल्प में ऋक् आदि का विधान है जो कि धर्म अर्ग काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये विस्तार क साथ कहा गया है ॥४॥ तस्वो के पूर्णजाता मुनियों के द्वारा संहिता कल्प में समस्त मन्त्रों के ऋषिगण, छन्द और देवताओं का निर्देश किया गया है ॥ ५ ॥ उसी प्रकार से आङ्गिरस कल्प में भगवान् स्वयम्भूदव न अभिचार के विधान स षट्कर्मों में मारण, मोहन वशीकरण उन्नाशन स्तम्भन और आवषण ये आते हैं ॥६॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! शान्ति कल्प में दिव्य भोग और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पातों की शान्तिवाँ पृथक् २ बनलाई गयी हैं । अर्थात् दिवलोक म-पृथिवी में और आकाश में जो भी कोई उत्पात होत है उसकी अलग २ शान्ति करने का विधान बतलाया गया है ॥७॥

गक्षेपेणैन्दुद्विष्ट सक्षय कल्पलक्षणे ।

विशेष पृथगेतेषा स्थित शाप्यातरेषु च ॥८

गृह्यकल्पे सर्वेषामुपयोगितयाऽधुना ।

यक्षयामि ते द्विजश्रेष्ठ सावधानतया शृणु ॥९

अनारश्चाय शब्दश्च द्वायती ग्राह्येण पुरा ।

कथमित्था विनिर्यातो तस्मात्मागन्धहायिभो ॥१०

मृत्वा प्रोक्तानि कर्माणि तद्दुर्दानि करोति यः ।

सोऽय शब्द प्रबु भीत तदानत्वार्यमिष्यते ॥११

कुशा परिसमूहाय सप्त शाखा प्रकीर्तिता ।

न्यूनाधिका निष्फलाय कर्मणोभिमतस्य च ॥१२

कृमिकीट पतगाद्या भ्रमति वसुधातन्न ।

तेषा सरक्षणार्थाय प्रोक्तं परिसमूहलम् ॥१३

रेखा प्रोक्ताश्च यास्तिस्र कर्तव्यास्ता समा द्विज ।

न्यूनाधिका न कर्तव्या इत्येव परिभाषितम् ॥१४

यहाँ पर कल्पो के सक्षण में अति सक्षेप से सक्षण को उद्दिष्ट कर दिया गया है । इनका विशेष रूप से वषण अन्य शाखाओं में पृथक् स्थित है ॥८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! गृह्य कल्प में तो सभी की उपयोगिता होने के कारण से मैं इस समय में बतलाऊँगा । आप बहुत गावधान होकर उसका श्रवण कीजिए ॥ ९ ॥ ऊँकार और शब्द ये दोनों पूव काल में ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले थे । इस कारण से ये दोनों परम माङ्गलिक होते हैं ॥१०॥ जो मामव इनका बोल कर उसके पश्चात् कर्मों की क्रिया करना है उसको अर्घ—इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए वह अनन्त अर्घ के लिये अभीष्ट हुआ करता है ॥११॥ कुशा परिसमूहन के लिये होती हैं और उनकी मात शाखाएँ कीर्तित की गयी हैं । इनसे न्यून तथा अधिर जो कुशाएँ होती हैं वे अभिमत कर्म के लिये निष्फल होती हैं । अर्थात् ज्यादा या कम होने पर कर्म फलहीन हो जाया करता है ॥ १२ ॥ इस पृथ्वी तल पर अनेक कृमिकीट और पतङ्ग आदि भ्रमण किया किया करते हैं उन सब के सरक्षण के ही लिये परिसमूहन बताया गया है ॥१३॥ हे द्विज ! जो ये तीन रेखाएँ बतलाई गयी हैं उन तीनों को भी न्यून अथवा अधिर अर्थात् अममान कभी नहीं करना चाहिए—यह ही इनकी परिभाषा बतलाई गयी है ॥१४॥

मेदिनी मन्मथा श्याता मधुरन्तम दैत्ययो ।

गामयेनोपनिष्य तदवमिति नारद ॥१५

वध्या दुष्टा च दीनागी मृतवत्सा च या भवेत् ।
 यज्ञार्थं गोमय तस्या नाहरेदिति भावितम् ॥१६
 ये भ्रमति सदाकाशे पतगाद्या भयकरा ।
 तस्या प्रहरणार्थाय मत प्रोद्धरण द्विज ॥१७
 थ्रुवेण च कुशेनापि कुर्यादुल्लेखन भुव ।
 अस्थि वटक सिद्धघर्थं ब्रह्मणा परिभाषितम् ॥१८
 आपो देयगणा रावें तथा पितृगणा द्विज ।
 तेनादि भिरुद्याण प्रोक्त मुनिभिर्विधि वाविद ॥१९
 अग्नेरानयन प्रोक्त सौभाग्य स्त्रीभिरेव च ।
 शुभदे मृषमये पात्रे प्रोक्ष्याद् भिस्त निधापयेत् ॥२०
 अमृतस्य क्षय दृष्ट्वा ब्रह्मार्थं रावं देवतै ।
 वेद्या निधा पितस्तस्मात्समिद् गर्भो हुताशन ॥२१

यह सम्पूर्ण मेदिनी मधु और कंटभ इन दोनों दैत्यों के मेद से
 ब्याप्त हो रही है । हे नारद ! इसीलिये इस भूमि को गाय के गोबर
 से सीप लेनी चाहिए ॥१५॥ वध्या (वाज) दुष्टा दीनाङ्गी और जो
 मृतवत्सा अर्थात् बाल न होकर बच्चे तो उत्प न होवें किंतु मय मृत
 जिनके हो जाते हैं । ऐसी जो कोई गौ होवे उसका गाबर भूलकर भी
 यज्ञ कर्म करने के लिय नहीं ग्रहण करना चाहिए—ऐसा विचार लिया
 गया है ॥१६॥ हे द्विज ! जो महान् भयङ्कर पतङ्ग आदि मदा आवाण
 म भ्रमण किया करते हैं उनके प्रहरण के लिये ही प्रोद्धरण माना गया
 है ॥१७॥ थ्रुव के द्वारा और कुशा के द्वारा भी भूमि का उल्लेखन करे ।
 ब्रह्मात्री ने अस्थि रण्टको की मिट्टि के लिये कहा है ॥१८॥ हे द्विज !
 विधि विधान के महान् पण्डित मुनिगणों ने इसी कारण स जला के
 द्वारा उगण बतनाया है क्योंकि समस्त जल देवगण तथा पितृगण व ही
 समान माने गये हैं ॥ १९ ॥ सौभाग्यवती स्त्रिया के द्वारा अग्नि का
 आनयन अर्थात् घरी पर माना बनाया गया है और वह भी किसी परम

शुभ मृण्मय (मिट्टी से बने हुए) पात्र में लाना चाहिए तथा जलो से प्रोक्षण करके उसको वहाँ पर निघापित करना चाहिए ॥ २० ॥ ब्रह्मा आदि समस्त देवो न अमृत का क्षय देखकर समिधाओ के गर्भ वाले अग्नि को इसी कारण से वेदी में निघापित किया है ॥२१॥

दक्षिणस्या दानवाद्या स्थिता यज्ञस्य नारद ।

तेभ्य सरक्षणार्थाय ब्रह्माण तद्दिशिन्यसेत् ॥२२

उत्तरे सर्वपात्राणि प्रणीताद्यानि पश्चिमे ।

यजमान पूर्वत स्युर्द्विजा सर्वेपि नारद ॥२३

द्यूते च व्यवहारे च यज्ञकर्मणि चेद्भवेत् ।

कार्तोदासीन चित्तस्तत्कम नश्येदिति स्थिति ॥२४

ब्रह्माचार्यो स्वशाखौ हि कर्तव्यौ यज्ञकर्मणि ।

ऋत्विजा नियमो नास्ति यथालाभ समचयेत् ॥२५

द्वे पवित्र ह्य गुलेस्त प्रोक्षिणी चतुरगुला ।

आज्यस्थाली त्र्यगुलाथ चहस्याली षडगुला ॥२६

द्वयगुल नूपयममेक समार्जनागुलम् ।

स्रुव षडगुल प्रोक्त स्रुचि साढ्वनयागुलम् ॥२७

प्रादेशमात्रा समिध पूर्णपात्र षडगुलम् ।

प्रोक्षिण्या उत्तरे भागे प्रणीतामत्रष्टभि ॥२८

हे नारद ! दक्षिण दिशा में यज्ञ के दानव आदि स्थित रहा करते हैं अतएव उन से सरक्षण प्राप्त करने के लिये ही उसी दिशा में ब्रह्माजी का न्यास करना चाहिए ॥२२॥ उत्तर दिशा में प्रणीता आदि सब पात्रों का न्यास करे और पश्चिम में ही नारद । यजमान को सम-वस्थित होना चाहिए तथा पूर्व में सब द्विजगण स्थित रहने चाहिये । ॥२३॥ यदि द्यूत क्रीडा में—व्यवहार में और यज्ञ कर्म में आसं एव उदासीन चित्त बाना होकर स्थित रहता है तो वह कर्म ही नष्ट हो जाया करता है—ऐसी स्थिति होती है ॥२४॥ यज्ञ वन में जो ब्रह्मा

और भाचार्या हो उनको अपनी शाखा वाला ही करना चाहिये । रहे ऋत्तिजगण उन के विषय मे कोई भी विशेष नियम की व्यवस्था नहीं बनवाई गयी है । अतएव उनका समर्चन यथा लाभ ही करना चाहिए । १२५। दो पवित्रियाँ दो अङ्गुलियो के प्रमाण वाली होनी चाहिए । और जो प्रोक्षणी हो वह चार अगुलियो के प्रमाण वाली होनी चाहिए । जो आज्य स्वाती हो वहाँ तीन अङ्गुलियो के प्रमाण हावे तथा चर स्वाती छे अङ्गुलियो के प्रमाण मे युक्त स युक्त होनी चाहिए । १२६। वहाँ पर एक उपपम दो अङ्गुलियो के प्रमाण वाला हो व जा समाजनागुल हो । मुव पडङ्गुल बताया गया है । १२७। गमस्त समिधामे प्रादेश मान होनी चाहिये तथा जो पूर्ण पात्र हो वह छे अगुल प्रमाण वाला होना चाहिये । प्रोक्षणी के उत्तर भाग मे प्रणीता हानी चाहिए जो आठ अङ्गुलियो के प्रमाण वाली होवे । १२८।

यानि वानि च तीथानि समुद्रा सरिस्तथा ।

प्रणीताया समामन्नास्तस्मात्ता पूरयेज्जले ॥२९

वेदिका वस्त्रहीना च नाना सप्रोच्यते द्विज ।

पग्निस्तोर्यं ततो दर्भे परिध्यादिमा बुध ॥३०

इ द्रव्यञ्च विष्णुचक्र वामदेन विण्मूलकम् ।

दर्भरूपतया श्रीणि पवित्रच्छेदनानि च ॥३१

प्रोक्षणी च प्रवर्तव्या प्रणीतोदक मयुना ।

तेनाति पुण्यद कर्म पवित्रमिति कीर्तितम् ॥३२

आज्यस्वाली प्रवर्तव्या पलमात्र प्रमाणिका ।

कुलाल चक्रघटित आगुर मृण्मय मृनम् ॥३३

तदेव हस्तघटित स्वात्यादि देविव भवन् ।

श्रुवे च सव कर्माणि शुभान्यप्यशुभानि च ॥३४

तस्य चैव पवित्रार्थं वहनी तापनमीग्निम् ।

अग्रे घृतेन वैधस्य मध्ये चैव प्रशाशर ॥ ७

त्रितन जो भी कोई तीय है व सब अष्ट अंग अंगुलियो की

प्रणीता पात्र में समासन्न होते हैं इसी कारण से उस प्रणीता पात्र को जलो मे पूरित कर देना चाहिए ॥२६॥ हे द्विज ! जो वेदिका होती है वह वस्त्रो से हीन ही रहा करती है अत्रएव नग्न कही जाती है । अत्रएव बुध पुरुष को चाहिय कि दमों से परिस्तीर्ण करके इसका समाच्छादन कर देवे ॥२७॥ वहाँ पर पवित्रछेदन करने वाले इन्द्रवप्य-विष्णुचक्र वामदेव का त्रिशूल इन तीनों को दमों के ही रूप से स्थित कर देवे ॥२९॥ जो प्रोक्षणी हो उसको प्राणीतोदक से समन्वित कर देना चाहिये । उससे अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाला एव पवित्र कर्म होता है—ऐसा ही कहा गया है ॥३२॥ जो आग्य (घृत) की स्थाली हो उसको ऐसा ही बनाना चाहिए जो पल मात्र वे प्रमाण वाली होवे । कुनाल (कुम्हार) के चाक के द्वारा जो मृण्मय (मिट्टी की बनी हुई) होती है उसको आसुर बनाया गया है ॥३३॥ वह ही हाथ से विरचित स्थाली आदि होती है उसको दैविक कहा जाता है और जो स्रुज होता है उसमे सभी शुभ और अशुभ कर्म हुआ करते हैं ॥३४॥ और उसको पवित्र बनाने के लिये उसका अग्नि में तपाना बतलाया है । उसको यदि आगे घृत किया जावे तो वैधव्य होता है और मध्य भाग भ ग्रहण करके रखा जावे तो प्रजा का क्षय हुआ करता है ॥३५॥

मूले च म्रियते होता तस्माद्धार्यं विचार्य तत् ।
 अग्नि सूर्यंश्च सोमश्च विरचिरानिलो यम ॥३६॥
 स्रुवे पडेते देवास्तु प्रत्यगुलमुपाश्रिता ।
 अग्निर्भोगार्यं नाशाय सूर्यो व्याधिकरो भवेत् ॥३७॥
 निष्फलस्तु स्मृत सोमो विरिचि सर्वं धामद ।
 अनिलो वृद्धिद प्रोक्तो यमो मृत्युप्रदो मत ॥३८॥
 समार्जनोपपन्न वर्तव्यं च बुशद्वयम् ।
 पूर्वं तु सर्वंशाप्य स्यात्पचशाख तथा परम् ॥३९॥
 श्रीपर्णी च शमी तद्वद्वदिरश्च विवकिन ।

पलाशचैव विज्ञेया स्रुवे चैव तथा स्रुचि ॥४०
हस्तोन्मित स्रुवं शस्ते त्रिदशागुलिक स्रुचम् ।
विप्राणा चैतदाख्यात ह्यन्येषामगुलोनकम् ॥४१
शूद्राणा पतिताना च खरादीना च नारद ।
दृष्टिदोषविनाशार्थं पात्राणा प्रोक्षण स्मृतम् ॥४२

और मूल में उसको ग्रहण किया जावे तो जो होता है उसकी ही मृत्यु हो जाया करती है । अतएव इसके ग्रहण करने के विषय में भली भाँति विचार करके ही इसको धारण करना चाहिये । अग्नि, सूर्य, सोम, विरञ्चि, अनिल, यम ये छँ देवता स्रुव में प्रत्येक अगुलि में उपाश्रित हुआ करते हैं । जो अग्नि देवता होता है वह भोगार्थ के विनाश करने के लिये हुआ करता है और सूर्यदेव होते हैं वे व्याधियों के करने वाले हुआ करते हैं ॥ ३६ ३७ ॥ सोमदेव की जो वहाँ पर स्थिति होती है वह निष्फल अर्थात् बिना किसी फल वाली हुआ करती है ऐसा ही बताया गया है । विरञ्चि की वहाँ पर स्थिति सम्पूर्ण कामनाओं से पूर्ण करने वाली हुआ करती है । अनिल देवता वृद्धि के प्रदान करने वाले और यम मृत्यु का दाता हुआ करता है ॥ ३८ ॥ दो कुशाओं के द्वारा समार्जन एवं उपयमान करना चाहिए । पूर्व अर्थात् समार्जन तो सब शाखाओं से युक्त कुशा में करे तथा दूसरा कर्म पाँच शाखाओं से युक्त दध्न से करना चाहिए ॥ ३९ ॥ स्रुव और स्रुच के निर्माण कराने के लिये किन्-किन वृक्षों की लकड़ी होनी चाहिये, यह बतलाते हुए कहते हैं श्रीपर्णी, ममी, वटिर, विककिन और पलाश ये ही वृक्ष जानने चाहिए ॥ ४० ॥ एक हाथ प्रमाण वाला स्रुव प्रशस्त माना जाया करता है तथा तेरह अगुण प्रमाण वाला स्रुक् अच्छा बताया गया है । यह इन दोनों का प्रमाण जो परमश्रेष्ठ एवं प्रशस्त बतलाया गया है वह केवल विप्रों के ही लिये कहा गया है । विप्रेतर वर्णों के ही लिये जो अन्य होते हैं उनके ये दोनों ही एक अगुण मूल हुआ

करते हैं ॥४१॥ हे नारद । घूट, पतित और जो घर आदि हैं उनकी दृष्टि दोषों के विनाश करने के लिये ही पात्रों का प्रोक्षण कहा गया है ॥४२॥

अकृते पूर्णपात्रे तु यज्ञच्छिद्र समुद्भवेत् ।
 तस्मिन् पूर्णाकृते विप्र यज्ञसंपूर्णता भवेत् ॥४३॥
 अष्टमुष्टिभवेत् किञ्चित् पुष्कल तच्चतुष्टयम् ।
 पुष्कलानि तु चत्वारि पूर्णपात्र विदुर्बुध ॥४४॥
 होम काले तु संप्राप्ते न दद्यादासन वचिन् ।
 दत्ते तृप्तो भवेत् वह्निं शाप दद्याच्च दारुणम् ॥४५॥
 आधारो नासिके प्रोक्तो आज्यभागौ च चक्षुषी ।
 प्राजापय मुख प्रोक्त करिष्याद्वृत्तिभि स्मृता ॥४६॥
 शीपहस्तौ च पादौ च पञ्चवारुणमोरितम् ।
 तथा स्विष्टकृता विप्र श्रोत्रे पूर्णाहुतिस्तथा ॥४७॥
 द्विमुख चकहृदय चतु श्रोत्र द्विनागिकम् ।
 द्विशायक च पद्मेन पिगल सप्तजिह्वकम् ॥४८॥
 सव्यभागे त्रिहस्त च चतुर्हस्तञ्च दक्षिणे ।
 श्रुक्षुवौ चाक्षमालाच या शक्तिदक्षिणे करे ॥४९॥

पूण पात्र के न करने पर यज्ञच्छिद्र की समुत्पत्ति हो जाया करती है और उसके पूण किये जाने पर हे विप्र । यज्ञ की परिपूणता हो जाया करती है ॥ ४३ ॥ कुछ आठ मुट्ठियों वाला होता है । यह चतुष्टय पुष्कल होता है । चार पुष्कल हैं । कुछ गण उसको पूर्ण पात्र जाना करत हैं ॥४४॥ होम करने के समय के प्राप्त होने पर वही पर भी आसन नहीं देता व हिय । आसन के देन पर वह्नि तृप्त हो जाता है और दारुण शाप भी दे देता है ॥४५॥ दोनों आधार दो नासिकाये बताया गया है और दोना आज्य भाग दो चक्षु है । प्राजापय मुख कहा गया है तथा व्याहृतिपा व द्वारा बटि बताया गया है ॥४६॥ शीप

दोनों हाथ और दोनों चरण पञ्च वाष्णक कहा गया है । हे विप्र ! उसी प्रकार से स्वष्टकृत है तथा दोनों श्रोत्र पूर्णाद्विती होती है । १४७। दो मुख, एक हृदय, चार श्रोत्र, दो नासिकाएँ, दो शीर्षक, छे विज्ञान नेत्र और सात त्रिहवाएँ हैं । १४८। सव्य (बाँये) भाग पे तीन हाथ और दक्षिण भाग में चार हाथ हैं । स्रुक् स्रुव और जो अक्षमाला शक्ति है वह दक्षिण कर में होती है । १४९।

त्रिमेखल त्रिराद च घृतपात्र द्विचामरम् ।

गेपारूढ चतु शृ ग बालादित्य समप्रभम् ॥१५०

उपवीत समायुक्त जटाकु डल मडितम् ।

ज्ञात्वैवमग्निदेह तु होम कर्म समाचरेत् ॥१५१

पयो दधि घृता चैव स्नेह पक्व तथैव च ।

जुहुयाद्यस्तु हस्तेन स विप्रो ब्रह्महा भवेत् ॥१५२

यदन्न पुष्टपोऽश्नाति तदन्न तस्य देवता ।

सर्वकाम समद्वयं तिलाधिक्य हविर्मतम् ॥१५३

होमे मुद्रात्रय प्रोक्त मृगी हसी च सूकरी ।

अभिचारे सूकरी स्यान्मृगी हसी शुभात्मके ॥१५४

सर्वांगुलीभि क्रौडीस्याद्ध सी मुक्त कनिष्ठिका ।

मध्यमानामिकागुष्ठैर्मृगी मुद्रा प्रकीर्तिता ॥१५५

पूर्वं प्रमाण्याहुत्या पचागुलिगृहीतया ।

दधिमध्वाज्यसयुक्त ऋत्विग्भिर्जु हुयात्तिलैः ॥१५६

तीन मेखलाओं से युक्त, त्रिराद, घृतपात्र, मेघ पर समारूढ़, चार शृंगों से युक्त तथा बाल सूर्य के समान प्रभा वाला है । १५०। यह अग्निदेव का स्वरूप बतलाया गया है । अग्नि उपवीत से समायुक्त है तथा जटा और कुण्डलों से ममलवृत्त हैं । इस उपयुक्त प्रकार से युक्त अग्निदेव के देह का ज्ञान प्राप्त करने पीछे होम के कर्म का समारम्भ करना चाहिये । १५२। जो विप्र पय (दुग्ध) दधि, घृत और किसी भी

स्नेह के द्वारा परिपक्व पदार्थ को हाथ से ही हवन किया करता है वह ब्रह्महा अर्थात् ब्राह्मण की हत्या करने वाला हुआ करता है ॥ ५२ ॥ जिस भी किसी अन्न को पुरुष खाया करता है वह अन्न उसका देवता होता है । समस्त कामनाओं की समृद्धि के लिये तिलो की अधिकता वाला हवि माना गया है । ५३। होम के अवसर पर तीन मुद्राएँ बतलाई गयी हैं वे तीन मृगी, हसी और सूकरी मुद्राएँ हैं । जो अभिनार के लिये कर्म किया जाता है अर्थात् अन्यो को सतप्त करने के कर्म में सूकरी मुद्रा होती है और मृगी तथा हसी ये दो मुद्राएँ शुभात्मक कर्म में की जाया करती हैं ॥ ५४ ॥ कौडी मुद्रा सभी अंगुलियों के द्वारा की जाया करती है—हसी मुद्रा कनिष्ठिका अंगुलि से रहित होती है तथा मृगी मुद्रा मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठ—इनके द्वारा प्रकीर्तित की गयी है । ५५। पाँचों अंगुलियों से गृहीत और पूर्व में जो प्रमाण बताया गया है उस प्रमाण वाली आहुति के द्वारा दधि आज्य में समुत्तिलो से ऋत्विजों को हवन करना चाहिए । ५६।

कुशास्त्वनामिवासक्ता कार्या स्यु पुण्यकर्मणि ॥ ५७

विनायक कर्मविघ्नसिद्धयर्थं विनियोजित ।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥ ५८

तेनोपमृष्टोपस्तस्य राक्षणाणि निबोध मे ।

स्वमेव गाहेतेत्यर्थं जल मुडाश्च पश्यति ॥ ५९

काभाय वाससश्चैव न्रथ्यादाश्चाधिरोहति ।

अत्यजंगददंभोरुष्टं सहैवत्रावतिष्ठते ॥ ६०

यजन्नपि तथात्मान मन्यतेऽनुगत परे ।

विमना विष नारभससीदत्य निमित्तत ॥ ६१

तेनोप सृष्टो लभते न राज्य राजनदन ।

कुमारी न च भर्तारमपत्य गर्भमगता ।

आचामत्व ध्यात्रियश्च न शिष्योध्ययन तथा ॥ ६२

वणिगलाभ न चाप्नोति कृपि चापि कृपी बलः ।

स्नपन तस्य कर्तव्य पुण्येहिन विधिपूर्वकम् ।

गौरसर्पप कल्केन स्वस्ति वाच्या द्विजैः शुभाः ॥६३

किसी भी पुण्य कर्म में कुशाओ की अनामिका अङ्गुलि में समासक्त रखनी चाहिए । १५७। भगवान् रुद्र तथा ब्रह्माजी के द्वारा गणों के अधिपत्य पद पर कर्मों के निर्विघ्नता पूर्वक सिद्धि के लिए विनायक (गणेशदेव) को विशेष रूप में नियोजित किया गया है । १५८। उनके द्वारा उपसृष्टोपस्त के लक्षणों को मुझमें आप लोग समझ लेवे । स्वयं को बहून ही अधिक जल का गाहन करे और मुण्डों का देखा करता है । १५९। काम के लिये वामसो का और कव्यादो का अधिरोहण किया करता है । अन्त्यज, गर्दभ और उष्ट्रो के साथ एक ही स्थान में अवस्थित हुआ करता है । १६०। गमन करता हुआ भी अपने आपको दूसरों के द्वारा अनुगत मानता है । उदास होकर विफल आरम्भो वाला बिना ही किन्ही निमित्त के दुःखित हुआ करता है । १६१। उनके द्वारा उपसृष्ट हो जाने वाला राजा का पुत्र भी बयो न हो कभी भी राज्यासन की प्राप्ति नहीं कर सकता है । कुमारी कन्या उपसृष्टा होकर अपना भर्ता और अङ्गना गर्भ में सन्तति को प्राप्त नहीं किया करती है । श्रोत्रिय कभी आचार्यत्व के पद का लाभ तथा शिष्य अध्ययन का लाभ नहीं उठाता है । १६२। जो वैश्य व्यापार किया करता है वह अपने वाणिज्य व्यवसाय में लाभ प्राप्त नहीं किया करता है । एवं किसान अपनी कृषि का लाभ प्राप्त नहीं करता है । अतएव किन्ही परम पुण्यमय दिवस में विधि-विधान के साथ उनका स्नपन करना चाहिए और द्विजों के द्वारा गौर सरसों के कल्क के द्वारा परम शुभ स्वस्ति का वाचन करना चाहिए । १३३।

अधस्थानाद् गजस्थानद्वल्मीकात्सगमाद्वदात् ।

मुक्तिका रोचना गधान् गुग्गुल चाशु निक्षिपेत् ॥६४

पाय्याहना ह्येकवर्णैश्चतुर्भि कलमैर्हृदात् ।
 चर्मणानुद्गृहे रक्ते स्थाय मद्रासन तत ॥६५॥
 सहस्राक्ष शनघार ऋषिभि पावन कृतम् ।
 तेनत्वामभिषिचामि पाव मान्या पुनतु ते ॥६६॥
 भग ते वह्णो राजा भग मूर्यो बृहस्पति ।
 भगमिद्रश्च वायुश्च भग सप्तर्षयो ददु ॥६७॥
 यत्ते केजेषु दीर्भाग्य सीमते यच्च सूद्वं नि ।
 ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तुदतु सर्वदा ॥६८॥
 स्नानस्य सार्धं प तैल स्रुवेणीदुवरेण तु ।
 जुह्यान्मूद्वं नि कुगान्सव्येन परिगृह्य च ॥६९॥
 मितश्च समितश्चैव तथा शाल कटकटी ।
 कूप्माडो राजपुत्रश्चेत्यते स्वाहासमन्वितं ॥७०॥
 नामभिवलिमत्रैश्च नमस्त्वारसमन्वितं ॥७१॥

जहाँ अश्वो के ठहरने का स्थान हो वहाँ से—गजों के ठहरने के स्थान से—सर्पों के रहने की बाँधी से जहाँ कई मार्गों का सङ्गम स्थल हो वहाँ से हृद से मृत्तिका का ग्रहण करे । उस मृत्तिका को रोचना गघ, गुग्गुलु इनका बहुत भीघ्न निक्षिप्त करना चाहिए ॥६४॥ पात्नी के द्वारा आहृत करे और हृद से एक वण वासे वाद वसणो स सावे तथा वृषभ के रक्त चर्म में इसके पश्चात् भद्रासन को स्थापित करना चाहिए ॥६५॥ सहस्राक्ष शतघार को ऋषिभों के द्वारा पावन किया गया है । उस से आपका अभिषिञ्चन करता है । वे पावमान्य पावत्र करें ॥६६॥ राजा वरुण तुम्हारे भगको देन बाल हैं । सूर्य और बृहस्पति ने तुमको भग दिया है । इन्द्र और वायु न तथा सप्तर्षियो ने आपका भग दिया है । ॥६७॥ जो तुम्हारे केजों में दीर्भाग्य विद्यमान है और सीमते में तथा मूर्दा में दीर्भाग्य है । ललाटे में—दोना कानों में तथा दोना नेत्रों में जो दीर्भाग्य स्थित है उसको सर्वदा ये जल विनष्ट कर दें ॥६८॥ रत्नान

करने का जो कार्य अर्थात् मरतो का तैल है उसको गुलर की लकड़ी से निर्मित स्तूप के द्वारा धीरे धीरे कुशाधी को ग्रहण करके मूर्त्ति में आदृतियां देकर हवन करे ॥६६॥ मित-ममित तथा माल और कटकट-कूप्माण्ड और राजपुत्र ये जिनके अन्त में हो स्वाहा शब्द से समुत्त एवम् नमस्कार अर्थात् "नमः" इम पद में युक्त नामों से और बलि के देने वाले मन्त्रों में चतुष्पथ में गुरु में मन्त्र और दमों का ध्यान्तरण करके देना चाहिए ॥७०॥७१॥

दद्याच्चतुष्पथे मूर्त्ते कुशानाम्तीर्णं सर्वतः ॥७२॥

मूलव पूरिकापूपास्तयैकोटस्रजोपि च ।

दधन्त पायम चैव गुडपिष्ट समोदकम् ।

एतान्सर्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा तत शिरः ॥७३॥

विनायकस्य जननीमुमापतिमवाचयेत् ॥७४॥

धूपदीपश्च नैवेद्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।

ब्रह्मणान् भाजयेत् पश्चात् यन्त्र युग्म गुरोरपि ॥७५॥

एव विनायकस्य पूज्य ग्रहाश्चैव प्रपूजयेत् ।

श्रीराम शान्तिरामो वा पुष्टिवृष्टघामु दीप्यंवान् ॥७६॥

गुरुयं सोमो महीपुत्रा बुधा जीवो भृगु शनि ।

राहूरेतू न वाप्येने स्थापनीया ग्रहाः क्रमान् ॥७७॥

शान्ति-शान्ति के नैवेद्य पूरी, भूय (पूरी-पूए) उगी प्रकार में उररत्र दधि, अन्न, पायम, गुडपिष्ट, समोदक इन सबको उपाहन करके इनके जनमन्त्र भूमि में शिर करे ॥७२॥७३॥७४॥ शिर विनायक प्रभु की आनी तथा उमापति का अर्घ्यदान करना चाहिए और पूर, दीप, नैवेद्य, गन्ध, माला और अनुष्ठानों के द्वारा यजन करे । इनके उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा अन्न पुष्टेय का भी भोजन करावे ता वरु उनको मर्त्तिदान करना चाहिए ॥७५॥ इन प्रकार में विनायक देव का पूजन करके अन्य ममहन ढरों का भी यथा विधि पूजन करे । जो

पुरुष श्रीही कामना रखने वाला हो अथवा पुष्टि-वृष्टि और सुवीर्य प्राप्त करने का मनोरथ वाला हो उसको विनायक की पूजा के साथ २ अन्य ग्रहों का भी यज्ञ करना चाहिए। ७६। प्रधान नौ ग्रह होते हैं उनके नाम निम्न प्रकार से हैं—सूर्य, सोम (चन्द्र) महीपुत्र (मङ्गल), बुध, बृहस्पति, शुक, शनि, राहु, केतु—ये नौ ग्रह होते हैं। इन नौ ग्रहों को क्रम से जो क्रि बताया जा रहा है स्थापना करनी चाहिये। ७७।

ताम्रकाद्रजताद्रक्त चन्दनात् स्वर्णकादपि ।

हेम्नो रजतादयस सीसात्कार्या शुभात्तपे ॥७८

स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गधर्मंडलकेषु च ।

यथावर्णं प्रदेयानि वासासि कुसुमानि च ॥७९

गधाश्च वलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ।

कर्तव्या मन्त्रवतश्च चरव प्रतिदेवतम् ॥८०

आकृष्णेन इम देवा अग्निर्मूर्धादिव ककुतः ।

उद्बुध्यस्वाति मदयंस्तथैवान्नात् परिस्तुत ॥८१

शन्नोदेवीस्तथा काङ्गात्केतुं कृष्वन्नकेतवः ।

अर्कः पलाश खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥८२

उदुवर शमी दूर्वा कुशाश्च समिध क्रमात् ।

एवंकस्मादष्ट शतमष्टा विंशति रेव च ॥८३

उन ग्रहों की रचना शुभ फल प्राप्ति के लिए ताम्र, रजत चाँदी), रक्त चन्दन से तथा हेम, चाँदी, सोह, सीसा इन धातुओं व टनी चाहिए। ७८। अथवा अपने वर्णों से इन ग्रहों का वस्त्र पर खन करना चाहिए और ग्रहों के द्वारा मण्डल को पर लिख लेना चाहिए। जैसा भी जिस ग्रह का वर्ण बताया गया है उसी वर्ण के अनुसार उनको वस्त्र तथा कुसुम भी समर्पित करने चाहिए। ७९। ध, बलि, धूप गुग्गुलु को देवे और मन्त्र के द्वारा प्रत्येक देवत के लिए चर भी करना चाहिए। ८०। ग्रहों के मंत्रों की प्रतीक देकर

समझाते हुए निम्न रीति से सक्षर में समझाय जाता है । आकृष्णेन इमदेवा—अग्नि मूर्धादिव कबुन—उद्वयम्वाति, मदर्य तथा अयात्परि बन—शन्नो देवी काण्डात्केतु—कुप्यन्न केतव । ये इस प्रकार से ग्रहों की प्रतीक दी गई हैं । आकपलाश (ढाक), खदिर अपामार्ग (ओषा) पीपल मूलर जमी दूर्वा (दूध), और कुशा ये भी ग्रहों में लिए नौ प्रकार की क्रम से ही समिधायें यतायी गयी हैं । इन समिधाओं में से एक २ से एक सौ आठ और कम से कम अट्ठाईस रहण करनी चाहिए । १२१-१२३।

होतव्या मधु सपिभ्यां दध्ना क्षीरेण वा पुन ।
गुडीदन पायस च हविष्य क्षीरयाष्टिकम् ॥५४
दध्नादन हविश्चूर्णं माप चित्रान्नमेव च ।
दद्यात् ग्रह क्रमात् द्विजेष्वो भोजन बुध ॥५५
शक्विन्तोपि यथा लाभ सत्कृत्य विधि पूर्वकम् ।
धेनु शखस्तया नड्वान्हिम वासो ह्य क्रमात् ॥५६
वृष्ण गौरायस छाग एता वै दक्षिणा स्मृता ।
यस्य यस्य तु यत् द्रव्य पलेनाच्य स तेन च ॥५७
ब्रह्मन्नेषा वरो दत्त पूजिता पूजयिष्यथ ।
ग्रहाधोना नरेन्द्राणा धनजात्युच्छ्रयास्तथा ॥५८
भावामावी च जगतस्तस्मात् पूज्यतमा ग्रहा ।
आदित्यस्य सदा पूजा तिलक स्वामिनस्तथा ॥५९
महागणपतेश्चैव कुवन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।
कमणा सफलत्व च श्रिय वाप्नोत्य नुत्तमाम् ॥६०
अकृत्वा भानृपाग तु यो ग्रहार्चा समारभेत् ।
कुप्यति मातरस्नस्य प्रस्पृह कुवते तथा ॥६१

इन उक्त मन्त्रों से मधु पुन से द्वारा अथवा दधि और क्षीर से द्वारा हवन करना चाहिए । गुडीदन, पायस और क्षीरपाष्टिक

हविष्य होना चाहिये ॥८॥ दधि, थोदन, हवि, चूर्ण, उदं, विभ्रान्त ये बुध पुरुष को द्विजातियों के लिये ग्रहों के ही क्रम से भोजन देना चाहिये ॥९॥ शक्ति में ययालाम विधि-विधान के साथ सरकार करके धेनु, शंख, नद्वान्, हिमवास, भ्रव, वृष्णा, गौ, लोह और छाग ये क्रम से नौ ग्रहों के उपलक्ष्य में दक्षिणा बताई गई है । जिस-जिस ग्रह का जो द्रव्य उसका एक पल ग्रहण कर उसी के द्वारा अर्चन उनका करना चाहिये ॥१०॥ हे ब्रह्मन् । इन ग्रहों को ऐसा वरदान दिया गया है कि आप योग पूजित होकर पूजकों का अर्चन करेगे । नरेन्द्रो के घन, जाति और उच्छ्रय आदि सब कुछ ग्रहों के ही अधीन हुआ करते हैं अर्थात् ग्रहों की ही कृपा पूर्ण दृष्टि से राजाओं का उत्थान समृद्धि आदि होता है ॥११॥ जगत् के समस्त भाव और अभाव भी ग्रहों की ही प्रसन्नता से ही हुआ करते हैं । ग्रहों की प्रसन्नता लोगों पर होती है तो समस्त पदार्थों की उपलब्धि होती है और यदि ग्रह क्रुपित हो जाते हैं तो सबका अभाव होजाया करता है । यही इसका तात्पर्य है । इसी कारण से ग्रह सभी के लिए पूज्यतम हुआ करते हैं । भगवान् भुवनभास्कर सूर्य की सदा पूजा करनी चाहिए तथा स्वामी का मिलक करे ॥१२॥ और महा गणपति का अभ्यर्चन करते हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है । गणपति के पूजन का ऐसा महा प्रभाव होना है कि सभी कृत कर्मों से सफलता प्राप्त हाजाया करती है तथा अत्युत्तम श्रेष्ठ श्री को भी प्राप्त किया करता है ॥१३॥ जो कोई मनुष्य घोषण मातृकाओं की पूजा न करके जिसको ऋि मातृगाय कहा जाता है उन एक ग्रहों की ही अर्चा किया करता है या ग्रहों की पूजा का आरम्भ करता है उस पर मातृकायें क्रुपित हाजाया करती हैं तथा उन लोगों के लिए विघ्न उपस्थित कर दिया करती हैं ॥१४॥

वसो पवित्र मन्त्रेण वसोर्द्धारा प्रकल्प्य च ।

गौर्याद्या मातरः पूज्या मागल्येषु शुभार्पिभिः ॥६२
 गौरी पद्मा शची मेघा सावित्री विजया जया ।
 देवसेना स्वधा स्वाहा मातृकाध्यं वै धृतिर्धृति ॥६३
 पुष्टिर्हृष्टिस्तथा तुष्टि रात्म देवतया सह ।
 गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धो पूज्यास्तु षोडश ॥६४
 आवाहन तथा पादममध्य स्नान च चन्दनम् ।
 अक्षताश्चैव पुष्पाणि धूप दीप फनानि च ॥६५
 नैवेद्याचमनीय च ताम्बूल पूगमेव च ।
 नीराजन दक्षिणा च क्रमात् दद्याच्चतुष्टये ॥६६

जो अपने शुभ की अभिलाषा रखते हैं उनको षण्णु के पवित्र मन्त्र के द्वारा षण्णु की धारा को प्रकल्पित करके मागलिक कर्मों में गौरी आदि जो षोडश मातायें हैं उनकी अर्चना करनी चाहिए । ६२ । उन माताओं के नाम बतलाए जाते हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेघा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाध्यं, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि, तुष्टि इन सब मोलहो माताओं का आत्म देवता के ही साथ ही अर्चान् आरमदेव गणेश के साथ में वृद्धि के काल में पूजना चाहिए ॥६३॥६४॥ अब अर्चना का क्रम और उनके उपचारों का नाम बतलाते हैं—जिस देव का भी अर्पण करता हो सर्वप्रथम उस देव का आवाहन करे । इसके उपरान्त देवता के पादों के प्रक्षालनायें या जल अर्पित किया जाना है उसको पाद्य कहते हैं । इसके अनन्तर पूजा के निमित्त जल का अर्पण देवे । फिर स्नान के लिए जल सम-सित कर स्नान करावे । चन्दन, अक्षत पुष्प, धूप, दीप और क्रम से पत्तों का समर्पण करे । इसके उपरान्त नैवेद्य (चाई भी मिष्ठान्न), आषपनीय ताम्बूल और पुद्गोकरव का समर्पण करना चाहिए । क्रम से षण्णुय में नीराजन (भारती) और दक्षिणा देकर प्रणामान्त आर्पण करना चाहिए ॥ ६५॥६६ ॥

पितृरूप प्रवक्ष्यामि धन सततिवद्धं नम् ।
 अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षायन द्वयम् ॥६७
 द्रव्य ब्राह्मण सम्पत्तिविपुवत् सूर्यसक्रमः ।
 व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहण चन्द्रसूर्ययो ॥६८
 श्राद्ध प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकाला प्रकीर्तिता ।
 अग्र्या सर्वेषु वेदेषु श्रोतियो ब्रह्मविद्युवा ॥६९
 वेदार्थं विज्जेष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णकः ।
 स्वस्त्री यज्ञत्विग्जामाता प्राज्यश्च सुरमातुला ॥१००
 त्रिणाचिकेत दौहित्य शिष्य सबधि वाधवा ।
 रुमं निष्ठास्तपोनिष्ठा पचाग्नि ब्रह्मचारिणः ॥१०१
 पितृ मातृ पराश्चैव ब्राह्मणा श्राद्धसम्पदः ।
 रोगी रिक्तागः काण पौनर्भवस्तथा ॥१०२
 अवकीर्णो कुण्डगोली कुनखी स्यावदतिकः ।
 भृतकाध्यापक क्लीव कन्याद्रूप्यभिशस्तक ॥१०३
 मित्रध्रुक् पिशुन सोम विक्रयी परिविदकः ।
 मातृ पितृ गुरु त्यागी कु डाशो वृपलात्मज ॥१०४
 पर पूर्वापति स्तेनः कमघ्नष्ट्राश्च निदिताः ।
 निमत्तयीत पूर्वेषु ब्राह्मिणा नात्मवान् शुचि ॥१०५

इसके अनन्तर मैं पितृरूप के विषय में जो वर्णन करूँगा जो कि धन और सम्पत्ति की बढ़ोतरी करने वाला है । अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष दोनों अवन (उत्तरायण और दक्षिणायन), द्रव्य, ब्राह्मण सम्पत्ति, विपुवत्, सूर्यसक्रमण, व्यतीपात, गजच्छाया, चन्द्र और सूर्य का ग्रहण समय तथा जिस अवसर पर भी श्राद्ध करने के प्रति रुचि समुत्पन्न की जावे वह समय, ये ही काल श्राद्ध करने के काल कहे जाते हैं । जो समस्त वेदों में अग्र्य अर्थात् सर्वथेष्ठ जाता हो, श्रोत्रिय—ब्रह्म के वेत्ता—युवा-वेदों के अर्थों के जानने वाला, ज्येष्ठ

दत्वोदक गधमात्य प्रदायान्न सदीपयन् ।

अथ सद्य तत कृत्वा पितृणाम प्रदक्षिणम् ॥११२

द्विगुणास्तु कुशान्दत्त्वा ह्युशतस्त्वेतमृचा पितॄन् ।

आवाह्य तदनुज्ञातो जपेवाय तुनस्तत ॥११३

त्रिन श्राद्धीय श्राद्धणो को श्राद्ध के निम्ने निम षण दिया जावे
 उनकी भी मन-वचन शरीर और बर्षों के द्वारा पूर्णतया सदन होकर
 रहना चाहिए । श्राद्ध कर्म दुपहर के पश्चात् ही किया जाना चाहिए ।
 अतएव अपराह्न काल में आपत उन श्राद्धणो का स्वागत करने के
 साथ समभ्यर्चन करना चाहिए । १०६ । अपने दोनों हाथों को पवित्र
 करके उन्हें आचमन करावे और फिर आसन पर सागुणविष्ट करे । दैव
 कर्म में तो अपनी जैसी शक्ति हो तदनुसार श्राद्धणो को निमन्त्रित करे
 अर्थात् एक, तीन, पाँच आदि रखे । १०७। परार्थित शुचि (पवित्र)
 देश में दक्षिणा प्रवण दो दैवकर्म में पूर्व में—पितृय कर्म में उत्तर में
 एक एक रखे ॥ १०८ ॥ इसी प्रकार से मातामहो वा भी करे
 अथवा वही पर वैश्व दैविक करे । हाथों का प्रक्षालन देकर विष्ट
 के निम्ने कुशाओं को भी अर्पित करना चाहिये ॥ १०९ ॥ फिर
 अनुज्ञा प्राप्त किया हुआ होकर “ विश्वेदेवास ” इत्यादि ऋचा से
 आवाहन करना चाहिए । यवों के द्वारा अन्वाव किरण करे और इसके
 अनन्तर पवित्रियों के सहित भाजन में “ शनो देव्या ”—इस मन्त्र से
 जल को भिक्ष करे । ‘ यवोऽमीति यवान् ’ इससे तथा “ या दिव्य ”—
 इत्यादि मन्त्र के द्वारा हाथ में पात्र का विनियोग करना चाहिए । ११०।
 १११। उदक, गन्ध, भाल्य और दीपक मन्त्रित अन्न देकर इसके पश्चात्
 अयमव्य करे और पितृणो का अप्रदक्षिण करके दुगुनी कुशाओं को देवे ।
 ‘ उशतस्त्वा ’ इत्यादि ऋचा से पितृणो का आव हन करे और उनके द्वारा
 अनुज्ञात होता हुआ ‘ आयुन्तुन ’ इसका जाप करना चाहिए ११२। ११३।
 यवार्थास्तु त्रिभे कार्पा कुर्यादध्यादि पूर्ववत् ।
 दत्त्वार्धा सयवास्तेषा पात्रे कृत्वा विधानत ॥११४

पितृभ्य स्थानमसीति न्यु व्जं पात्र करोत्यथ ।
 अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्न पृथक् च तत् ॥११५
 कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो दत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ।
 हुतशेष प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहित ॥११६
 यथा लाभोपपन्नेषु रीप्येषु च विशेषतः ।
 दत्वान्न पृथ्वीपात्रमिति पात्राभि मन्त्रणम् ॥११७
 कृत्वेद विष्णु रित्यन्ने द्विजागुष्ठ निवेशयेत् ।
 सव्या हृतिका गायत्री मधुवाता इति ऋचम् ॥११८
 जप्त्वा यथासु ख वाच्य भुञ्जीरस्नेपि वाग्यता ।
 अन्नमिष्ट हविष्य च दद्याद क्रोध नोत्वर ॥११९

जो भी यथार्थ हैं उन सबको तिलो के द्वारा करना चाहिए और
 वं की ही भांति अर्घ्य आदि की सम्पूर्ण प्रक्रिया को करे । अर्घ्य
 समर्पित करके उनके पात्र में विधि-विधान से यवों के सहित करे ।
 १११४। “पितृभ्य स्थानममि”—इस मन्त्र से पात्र को नीचे की ओर
 न्युव्ज कर देना चाहिए । अन्न को लेकर अग्नि में करत हुए उसको
 पृथक् पूछना है । १२५ । जब ‘करो’—ऐसी अनुज्ञा प्राप्त करले तो
 अनुज्ञात होकर पितृयज्ञ के ही समान अग्नि में देवें । हवन किये हुए में
 जो भी कुछ शेष रहे उसको परम सावधान होकर भाजनों में अर्थात्
 पात्रों में देना चाहिए ॥११६॥ यथा लाभ जो भी उपपन्न हो उनमें
 तथा विशेष रूप में रीय अर्थात् चांदी के निर्मित पात्रों में अन्न देकर
 ‘पृथ्वी पात्र’-इसमें पात्रों का अभिमन्त्रण करे। ११७। यह करके ‘विष्णु’
 -इत्यादि मन्त्र से द्विज के अङ्गुष्ठ को अन्न में निवेशित करना चाहिए ।
 व्याहृतियों के सहित गायत्री मन्त्र को तथा ‘मधुवाता’ इत्यादि ऋचा
 का जाप करके गया मुख बोलना चाहिए और विशेषों को भी मौनवती
 होकर भोजन करना चाहिए । अमीष्ट अन्न और हविष्य को क्रोध
 रहित और स्वरा पूर्वक रहने हुए अग्नि करे । ११८। ११९।

दिशा गृह होकर वृद्धि के अथवा पर नान्दीमुख पितृगणों का यज्ञ करना चाहिए और दधि कर्द-घू से मिश्रित पिण्डों को सबों से क्रिया करे। जो एकोद्दिष्ट थाउ होता है वह देवों से होन और एकाद्यैव पवित्रक होता है ॥ १२६।११० ॥ आवाहनाग्नि में करण रहित अपसम्प के तुल्य होता है। अक्षय्य स्थान विप्र विसर्जन में उपस्थित होवे। १२१। 'अभिरम्पताम्' अर्थात् अभिरमण करो—ऐसा बोसना चाहिये और उनसे करना चाहिये कि हम अभिरत हो गये हैं। तिसों से युक्त गन्धोदक के चार पात्र करे ॥ १२२ ॥ अर्घ्य के लिये पितृ पात्रों में प्रेनपात्र का प्रोषण करे और "य तामाना" इत्यादि सा मन्त्रों में प्रमथन करना चाहिए सोय समस्त कृत्य पूर्व की ही भाँति करना चाहिये ॥ १२३ ॥

एतक सपिण्डीकरण मेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ।

अर्वाक् सपिण्डीकरण यस्य सवत्सराद्भवेत् ॥१२४

तस्याप्यन्न सोदधु भ दध्यात् सवत्सर द्विजे ।

मृते हानि तु वतंथ्य प्रतिमास तु वत्सरम् ॥१२५

प्रतिसम्बत्सर चैव भाषमेवादशेहनि ।

पिडाश्च गोजविप्रभ्यो दद्यादग्नी जलेपि या ॥१२६

प्रक्षिपेत्सर्वं विप्रेषु द्विजोच्छिष्ट न भाजयेत् ।

हविष्यान्नेन वै मास पायमेन तु वत्सरम् ॥१२७

तथा वर्षात् त्रयोदश्या मधामु च विशेषत ।

कन्या वन्यावेदिनश्च पशून्व सत्सुतानपि ॥१२८

छूत कृषि च वाणिज्य द्विशर्षकशपास्तया ।

ग्रह्यवचस्विन पुत्रान् स्वर्णरुप्ये सकुप्यवे ॥१२९

जातिध्वंश्च सवकामान्प्रीति श्राद्धद सदा ।

प्रतिपत् प्रभृति ध्वेका वजयित्वा चतुर्दशीम् ॥१३०

इतना सपिण्डीकरण है और स्त्री का भी एकोद्दिष्ट है जिसका

सपिण्डीकरण सम्बत्सर से पूर्व में होता है । १३४। जल के कुम्भ के साथ उसका भी अन्न द्विज में देना चाहिये । मृत हो जाने पर एक वर्ष तक प्रति मास में उस मृत्यु के दिन में करना चाहिये । १३५। प्रत्येक सम्बत्सर में, माघ में एकादश दिन में पिण्डों को गौ और द्विजों के लिये देवे अथवा अग्नि में या जल में भी देना चाहिये ॥ १३६ ॥ द्विजों के भोजन करने पर उन द्विजों का जो उच्छिष्ट रह उसका प्रक्षेप कर देवे और वर्ष में पायस के द्वारा श्राद्ध करना चाहिए । १३७। तथा वर्ष में श्रवणमास में और विशेष रूप से मघाशुक्ल में कन्या को, कन्या वेदियों को तथा सरसुत बान्ने पशुओं को भी, दूत, कृषि, वाणिज्य, द्विजफ, एकशफ, ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रों को, सङ्कुम्भक स्वर्ण और रूप्यक देता है वह सदा श्राद्ध के देने वाला अपनी जाति में श्रेष्ठता और समस्त कामनाओं को प्राप्त किया करता है । प्रतिपदा प्रभृति में केवल एक चतुर्दशी को वर्जित कर देना चाहिये क्योंकि चतुर्दशी तिथि में सामान्यतया किसी का भी श्राद्ध नहीं किया जाता है ॥ १३८-१४० ॥

शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तद्व प्रदीयते ।

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं धेनुं बलं तथा ॥१४१

पुत्रान् श्रेष्ठाश्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् ।

प्रवृत्ता चक्रता चैव वाणिज्यं प्रभृतीनि चि ॥१४२

अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमा गतिन् ।

धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं कुप्यगा अप्यजाविकम् ॥१४३

अश्वानायुश्च विधिवद्यं श्राद्धं सप्रयच्छति ।

कृत्तिकादि भरण्यं ता सकामान्पुन्यादिमान् ॥१४४

आस्तिकं श्रद्धाघानश्च व्यपेतमदमत्सरः ।

वसुरुद्रादिति सुता पितरं श्राद्धदेवता ॥१४५

प्रीणयति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तपिता ।

आयुं प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥१४६

प्रयच्छति तथा राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः ।

इत्येव कथिता किञ्चित्कल्पाध्याये विशेषतः ॥१४७॥

जो लोग शस्त्रों के द्वारा आहत होकर मृत्युगत हुए होते हैं उन्हीं पुरुषों के लिये चतुर्दशी के दिन श्राद्ध दिया जाता करता है, ऐसा ही धर्मशास्त्र का आदेश है । स्वर्ग, सन्तति, ओज, शौर्य, शत्रु, बल, श्रेष्ठ पुत्र, सौभाग्य, समृद्धि, मुख्यता, शुभ, प्रवृत्त, चक्रता, वाणिज्य प्रभृति, अरोगिता, यश, शीतशीलता, परमगति, धन, विद्या, भिषक् सिद्धि कुप्यङ्गा, अजाविक, अश्व आयु इन सबको वह मनुष्य प्राप्त किया करता है जो कृत्तिका के बाद से लेकर भरणी के अन्त पर्यन्त विधिपूर्वक श्राद्ध दिया करता है । वह मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त किया करता है ॥१४९-१४४॥ जो पुत्र्य आस्तिक और धर्मात्मा हो तथा मद और मत्सरता को त्याग कर देने वाला हो वही श्राद्ध कर्म प्राप्त करता है । वसु-रुद्र और अदिति के पुत्र देवगण ये सब पितृ हैं एवं श्राद्धों के देवता होते हैं ॥ १४१ ॥ ये सब श्राद्धों के द्वारा स्वर्ग तपित होते हुए मनुष्यों के पितृगणों को प्रीणित किया करते हैं अर्थात् प्रसन्न कर देते हैं । आयु प्रजा, धन विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और सुखों को तथा परम प्रसन्न हुए पितामह मनुष्यों को राज्य भी प्रदान किया करते हैं । इस प्रकार से यह कुछ कल्पाध्याय में विशेष रूप से कहा गया है ॥१४६, १४७॥

ज्ञातव्यं वैदिके तान्ते पुराणान्तरकेपि च ।

य इमं चिन्तयेत् विद्वान् कल्पाध्यायं मुनीश्वर ॥१४८॥

स भवेत् कर्मकुशल इहान्यत्र गतिं शुभाम् ।

य शृणोति नरो भक्त्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥१४९॥

कल्पाध्यायं स लभते दैवपित्र्यं क्रियाफलम् ।

धनं विद्यां यशं पुत्रान् परमं च गतिं पराम् ॥१५०॥

अतः परं व्याकरणं तुभ्यं वेदमुखाभिधम् ।

कथयिष्ये समासेन शृणुष्व सुसमाहित ॥१५१॥ -

यह वैदिक तन्त्र में और पुराणांतरी में भी जान लेना चाहिये।
हे मुनीश्वर ! जो विद्वान् पुरुष इस कल्पाध्याय का चिन्तन किया
करता है ॥१४८॥ वह पुरुष यहाँ इस लोक में बड़ा अधिक कर्म कुशल
हो जाता है तथा अन्यत्र अर्थात् परलोक में शुभ गति को प्राप्त किया
करता है । जो मनुष्य दैव और विश्व कम में भक्ति से इसका श्रवण
करता है ॥१४९॥ वह दैव विश्व की क्रिया के फल को प्राप्त करता है
और कल्पाध्याय का लाभ करता है । धन, विद्या, यश, पुत्र परलोक में
शुभ गति प्राप्त करता है ॥१५०॥ इससे आगे वेद के सुख के नाम वाला
व्याकरण आपको सक्षेप में सुनाये गे । उसको आप परम सावधान होकर
सुनिये ॥१५१॥



॥ व्याकरण-शास्त्र का वर्णन ॥

अथ व्याकरणम् वक्ष्ये सक्षेपत्तव नारद ।
सिद्ध रूपप्रबधे न मुखे वेदस्य साप्रतम् ॥१॥
सुप्तिङन्त पद विप्र सुपा सप्त विभक्तयः ।
स्वौजस प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्पिका ॥२॥
सबोधने च लिगादावुक्ते कमणि कर्त्तरि ।
अथैवत्प्रातिपदिकम् धातुप्रत्यय वर्जितम् ॥३॥
अमोसशौ द्वितीया स्यात्तत्त्वम् क्रियते चपत् ।
।द्वितीया कमणि प्राक्तान्तरातरेण सयुते ॥४॥
टाभ्याभिसन्तृतीया स्यात्करणे कर्त्तरीरिता ।
येन क्रियते तत्करण कर्त्तास्यात्कराति स ॥५॥
डभ्याभ्यसश्चतुर्थो स्यात् सम्प्रदाने च कारके ।
गस्मं दित्सा धारयेद्वं रोचते सम्प्रदानकम् ॥६॥

पचमी स्यान्डसिभ्याभ्यो ह्यपादाने च कारके ।

यतोपैति समादत्ते अपदत्ते च य यत ॥७॥

श्रीतनन्दनजी ने कहा—हे नारद ! इसके अनन्तर मैं आपके समय में अग्नि सश्रोण से व्याकरण के विषय में वर्णन करूँगा । यह व्याकरण सिद्धरूपों के प्रबन्ध से इस समय में वेद का मुख है ॥१॥ हे विप्र ! सुप् और लिङ् जिनके अन्त में होते हैं वे यह कहे जाते हैं । सुप् जो होते हैं उनकी सात विभक्तियाँ हुआ करती हैं । सु-ओ-जस ये तीनों एक वचन-द्वि वचन और बहु वचन में विभक्तियाँ जो होती हैं इनको प्रथमा विभक्ति कहा गया है और वह प्रातिपादिकात्मिका होनी है ॥ २ ॥ सम्बोधन में निङ्गादि में, उक्त कर्म में तथा कर्ता में घातु और प्रत्यय से रहित जो अर्थ वाला होता है वह प्रतिपादक होना है ॥२॥ यहाँ तच् प्रथमा विभक्ति का वर्णन हुआ जिसमें यह बतला दिया गया है कि प्रथमा कहा-कहा होती है । अब द्वितीया विभक्ति बतलाते हैं—अम्-ओ-जस्—ये पूर्ववत् तीनों वचनों में द्वितीया विभक्ति है । यह जहाँ कर्म कारक होता है वहाँ पर ही की जाया करती है । द्वितीया विभक्ति कर्म में कही गयी है और अन्तरा अथवा अन्तरेण से जब समुत् होती है तब भी इन दोनों के संयोग में द्वितीया विभक्ति हुआ करती है ॥३॥ टा-भ्याम्—भिस्—ये प्रत्यय तृतीया विभक्ति में पूर्व ही की भाँति तीनों वचनों में हाती हैं और यह विभक्ति करण तथा कर्ता में हुआ करती है । जिसके द्वारा क्रिया की जाती है उसी को करण कहते हैं क्योंकि यह क्रिया का एक साधन हुआ करता है । जो क्रिया के करने वाला है वह कर्ता कहा जाता है ॥४॥ इभ्याम्-भ्यम्—ये चतुर्थी विभक्ति के तीनों वचनों में प्रत्यय होते हैं और यह सम्प्रदान कारक में होती है । जिससे निये कुछ देने की इच्छा होती है अथवा धारण की जाया करती है या रुचि जिसके पाने की होती है वही सम्प्रदान नाम में कही जाती है ॥५॥ अपादान कारक में पचमी

विभक्ति हुआ करती है जिसमे इति—भ्याम्—भ्यस्—मे तीनो वचनों मे तीन प्रत्यय होते हैं । जहाँ से कोई भी पदार्थ दूर होता है या किसी वस्तु का समादान किया जाता है अथवा अपादान होता है वहाँ पर ही अपादान कारक का प्रयोग हुआ करना है ॥७॥

इसोसामश्च पष्ठी स्यात्स्वामिसवध मुख्यके ।

इचोस्सुप सप्तमी तु स्या सा चाधिकरणे भवेत् ॥८॥

आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थाना प्रयोगत ।

ईप्सित चानीप्सित यत्तदपादानक स्मृतम् ॥९॥

पचमी पयुं पाड्योगे इतरत्तैर्न्यदिङ् मुखे ।

एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्म प्रवचनीयकै ॥१०॥

लक्षणे च भूतेभिर्भगि चानुपरिप्रति ।

अन्तरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते ॥११॥

द्वितीया च चतुर्थी स्याच्छेष्टाया गति कर्मणि ।

आप्राणाय विभवती द्वे मनकर्मन्यनादरे ॥१२॥

नम स्वस्ति स्वधास्वाहा लवपड्योग ईरिता ।

चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमत्वाद्भाव वाचिन ॥१३॥

तृतीया सहयोगे स्यात् कुत्सितेगे विशेषणे ।

काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च पष्ठ्यपि ॥१४॥

इस—ओस्—आम्—ये तीन प्रत्यय तीनो वचनों मे पष्ठी विभक्ति मे हुआ करने है जहाँ पर स्वामी का सम्बन्ध मुख्यतया होता है वही पर पष्ठी या सम्बन्धकारक का प्रयोग हुआ करता है ।
 डि—ओस्—मुन्—ये तीन प्रत्यय तीनो वचनों मे सप्तमी विभक्ति म होते हैं जो कि अधिकरण म आया करती है ॥८॥
 विप्रेन्द्र । रक्षार्थों के प्रयोग से आधार मे भी ईप्सित है और वनीप्सित जो कुछ भी हो वह अपादान ही कहा गया है ॥९॥
 परि उप आङ् के योग मे तथा इतर ऋत अन्य दिङ् मुख मे भी इनके योग मे पञ्चमी हुआ करती है और इन कम प्रवचनीयकों के

योग म द्वितीया विभक्ति होती है ॥१०॥ जहाँ पर इत्थम् न मरण का भाग हो वहाँ पर और अनु-वरि तथा प्रति अन्तरों म-सहायार्थ में अर्थात् सह क योग में और हीनाय में भी तृतीया विभक्ति बही जाती है ॥११॥ गति कर्म में और चेष्टा म द्वितीया और चतुर्थी दोनों ही होती हैं । अग्रणाया म, मय्य कर्म म और अनादर म दो विभक्तियाँ होती हैं ॥१२॥ कुछ विशेष शब्दों के योग म सदा चतुर्थी विभक्ति ही हुआ करती है । ये शब्द—नम, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वपट् य हैं । सादर्य में और तुमत्व के भाव के वाचक शब्दों के योग में भी चतुर्थी हुआ करती है ॥१३॥ 'सह' इस शब्द के तथा सहायक अन्य शब्द के याग के और कृत्तित भङ्ग के विशेषण म भी तृतीया विभक्ति होती है । काल और भाव में सप्तमी होती है और इनके याग म षष्ठी भी विभक्ति हुआ करती है ॥१४॥

स्वामीस्वराधिपतिभि साक्षिदायादमूर्तम् ।
 निर्धारणे द्वे विभक्तौ षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५॥
 स्मृत्यर्थं कर्मणि तथा करोने प्रतियत्नके ।
 हिंसार्थाना प्रयोगे च कृत्तिकर्मणि कर्तरि ॥१६॥
 न कर्तृकर्मणो षष्ठी निष्ठादि प्रतिपादिवा ।
 ऐता वै द्विविधा ज्ञेया सुवादिषु विभक्तिषु ।
 भूवादिषु तिष्ठ तेषु लकारा दश वै स्मृतम् ॥१७॥
 तिप्त मतीति प्रथमो मध्यमः सिप्थस्थोत्तम ।
 मिष्त्रस्मस परस्मै तु पदाना चात्मनेपदम् ॥१८॥
 ता अर्त्ते प्रथमो मध्य स आये ध्वे तथात्तम ।
 ए वहे मत आदशा ज्ञेया ह्यन्ये लिङादिषु ॥१९॥
 नाम्निप्रभुज्यमानतु प्रथम पुरुषो भवेत् ।
 मध्यमो युष्मदि प्राक्त उत्तम पुरुषश्चमदि ॥२०॥
 भूवाद्या घातव प्राक्ता सनाद्यतास्तथा तत ।

लडीरितो वर्तमाने भूतेनद्यतने तथा ॥२१

मास्मयोगे च लड् वाच्यो लोडाशिपि च धातुतः :

विध्यादी स्यादाशिपि च लिङितो द्विविधो मुने ॥२२

स्वामी, स्वराधिपति, साक्षी, दायाद, सूतक के योग में और निर्धारण में दोनों विभक्तियाँ होती हैं अर्थात् पठ्ठी और सप्तमी दो हुआ करती हैं किंतु हेतु के प्रयोग में पठ्ठी ही हुआ करती है ॥ १५ ॥ स्मृति के अर्थ कर्म में तथा 'हृ' धातु के प्रति यत्न में, हिसार्यकों के प्रयोग में, वृत्तिकर्म कर्ता में भी यह विभक्ति होती है ॥१६॥ कर्तृ कर्म में निष्ठादि की प्रतिपादिका पठ्ठी नहीं होती है । सुप् आदि विभक्तियों में ये दो प्रकार की जान लेनी चाहिये । भुवादि तिङ्गणों में दश प्रकार बताये गये हैं ॥१७॥ तिङ्गणों में तीन प्रथम, मध्यम और उत्तम तीन पुरुष होने हैं और प्रत्येक पुरुष में एक, द्विवचन और बहुवचन तीन २ वचन हुआ करते हैं । अब उन पुरुषों के प्रत्यय बतलाये जाते हैं । सिप्—तम्—अन्ति में प्रथम पुरुष में प्रत्यय होते हैं । सिप्—षग—ष—ये मध्यम पुरुष में तीन प्रत्यय हाते हैं । सिप्—वम्—मम् ये तीन प्रत्यय परस्मैपदों के बताए गए हैं । कुछ धातुओं परस्मैपदी होती हैं और कुछ आत्मनेपदी तथा कुछ उभय पदी भी हाती हैं । अब आत्मनेपदी क्रियाओं में जो प्रत्यय होते हैं उन्हें बतलाया जाता है । १८। ते—आ ते—ये तीन प्रत्यय तीनों वचनों में प्रथम पुरुष में होते हैं । ये आ ये—ध्वे ये तीन मध्यम पुरुष में तथा ए—वह—महे—उत्तम पुरुष के तीनों वचनों में होते हैं । अन्य भाषण जा दन्ही प्रत्ययों के स्थान पर हाते हैं वे लिङ् आदि लकारों में जान लेने चाहिए ॥१९॥ क्रिमी के नाम में जो प्रयुग्ममान हात हैं वह ही प्रथम पुरुष हाता है । पुष्पद् शब्द में क्रिमा प्रयोग किया जाता है वह मध्यम पुरुष कहा जाता है और अस्मद् अर्थात् अपन निष् क्रिमा प्रयोग हाता है वह उत्तम पुरुष जानना चाहिए ॥२०॥ भू आदि आ क्रिया के मूत्र शब्द

होते हैं और जिनका होना आदि अर्थ होता है वे 'घातु'-इस शब्द में व्यञ्जन की भाषा में बड़े हुए हैं । इनके पश्चात् उनी भक्ति सनादि प्रत्ययान्त भी घातु होते हैं । लट् लकार वर्तमान भाष में कहा गया है । अनद्यतन भूतकाल में और 'मास्म'-इसके याग में लङ् लकार कहा जाता है । धारह घण्टे के समय तक का जो भूतकाल होता है वह अद्यतन भूत होता है और इससे ऊपर का भूतकाल अनद्यतन कहा जाया करता है । आशीर्वाद में घातु से लोट् होता है तथा आज्ञा में भी लोट् होता है । हे मूने ! विधि-निष्पन्न आदि में और आशीय में होने वाला लिङ् दो प्रकार का हुआ करता है। २१।२२।

लिङ्गतीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुङ् भविष्यति ।

स्यादनद्यतने लृट् च भविष्यति तु घातुत ॥२३

भूते लुङ् तिपस्यपी च त्रियाया लङ् प्रकीर्तितः ।

सिद्धोदाहरण विद्धि संहितादिपुर सरम् ॥२४

दडाग्र च दधीद च मधूदक पित्रपंभ ।

होतृ कारस्तथा सेय लागलीया मनीपया ॥२५

गगोदक तवलकार ऋणार्ण च मुनीश्वर ।

शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सेन्द्र सौकार इत्यपि ॥२६

वध्यासन च पित्रयो नायको लवणस्तथा ।

त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्या अर्घो गुरा अध ॥२७

परोक्ष अतीत में लृट् लकार होता है और श्वस्तन में लुङ् लकार होता है जो भविष्यत् काल में आया है । अनद्यतन भविष्यत् काल में घातु से लृट् लकार होता है ॥२३॥ भूतकाल में और तिपस्यपी क्रिया में लङ् लकार कहा गया है । संहिता आदि के पूर्वक सिद्ध उदाहरण जान लेने चाहिए जो सन्धियाँ होकर बना करते हैं । २४ । दण्ड ग्रन दग्नीदम् मधूदकम् पित्रपंभ होतृकार — इनमें अकार-इकार-उकार ऋकार और लृकार स्वरो की सन्धियाँ होने पर जो सिद्ध रूप

कते हैं उनके क्रम से उदाहरण दिए हैं । साङ्गतीषा और मनीषया
उसी प्रकार के उदाहरण हैं । अथ गुणसन्धि के उदाहरण सिद्ध रूप
वाये दिए जाते हैं । सेवम्-गङ्गादनम्-तवत्वार-भ्रूणाणम् । हे मुनी-
श्वर । कीर्ति-सेन्द्र-सीमार-ये भी हे मुनिर्धेष्ठ विभिन्न सन्धियों
के उदाहरण होते हैं । २५। वध्वासनम्-मित्रथ-ये यण सन्धि के उदा-
हरण हैं । नायक-नवण-ये अयादि सन्धि के उदाहरण हैं । त
आद्या-विष्णव-हृण-तरया अर्ध-गुरा मध-य भी विविध सन्धियों के
उदाहरण होते हैं । इनमें कौ मकार वा लोप होना है तो वहीं
मग होता है और किसी स्थान पर व वार का लोप आदि सन्धि क
काय होकर सिद्धरूप उपयुक्त बना करत है । २७।

हरेव विष्णो वेत्येवा दसोभादप्यमी अथा ।

शीरी एतो विष्णू इमी दुर्गे अमूनो अजुंन ॥२८

आ एव च प्रवृत्तं तिष्ठति मुनिसत्तम ।

पडन गणमातरश्च वान्छुरो वाग्धरिस्तथा ॥२९

हरिश्चोते विभुश्चित्तयस्तच्छेष यच्चरस्तथा ।

प्रश्नस्त्वथ हरिष्यष्ट कृष्णटीवत इत्यपि ॥३०

भवान् पष्ठथ सन्त पट्टे तत्तेष एव च ।

घञ्जिश्छधि भवाञ्छीरिभवाञ्छीरित्त्वपि ॥३१

सम्पद्-इनतोगच्छाया कृष्ण वन्दे मुनीश्वर ।

तेजाति मस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामारविशव ॥३२

रान् काव्य कृत् पूज्यो हरि पूज्योच एव हि ।

रागो दृष्टोवता अत्र मुक्ता दृष्ट हमापत ॥३३

विष्णुनभ्यो रविरम घो फल प्रागरच्युत ।

भवतर्वन्ध्याप्यतरात्मा भोमो एव हरिस्तथा ।

एव शाङ्गी संघ राम महितं प्रवर्तिता ॥३४

हरेव-विष्णोः-ये एव रूप सन्धि के सिद्ध भव्य है ।

अमी अथा शीरी ए तो-विष्णू इमी-दुर्गे अम्-नो, अजुंन-

होते हैं और जिनका होना आदि अर्थ होना है वे 'धातु'—इस शब्द से व्याकरण की भाषा में कहे गए हैं। इनके पश्चात् उनी भक्ति गनादि प्रत्ययान्त भी धातु होते हैं। सट् लकार वनमान कास म कहा गया है। अनद्यतम भूतकाल म और 'मारम'—इसके याग म सट् लकार कहा जाता है। बागह घटे व समय लव का जो भूतकाल होता है वह अद्यतन भूत होता है और इसमें ऊपर का भूतकाल अनद्यतन कहा जाया करता है। आशीर्वाद में धातु से लोट् होता है तथा आज्ञा में भी लोट् होता है। हे पुत्र ! विधि निमन्त्रण आदि में और आशीर्वा मा होन वासा मिट्टा प्रकार का हुआ करता है। २१।२२।

लिङ्गोक्ते परोमे स्यात् श्वस्तने लुङ् भविष्यति ।

स्यादनद्यतने लृट् च भविष्य त तु धातुत ॥२३

भूते लुङ् तिपस्यपी च त्रियाया लङ् प्रकीर्तित ।

सिद्धोदाहरण विद्धि सहितादिपुर सरम् ॥२४

दडाग्र च दधीद च मधूदव पित्रपेभ ।

होतृ वारस्तथा मय लागलीया मनीषया ॥२५

गगोदव तवत्कार ऋणार्णं च मुनीश्वर ।

शीतातश्च मुनिश्रेष्ठ मेन्द्र सौकार इत्यपि ॥२६

वध्यासन च पित्रर्थो नायको लवणस्तथा ।

त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्या अर्घो गुरा अध ॥२७

अष्टौ अय मुने मघ्नाट् मविन्नद्वपुड्मनः ॥३६
 प्रत्यह्पुमान्महान् धीमान् विद्वाग्गट् विपटीश्च दो ।
 उदनामायिमे पु मि रपुस्तनविगमवाः ॥४०
 राधा गर्वा गतिगोपी स्तो श्रीर्धनुर्वधु स्वसा ।
 गीर्धोपानशीर्गोः धुन् वतुमवित्तु वा वचिन् ॥४१
 गिरिद्विभाः द्विषाम्नप पुन मोमपमक्षि च ।
 प्रामग्यदुग्रन्धेव कर्तृ चानिरि मारि नु ॥४२
 श्वनुदुच्च विमानसु याश्चन्वारीरमेन च ।
 एतत् य गात्रज ह्यदी शर्माश्वनिद्वनहादि च ॥४३

हलन्त दोनों प्रकार के शब्द हैं । पुल्लिङ्ग में होते हैं । व्याकरण में पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में तीन लिङ्ग होते हैं । ये सब अकृत विरामक हैं ॥३६।४०॥ अब स्त्रीलिङ्ग में आने वाले कतिपय शब्दों को शिखाया जाता है—राधा, सर्वा, गाँत, गोपी, स्त्री, श्री-धेनु-वधू स्वसा, गौ, नौ, उपानत्, द्यौ, गो-शुक्, ककुप्, मवित्, रुक्, विड्-उदमा ये स्त्री लिङ्ग में होते हैं । तप-कुलम्-सौमपम्-अक्षि—ग्रामणी-अम्बु-श्लष्म, स्वनहत्, विमलधु—चत्वारि-इदम्-एतद्-ब्रह्म-अह-वर्णी-असृक्-किञ्चित्-एव-आदि नपुंसकलिङ्ग में होते हैं ॥४१-४३।

एतद्वेभिद्गवाक्गवाड् गोअक्गोअड् गोक् गोड् ।

तिर्यंग्यकृच्छ कृच्चैव ददद्भवत् पचत्तुदत् ॥४४

दीव्यद्धनुश्च पिपठी पयोऽद् सुपुमासि च ।

गुणद्रव्य क्रिया योगास्त्रिंशत्त्रिंशच्च कति ऋवे ॥४५

शुक्त कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणी सुधीः ।

पट्ट स्वयभू कर्ता च माता चैव पिता च ना ॥४६

सत्यानाग्युस्तथा पु सो मतभ्रमर दीर्घयात् ।

धनाकृसोमी चगर्हस्ताविद्यथास्वर्णन्वह ॥४७

रिम पव्विपद्वद्जातानहो तथा ।

सर्वं विश्वोभये चोभी अन्यातरेतराणि च ॥४८

उत्तरश्चोत्तमो नेमस्त्वसमोय समाह्वयः ।

पूर्वोत्तरोत्तराश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरी ॥४९

अपरश्चतुरोप्येतद्यावत्तत्किमसौ द्वयम् ।

युग्मदस्मच्च प्रथमश्चरमोल्पस्तथार्धक ॥५०

नोर कतिपयो द्वे च त्रयो शुद्धादस्यतथा ।

स्वेकाभुविरोध परिविपर्ययश्चा व्यपास्तथा ॥५१

एतद्, वेभिद्, गवाक्, गवाड्, गोअक्, गोअड्, गोक्, गोड्, तिर्यक्, यकृत्, शकृत्, ददत्, भवत्, पचत्, दीव्यत्, धनु, पिपठी, पय, अद,

सुपुमासि, इस प्रकार से कुछ शब्द गुण, द्रव्य और क्रिया के योग से स्त्री लिङ्ग वाले होते हैं ॥ ४४, ४५ ॥ स्त्री लिङ्ग में आने वाले कतिपय शब्द पुल्लिङ्ग में आया करते हैं यथा, शुक्ल, कीलालपा, शुवि ग्रामणी, मुधी, पटु, स्वयम्भू, कर्त्ता, माता और विनर ॥४६॥ सर्व, विश्व उभय उभ, अन्य, अन्तर और इतर शब्द भी आया करते हैं ॥४७, ४८॥ उत्तर, उत्तम, नेम अगम और तम, पूर्व और उत्तरोत्तर दक्षिण और उत्तर तथा अधर शब्द होते हैं ॥ ४९ ॥ अपर, चतुर, एतद, भावत, तत्, किम् और असौ, द्वयम् युष्मद्, अस्मद्, प्रथम, चरम, अर्थक शब्द होते हैं ॥ ५० ॥ नोर, कतिपय, ई, पय, शुद्धादि शब्द हैं । स्वेकाभु विरोध, परिधिपर्यय तथा इसके अतिरिक्त अव्यय शब्द भी होते हैं ॥५१॥

तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थे पाडवा श्रोधरस्तथा ।
 गार्ग्यो नाडायनोज्ञेयो गागेय पंतृष्वसीप ॥५२
 देवतार्थे चेदमर्थे ह्यन्द्र ब्राह्मो हविर्बली ।
 क्रियापुञ्जो कर्मकर्त्तृघोरेय कौकुम तथा ॥५३
 भवाद्यर्थे तु कानीन क्षत्रियो वैदिक स्वक ।
 स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चद्रवन्मुखमीक्षते ॥५४
 ब्राह्मणत्व ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च ।
 गोमान्धनी च धनवास्तर्था प्रमिती क्रियान् ॥५५
 जातार्थे तु दिल धृद्वालुरौन्नत्ये तु दतुर ।
 स्रग्वी तपस्वी मेघावी मायाव्यस्त्यार्थ एव च ॥५६
 वाचालश्चैव वाचाटो बहुबुस्तितभापिणि ।
 ईपदपरिसमाप्ती कल्पदेशीय एव च ॥५७
 कविकल्प कविदेश्य प्रकार वचने तथा ।
 पटुजाती य कुत्साया वैद्यपाश प्रशमने ॥५८

व्याकरण में तद्धित प्रत्यय लगाकर भी अनेक शब्दों की रचना

होती है। अपत्य अर्थ में पाण्डु से पाण्डव और शीघर शब्द से शंघर आदि शब्द बना करके हैं। शार्ङ्ग, नाडायन, आश्रय, गाङ्गैय, पंतु स्वस्त्रीय शब्द तद्धित प्रत्यय लगाकर निर्मित होते हैं। १२। अपत्यार्ण के अतिरिक्त देवता और इदमर्थ में भी शब्दों की रचना तद्धित प्रत्यय लगाकर हुआ करती है यथा इन्द्र है देवता जिसका उसे 'ऐन्द्र' तथा 'ब्रह्मा' शब्दों की रचना करके कहा जाता है। हवि और वनी होते हैं। कर्म कर्तृ में क्रिया के योग होने वाले धीरेय तथा कौकुम शब्द बना करते हैं। १३। भवादि के अर्थ में कानीन, क्षत्रिय, धौदिक और स्वक शब्द बनते हैं। तद्धित प्रत्यय केवल स्वार्थ में भी हुआ करते हैं जो उसी अर्थ को प्रकट किया करते हैं जैसे—चोर से चौर शब्द होता है। तुल्यार्थ में 'तृ' प्रत्यय होना हाता है यथा—चन्द्रमा के समान मुख को देखता है। १४। तत् और स्व प्रत्यय लगाकर भाववाचक शब्द बनते हैं जैसे ब्राह्मण से ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणता और ब्राह्मण्य शब्द हात हैं। अस्ति के अर्थ में, गोमान्, धनी और म तुप् प्रत्यय लगाकर बनते हैं। जहाँ प्रथिनि का अर्थ हो वहाँ किम् शब्द से "किमान्" बना करता है। १५। जातार्थ में 'तुन्दिल' शब्दालु शब्दों की रचना होनी है। उप्रति के अर्थ में दत्त शब्द से 'दन्तुर' बनना है। विद्यमानना प्रकट करने के अर्थात् अस्ति के अर्थ में सक्, तप, मेघा तथा माया शब्दों से सग्वी, तपस्वी, मेघावी और मायावी शब्दों की रचना होती है। १६। जो बहुत अधिक बुद्धिमान भाषण करने वाला व्यक्ति होता है उसको तद्धित प्रत्यय लगाकर वाचाल और वाचाट शब्दों से प्रकट किया जाया करता है। ईपत् अरारथ में और समाप्ति में कल्प् और देशीय प्रत्यय हुआ करते हैं तथा प्रहार वचन में भी हाते हैं यथा, क्विचल्प, क्विदेश्य। कुन्मा में 'पटु जातीय', और प्रणमा में 'वैद्यपाश' शब्द बनते हैं। १७। १८॥

वैद्यरूपो भूतपूर्वो मतो दृष्टचरो मुने ।

प्राचुर्यादिष्वनमयो ण्मृमय स्त्रीमयस्तथा ॥५६
 जातार्थे लज्जितोत्यर्थे श्रेयान् छेष्टश्च नारद ।
 कृष्णतर शुक्लतम किम आख्यानतोव्यपान् ॥६०
 कितरा चंवातितरामभिह्युच्चैस्तरामपि ।
 परिमाणे जानुदघ्न जानुद्वयसमित्यपि ॥६१
 जानुमात्र च निद्वरि वहूना च द्वयोर्क्रमात् ।
 कतम कतर सख्येयविशेषावधारणे ॥६२
 द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थं पष्ठपचमौ ।
 एकादश कतिपय कतिथ कति नारद ॥६३
 विशश्च विशतितमस्तथा शततमादय ।
 द्वेधा द्वेधा द्विधा सख्या प्रकारेथ मुनीश्वर ॥६४
 क्रियावृत्तौ पचकुत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि ।
 द्वितय त्रितय चापि सत्याया हि द्वय त्रयम् ॥६५

हे मुने । भूतपूर्व मे वैश्वरूप दृष्टचर माना गया है । प्रचुरता
 आदि के अर्थ मे 'मयद्' प्रत्यय हो जाने पर अनमय, मृण्मय आदि रूप
 बना करते हैं ॥ ५६ ॥ हे नारद । जातार्थ मे 'इत्च्' प्रत्यय लगाकर
 'लज्जित' सिद्ध रूप बनता है और अत्यर्थ मे श्रेयान् और श्रेष्ठ शब्दों
 की रचना हुआ करती है । तरप् और तमय् प्रत्यय लगाकर कृष्णतर
 अधिक काला और शुक्लतम अर्थात् सबसे अधिक शुक्ल शब्दों की
 रचना हुआ करती है । किम् यह आख्यान से अव्यय शब्द है । इस
 किम् शब्द से अन्य भी अव्यय शब्दों की रचना होती है यथा—कित-
 राम् अतिनराम् उच्चैस्तराम् । परिमाण जहाँ बतलाना होता है वहाँ
 पर जानुदघ्नम् जानुद्वयतम् इन शब्दों की भी रचना हुआ करती है
 ॥ ६० ६१ ॥ जहाँ निर्धारण हो वहाँ पर जानुमात्र तथा बहुतो मे और
 दो मे क्रम से निर्धारण करने पर जहाँ कि सख्येय वा विशेष अवधारण
 होता है कतम और कतर ये शब्द बना करते हैं ॥६२॥ हे मुनीश्वर ।

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, एकादश, कतिपय, कति, कति, हे नारदाविंश, विंशतितम और शतसे शततम आदि शब्दोंकी रचना होती है। सख्या के प्रकार में द्वेषा, द्वेषा, द्विधा शब्द भी बना करते हैं। ॥ ६३, ६४ ॥ क्रिया की आवृत्ति में पञ्चवृत्त्व, द्वि, त्रि, यद्गुण दन शब्दों की भी रचना होती है। सख्या में द्वितय, त्रितय, द्वयम् त्रयम् शब्द भी बना करते हैं। ६५।

कुटीरश्च समीरश्च शु डारोल्पार्थके मत ।

स्त्रेण पौष्णस्तु डिभश्च वदारककृपोवलो ॥६६

मलिनो विकटो गोमो भौरिकी विधमुत्कटम् ।

अवटीटोवनाटे निविड चेक्षुशाकिनम् ॥६७

निविरीसमेपुकारी वित्तोविद्याच्चणस्तथा ।

विद्याचु चुवंहुतिय पवंत शृ गिणास्तथा ॥६८

स्वामी विषमरूप्य चोपत्यवाधित्यका तथा ।

चिल्लश्च छिष्टि चिक्क क्रातून कुतपस्तथा ॥६९

वल्गश्च हिमेलुश्च बहोऽश्चेपडस्तत ।

ऊर्णामुश्च मस्तश्चोवावी चामण्वतो तथा ॥७०

ज्योत्स्ना तमिस्राष्टीवञ्ज वदीवचमण्वती ।

आसदीवच्च चक्रीवत्तूष्णीका जल्पनक्यापि ॥७१

कभश्च कयु ववश्च नारदवेति

कतु वतवपी शवस्तथैव च ।

घत घति शयशती शयोद्दयु शुभयुवत् ।

भवति वभूय भविना भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चवापि ॥७२

अल्पार्थ में कुटीर, समीर और शुडार ये शब्द माने गये हैं।

स्त्रीण, पौष्ण, सुण्डिम, वृ-शरत् और वृषीवत्, इन शब्दों की रचना भी लडिन प्रायय लगाकर हुआ करती है ॥ ६६ ॥ मलिन विकट गोमो, भौरिकी विधम् उत्कटम्, अवटीट, निविडम्, चेक्षुशाकिनम्, चिल्लश्च, छिष्टि, चिक्क, क्रातून, कुतपस्तथा, वल्गश्च, हिमेलुश्च, बहोऽश्चेपडस्तत, ऊर्णामुश्च, मस्तश्चोवावी, चामण्वतो तथा, ज्योत्स्ना, तमिस्राष्टीवञ्ज, वदीवचमण्वती, आसदीवच्च, चक्रीवत्तूष्णीका, जल्पनक्यापि, कभश्च, कयु, ववश्च, नारदवेति, कतु, वतवपी, शवस्तथैव च, घत, घति, शयशती, शयोद्दयु, शुभयुवत्, भवति, वभूय, भविना, भविष्यति, भवत्वभवद्भवेच्चवापि ॥७२

दुर्गाकिनम्, निवरीस मेपुवारी, वित्त, विद्याचण, विद्याचुञ्जु, बह्व-
 नयम् पवंत, भृगिण, स्वामी, विषमस्त्वम्, उपत्यक, अधित्थका,
 पल्ल, धिर्घटि, चिक, वातूल, कुतुप, पल्ल, हिनेलु, बहोड, उवड,
 ऊर्णागु मरत, एकाकी, चमंश्वती, ज्योत्स्ना, समिस्राष्टीवत् वश्वीवत्,
 चमंश्वती । आसन्दीवत्, चक्रीपत्, लूष्णीवा जल्पतकी, वम्भ, नयु,
 वम्भ, नारदकेति, कन्तु, कन्त, वम्भ, शम्भ, शन्त, शन्ति, शप,
 शन्ती, शपो, हयु, शुभ मुवत्, इन शब्दो की रचना होती है । इसके
 आगे कुछ धातुओं के क्रियावाची शब्दों के विषय में बताया जाता है
 जो विभिन्न सकारों में बना करते हैं—भू धातु के जिसका अर्थ "होना"
 होता है भवति, वभूय, भविता, भविष्यति, भवतु, अभवत्, भवेत् ये
 सत्मान, परोक्षभूत, अव्ययतन, भविष्यत्, आज्ञा, भूतकाल और विधि-
 तिङ्, ये हुआ करते हैं ॥६६-७२॥

भूयादभूदभविष्यत्लादावेतानि रूपाणि ।

अत्ति जद्यासात्तात्स्यत्यत्त्वाददद्यादि द्विरघमदात्स्यत् ॥७३

जुहोति जुहाव जुह्वाचकार होता होष्यति जुहोतु ।

अजुहोज्जुह्याद्भूयादहीपीदहीष्यद्दीष्यति ।

दिदेव देविता देविष्यति च अदीध्यद्दीष्येद्दीष्याद्वै ॥७४

अदेवीददेविष्यत्सुनोति मुपाव सोता सोष्यति च ।

सुनोत्यसुनोत् सुनुयात् सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ॥७५

तुतोद तोता तोत्स्यति तुदत्वत्तुदेत्तुद्यादि ।

अनोत्सोदतोत्सादिति च रुणद्धि ररोध रोद्धा रोस्याति च ॥७६

रुणद्ध अरुणद्गुध्यादरोन् सीदरोत्सपच्च ।

तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयादि ॥७७

अनतोच्चातानोदतनिष्यन् क्रीणाति चिन्नाय क्रेता क्रेष्यति

क्रीणारिषति च । अक्रीणात् क्रीणीयात् क्रीयादक्रेणीदक्रेष्य

चचोरयति चोरयागाग चोरयिना चौरग्यिष्यति चोरयतु ॥७८

अचोरयत् चोरयेत् चोर्यात् । अचूचुरदचोरिष्यदिवेव दशवै-
गणा । प्रयोज के भावयति सनीच्छाया वुभूयति ।

त्रियासममिहारे तु पडितो वोभूयते मुने ॥७६

भूयात्, अभविष्यत्, अभूत्, ये भी इसी धातु के हुआ करते हैं ।
अर् मक्षण धातु के अत्ति, जद्यात्, अज्ञात्, पति, अस्वात्, अदजात्,
द्विरघा गदात्स्यत् ॥७३॥ ह्रस्वने धातु के जुहोति, जुहाव, जुहवाञ्चकार,
होता, होस्पति, जुहोतु, अनुहात्, जुहुयात्, हूयात् अहोपोत्, अहोप्यत्
रूप विभिन्न लकारों में हुआ करते हैं । दिक् स्त्रीहादि के अथ वाली
धातु के निम्न रूप होते हैं—दीव्यति, दिदेव, देविता, देविष्यति अदी-
व्यत्, दीव्येत् दीव्यात्, अदेवीत्, अदेविष्यत्, अदीव्यत्, सूम् सबने धातु
के, मुनोति, मुपाव, सोता, सोप्यति मुनोतु अमुनोत् मुतुयात् सूपान्,
असावीत्, अगोप्यत् । य रूप हुआ करते हैं । द धातु के वर्त्तमान
काल में तुदति होता है ॥ ७३, ७४, ७५ ॥ तुतोद्, नोत्त, तोत्स्यति,
तुदतु अनुदत्, तुदेत्, तुयात्, अतोत्सीत्, अनोत्स्यत् ये रूप हुआ करते
हैं । रुध् धातु के रुणाद्धि, हरोध, रोद्धारोत्स्यति, रुणद्ध, अरुणेत्,
रुष्यात् अरोत्सीत्, अरोत्स्यता, तनु, विस्तारे, धातु से तनोति, ततान,
तनिता, तनिष्यति तनोतु अतनोत् तनुयात् अतनीत्, अतानीन्, अतनि-
ष्यत् में रूप होते हैं । क्रीन् द्रव्यविनिमये धातु के निम्न रूप होते हैं
जो खरीदने के अर्थ में आया करती हैं—क्रीणाति, निष्काम, कृता,
क्रेष्यति, क्रीणातु अक्रीणात्, क्रीषीयात्, क्रेयात् अक्रेपीत्, अक्रेष्यत् ।
चुरस्तेये धातु के चोरयति, चारया मास, चोरयित्वा, चोरयिष्यति,
चोरयतु अचारयत् चोरयेत्, चोर्यात्, अचूचुरत्, अचोर विष्यत् ।
धातुओं के रूप दश गणों में विभिन्न स्वरूप वाले हुआ करते हैं जिनके
एक-एक धातु के उदाहरण एक-एक रूप प्रत्येक लकार का लिख कर
दिया दिया गया है । त्रिंश गणों के नाम ङादिगण, अदादिगण जुहोत्या
दिगण, दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगण, तनादिगण,

ऋषादिगण और चुरादिगण ये होते हैं । प्रत्येक गण में धातुओं के रूपों में कुछ परिवर्तन होता है । गणा के अनिश्चित कुछ प्रक्रियाय है जिनमें अलग २ धातु से प्रत्यय लगाकर रूप बना करत हैं यथा—णि जन्त प्रक्रिया में प्रेरणार्थ होने पर भू धातु से णिच् प्रत्यय लगाने पर 'भवति' के स्थान में भावयति । ऐसा रूप बना करता है और उसके रूप दर्शो लकारों में होते हैं । भवति का अर्थ 'होता है' तो भावयति का अर्थ होने की प्रेरणा देना है—यह हुआ करता है । सन्नन्त में इसी धातु का रूप 'बुभूषति' होता है । इसका अर्थ होने की इच्छा करता है, होना है । हे मुने । क्रिया का समभिहार जब होता है तो पण्डित 'बुभूषते' रूप का प्रयोग किया करते हैं । इसका अर्थ बारम्बार होना होता है ॥७६-७६॥

तथा यद्भुक्ति बोभमवीति च पठ्यते ।

पुत्रोयतीत्यात्मनीच्छाया तथाचारेपि नारद ।

अनुदात्तञ्जितो घातो क्रिया विनिमये तथा ॥८०

निविशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मने पदम् ।

परस्मै पदमाह्वात शेषात् कतरि शाब्दिकं ॥८१

ञिस्स्वरितेञ्च उभे यच्च स्याद्भाव कर्मणो ।

सौकर्यातिशय चैव यदा द्योतयितु मुने ॥८२

विवक्षयते न व्यापारो लक्षे कर्तुंस्तदापरे ।

समते कर्तृता पश्य पश्यते ह्योदन स्वयम् ॥८३

साधुवासिश्छिनत्येव स्याली पचति वै मुने ।

घातो सकर्मकाद्भावे कर्मण्यपि ल प्रत्यया ॥८४

यद्भुक्त-त प्रक्रिया में भू का ही 'बोभवीति' रूप होता है । अपनी आत्मा की इच्छा में तथा आचारार्थ में भी हे नारद । पुत्रोयति रूप होता है । यह नाम धातु प्रक्रिया है अर्थात् नाम की ही धातु मान कर प्रत्यय होना है । पुत्र की अपनी आत्मा में इच्छा

करता है या पुत्र की तरह आचरण करता है। ये अर्थ होते हैं। अनुदात्त त्रित घातु से क्रिया के विनियम में भी उसी प्रकार से होता है ॥८०॥ हे विप्र ! उसी भाँति निविश आदि वा भी आत्मनेपद जान लेना चाहिये। शाब्दिक अर्थात् व्याकरण शास्त्र के पण्डितों के द्वारा शेष से परस्मैपद जानना चाहिये और यह भी कर्त्ता में होता है ॥८१॥ और मित्स्वरितेत् से भाव कर्म में दोनो ओर यक् हुआ करता है। हे मुने! जिस समय में भी कर्म का अतिशय द्योतित करना होता है तभी हाता है ॥८२॥ कर्त्ता वा लक्ष्य में व्यापार नहीं बनसाया जायगा उस समय में दूसरे कर्त्ता के पद को प्राप्त कर लिया करत हैं। दिषो-ओदन स्वयं पक्ता है यही कर्म कत्त्वा उदाहरण है। यद्यपि आंचन पच् घातु का कर्म होता है किन्तु यहाँ पर कत्त्वा पद प्राप्त कर लिया है ॥८३॥ हे मुने ! अति बहुत अच्छी तरह से छेदन करता है और इस तरह से खाली पाक करती है। मकर्मक धातु में भाव में (जहाँ केवल धातु के अर्थ का ही भान होना है उस ही भाव कहा जाता है और जहाँ कर्म की प्रधानता होती है उस कर्म कहते हैं) और कर्म में भी ल प्रत्यय हुआ करते हैं ॥८४॥

तस्मैवा कर्मवादिप्र भावे कर्त्तरि कीर्तित ।

फल व्यापार योरेकनिष्ठतायाम कमक् ॥८५॥

धातुस्तयोद्धंभिभेदे सकर्मक उदाहृत ।

गौमे कर्मणि द्रुह्यादे प्रधाने नीहृक्कृप्प्रहाम् ॥८६॥

बुद्धि भक्षार्थयो शब्दप्रमरणा निजेच्छया ।

प्रयोज्य कर्मण्यन्येषा ष्यताना सादयोमत ॥८७॥

फल व्यापारयोद्धातिराश्रय तु नित्य स्मृता ।

फले प्रधान व्यापारस्मिन्ड्यर्षस्तु विशेषणम् ॥८८॥

एधि तत्रभेधनीयमिति ट् य निदर्शनम् ।

भाक् कर्माणि ट् या स्तु ट् व कर्त्तरि कीर्तिता ॥८९॥

कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम् ।
गम्यादिगम्ये निर्दिष्ट शेषमद्यतने मतम् ॥६०

हे विप्र ! इसीलिये भाव और कर्ता में कीर्तित किया गया है ।
अव सकर्मक तथा अकर्मक की परिभाषायें बतलाई जाती हैं । जहाँ
पर फल अर्थात् क्रिया का जो भी फल होता है वह और उस क्रिया
का व्यापार यह दोनों ही एक ही में निष्ठित हुआ करते हैं यहाँ पर
ही समझ लेना चाहिये कि यह क्रिया अकर्मक है ॥६५॥ जिम जगह
पर फल और व्यापार इन दोनों के धर्मियों की भिन्नता हो उसी धातु
का सकर्मक धातु कहा गया है । कर्म भी दो प्रकार के हुआ करते हैं
एक मुख्य कर्म और दूसरा गौण कर्म होता है । कुछ धातुयें द्विकर्मक
भी हानी हैं । द्रुञ्ज आदि धातुओं के गौण कर्म में और भी नीह आदि
धातुओं के प्रधान कर्म में सकार होते हैं ॥६६॥ बुद्धि और भक्तार्थक
धातुओं में शब्द कर्मको की अपनी इच्छा में तथा प्रयोज्य कर्म में अ-य
जो प्यन्त आदि हैं उनके आदि प्रत्यय माने गए हैं ॥६७॥ फल और व्यापार
इन दोनों के धातु का आश्रय होने पर तिङ् प्रत्यय कहे गये हैं । फल
में प्रधानता है और जो व्यापार होता है वह तो तिङ्गर्थ का विशेषण
होना है ॥६८॥ एधिवृद्धौ धातु क एधितव्यम् एधनीयम्, ये दो उदाहरण
कृत्य में अर्थात् कृदन्त प्रत्यय में निर्देशन दिये जाते हैं । भाव में, कर्म
में कृत्य प्रत्यय होने हैं और कृत्-यह कर्ता में कहा गया है ॥ ६९ ॥
कर्ता-कारक इत्यादि और भूत में भूतादि बतलाए गए हैं । गम्यादि
गम्य में निर्दिष्ट किया गया है और शेष अद्यतन में माना गया है ॥६०॥

अधिस्त्रीत्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम् ।
रामाश्रितस्त्वनुरूपे घान्वार्यो यूपदारू च ॥६१
व्याघ्रभो राजपुरुषोदाशाण्डो द्विगुरुच्यते ।
पञ्चगव दशग्रामी त्रिफलेति तु रुद्धित ॥६२
नीलोत्पल महापद्मो तुत्यायै कर्मधारयः ।

अद्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुंभकारादिकः वृत्ता ॥६३
 अन्यार्थे तु बहुश्रीही श्राम. प्राप्तोदको द्विज ।
 पचगू रूपवदभार्यो मध्याह्नः समुतादिकः ॥६४
 समुच्चये गुरु चैन भजस्तान्वाचये त्वट ।
 भिक्षामान् प नाचापि वावयमेवानयोर्भवेत् ॥६५
 इतरैतयोगे तु रामवृष्णो समाहृती ।
 रामवृष्ण द्विज द्वे द्वे ब्रह्म चैकमुपास्यते ॥६६

जहाँ पर अव्ययी भाव समास होता है अर्थात् किसी अव्यय (अविकारी) शब्द के साथ समास होने पर जोकि अव्ययपद विग्रह वाला हुआ करता है अर्थात् अपने पद के साथ जिसका समास में विग्रह नहीं होता है उसमें 'अधि ३३'—और 'यथा शक्ति' उदाहरण बनाए गए हैं । जैसे शक्ति का अतिक्रमण न करके अर्थात् शक्ति ही अनुसार जो कार्य किया जाता है वही 'यथाशक्ति' होता है । यह शब्द अव्ययीभाव समास होने पर पूरा ही अव्यय शब्द बन जाता करता है । दूसरा एक तत्पुरुष समास होता है । जिसके उदाहरण रामा-शिव', धान्यार्थ, यूपदारु व्याघ्रभी और राज पुरुष अक्षशोष्ठ होते हैं । जहाँ पर विशेषण और विशेष्य का समास तुल्यार्थ में होता है वह 'कर्मधारय' समास कहा जाया करता है और जहाँ विशेषण संज्ञा वाचक होता है उसे द्विगु समास कहा जाता है । यथा—नीलोत्पल, महापत्नी यह कर्मधारय के उदाहरण हैं । पञ्चवक्त्र, दशभामी और त्रिफला यह द्विगु समास के उदाहरण हैं । अब्राह्मण, यह उदाहरण नञ् समास का है जहाँ पर 'न' के स्थान में 'अ' ही शेष रहता है यह भी तत्पुरुष समास का एक विशेष भेद स्वरूप होता है । कुम्भकारादि भी कर्म तत्पुरुष के उदाहरण हैं ॥६१—६३॥ जहाँ पर समास में रहने वाले समस्त पद किसी अव्यय अर्थ का सन्निहित किया करते हैं और उनके अर्थ की कोई प्रधानता नहीं होती है वहाँ पर 'बहुश्रीहि' समास

होता है और वह एक प्रकार से विशेषण हुआ करता है । यथा—
 'प्रातोदक. ग्राम.'-अर्थात् जिनको जल प्राप्त होगया है, ऐसा ग्राम । यहाँ
 प्रातोदक शब्द ग्राम का विशेषण होता है । इसी तरह से पञ्चगु-
 रूपवृक्षाभार्य, मध्याह्न, और समुत्पादिः ये भी यहूषीहि सभात के
 उदाहरण होते हैं ॥६४॥ अब द्रव्य सभाम के विषय में बतलाया जाता
 है । द्रव्य दो प्रकार का होता है । समुच्चयवाचक और दूसरा इतरेतर
 योग । यथा—'गुरु च द्रेश ममस्य' 'अ-वाचये त्वत्' -'मिक्षामानपर्णाच'
 इन वाक्यों में समुच्चय द्रव्य होता है ॥६५॥ इतरेतरयोग द्रव्य में
 'रामवृष्णो समाहृगो' हे द्विज । 'राम वृष्णम्' ये दो-दो वस्तु हैं । इनमें
 एक की उपासना की जाती है ।



॥ निरुक्त वर्णन ॥

निरुक्त से प्रवक्ष्यामि वेद श्रोतामुत्तमम् ।
 तन्पञ्च विध माह्यात बंदिक धातुरूपकम् ॥१॥
 अत्रचिद्वर्णांगमस्तथ अत्रचिद्वर्णं विपर्ययं ।
 विचार वयापि वर्णाना वर्णनाज अत्रचिन्मत ॥२॥
 तथा विचार नाशाभ्या वर्णाना अत्र नारद ।
 धातोर्योगातिमयी च सयोग परिकीर्तित ॥३॥
 तिद्धेद्वर्णांगमस्य स निहो वर्णविपर्ययात् ।
 गूढो-मा वर्णं विदृतेवर्णनाशात्सृपोदरः ॥४॥
 अमरादिषु शब्देषु शेषो योगो हि पञ्चमः ।
 यहून् छन्दमोऽपुस्तमस्य वाच्यं पुनर्वर्णम् ॥५॥
 नभस्वः; वृषणश्चरापरस्यैवदि भावि हि ।
 पर ध्वजाहिनाभावि गनिमशाम्ना हि अ ॥६॥
 विभक्तिना विपर्यामो यथा दृष्णा जुहाति हि ।

अभ्युत्सादयाम केतुध्वनयोत्प्रमुखास्तथा ॥७

श्री सनन्दन जी ने कहा—अब मैं निरुक्त के विषय में बतलाऊंगा जो कि वेदश्रीव का एक उत्तम अङ्ग शास्त्र है। वेद के कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और शिक्षा ये छँ अङ्ग शास्त्र माने गये हैं। जिनका ज्ञान प्राप्त करना वैदिक को परमावश्यक है। वह निरुक्त पाँच प्रकार का कहा गया है जो वैदिक और घातु रूपक हाता है। किसी स्थल पर तो वर्णों का आगम होता है—कहीं पर वर्णों का विपर्यय होजाया करता है। किसी स्थान पर वर्णों का विकार होजाता है और कहीं पर वर्ण का विनाश होता है ॥ १॥२ ॥ हे नारद ! जहा पर घातु का विकार और नाश के द्वारा योगानिषधी सयोग कहा गया है। वर्णनिम से हस सिद्ध होता है—वर्ण विपर्यय से सिंह—वर्ण विकृति गूढोत्मा और वणनाश से पृषोदर सिद्ध होता है। १।४। ध्रमरादि शब्दो में पञ्चम योग जान लेना चाहिए। “बहुल छन्दसि— यह कहा गया है। यहाँ पर पुनर्वसू वाच्य है। अपरस्मैपद में भी नभस्वद और वृषण ही होते हैं। पर व्यवाहता भी गति सजा वाले हैं। वही दिखते हैं या विभक्तियों का निपर्यास होता है जैसे—दक्ष्णा जुहोति : अभ्युत्सादयाम केतु ध्वनयोत् तथा प्रमुख निष्टक्याप्ता तथोक्त शुभाय इत्यादिक है ॥ २-७ ॥

सुसिद्धपद्महोलगनराणा कालहल् च् स्वर कर्तृपदा च ।

व्यत्यमिच्छति शास्त्रकृदेया सोपि च सिद्धयति बाहुलकेन ॥८

रात्रो विन्धी च कद्रुश्चाविष्ट्वो वाजसनेयिन ॥९

कर्णोभिश्च यशोभाय्य इत्याद्याश्चतुरक्षरम् ।

देवासोयो सर्वदेवतात्वावत इत्यपि ॥१०

उभयाविनमाद्याश्च प्रलयाद्याश्च स्मृच तथा ।

अपस्पृधेया नो अब्यादायो अस्मान् मुखास्तथा ॥११

सगर्भोस्थापदी ऋत्वीरजिष्ट च त्रिपचकम् ।

हिरण्यये न नर च परमे व्योमनित्यपि ॥१२
उविद्यास्वप्रया वारवध्वाद्दुह्वैवधी ।
यजध्वंनमेमसि च स्नात्वी गत्वा पचास्य भी ॥१३
गोनाचापरिह्वारचतुतुरिग्रसितादिका ।
पश्येदत्तत् बभूधापि प्रमिणातित्यवीवृधत् ॥१४

मुग्—तिङ्—उपग्रह, तिङ् नर और काल, हृत्, स्वर, कर्त्तृ, पठ्
इत्याशास्त्र कर्त्ता-व्यय वाहना है वह भी वाहुलक के द्वारा सिद्ध हो
जाता है ॥८॥ रात्री विम्ब्री, नङ्, अक्त्त्, वाज समेयिन कर्णसि,
यणोपाय, इत्यादि चतुरक्षर हैं । देवासोय, रावदेवना, अतित्वायत
य भा होत है ॥११॥ १०॥ उभयावय, माद्या प्रनयाद्या, रतृच तथा अपमृ-
धेयां, जा-अवशादाय अस्मान्मृत्ततगर्ध्वो रथापदी, षट्स्थो रजिष्ट और
निपञ्चनम् हिरण्ययेन नर, परमे व्यमनि भी होत है ॥ ११॥१२ ॥
उविद्या, स्वप्रया, वार वध्वा दुह्वैवधी, यजध्वं, नममसि, स्नात्वी,
गत्वा, पचास्य भी, गोना, अपरिह्वारातिति, अवीवृधत् ॥१३॥१४॥

मिथ्ययुश्च दुरस्वा वा हात्वा मुधित मित्यपि ।
दधर्ताद्या स्ववदिभश्च समूवेति च धिष्व च ॥१५
प्रप्राप च हरिवत्तेशष्वत् मुपयितर ।
रथीतरी नसताद्या अम्नमुवरथा इति ॥१६
ब्रूह्याद्यादे परस्याप्यो थावयेत्यादिके प्लुन ।
दीभ्राश्च स्वतवान्यापोनिभिष्ट्व च न्भिष्टुन ॥१७
अमातुण श्रतावाह र्मयोदन्मृमणा अपि ।
चतुविधात् वाहुनधात् प्रवृत्तारप्रवृत्तिा ॥१८
विभापयान्यथाभाक्त्वर्षे मिह्यञ्च वेदिनम् ।
भूवाद्या धानयो ज्ञेया परस्मैदिनम्पृता ॥१९
एधाद्या आत्मनभाया उदात्ता षट्पिणगन्धरा ।
अनादोयष्ट्विशञ्च परस्मैपदिनो मुने ॥२०

शोकृपूर्वा द्विचत्वारिंशदुक्ता ह्यात्मने पदे ।

उदात्तेतस्तु पचाशत् फक्काद्या परिकीर्तिता ॥२१

मिप्रयु, दुरस्वा, हास्वा, मुधितम् दधर्त्याद्य, स्ववदिभ, सेसूवेति, धिष्व, प्रप्राय, हरिवतेक्षभवत्, मुषयितर, स्थीतरी, नसताद्या, अम्ज-भुविरयो—यह भी होने हैं ॥१५॥१६॥ श्रुति आद्यादे परस्वाप्यो और थापय इत्यादि मे प्लुत होता है । दाश्वान्, स्वतवाम् यापौभिभिप्लुत, नृभिप्लुत अभीपुण ऋतावादे, न्दपीद नृमणा चार प्रकार के बाहुलक से प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति से विकल्प के द्वारा अन्यथा शो कृ आदि हैं पूर्व मे जिमके ऐसी धातुएँ बधःसीस कही गयी हैं और ये आत्मनेपद मे होती हैं । उदात्तेत पक्कादि पचास सख्या मे कीर्तित की गयी हैं ॥२१॥

वर्चाद्या अनुदात्तेत एकविंशतिरीरिता ।

गुपादयो द्विचत्वारिंशदुदात्तेत समीरिता ॥२२

धिष्यादयोऽनुदात्तेतो दश प्रोक्ता हि शाब्दिके ।

अणादयोऽप्युदात्तेत सप्तविंशति धातव ॥२३

अमादय समुद्दिष्टाश्चतुस्त्रिंशदि शाब्दिके ।

द्विसप्ततिमिता मन्पमुखाश्चौदात्त बधना ॥२४

स्वरितेद्वापुधातुस्तु एक एव प्रकीर्तित ।

क्षुधादयोऽनुदात्तेतो द्विपचाशदुदाहृता ॥२५

घुपिराद्या उदात्तेतोऽष्टाशीतिर्धातवो मता ।

द्युताद्या अनुदात्तेतो द्वाविंशतिरतो मता ॥२६

पितस्त्रयोदशा घटादिष्वेनुदात्तेत ईरित ।

ततो ज्वलदुदात्तेतो द्विपचाशत् मितास्तथा ॥२७

स्वरितेद्राजृ सप्रोक्तस्तनहभ्राजृतस्त्रय ।

अनुदात्तेत आख्याताभा द्युदात्ता इत स्यमात् ॥२८

वर्चाय अनुदात्तेत होती हैं और सख्या मे इक्कीस बतायी गयी

है तथा गुणादि अनुदात्त होती हैं और बयालीस सख्या मे कही गयी है ॥२२॥ बयाकरणो ने धिष्पादि धातुओ को अनुदात्त कहा है जो दश बतलायी गयी हैं । अथादि भी उदात्त होती हैं जो कि सत्ताईस होनी हैं ॥२३॥ शब्दिका के (वयाकरण के पण्डितो के) द्वारा अपादिक चौतीस कही गयी हैं । उदात्त व धव पाणी मन्व्य प्रमुख धातुऐ बहुतर सख्या वाली बतायी गयी हैं ॥२४॥ स्वरिते तद्भावु धातु नेवल एक ही वीत्ति की गयी हैं । सुधादि धातुयें अनुदात्त है और वावन सख्या मे कही गयी है ॥२५॥ धुपिरादि धातुयें उदात्त है और अटठासी सख्या मे मानी गयी है । द्युतादि अनुदात्त है और सख्या मे चाईस है । पित प्रयोदश है और धरादि मे अनुदात्त कहा गया है । इस के अनन्तर उवनु उदात्त है और वावन सख्या मे मानी गयी है ॥ २६ ॥ २७ ॥ राजु स्वरिते कही गयी है और स्तनह भ्राजु स तीन है । आख्यातामा अनदात्त है और द्रत स्वमा से उदात्त है ॥२८॥

सहोनुदात्ते देवस्तुरमवोऽप्यात्मने पदी ।
 मदस्य उदात्ता कुचडदा उदात्त इत ॥२६
 स्वरिते पचत्रिंशद्विक्रवाद्याश्च तत परम् ।
 स्वरितेच्छिन्नाभृजाद्याश्चत्वार स्वरितेस्तत ॥२७
 घेट परस्मैपदिन पट्चत्वारिणदुदीरता ।
 अष्टादश स्मिडाद्यास्तु आमस्तेपदिनो मता ॥२८
 ततश्चपोऽनुदात्त पूडाद्या परिकीर्तिता ।
 हूपरस्मैपदी चात्मने भाषा स्तुगुपातय ॥२९
 रभद्यदयनुदात्तो जिद्विदादात्त इन्मत ।
 परस्मैपदिन पच दशस्वम्बादयस्तथा ॥३०
 सिधानुदाने च दानगानीमपात्मनी ।
 स्वरिते पचाद्या परस्मैपदिनो मता ॥३१
 स्वरिते तस्यश्चैतां घदवची परिभाषणी ।

भ्वाद्या एते षडधिकं सप्तस्रं धातवो मताः ॥३५

एव सह अनुदात्त है और तुरम एक आत्मनेपदी है । सद तीन है और उदात्त है कुचाङ्गे उदात्त है ॥३६॥ पैंतीस स्वरित है और इनके अनन्तर शिञ् भृञ् आदि चार स्वरित होती हैं । घेट परस्मैपदी है और छयानीस कही गयी हैं । स्मिङ् प्रभृति अठारह हैं जो आत्मनेपदी मानी जाती हैं । इसके अनन्तर पूङ् आदि तीन अनुदात्त वीक्षित की गयी हैं इसके अनन्तर पूङ्गाद्य तीन अनुदात्त कही गयी हैं । हृ धातु परस्मैपदी है और भृनुगुणादि तीन आत्मनेपदी होती हैं ॥३७॥३९॥३९॥ रभञ्चद्वय अनुदात्त और त्रिषिद्धा इत् उच्चत कहे गये हैं । तथा स्कम्भवादि षडह परस्मैपदी होती हैं ॥३९॥ कित धातु उदात्त होता है । दान शान उभयात्मक होते हैं । पचासक स्वरित और परस्मैपदी कही गयी है ॥३४॥ ये दोनो वद बचो परिष्ठाणि तीन स्वरित है । येम्वादि एक सहस्र छैं धातुयें मानी गयी हैं ॥३५॥

परस्मै पदिनो प्रोक्ता वदाश्चपि हनेति च ।
स्वरितेतोद्विषाद्यास्तु च त्घारो धातवो मता ॥३६
चक्षिङ्केवा समाख्यातो धातुरशात्मनेपदी ।
इरादयोनुदात्तो धातवस्तु त्रयोदश ॥३७
आत्मनेपदिनो प्रोक्ता पूङ्शीङ् द्वौ शाब्दिकंमुने ।
परस्मैपदिन प्रोक्ता पुमुखा सप्त धातव ॥३८
स्वरिते दुर्णु आख्यातो धातुर्गेको मुनीश्वर ।
धुमुखास्तय उद्दिष्टा परस्मैपदिनस्तथा ॥३९
ऽतुञ्जेकस्तु समाख्यात स्मृतो नारद शाब्दिक ॥४०
अष्टादश राप्रभृतय परस्मैपदिन स्मृता ।
इङ्ङात्मने पदी प्रोक्ता धातुर्नारद केवल ॥४१
विदादयस्तु चत्वार परस्मैपदिनो मता ।

जिप्त्वष्णये समुद्दिष्ट परस्मैपदिकस्वथा ॥४२

वद और हन् परस्मैपदी कही गयी हैं । द्विपादि भार धातुयें स्वरितेत मानी गयी हैं ॥३६॥ एक चक्षिङ् धातु आत्मनेपदी कही गयी है । इरादि तेरह लयोद्ग धातुयें अनुदात्त होती हैं ॥३७॥ हे मुने । शाब्दिको के द्वारा वृड् और षीङ् ये दो धातुयें आत्मनेपदी बतलाई गयी हैं । प्रमुख सात धातुयें परस्मैपदी कही गयी हैं ॥३८॥ हे मुनीश्वर ! ऊर्ज्ज एक धातु स्वरितेन है और पुजिन मे मुत्य है ये तीन धातुयें परस्मैपदी उद्दिष्ट की गयी है । हे नारद ! वैयाकरणो के द्वारा जुम्न् यह एक धातु समाख्यात कही गयी है ॥ ३९॥४० ॥ रा-प्रभृति अठारह धातुयें परस्मैपदी बतलाई गयी हैं । इङ् उधातु केवल हे नारद । आत्मनेपदी कही गयी हैं ॥४१॥ विद् आदि चार परस्मैपदी मानी गयी हैं । जिप्त्वष्णमि को उही भाँति परस्मैपदिक कहा गया है ॥४२॥

परस्मैपदिनचैव ते मयोक्ता स्वभावय ।
 दीधीङ् वेवीङ् स्मृती धातू आत्मनेपदिनी मुने ॥४३
 प्रथादयस्त्रयश्चापि उदात्तेत्त प्रकीर्तिता ।
 चर्कगीत च ह्रङ् प्रोक्तोऽनुदात्तोद्वाक् प्रकीर्तित ॥४४
 त्रिसप्तति समाख्याता धायवोऽदादिवेगण ।
 दादयोधातयो वेदा परस्मैपदि नो मत ॥४५
 स्वरितं द्वे भृञ्जाख्यात उदात्तोद्वाक् प्रकीर्तित ।
 माङ् ह्राङ् द्वावनुदात्तोती स्वरितेदान च धातुषु ॥४६
 वाणितिराद्यास्त्रयश्चापि स्वरितेत उदाह्वना ।
 पुमुद्या द्वादश तथा परस्मैपदिनी मता ॥४७
 द्वाविंशतिरिहोद्दिष्टा धातयो ह्वादिने गणे ।
 परस्मैपदिन प्राक्ता दिवाद्या पचविंशति ॥४८
 आत्मने पदिनी धानू वृङ् ह्रङ् द्वावपि नारद ।

ओदित पूङ्मुखाः सप्त आत्मने पदिनो मता ॥४६

हे मुने ! मैंने आपको स्वमादिको षो परस्मैपदी ही बतलाया है किन्तु दो षोड्-वेदीड्, दो घातुए आत्मनेपदी होनी हैं ॥४३॥ प्रयादि भी तीन घातुएँ भी उदात्त कही गयी हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! चक्रंरोत और ह्युङ् अनुदात्त कहे गये हैं ॥ ४४ ॥ अदादिगण में तिहस्तर-घातुएँ कही गयी हैं । दादि घातुएँ वेद परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥ ४५ ॥ भुञ् स्वरित कही गयी है और घाक् उदात्त बतलायी गयी है । षाङ्-हाङ् ये दो घातुएँ अनुदात्त हैं और आनच घातुओं में स्वरित होता है ॥ ४६ ॥ वागिनिरादि भी तीन स्वरित कीर्तित की गयी हैं । धुमुञ् वारह घातुएँ परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥४७॥ ह्वादिक गण में यहाँ पर षाईस घातुएँ उद्दिष्ट की गयी हैं । देवादि पञ्चीस घातुओं परस्मैपदी बलाई गई हैं ॥ ४८ ॥ हे नारद ! पूङ् और हूङ् ये घातुओं आत्मनेपदी कही गयी हैं । पूङ्, प्रमुख है जिनमें एँकी ओदित सात घातुएँ आत्मनेपदी मानी गयी हैं ॥४९॥

आत्मनेपदिनो विप्र दीङ्मुखास्त्विह कीर्तितः ।

स्यति प्रभृतयो वेदा परस्मै पदिनो मता ॥५०

जग्यादय पञ्चदश आत्मनेपदिनो मुने ।

मृपाद्या स्वरितेनस्तु घातव पञ्च कीर्तितः ॥५१

एकादश पदाद्यास्तु ह्यात्मनेपदिनो मताः ।

राघो कर्मक एवात्र वृद्धो स्वादिचुरादिके ॥५२

उदात्तेनस्तुदाद्यास्तु त्रयोदश समीरिता ।

परस्मैपदिनोऽत्र रधाया परिवीरिता ॥५३

समाद्याषथाप्युदात्तेन पट्षत्वारिणशदीरिता ।

चत्वारिणश्छेत्त चापि दिवादी घातवो मता ॥५४

स्वाद्य स्वस्वितेतोवा घातव पन्थीरिताः ।

सप्तम्यातो दुर्नातिस्तु परस्मैपदिनो मुने ॥५५

अष्टिषावनुदात्तोसौघातु द्वौ परिवीतितौ ।

परस्मैपदिनस्त्वय त्रिवाद्यास्तु चतुदंश

द्व्यप्रिशदात्तव प्रोक्ता विन्नेन्द्र म्वादिक्के गौ ।

स्वरितेन षडाद्यातास्तुदाद्या मुनिसत्तम ॥५७

हे विप्र ! दीर्घ प्रमुख धातुओं में यहाँ पर आत्मनेपदी बताया गयी है और स्यात् प्रभृति षेद परस्मैपदी मानी गयी है ॥ ५० ॥ हे मुनिवर ! जन्वादि पन्द्रह धातुओं में आत्मनेपदी होती है । मृषादि पाँच धातुओं में स्वरितेन कही गयी है ॥ ५१ ॥ षडादि ग्यारह धातुओं में आत्मनेपदी मानी गयी है । यहाँ पर राघो कर्मक ही है वृद्धि में स्वादि घृषादिक में है ॥ ५२ ॥ तुदादि सेरह धातुओं में उदात्त गमीगित की गई है । एष सौ षासीध धातुओं में दिवादिगण म बताया गयी है । यहाँ पर रधादि भाठ धातुओं में परिवीतित की गयी है । संभादि छयासीध धातुओं में उदात्तेतु कही गयी है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ स्वादि धातुओं में स्वरितेन बताया गयी है । हे मुने ! दुर्नाति नाम धातु परस्मैपदी समाख्यात की गयी है ॥ ५५ ॥ अष्टिष सौ धातुओं में अनुदात्तों में परिवीतित की गई है । त्रिवादि षोडश धातुओं में यहाँ पर परस्मैपदी कही गयी है ॥ ५६ ॥ हे विन्नेन्द्र ! स्वादिगण म बताया गयी है । हे मुनि सत्तम ! तुदादि छ धातुओं में स्वरितेन कही गयी है ॥ ५७ ॥

श्रम्युदात्तेऽनुपीपूर्वा आत्मनेपदिनोमंवा ।

प्रषाद्य उदात्तोऽप्रोक्ता षर्वाद्यम् मतम् ॥५८

मुपुं दारोद्दिहोद्दिष्टौ धातुरेवो मुनीधर ।

पुपुग्गाभेक स्यात्पर परस्मैपदिनो मना ॥५९

कुडाद्यातास्तुदात्तोश्च कुटाद्या पूतिमागता ।

पृट् मृट् आत्मनेभागी षट् परस्मैपदे रिपे ॥६०

आत्मनेपदिनो धातु इड् भृट् द्वौ वाप्युदात्तो ।

प्रच्छदिवोडशाख्यात परस्मैपदिनोमुने ॥६१
 स्वरितेत पद् ततश्च प्रोक्ता मिलमुखा मुने ।
 कृती प्रभृतयश्चापि पत्स्मैपदिनस्त्रय ॥६२
 सप्त पचादशदधिकास्तुदादौ धातव शतम् ।
 स्वरितेतो रूघोनदा परस्मैभाषित कृती ॥६३

पुषी पृथ ऋष्युदात्त त है और आत्मनेपदी है । वषचादि एकसौ पाँच धातुएँ उदात्तेत कही गई हैं ॥ ५८ ॥ हे मुनीश्वर यहाँ पर मूरि यह एक ही धातु उदात्तेत उद्दिष्ट की गयी है । णू प्रमुख चार धातुएँ परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥ ५९ ॥ कुड अनुदात्तेत कही गई है और कुटादि पूर्ति को प्राप्त हो गई हैं । पुङ् मृङ् दो आत्मनेपदी कही गई हैं और रिपि की छै परस्मैपदी होती हैं । ६०। इङ् और घृङ् ये दो धातुएँ आत्मनेपदी कही गयी हैं । हे मुने । प्रच्छ प्रभृति सोनह धातुएँ परस्मैपदी कही गयी हैं ॥ ६१ ॥ हे मुने । मिल है प्रमुख जिनमे ऐसी छै धातुएँ स्वरितेत बतवापी गयी हैं । कृती प्रभृति भी तीन परस्मैपदी कही गई हैं ॥ ६२ ॥ तुदादि मे एकसौ सत्तावन धातुये हैं । रुघ नदा स्वरितेत और परस्मैपदी भाषित की गई हैं ॥ ६३ ॥

अिद्घीतोनुदात्तेतस्त्रयो धातव ईरिता ।
 उदात्तेत शिपपिपरुधाद्मा पचविंशति ॥६४
 स्वरितेतस्तनो सप्त धातव परिकीर्तिता ।
 मनुयन्वात्मनेभापो स्वरितेत् कृञ् जुदाहृत ॥६५
 ततो द्वौ कीर्तितो विप्र धातवा दश शाब्दिके ।
 ऋद्या सप्तोभयेभाषा सौत्रा स्तश्वादिक्स्तथा ॥६६
 परस्मैपदिन प्राक्ताश्चरवापि मुनीश्वर ।
 द्वाविंशतिरुदात्तेत ऋद्याद्या धातवो मता ॥६७
 वृङ् आत्मनेपदी धातु थ याद्याश्चैवविंशति ।
 परस्मैपदिनश्चाप्य स्वरितेत् ग्रह एव च ॥६८

क्र्यादिनेषु द्विपंचाशद्धातवः कीर्तिता बुधैः ।
 चुराद्या धातवो ज्यन्ताः षट्त्रिंशदधिक शतम् ॥६६
 चित्याद्यष्टादशाद्याता आत्मनेपदीनो मुने ।
 चर्चाद्या आपृषीयास्तु ज्यन्ता वा परिकीर्तिता ॥७०

त्रि इन्धीत तीन धातुये अनुदात्तेत वही गई है । शिष्य पिप
 ष्य प्रभृति षन्वीस धातुये उदात्तेत होनी है ॥६४॥ तनो साग धातुये
 स्वरितेत परिकीर्तित की गई है । मनु-वनु आत्मनेपदी है । स्त्रुज्
 स्वरितेत उदाहृत की गई है ॥ ६५ ॥ हे विप्र । दो धातु कीर्तित की
 गई है और शाब्दिको के द्वारा दश धातुये बनायी गई है क्र्याहि सात
 धातुये उभयपदी है तथा रतम्वादिष सौत्र है ॥६६॥ हे मुनीश्वर । ये
 चारो ही परस्मैपदी वही गयी है । क्रुघ आदि वार्द्धस धातुएँ उदात्तेत
 मानी गयी है ॥६७॥ वृड्-ड् आत्मनेपदी धातु है और श्रन्थ प्रभृति
 श्रन्वीस धातुये परस्मैपदी है और ग्रह भी है । ये सब स्वरितेत है ।
 ॥६८॥ बुध पुरषो के द्वारा क्र्यादिकों में वाचन धातुये कीर्तित की
 गयी है । चुरादिक ज्यन्त धातुये एष सौ छत्तीस है ॥६९॥ हे मुनिवर !
 चिनिप्रभृति अठारह धातुये आत्मनेपदी आख्यात की गई है । चर्चादि
 आपृषीय भषवा ज्यन्त कीर्तित की गई है ॥७०॥

अदत्ता धातवश्चैव चत्वारिंशत्तथाष्ट च ।
 पदाद्यास्तु दश प्रोक्ता धातवो ह्यात्मने पदे ॥७१
 मूत्रद्या अष्ट चाप्यत्र ज्यन्ता प्रोक्ता ममीविभिः ।
 धात्वर्थे प्रातिपादिवाद्बहुव चैष्टवन्मतम् ॥७२
 तत्करोति तदाचष्टे हेतुमत्यपि नियन्तः ।
 धात्वर्थे कर्तृकरणाच्चित्राद्याश्चापि धातवः ॥७३
 अष्ट मग्राम आख्यातोनुदात्तोऽष्टादिकं बुधैः ।
 स्तोमाद्या षोडश तथा अदत्तस्य निदर्शनम् ॥७४
 तथा धातुनवादन्ये सौ रत्नीविष संदिवाः ।

सर्वे सर्वगणीयाश्च तथानेकाथवाचिनः ॥७५॥

सनाद्यता धातवश्च तथा, वै नाम धातवः ।

एवमानत्यमुदभोग्य धातूनामिह नारदः ।

सक्षेपोय समुद्दिष्टो विस्तरस्तत्र तत्र च ॥७६॥

ऊद्दृढतयोति रुक्णुशीङ् स्त्रुनुभुभिडीङ् ध्रिभिः ।

वृड् वृञ्भ्या च विनकाचो जतेषु निहता स्मृता ॥७७॥

अदत्त धातुये अङ्गालीस होती हैं । पदादि दश धातुये आत्मने पद मे बतलायी गई हैं ॥७१॥ यही पर सूत्रद्या आठ त्र्य त मनीषियो के द्वारा कही गई हैं । धात्वथ मे वेष्ट के समान प्रतिपादिक से बहुल माना गया है ॥७२॥ वह धा वंमा ही करता है—तथा उस रकार की चे टा करता है—हेतुमान् में भी णि प्रत्यय माना गया है । धातु के अथ मे कत्तु करण वाली चिन्ताय भी धातुय ॥७३॥ शाब्दिक अर्थान् व्याकरण ज्ञाता बुध जनो के द्वारा प्रष्ट सयाम अनुदात्तत् कहा गया है । स्तोम आदि सोलह हैं तथा रुद् त का निशान है ॥७४॥ उसी प्रकार मे बाहुल्य शब्द के हाने से तय सीव लौकिक और बदिक् है । ये सद् सभी गण मे होने वाली । तथा अनेक प्रकार के अर्थों के भी बतलाने वाले हैं ॥७५॥ सन् प्रत्यय जनके अंत मे होता है एसी सनाद्यत धातुये है और उसी भाँति से नाम धातुये भी हैं । नाम धातु का तात्पर्य यह है णि प्रतिपादित कमी के नाम से जरे धातुये बनाई जाती हैं वे नाम धातु के नाम से हो जाती हैं यथा दुघ से दुषायते बन जाती है । हे नारद । इस कारण स यहाँ पर धातुओ की अमरता को उद्भावित करके यह रम गथा समुद्दिष्ट किया गया है और तहाँ तहाँ पर इसका विस्तार ही है ॥७६॥ अब कुछ धातुओ के नामो का उल्लेख किया जाता है—ऊद् व अर्त यो त रु ङ्गु शीङ् स्त्रु 'नु धु शिवड ईर धिद्ङ् और न् व विना एव अच् वाली आज ती में निहित रही गई हैं ॥७७॥

शक्लृपच्मुच्चरिच्चवच्च्विच्चसिच्च प्रच्छित्यज्निजिरभज ।
 भञ्ज्भुञ् भ्रस्ज्मस्जिभ्ज्युज्रुज् रञ्जविजिरस्वञ्जिसञ्ज् सृजं ॥७८
 अदक्षुदखिदछिदतुदिनुद पद्यमिद्विद्यतिविन्द ।
 शदसदी स्विद्यातिस्स्कन्दिरहंरदीकृ धक्षुधि बुध्यती ॥७९
 वन्धिमुं धिहधीराधिव्यध्शुध साधिसिध्यती ।
 मग्यहन्नाप् क्षिप्छुपितपजिपस्तृप्यतिटप्यती ॥८०
 लिब् लुब् वप् लप् स्वप् सृपियभरमलभगमूनम्यमोरमि ।
 कृशिर्दशिदिशी दृश्मृश्रिष्शृश्लिष्श्विष् स्पृश कृपि ॥८१
 त्विप् तुप् द्विप् दुप् पुष्यापिप् विष्णुप् श्लिष्यतयोपसि ।
 वसतिदहदिहिदुहोन् मिह् रुह् लिह् बहिस्तथा ॥८२
 अनुदात्ता हलतेषु धातवो द्व्यधिकं शनम् ।
 चाद्या निपाता गवय प्राद्या दिग्देशकालजा ॥८३
 शब्दा प्रोक्तो ह्यनेकायां सर्वलिगा अपि द्विज ।
 गणपाठ सूत्रपाठो धातुपाठस्तथैव च ॥८४

शक्लृ, पच्, भुच्, ।रप्, वप्, विच्, सिच्, प्रच्छि, त्यज्,
 विजिर, भज्, भ्रञ्ज् भुञ्, भ्रस्ज्, मस्जिभ्ज्, युज्, रुज्, रञ्ज, विजिर,
 स्वञ्जि, सञ्ज, सृज् । ७८ । अद, क्षुध्, खिद् छिद्, तुद, पद्य, मिद्,
 विद्यति, वि-द्, शद् सदि, विद्यति, स्स्कन्दिर, हदी, कृध्, क्षुधि, बुध्,
 ७९। वन्धि, मुधि, राधि, रुधि, व्यध्, शुध्, साधि, सिध्यति, मग्य,
 हने, अ।प्, क्षिप् छुपित, तप्, तिप्, तृप्यति, टप्यति ८०। लिब् लुब्,
 वप् शप् स्वप्, सृपियभ, रम्, लम्, गम्, नम्, यम, रम्, कृशि, 'द पि,
 दिशि, दृश्, मृश्, रिग, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृपि ॥८१॥ धिप्,
 तुप् द्विप्, दुप्, पुष्य, पिष्, शिष् शुष्, श्लिष्य, तयोधाति, वस्, दह,
 दिह् दुह्, नह्, मह्, रुह्, लिह्, बहि ८२। हलन्तो मे अनुदात्ते धातु
 एक मो दो है । चाद्य निपात गवय है और दिग्देश कामज प्राद्य है ८३।
 द्वे द्विज । शब्द अनेक अर्थों वाले कहे गये है और सभी लिङ्गों धाति भी

होते हैं । गण पाठ, सूत्र पाठ और उसी भाँति घातु पठ भी होता है ॥८४॥

पाठोनुनासिकाना च पारायणमिहोच्यते ।

शब्दा सिद्धा वैदिकान्तु लौकिकाश्चापि नारद ॥८५॥

शब्दपारायण तस्मात् कारण शब्द सग्रहे ।

लघुमागेण् शब्दाना साधूना सनिरूपणम् ॥८६॥

प्रकृति प्रत्ययादेशलोपागममुखं कृतम् ।

इत्यमेतत्समाख्यात निरुक्त किञ्चदेव ते ॥८७॥

कात्स्न्येन वक्तुमान त्यात् कोपिशाक्तो न नारद ॥८८॥

अनुनासिको का पाठ यहाँ पर पारायण कहा जाया करता है । हे नारद ! सिद्ध शब्द वैदिक और लौकिक भी होते हैं ॥८५॥ इसी शब्दों के सग्रह में शब्द पारायण कारण है । साधु शब्दों का लघु मा- के द्वारा भनी भाँति से निरूपण है ॥८६॥ वह निरूपण प्रकृति, प्रत्यय, आदेश, साप और आगमों के द्वारा किया गया है । हे नारद ! इस रीति से आपके सामने यह कुछ थोड़ा सा ही निरुक्त कहा गया है । इसकी अमलता होने के कारण से इसको पूर्ण रूप से कहने के लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है ॥८७॥८८॥



॥ त्रिस्कन्ध ज्योतिष का गणित-स्कन्ध ॥

ज्योतिषाङ्ग प्रवक्ष्यामि यदुक्त ब्रह्मणा पुरा ।

यस्य विज्ञान मात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥१॥

त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र चतुर्लक्षमुदाहृतम् ।

गणित जातक ।वप्र संहिता स्कन्ध सञ्जितम् ॥२॥

गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये ।

अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहण चोदयास्तकम् ॥३॥

छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम् ।
जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिवियोनिजे ॥४
निपेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशक्रम ।
कर्माजीव चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नामसा ॥५
चन्द्रयोगा प्रव्रज्याख्या राशिशील च दृक्फलम् ।
ग्रहभाव फल चैवाश्रय योग प्रकीर्णके ॥६
अनिष्टयोगा स्त्रीजन्मफल निर्यागमेव च ।
नष्ट जन्म विधान च तथा द्रेष्वाण लक्षणम् ॥७

श्री सनन्दनजी ने ब्रह्मा-श्रीब्रह्माजी ने प्राचीनकाल में वर्णन किया था उस ज्योतिष के एक अङ्ग का मैं अब वर्णन करूँगा जिससे केवल विज्ञान के द्वारा मनुष्यों के धर्म की सिद्धि होजाया करती है ॥१॥ यह ज्योतिष शास्त्र तीन स्वन्धो वाला होता है अर्थात् यह मुख्य तीन प्रकरणों में बतलाया गया है जो चार नाथ श्लोकों वाला है—ऐसा कहा गया है । उन तीनों स्वन्धो के नाम जातक—गणित और सहिता है । कुछ विद्वानों के मत में पाँच स्वन्ध भी माने गये हैं जिनमें स्वरोदय और रामुद्रिष भी आजाते हैं ॥२॥ गणित स्वन्ध ही वास्तव में सिद्धान्त भाग है । इसमें परिकर्म अर्थात् जोड़-बाकी-गुणा-भाग-वर्ग-वर्गमूल और घन आदि सभी हैं जिनके द्वारा ग्रहों के स्पष्ट करने की रीति बतायी गयी है । तथा दिन, दिशा और वास का ज्ञान एवं सूर्य-सोम का ग्रहण इत्यादि उदयास्त, छायाछिदार, चन्द्र श्रुगोन्नति, ग्रह मुनि, पात और सूर्य-चन्द्र के कान्ति-साध्य का वर्णन किया गया है ॥३॥ जातक का ही होरा स्वन्ध कहा जाता है । इसमें राशियों के भेद, ग्रहों की जाति, रूप, गुण, भेद आदि तथा मानवेतर जन्मफल, गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयु दशाक्रम, आजीविता, अष्टवर्ग, राजयोग, नामगणयोग, चन्द्रयोग, प्राव्रज्या योग, राशिशील, ग्रहों की दृष्टि का पत्र, ग्रहभाव पत्र, आश्रय योग, प्रकीर्ण, अनिष्ट योग, स्त्री जातक

पम मृपु वा विचार, नष्ट जम विधान अर्थात् न ज्ञाने द्वये जम कास के ज्ञान का विचार और द्रोणाणा के सगण आदि समस्त विषयों का वर्णन किया गया है ॥४—७॥

सहिता शास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽन्दलक्षणम् ।
 तिथि वासर नक्षत्र योग तिथ्यर्द्धं सज्ञका ॥८
 मुहूर्तोपग्रहा सूर्यं सक्रान्तिर्गोचर क्रमात् ।
 चन्द्र तारा बल चैव सर्वं लग्नात् वाह्वय ॥९
 आघान पु ससीमन्त जात नामान्न भुक्त्यु ।
 चीन वणच्छिदा मीञ्जी क्षरिका बन्धने तथा ॥१०
 समावतन वैवाह प्रतिष्ठासद्म लक्षणम् ।
 यात्रा प्रवेशान सद्योवृष्टि कर्म विलक्षणम् ॥११
 उत्पत्ति लक्षण चैव सर्वं सक्षेपतो ब्रुवे ।
 एक दशशत चैव सहस्रायुत लक्षणम् ॥१२
 प्रयुत कोटि सज्ञा चातु दमञ्ज च खवक्म् ।
 निखव च महापद्म शकुजलधिरेव च ॥१३
 अन्त्य मध्य पराद्धं च सज्ञा दशगुणोत्तरा ।
 कमदुत्क्रमतो वापि योग कार्योऽन्तर तथा ॥१४

अब तृतीय सहिता स्कन्ध के स्वरूप का वर्णन किया जाता है । इस स्कन्ध में ग्रहों की गति-वय का लक्षण, तिथि दिन नक्षत्र, योग करण मुहूर्त उपग्रह-सूर्य का सक्रमण-ग्रहगोचर चन्द्र तथा तारा बल समस्त लग्नों का विचार अष्टोदशन विचार गर्भाधान पु स वन-मीमन्तो नयन, जातकर्म, नामकरण, अनप्राशन चूडाकरण—कर्णछेदन उपनयन मीञ्जी बन्धन अर्थात् वेदारम्भ क्षरिका ब धन समावतन विवाह प्रतिष्ठा गृह्य लक्षण-यात्रा विचार-ग्रह प्रवेश तत्काल की वृष्टि का ज्ञान कर्मों की विलक्षणता और उत्पत्ति का लक्षण प्रभृति विभिन्न विषयों का वर्णन भी संक्षेप सही कहेंगा ॥८—१२॥ अब

सर्वं प्रथमं गणितं के विषयका विचार किया जाता है। एक-दश गत अर्थात् इगई बहाई और सैकडा सहस्र (हजार)-अष्टयुत (दश हजार) लक्ष (लाख) प्रयुत (दश लाख) कोटि (करोड) अयुंद् (दश करोड) अवज (अरब)-खर्व (दश अरब)—निखर्व—(खर्व) महा परम (दश खर्व)—शशु (नीच) त्रलधि (दश लाख) अन्त्य (पदम) मध्य (दश पदम) और पराधि (शख) इत्यादि सख्या के बतवाने वाली सत्रायें हैं जोकि उत्तरोत्तर दश गुनी मानी गयी हैं। यथा स्थान पर स्थित अङ्को का जोड़ अथवा अंतर (बाकी) कम से या व्युत्क्रम से करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इकाई या सैकडा को ओर में जोडा जाना चाहिये। इसी प्रकार से अंतर भी होता है ॥ १३।१४॥

हृन्त्यादगुणे गुण्य स्यात्ते नैवोपान्तिमादिकान् ।
 शुद्धयेदरो यद्गुणश्च भाजन्यात्तत्कल मुने ॥१५
 समाङ्कघातो वर्गं स्यात्तमेवाङ्क वृत्ति बुधा ।
 अन्त्यात् विषमात्यक्त्वा कृति मूल न्यसेत्पृथक् ॥१६
 द्विगुणेनामुना भक्ते फल मूले न्यसेत्कमात् ।
 तत् कृति च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत् पुन ॥१७
 एव मुद्बुवगमूल जायते च मुनीश्वर ॥१८
 समभ्यङ्कहृति प्रोक्तो घनस्तत्र विधि पदे ।
 प्रोच्यते विषय पादम समे द्व च तत परम् ।
 विशोध्य विषमदत्याद् घन तन्मूलमुच्यते ॥१९
 त्रिनिघ्न्यात् मूलवत्या सम मूले न्यसेत् फलम् ।
 तत्कृति चान्त्यनिहितान् त्रिध्नी चापि विशोधयेत् ॥२०
 घन च विषमादेव घनमूल मुद्बुर्भवेत् ॥२१

गुणन अर्थात् गुणा में दो प्रकार की सख्या आती है जिसके मध्य में × ऐसा एक चिह्न दिया जाता है जो उन दोनों सख्याओं

का स्पष्ट स्वरूप प्रकट किया करते हैं। इस चिह्न के प्रथम जो सख्या होती है वह गुण्य कही जाती है और पीछे की सख्या को गुणक कहते हैं। भाग में भी भाज्य-भाजक, भजनफल या सन्धि तीन वस्तुएँ होती हैं। अब वर्गमूल के निकालने की पद्धति को समझाया जाता है। दो समान अङ्को के गुणन फल को ही वर्ग कहते हैं। विद्वान् जन उसी को 'कृति'—इस नाम से भी कहा करते हैं ॥१९॥ पुन द्विगुणित मूल से सम अङ्क में भाग देवे और जो सन्धि आवे उसका वर्ग विषय में घटा देना चाहिए और दूना करके पक्ति में रख देवे। हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से बार बार करने पर पक्ति का आधा वर्गमूल होता है ॥१७॥ अब घनमूल बतलाया जाता है—समान तीन अंको के गुणन फल को ही 'घन' कहा जाता है। दाहिने के प्रथम अङ्को पर खड़ी लकीर के रूप में घन या विषय का चिह्न लगा देने और उसके वाम भाग में पार्श्व में रहने वाले दो अंको पर पड़ी लकीर के रूप में अधन या समका चिह्न लगा देना चाहिए। इसी रीति से अन्तिम अङ्क तक एक विषय (घन) और दो सम (अधन) के चिह्न लगाने चाहिये। विषय घन में जितने सम घट सकें उतने घटा देने चाहिए। उम काल को अलग रखे। उसका घन मूल लेकर उस घनमूल का वर्ग करे फिर उसको तीन से गुणा करे। जो लब्धि हो उसको अलग लिख कर रखे। तथा उससे आदि अङ्क में भाग देना चाहिए। उस लब्धि का जो अलग भी उमका वर्ग करे और उपमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एवं तीन से गुणा करना चाहिए और उसके बाद में उसे घटा देने एवं अलग रखी हुई लब्धि के घन को अगले अङ्क में घटा देवे। इसी प्रकार से बार २ करने पर घनमूल सिद्ध होजाया करता है ॥१८ २१॥

अन्योन्यहारनिहती हराशौ तु समच्छिदा ।

लवा लवघ्नाश्च हरा हरदना हि सवर्णनम् ।

भाग प्रभागे विजय भुने शास्त्राय चिन्तकै ॥२२

अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः ।
 भागास्तलस्यद्वारेण हार स्वाशधिकेन तान् ॥२३॥
 ऊनेन चापि गुणयेद्वनर्णं चिन्तयेत्तया ।
 कार्यस्तुल्य हराशाना योगश्चाप्यन्तर मुने ॥२४॥
 अहारराशौ ह्य तु कल्पयंद्वरम व्यथ ।
 अशाहतिश्लेदघातद्द्वदभिन्नगुणने फलम् ॥२५॥
 छेद चापि लव विद्वन् परिवर्त्य हरस्य च ।
 शेष कार्यो भागहारे कतं व्यो गुणना विधि ॥२६॥
 हराशयो कुती वर्गो घनो घन विधी मुने ।
 पदसिद्धयै पदे कुर्याद्विधो स्व सर्वतश्च स्वम् ॥२७॥

भिन्न अङ्को के परस्पर में हर से हर (भाजक) और अण
 (भाज्य) दोनों का गुणा कर देने से सबके नीचे बराबर हर
 होजाया करता है । भाग प्रभाग में अण को अण से और हर को हर
 से गुणा कर देना चाहिये । भागानुबन्ध और भागापवाह में यदि एक
 अंक अपने अण से अधिक अथवा ऊन ही तो तलस्य हर से ऊपर
 वाले हर को गुणा करना चाहिये । किसी भाग के जोड़ने का नाम
 'भागानुबन्ध' कहा जाता है तथा घटाने को 'भागापवाह' कहते हैं ।
 भागानुबन्ध एवं भागापवाह में यदि एक अङ्क अपने अण से ज्यादा या
 कम होवे तो तल में रहने वाले हर को ऊपर में रहने वाले हर से
 गुणित कर देवे । इसके अनन्तर अपने अण से ज्यादा ऊन किये हुये
 हर से अण को गुणित कर देना चाहिए । तात्पर्य यह है कि भागानुबन्ध
 में हर अण का जोड़ करके और भागापवाह में हर अणका अन्तर करके
 ही करे ॥२२-२४॥ ऐसा करने से भागानुबन्ध और भागापवाह का फल
 सिद्ध होजायगा । भिन्नके तल में हर नहीं होवे उसके नीचे एक हर की
 कल्पना कर लेनी चाहिये । भिन्न के गुणा करने के साधन में अण
 अण या गुणा करना तथा हर हर से गुणन से भाग देना चाहिए

॥२५—२६॥ भिन्नाङ्क के वर्गादि साधन में यदि वग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वग करे तथा घन करना अभीष्ट होतो दोनों का घन करे । हे मुने ! इसी प्रकार वगमूल निकालना हो तो दोनों का वग मूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनों का घनमूल निकालना चाहिये । यथा—३/७ का वग होता है ६/४६ मल हुआ । इस तरह से ३/७ का घन २७/३४३ और मूल ३/७ हुआ है ॥२७॥

छेद गुण गुण छेद वर्ग मूल पद कृतिम् ।

ऋण स्व स्वमृण कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८

अथ स्वाशाधिको न तु लवाढयो नो हरो हर ।

अशस्त्वविकृस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२९

उद्दिष्टराशि राक्षुण्णोहृतोऽश रहितो युत ।

इष्टघनष्टमेत्रेण भवत राशि तु सक्रम ॥३०

योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धतो राशीरितीरितम् ।

राश्यंतरहृत वर्गांतर योगस्ततश्च तौ ॥३१

गजघर्नाष्टकृतिव्येका दलिता चैष्टभाजिता ।

एकोऽस्य वर्गो दलित संको राशि परो मत ॥३२

द्विगुणेष्टहृत रूप सेष्ट प्रागरूपक परम् ।

वगसोगातरे व्येके राशयोवर्गो स्त एतयो ॥३३

इष्टवगकृतिश्चेष्टघनोऽष्टौ च सकक ।

आद्य स्वातामुभे व्येके गणितेऽव्यक्त एव च ॥३४

विलोम विधि से राशि का ज्ञान प्राप्त करनेके लिए दृश्य-म हर को गणक गणक को हर वग को मल मूल को वग ऋण को घन और घन को ऋण बना कर अंत में उल्टी क्रिया करने पर राशि की इष्ट सधया सिद्ध होती है । यह विवेचना होती है कि जहां पर अपना अंश जोड़ा गया हो वहां पर हर को अंश में जोड़ कर हर की कल्पना करे तथा जहाँ अपना अंश घटाया गया हो वहाँ हर में अंश को घटा

कर हर की कल्पना करनी चाहिए और अश जैसा का तैमा ही रहना चाहिए । फिर दृश्य राशि में विमोम क्रिया उक्त रीति से करे तो राशि सिद्ध हुआ करती है ॥२८॥२९॥ अभीष्ट सख्या जानने के लिये इष्ट राशि की कल्पना कर लेनी चाहिए । फिर जो प्रश्न करने वाले का लघन है । उसी के अनुसार उस राशि का गुणा करे अथवा भाग देवे । कोई अश घटाने या जोड़ने को कहा गया हो तो उसको घटा देवे तथा जोड़ देवे । तात्पर्य यह है कि प्रश्न में जा भी क्रियाएँ बनायी गयी हों वे सब इष्ट राशि में करके फिर जो राशि निष्पन्न होवे उसमें कल्पित इष्ट गणित इष्ट में भाग देवे । उसमें जो भी लब्धि हो वही इष्ट राशि होती है ॥३०॥ सक्रमण - गणित में यदि दो सख्याओं के योग और अन्तर का ज्ञान हो गया है तो भाग को दो स्थानों पर लिखे और एक जगह अन्तर को जोड़ कर उसका आधा करे तो एक सख्या का ज्ञान होगा और दूसरी जगह अन्तर को घटा कर आधा करे तो दूसरी सख्या ज्ञान होगी । इन रीति से दानो सख्यायें ज्ञात होजाया करती हैं । वर्ग के सक्रमण में यदि दो सख्याओं का वर्गों तर तथा अंतर का ज्ञान हो तो वर्गान्तर में अन्तर से भाग देन पर जो लब्धि आती है वही उनका योग है । योग का ज्ञान होने पर पुन पुन में कथित रीति से दानो सख्याओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥३१॥ वर्ग वर्म गणित में इष्ट का वर्ग करके उसको आठ से गुणा करे फिर उसमें से एक घटा कर और उसका आधा करे । इसके उपरान्त उसमें इष्ट से भाग देवे तो एक राशि ज्ञात होजायगी फिर उसका आधा करे और उसमें एक जोड़ देवे तो दूसरी सख्या ज्ञात होगी ॥३२॥ या कोई इष्ट की कल्पना करके उसको फिर द्विगुणित इष्ट में एक से भाग देकर लब्धि जो आवे उसमें इष्ट को जोड़ देवे प्रथम सख्या होगी तथा दूसरी सख्या १ होगी । यहाँ नो सख्याये वे ही होगी जिनके वर्गों के योग और अन्तर में एक के घटा देने पर

भी वर्णाङ्क ही जेव रहा करता है ॥३३॥ तिसी दृष्ट के वर्ग का वर्ग तथा पृषक् उसी का घन करने दोनो को अलग २ आठ स गुणा करे । फिर प्रथम मे एव जोड़ देवे तो दानो गणायें ज्ञात होजायेंगी । यह विधि वरक्त-अवरक्त दोनो गणितो में उपयुक्त है ॥३४॥

गुणघ्न मूलोनयुते सगुणाढं वृते पदम् ।

दृष्टस्य च गुणाढोनयुत वर्गोऽन्य गुण ॥३५

यदा लवीनयुग्राशि दृश्य भागोनयुग्मुवा ।

भवन तथा मूलगुण ताभ्या साध्योऽय व्यक्तवत् ॥३६

प्रमाणेच्छे सजातीय आद्यन्ते मध्यग पलम् ।

इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्ट फल व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७

पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्य पक्ष कृत्वा फलच्छिदाम् ।

बहुराशिवधे भवतेफल स्वल्पवधेन च ॥३८

इष्टकर्मविधेर्मूलच्युत मिथ्यात्कलान्तरम् ।

मानघ्नकालश्चातीतकालघ्नफल सहता ॥३९

स्वयोगभक्ता मिथ्यघ्ना लम्प्रयुक्तदलानि च ॥४०

बहुराशिलाफात् स्वल्परशिमासफल बहु ।

चेद्राशिजफल मामफलाहतिहृत चय ।

क्षेपरमिथ्यता क्षेपयोगभक्ता फलानि च ॥४१

भजेच्छिदहोऽशस्तमिथ्य रूप कालश्च पूर्तिवृत् ।

गुणो गच्छेऽसमे व्येके समे वर्गोऽद्विते-तत ॥४२

यद् गच्छान्त फला व्यस्त गुण वर्ग भव हि तत् ।

व्येक व्येकगुणाप्त च प्राग्घ्न मान गुणात्तरे ॥४३

गुणक्रम अपने इष्टाङ्क गुणित मूल से कम या युक्त होकर यदि कोई शक्या दृश्य हुई हो तो मूल गुणक के आधे का वग दृश्य सख्या से जोड़कर मूल लेना चाहिये । उसमे क्रम से मूल गुणक के आधा जोड़ना तथा घटाना चाहिये यदि राशि मूलसे ऊन या मूल से युक्त होकर फिर

अपने किसी भाग से भी कम या युत होकर दृश्य होती होवे तो उस भाग को १ में ऊन या युत करके और यदि भाग ऊन हुआ होवे तो घटा करके और यदि युत हुआ होवे तो जोड़ करके उमके द्वारा अलग-अलग दृश्य और मूल गुणकर्म भाग देना चाहिये और फिर इम नवीन दृश्य तथा मूल गुणकर्म से पूर्व की ही भाँति राशि का साधन करे ॥३५॥३६॥

त्रैराशिक में प्रमाण और इच्छा ये दोनों समान जाति के होते हैं । इनको आदि-अन्त में रखना चाहिए । फल भिन्न जाति का है अतएव उमको बीच में स्थापित करे । फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण के द्वारा भाग देने में लब्धि ही इष्ट फल हुआ करती है । यह क्रम त्रैराशिक का वर्णित किया गया है । जहाँ व्यस्त त्रैराशिक होता है वहाँ पर इसके विपरीत क्रिया की जानी चाहिये । तात्पर्य यह है कि प्रमाण फल को प्रमाण से गुणा करके इच्छा से भाग देने पर लब्धि ही हुआ करती है । प्रमाण, प्रमाण फल और इच्छा—इन तीन राशियों का जानकर इच्छा फल की जानने की क्रिया का ही नाम त्रैराशिक है ॥३७॥ इसी प्रकार से पंच-राशिक—सप्तराशिक—नवराशिक—एकादश राशिक आदि में फल तथा हरो को परस्पर पक्ष में परिवर्तित करके अर्थात् प्रमाण पक्ष वाम को इच्छा पक्ष में और इच्छा पक्ष दाहिने को प्रमाण में रखकर अधिकराशियों के घातमें अ-व राशियों के घातसे भाग देने पर जो भी लब्धि आवेवही इच्छाफल है ॥३८॥ मिश्रघन की इष्ट मान कर इष्ट कर्म से मूलघन का ज्ञान प्राप्त कर, उसको मिश्रघन में घटानेसे कालांतर(मूढ)ममजना चाहिए । अपने २ प्रमाण घन से अपने अपने काल को गुणा करना उसमें अपने अपने व्यतीत काल और फल के घात से भाग देना, लब्धि को पृथक रहने देना, उन सब में उन्ही के योग का पृथक २ भाग देना तथा सबको मिश्रघन से गुणा कर देना चाहिये । फिर क्रम से प्रयुक्त व्यापार में लगाये हुए घन खण्ड के प्रमाण ज्ञात होते हैं ॥ ३९ ॥ पञ्चराशिक आदि में फल और हर को अन्योन्य पक्ष नयन करन से इच्छा पक्ष

मे फल के चले जाने से इच्छा पक्ष बहुराशि और प्रमाण पक्ष स्वल्प राशि माना गया है । इसी गणित के उदाहरण में जब इच्छा फल जानकर मूलघन जानना होगा तो फलों को परस्पर पक्ष में परिवर्तन करने से प्रमाण पक्ष (स्वल्प राशि) का फल ये बहुराशि (इच्छापक्ष) से अधिक होगा । यहाँ राशिज फल को इष्टमास और प्रमाण फल के गुणन से भाग देने पर मूल घन होता है ॥४०॥ प्रक्षेप (पूँजी के टुकड़े) को पृथक २ मिथ्य घन से गुणा करना और उसमें प्रक्षेप के योग से भाग देना चाहिये । इससे अनय २ फल ज्ञात होते हैं । वापी आदि पूरण के प्रश्न में—अपने-अपने अंशों से हर में भाग देना फिर उन सबके योग से १ म भाग देने पर वापी के भरने के समय का ज्ञान होता है । द्विगुण चयादि वृद्धि में फल का साधन—अर्थात् जहाँ पर द्विगुण त्रिगुण आदि त्रय हो वहाँ पर यदि विषम सख्या ३, ५, ७ आदि हों तो उसमें से १ घटाकर गुणक लिखना चाहिये इस रीति से एक घटाने में और आधा करने में भी त्रिगुण समय में विषमाद्गु हा तत्र गुणक चिह्न और जिस समय में समाक होवे तो वष का चिह्न करना चाहिये इस प्रकार से जब तक पद की सख्या समाप्त न होवे तब तक करते ही रहना चाहिये । फिर अंतिम चिह्न से उलटा गुणन और वर्ग फल साधन करके आदि में रहने वाले चिह्न तक जो फल हो उसमें १ घटा करके शेष में एकोन गुणक से भाग देना चाहिए । लब्धि को आदि अंक से गुणा करने पर सर्वघन होता है ॥४१-४३॥

१ भुजकोटिकृतेयौगमूल कर्णश्च दोभवेत् ।

श्रुतिकोटिकृतेनत पदं दो वर्णवर्गयो ॥४४

विवराद् यत्पद कोटि क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके ।

राशयोरन्तर वर्गेण द्विघ्ने धाते ध्रुते तयो ॥४५

वर्गयागोऽथ योगान्नहंतिवर्गान्तर भवेत् ।

व्यास आकृतिमक्षुण्णोऽद्रघात स्यात्परिधिमुंने ॥४६ . .

ज्याव्यास योगविवराहतमूलोनितोर्द्धित ।

व्यास शर शरोनाच्च व्यासच्छरगुणात्पदम् ॥४७

दिघ्न जीवाय जीवाद्द्वर्गं शरहृते युते ।

व्यासो वृत्ते भवेदेव प्रोक्त गणित कोविदे ॥४८

क्षेत्र व्यवहार का प्रकरण बनलाया जाता है— भुज और कोटि के वर्ग योग का मूल वर्ण हुआ करता है । भुज और वर्ण के वर्गान्तर का मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं वर्ण के वर्गान्तर का मूल भुज होता है—ये बातें त्रिभुज अथवा चतुर्भुज के क्षेत्र के लिये बनलायी गयी हैं । अथवा राशि के अन्तर वर्ग में उन्हीं दोनों राशियों का द्वि-गुणित घात (गुणन फल) जोड़ दिया जाय तो वर्ग योग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियों के योगान्तर का घात वर्गान्तर होता है । १। ४४, ४५ ॥ ह मुने । व्यास को दार्ढ्य से गुणा करना तथा सात से भाग देना चाहिए । इससे स्थूल परिधि का ज्ञान हुआ करता है । ४६। ज्या (जीवा) और व्यास का योग एक जगह पर ही रखना चाहिए । और अन्तर को दूसरी जगह पर रखना चाहिये । फिर इन दोनों का गुणा करे । उस गुणन का मूल ग्रहण करना और उसको व्यास में घटा देना चाहिए । फिर उसका आधा करे वही 'शर' होगा । व्यास में शर को घटाना चाहिए । अन्तर को शर से गुणा करे, उसका मूल लेकर उसे दूना करना चाहिए । उस समय में 'जीवा' हो जायगी । जीवा का आधा करके उसका वर्ण करे, शर से भाग देवे और लघि में शर को जोड़ देना चाहिए तब व्यास का मान होगा ॥४७, ४८॥

वापोनिघ्न परिधि प्रागाद्या परिधे वृत्ते ।

सुर्याग्निं शरघ्ने नाद्योनेनाद्य चतुर्गुणम् ॥४९

व्यासघ्न प्रभत्रेद्विप्र ज्यका सजायने स्पृष्टा ।

जगद्घ्नीपुत्रो वृत्तवर्गोर्द्धिघ्न व्यासाद्यमीविहत् ॥५०

मध्यांशुस वर्गोद्घ्न वेदार्धान्पतिने धनु ।

स्थूल मध्याण्वन्नवेधो वृत्ताङ्काशेष भागिव' ॥५१
 वृत्ताङ्काश कृतिवैधनिष्नी घनकरा मितौ ।
 वारिव्यासहतं दैर्घ्यं वेधागुल हत पून ॥५२
 खखेन्दुरामविहत मान द्रोणादिवारिण ।
 विस्तारायाम वेधानामगुल्योऽन्योन्य ताडिता । ५३
 रसाङ्काभ्रद्विभिर्भक्ता घान्ये द्रोणादिका मिति ।
 उत्सेदव्यास दैर्घ्याणामगुलान्यश्मनो द्विज ॥५४
 मिथोघ्नानिभजेत्खलेशैर्द्रोणादि मिति भवेत् ।

विस्ताराद्यगुलान्येव मिथोघ्नान्ययसा भवेत् ॥५५ ।

परिधि से चाप को घटाकर शेष में चाप से ही गुणा करने से गुणन फल प्रथम कहा जाता है। परिधि का बग बनाना, उस चतुर्धं भाग ग्रहण करना, उसको पाँच से गुणा करके उसमें प्रथम घटा देना चाहिए, यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यास को प्रथम गुणा कर देना, यह भाज्य हुआ। भाज्य में भाजक से भाग देना—जीवा हो जाती है। व्यास को चार से गुणा करके उसमें जीवा जोड़ देने से यह भाजक होता है। परिधि के वर्ग को जीवा के चतुर्भाग को पाँच से गुणा करने पर यह भाज्य होता है। फिर भाज्य भाजक में भाग देने पर जो लब्धि आवे उसे परिधि वर्ग के चतुर्धांश घटा देवे और शेष का मूल ग्रहण करे उसे वृत्त (परिधि) के आधे घटा देने पर घनु (चाप) होता है ॥ ४६, ५० ॥ अब अन्नादि राशि का व्यवहार बतलाया जाता है—राशि के व्यवहार में अन्नराशियों स्थूल, मध्यम और सूक्ष्म को क्रमशः उनकी परिधि का नवमास, दशमास और एकादशमास वेध होता है। परिधि का पष्ठाश ग्रहण क उसका बग करना तथा उसका वेध से गुणा करना चाहिए। इसका नाम “घनहस्त” होता है। जल के व्यास (चौड़ाई) से लम्बाई को गुणा करना। फिर उसी को गहराई के अगुल मान से गुणा करना ए

३१०० से भाग देना चाहिए । इस तरह स जल का द्रोणात्मक मान ज्ञात हो जाता है । चौड़ाई-गहराई और लम्बाई के अगुलात्मक मान को परस्पर से गुणा करना और उसमें ४०६६ से भाग देवे तो अन्न का द्रोण आदि मान हो जायगा । ऊँचाई-चौड़ाई और लम्बाई का मान को जो अगुलात्मक हो परस्पर से गुणा करना और ११५० से भाग देवे तो पत्थर का द्रोण स्वरूप मान हो जाता है । विस्तार आदि अगुलात्मक मान को परस्पर से गुणा करना चाहिए तथा ५८२ से भाग देना चाहिए तो जो लब्धि हो वह लोहे के द्रोणात्मक मानकी सूचना द्या करती है ॥ ५१-५५ ॥

वाजेभमार्गैर्लब्ध द्रोणाद्य मानमादिशेत् ।

दीप शकुतलच्छिद्रघ्न शकुभी भवेत् मुनि ॥५६

नरोनदोपकशिखीच्यभक्तो ह्यथ भोदधृते ।

शङ्खो नृदीपाघशिखीघ्ने दोपीच्य नराम्बिते ॥५७

विशकुदीपीच्य गुणा छाया शकूद्घृता भवेत् ।

दीप शकवन्तर चायच्छायाप्रविवरघ्नभा ॥५८

मानान्तरहृता भूमि स्यादयो भूनराहृति ।

प्रभासा जायते दीपशिखी च्य स्मात् शिराशिकात् ॥५९

एतन् सक्षेपत प्राञ्चन गणिते प रवर्मकम् ।

ग्रहमध्यादिक यदये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०

युगमान स्मृत विप्र खचतुष्टकरदाणवा ।

तद्दशाभास्तु चत्वार वृत्ताख्य पदमुच्यते ॥६१

त्रयस्त्रेता द्वापरो द्वी कतिरेव प्रकीर्तित ।

मनु वृतादर संहिता युगानामेव सप्तति ॥६२

विधेदिने स्यु विघ्नेन्द्र ननवस्तु चतुर्दश ।

सायस्येव निजातस्य विघ्नेन्द्र परिकीर्तित ॥६३

छाया माघा मे प्रदीप और शकुन्तल का आ भी अन्तर हो

उससे शत्रु को गुणा करना चाहिये और दीपक की ऊँचाई में शत्रु को घटाकर उससे उस गुणित शत्रु में भाग देने पर छाया का मान हो जाता है। शत्रु और दीपक तल के अन्तर से शत्रु को गुणा करना और छाया से भाग देकर फिर उस लब्धि में शत्रु को जोड़ देने से दीपक की ऊँचाई हो जाया करती है। शत्रु रहित दीपक की ऊँचाई से छाया को गुणा करके शत्रु से भाग देवे तो शत्रु तथा द्रोण का अन्तर ज्ञात हो जाता है। छायाण के अन्तर से छाया को गुणा करे और छाया के प्रमाणान्तर से भाग देवे तो 'भू' हो जायगी। भू और शत्रु का गुणा (घात) करे और छाया से भाग देवे तो दीपक की ऊँचाई होगी। ऊपर में बताया हुई इन सभी बातों का - ज्ञान त्रैशिक से ही होता है। यह परिकर्म गणित मैंने अति संक्षेप में बतला दिया है। अब गृह का जो मध्यादिक गणित होता है उसे मैं बतलाता हूँ वह भी संक्षेप में ही होगा अधिक विस्तार में नहीं बतलाया जायगा ॥ ५६—६० ॥ हे विप्रवर ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का मिला हुआ मान खेतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। इसके दशांश में चार से गुणा कर देने पर सत्ययुग नामक पाद होगा। जिसका मान १७ लाख अठ्ठाईस हजार वर्ष होता है। दशांश में तीन का गुणा करने पर १२६६००० वर्ष त्रेता नामक पाद होता है। दशांश में दो का गुणा करने पर ८६४००० वर्ष द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांश को एक गुणा ही रखने पर ४३२००० वर्ष कलियुग नामक पाद कहा जाता है। कृताब्द सहित (एक सत्ययुग अधिक) इन्हत्तर चारों युगों की चौकड़ी का एक मन्वन्तर हुआ करता है। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु हो जाया करते हैं और उतन ही मन्वन्तर उनकी एक रात में समाप्त हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि ब्रह्माजी के एक दिन और एक रात में अठ्ठाईस मन्वन्तर समाप्त हो जाया करते हैं ॥ ६३ ॥

स्वयम्भुव. सृष्टिगतानब्दा.सपिण्ड्य नारद ।
 खचरानयन कार्यमथवेष्टयुगादित. ॥६४
 युगे सूर्यज्ञ शुक्राणा खचतुष्कदारणा ।
 कुजाकिगुरु शीघ्राणा भगणा पूर्वयायिनाम् ॥६५
 इन्दो रसग्निविश्रीपुसप्त भूधरमार्गणा. ।
 दम्भ्यष्टरसाङ्काक्षि लोचनानि कुजस्य तु ॥६६
 बुधशीघ्रस्य शून्यतुंखाद्रिभ्यङ्कनगेन्दव. ।
 बृहस्पते खदस्त्राक्षिवेदपङ् वटवयस्तथा ॥६७
 सितशीघ्रस्य पटसप्तयियमाश्रिखभूधरा ।
 शोभुंजङ्गपट्पचरसर्वनिशाकरा ॥६८
 चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्रिवसुसर्पाणा युगे ।
 वाम पातस्य वस्वग्निपमाश्रिशिखिदस्रका ॥६९

हे नारद । ब्रह्मात्री के वर्तमान कल्प में जितने वर्ष व्यतीत हो गये हैं उन सबको एकत्रित करके ग्रहानयन अर्थात् ग्रह साधन करना चाहिए अथवा इष्ट युगादि में ग्रह साधन करे ॥ ६४ ॥ एक युग में पूर्व दिशा की ओर चलते हुए सूर्य, बुध और शुक्र इन तीनों ग्रहों के ४३२०००० भ्रमण हुआ करते हैं तथा मङ्गल, शनि और बृहस्पति के शीघ्रोच्च भ्रमण भी उतने ही हुआ करते हैं ॥ ६५ ॥ एक युग में चन्द्र के भ्रमण ५७७५३३३६ होते हैं । शीघ्र के २२६६८३२, बुध के शीघ्रोच्च के १७६३७०६०, बृहस्पति के ३६४२२०, शुक्र के शीघ्रोच्च के ७०२२३७६, शनि के १४६५६८ तथा चन्द्रमा के उच्च के भ्रमण ४८८२०३ होते हैं । चन्द्रमा के पात की व मगति सम्बन्धी भ्रमणों की संख्या २३२२३८ है ॥ ६६-६६ ॥

उदयादुदव भानोभूमिसावन वासरा ।
 वसुवृषष्टाद्रिरूपाङ्कसप्तद्रितिययो युगे ॥७०
 पङ्कवहिवत्रिहताशाङ्कतिययश्चाधिमासका ।

तिथिक्षया यमार्याशिवद्वघष्ट व्योम शराशिवन ॥७१

खचतुप्समुद्राष्टकुपञ्च रविमासका ।

पट् म्नित्रयवेदाग्निपञ्च शुभ्रागुमासका ॥७२

प्राग्गते सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्वय ।

कौजस्य वेदखयमा वीघस्याष्टतुं वह्वय ॥७३

खखरन्घ्राणि जंवस्य शौकस्यायं गुणप व ।

गोऽग्नय शनिमन्दस्य पातानामथ वायत ॥७४

मनुदस्त्रास्तु कौजस्य वीघस्याष्टाष्ट सागरा ।

वृताद्रि चन्द्रा जंवस्य शौकस्याग्निखनन्दना ॥७५

गुण के एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त जो भी दिन का मान होता है उसे भीम वासर अथवा सावन वासर कहा जाता है । वे एक महायुग (चतुर्मुंज) में १५७७६१७८२८ होते हैं । चान्द्र दिवस १६०३००००८० होते हैं । अधिमास १५६३३३६ होते हैं । तिथिधप २५०८२२५२ होत हैं । रविमासो की मख्या ५१८४०००० है । चान्द्र मास ५३४३३३६ हैं । पूर्वामिमुख गति के क्रम से एक कल्प में सूर्य के मन्दोच्च भगण ३८७—मङ्गल के मन्दोच्च भगण २०४—बुध के मन्दोच्च ३६८—गुरु के मन्दोच्च ६००—शुक्र के मन्दोच्च ५६५ और शनि के मन्दोच्च भगण ३६ होते हैं । अब मङ्गल प्रभृति ग्रहों के पातों की त्रिलोभगति (पश्चिम में गमन) के अनुरूप, एक कल्प में होने वाले भगणों का वणन किया जाता है । भीमपात के भगण २१४, बुधपात के भगण ४८८ गुरुपात के भगण १७४, शुक्रपात के भगण ६०३ तथा शनिपात के भगण ६६२ है ॥७०—७५॥

शनिपातस्य भगणा कल्पे यनरसर्त व ।

वर्तमान युगेयाना वत्सरा भगणाभिघा ॥७६

मासीवृत्तायुता मासमधुनुक्लादिभिर्गते ।

पृथक् स्यास्त्रेऽधिमासघ्ना सूर्यमास विभाजिता ॥७७

लब्धोधिमासकं युंक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता ।

द्विष्टास्तिथिक्षयभ्यस्ताश्चाद्द्रवासर भाजिता ॥७८
 तन्धोनरात्रि रहिता लङ्कायामाद रात्रिक ।
 सावनोद्युगण सूर्याद् दिनमासाब्दपास्तत ॥७९
 समभि धायित शप सूर्याद्यो वासरेश्वर ।
 मासाब्द दिन सद्युगपत द्वित्रिघ्न रूपसमुत्तम् ॥८०
 सप्तोद्घृतावशपी ती विज्ञयी मासवपपी ।
 ग्रह्म्य भगणाभ्यस्त्वो दिन रात्रि कुवासर ॥८१
 विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्र हो भवत् ।
 एव स्वशीघ्रमदाच्चा य प्रोक्ता पूर्वमायिन ॥८२
 विलोमगतय पातास्तद्वच्चकाद् विशाधिता ।
 योजनानि शताम्पष्टी भूवर्णो द्विगुणानि तु ॥८३
 तद्वगतो दशगुणात्पद भूपरिधिभवेत् ।
 लम्बज्यघ्नस्त्रिजिवाप्त स्फुटो भूपरिधि स्वतः ॥८४

वक्त मान युग विख्यात् जित युग मे जिन समय न अहर्गण या
 युगानि काल मे अब तत्र त्रितने वष क्वनीन हो खुवे हैं धे मूय के
 भगण होते हैं । भगण की बारह से गुणा करके मास बना लेने
 चाहिए । उसमे वर्तमान वर्ष के चतुर्दश प्रतिपदा से लेकर
 वर्तमान मास तक त्रितने भी मास क्वनीत हुए हो उन गवकी
 ग० की जोत्तर योग पत्र के दो स्थानो पर रघ और दूमरे
 स्थान मे रक्ते हुए मास गण की उपमुक्त अग्रिमार्गों की जा भी
 मंडरा हा उसमे गुणा करके गुणन पत्र मे युग के मूय मास की
 गणना मे भाग देना चाहिए । फिर जो भी लघि हो उन अग्रिममे की
 गणना मान लवे और उगकी प्रथम स्थान मे स्थित मास क रण मे
 जोड़ देना चाहिए । यह योग पत्र बाने हुए बाद मास का गणना का
 मूयक हुआ करता है । उस गणना का फिर तीस से गुणा कर । यह

गुणन फल तिथियो की सख्या का सूचक हुआ करता है। इसमें वर्तमान मास की शुक्ल प्रतिपदा से दृष्ट तिथि तक की सख्या को जोड़ देवे। इस जोड़ के दे देने पर चान्द्र दिन की सख्या ज्ञात होती है। इसको भी दो स्थानों पर रखे। दूसरे स्थान में स्थित सख्या को युग के लिये कथित तिथि क्षय की सख्या से गुणा करना चाहिए। गुणन फल जो हो उसमें युग की चान्द्र दिन अर्थात् तिथि सख्या के द्वारा भाग देवे। जो भी लब्धि हो वही तिथि क्षय की सख्या है। उसको प्रथम स्थान में स्थित चांद्र दिन सख्या में से घटा देवे तो अभीष्ट दिन का लब्धार्थ रात्रिकालिक सावन दिन गण (अहगण) होता है। इससे दिवस पति मास पति तथा वष पति का ज्ञान प्राप्त करे ॥ ७६-७७ ॥ जिस प्रकार से दिन गण में ७ से भाग देने पर बचे हुए १ आदि सख्या के अनुसार रवि आदि चारों के पतियों को समझना चाहिए तथा दिन गण में ३० से भाग देने पर लब्धि को २ से गुणा करके गुणन-फल में १ जोड़ देना चाहिये। इसके पश्चात् उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होने पर रवि आदि मास पति समझ लेवे। इसी प्रकार से दिनगण में ३६० से भाग देकर लब्धि को ३ से गुणा करे और गुणन फल में १ जोड़ देवे फिर उसमें ७ से भाग देने पर १ आदि शेष सख्या के अनुसार रवि आदि वर्तमान वर्ष पति होते हैं। ८० ॥ अब मध्यम ग्रह ज्ञान के विषय में बतलाया जाता है—युग के वास्ते वर्णित भगण की जो सख्या हो उससे दिनगण का गुणा करे। गुणन फल में वृष की कुदिन (सावन दिन) सख्या से भाग दिये जाने पर भगणादि ग्रह सकाध रात्रिकालिक होता है। इसी रीति से पूर्वाभिमुख गति वाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च बताये गये हैं उनका भगण के द्वारा उनका भी साधन होता है ॥ ८१, ८२ ॥ द्वितीय (पञ्चमाभिमुख) गति वाले जो ग्रहों के पात भगण कहे गये हैं उनके द्वारा इसी रीति से पात सिद्ध हो उनके बारहों राशियों में

घटा देने से शेष को मेघादि क्रम से राश्यादि पात समझना चाहिये
 थव भूपरिधि मान बनलाया जाता है—पृथिवी का व्यास १६००
 योजन है। इसमें वर्ग को १० से गुणा करके गुणन फल का मूल
 भूमध्य परिधि हुआ करता है अर्थात् वर्ग मूल की जो सख्या ही
 उतने योजन की पृथिवी की परिधि जाननी चाहिये। इस भूमध्य
 परिधि की सख्या को अपने-अपने सम्वाण ज्या से गुणा करके उसमें
 त्रिज्या (३४३८) से भाग देवे फिर जो लब्धि हो वह स्पष्ट भू
 परिधि की योजन सख्या होनी है ॥ ८३-८४ ॥

तेन देगान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्ति विभाजिता ।
 कलादि तत्फल प्राच्या ग्रहेभ्यः परिशोधयेत् ॥८५॥
 रेखा प्रतीची मस्याने प्रक्षिपेत्स्तु स्वदेशजा ।
 राक्षसालयदेवीकः शैलयोर्मध्य सूचगा ॥८६॥
 अवन्तिवारोहितक यथा सन्निहित सर ।
 वारप्रवृत्ति प्राग्देशे क्षपाद्धोऽभ्यधिके भवेत् ॥८७॥
 तद्देशान्तर नादीभिः पश्चाद्गुणे विनिदिशेत् ।
 इष्टनाडी गुणा भुक्तिः पष्टधा मक्ता कलादिकम् ॥८८॥
 गते शोधय तथा याज्य यम्ये तात्कालिको ग्रह ।
 भवकलिप्रशोत्यश परम दक्षिणोत्तरम् ॥८९॥
 विदिप्यते स्वपातेन स्वकान्त्यन्तादनुष्णगु ।
 तन्नवाश द्विगुणित जीवस्त्रिगुणित वृज ॥९०॥

भव पक्षों में देशान्तर राक्षार बतनाया जाता है—ग्रह की
 कलादि मध्य गति की देशान्तर योजन अर्थात् रेखा देग से जितने योजन
 पूर्व अथवा पश्चिम अपना स्थान हा उतने गुणा करे। जो गुणनफल हो
 उसमें "स्पष्ट परिधि योजन" के द्वारा भाग दिये जान पर जो भी लब्धि
 हो वह कला भादि हैं। उक्त लब्धि की रेखा में पूर्व देश में पूर्व साधित
 पक्ष में घटा देने में और पश्चिम देश में जोड़ देने में स्वस्थानीय अर्थ

रात्रि कालिक यह होता है ॥२१॥ देखादेख—शंभुजी मुझे पर्यन्त पर्यन्त
 पापयोग देखा मे त्रां-त्रो देन (वचन) है के देखा देन कहनाते है अने-
 उचरिनी शोहर, कुशोच आदि ॥२१॥ मार प्रकृत-शुभच देखा मे कुर्ब
 देन मे देखा देलोच मान रात्रि मे देनाकर पटी मृत्यु पीछ और देखा मे
 पवित्र देन मे मर रात्रि देनाकर पटी मृत्यु कुर्ब ही बार प्रकृत (रात्रि
 आदि का) का प्रकृत) होती है ॥२१॥ इतराण मे मारम यह जानने को
 दि'उ—मन्वरात्रि मे शिवनी परो परवान यह बनाना अभीष्ट हो तो उच
 मरना मे यह को कलादि रात्रि को मुना करके उगरे मुनापण मे ६०
 मे भाग देकर म' ॥ मृत्यु कलादि पण को कुर्ब मे माघिण दि'उ यह
 म त्रां देन मे तथा शिवनी परो मान रात्रि मे कुर्ब यह बनाना हो तो

है ॥२१६०॥

बुध दुर्कारं जां पातं, विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ।
 रात्रि लिप्शाष्टमो भागः प्रथमं ज्याढं मुख्यमे ॥२१॥
 तत्तद्विभक्तसंज्ञानमिधित तद् द्वितीयकम् ।
 आद्यं नैव क्रमादिपण्डान् भक्त्या लब्धो न समुताः ॥२२॥
 श्रद्धया स्यु चतुर्विंशज्याढं पिण्डाः क्रमादमी ।
 परमाणुक्रमया तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दव ॥२३॥
 तद्गुणा उवा त्रिजीवाप्ता तच्चाप क्रान्तिरुच्यते ।
 यह सशोध्य मन्दोच्चतथा शीघ्राद्विशोध्य च ॥२४॥

शेष केन्द्रपद नस्माद् भुजज्या कोटिरेव च ।
 गताद् भुजज्याविषमे गम्याकोटि पदे भवेत् ॥६५
 युग्मे तु गम्याद्वाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत् ।
 लितास्तत्वमर्भक्ता लब्ध ज्यापिण्डक गतम् ॥६६
 गतगम्यान्तराभ्यस्त विभजेत्तत्त्वलोचनै ।
 तदवाप्तफल योज्य ज्यापिण्डे गतसर्जके ॥६७
 स्यात्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृत ।
 ज्या प्रोह्य शेष तत्वाश्रिहता तद्विधरोद्घृतम् ॥६८

अब अभीष्ट जीवा साधन के लिये उपयोगी २४ जीवा साधन होने जाते हैं—राशि बना १८०० का अष्टम भाग (२२५ बला) प्रथम जीवार्धं हुआ करता है । उसमें प्रथम जीवार्धं में भाग लेकर लघि को प्रथम जीवार्धं में ही घटाकर शेष को प्रथम जीवार्धं में ही जोड़ देने में द्वितीय जीवार्धं होता है । इसी रीति से प्रथम जीवा में ही द्वितीय जीवा में भाग देकर जो लघि हो उसको द्वितीय खण्ड में घटाकर शेष को द्वितीय जीवार्धं में जोड़ देने से तृतीय जीवार्धं होता है । ऐसे ही आगे भी क्रिया करते जाने से क्रमशः २४ जीवार्धं, सिद्ध हुआ करते हैं । ६१।६२। इस प्रकार से मूल्य की परम क्रान्ति ज्या १३६७ होती है । इस परम क्रान्ति ज्या में ग्रह की ज्या अर्थात् भुजज्या को गुणा करके त्रिज्या के द्वारा भाग देने से 'इष्ट-या त्रिज्या' होनी है । उसका चाप बनाने से 'इष्ट क्रान्ति (मध्यमा) कहलामा करती है ॥ ६३ ॥ अब भुजज्या और कोटिज्या बनाने की रीतिपर प्रकाश डाला जाता है—ग्रहों का अपने २ महोच्च में घटाने से शेष उस ग्रह का 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्च में घटा देने से शेष उस ग्रह का 'शीघ्रकेन्द्र' कहा जाता है । उस राश्यादि केन्द्र की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिए । विषय अर्थात् १ २ पद में 'गत' चापकी भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा

'कोटिज्या' होती है । ६४।६५। इष्टज्या की साधन विधि बतलाई जाती है—जितने राश्यादि चापकी जीवाचना हो तो उसकी कला बना लेवे फिर उसमें २२५ से भाग देना चाहिए । जो भी लब्धि हो उतनी सख्या (सिद्ध २४ ज्या पिण्ड में) गन ज्या पिण्ड की सख्या समझे । शेष कला को 'गत ज्या' तथा 'गम्य ज्या' के अंतर से गुणा करके २२५ से भाग देवे और लब्ध कलादि को 'गतज्या' पिण्ड में जोड़ देने से अभीष्ट ज्या' होजाती है । 'उत्क्रम ज्या' भी इसी विधि से भाषा करती है । ६६।६७। अब जीवा से चाप बनाने की विधि बतलायी जाती है— इष्ट जीवा की कलामें सिद्ध जीवा पिण्डों में में जितनी सख्या वाली जीवा घटे उनको घटा देना चाहिए । शेष कला को २२५ से गुणा करके जो गुणफल हो उसमें गत, गम्य जीवा के अंतर से भाग देवे । जो लब्धि कलादि हो उसको घटायी हुई सिद्ध जीवा सख्या में मुचित २२५ में जोड़ देने से इष्ट ज्या का चाप होता है । ६८।

सख्यातत्वाभिसवर्गो संयोज्य धनुरुच्यते ।

रवेमन्द परिध्यशा मनव शीतगो रदा ॥६६

युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तो नितास्तयो ।

युग्मान्तेऽर्धाद्रय खान्निमुरा सूर्या नवार्णवा ॥१००

ओजे द्वयगा वसुयमा रदा रुद्रा गजावधय ।

बुजदीनामत शीघ्र या युग्मान्तेऽर्धाग्निदसका ॥१०१

गुणाग्निच द्रा खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽनय ।

ओजान्ते द्वितियमला द्विविश्वे यमपर्वता ॥१०२

खर्तुदस्र वियद्वेदा शीघ्रकर्मणि कीर्तता ।

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धता ॥१०३

युग्म वृत्त धनर्ण स्वादोजदूनाधिके स्फुटम् ।

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणाण विभाजिते ॥१०४

तद्भुजज्याफलधनुमन्दि लिप्तादिक फलम् ।

शीघ्र्य कोटिफल केन्द्रे मकरादी धन स्मृतम् ॥१०५
 सशोध्य तु तिजीवाया कवर्यादी कोटिज फलम् ।
 तदाहुफवर्गवर्गान्मूल कर्णश्रवलाभिध ॥१०६

रवि और चन्द्र के मन्द परिचयश—सम पद के अन्त में सूर्य के १४ अंश और चन्द्रमा के ३२ अंश मन्द परिधिमान होते हैं । तथा विषम पद के अन्त में २० कला कम अर्थात् सूर्य के १३।४० और चन्द्रमा के ३१।४० मन्द परिचयश है । ३६। मङ्गलादि ग्रहों की मन्द और शीघ्र परिधि—सम पदान्त में मङ्गल के ७५, बुध के ३०, गुरु के ३३, शुक के १२, और शनि के ४६ तथा विषम पदान्त में मङ्गल के ३२ बुध के २८, गुरु के ३२, शुक के ११ और शनि के ४८ मन्द परिचयश हैं । इसी प्रकार समपद के अन्त में मङ्गल के २३५, बुध के १३३, गुरु के ७०, शुक के ३२, और शनि के ३६ तथा विषम पदान्त में मङ्गल के २३२, बुध के १३२, गुरु के ७२, शुक के २६० और शनि के ४० शीघ्र परिचयश बताये गये हैं ॥१००—१०२॥ अभीष्ट स्थान में परिधि स्थान—अभीष्ट स्थान मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रह की भुजग्गा वा विषम समपदान्त परिधि के अन्तर से गुणा करके जो गुणन फल प्राप्त हो उसमें त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो भी अंशादि प्राप्त हो उनको समपदान्त परिधि में जोड़ देने से वा घटा देने से दृष्ट स्थान में स्पष्ट, मन्द वा शीघ्र परिचयश होते हैं । विषम पदान्त में समपदान्त कम हो तो जोड़ देवे और अधिक हो तो घटा देना चाहिए । १०३। भुजफल, कोटिफल, साध्य—इस रीति से स्वाध्याय स्पष्ट परिधिते ग्रह की भुजग्गा और 'कोटिग्गा' को दृश्य २ गुणा करके भषणाश (३६०) से भाग देवे और सन्ध भुजग्गा से भुज फल और कोटिग्गा से कोटि फल होते हैं एवं मन्द परिधि के द्वारा मन्द फल और शीघ्र परिधि के द्वारा शीघ्र फल समझ लेने चाहिए । यहाँ मन्द परिधि सग भुजग्गा के द्वारा जो भी भुज फल प्राप्त हो उसका वाप्य बताते हैं

मन्द कलादि फल होता है । १०४। शीघ्र कर्ण साधन—पूर्वोक्त रीति से शीघ्र परिधि के द्वारा जो भी कोटि फल प्राप्त हो, यदि मकरादि केन्द्र हों तो उसको त्रिज्या (३४३८) में जोड़ देना चाहिए और कर्कादि के ३ हों तो घटा देना चाहिए । जोड़ने पर या घटा देने पर जो फल हो उसके वर्ग में शीघ्र भुजफल के वर्ग को जोड़ देवे फिर उसका मूल ग्रहण करने से शीघ्र कर्ण होता है ॥१०५-१०६॥

त्रिज्याभ्यस्त भुजफला चलकर्ण विभाजितम् ।

लवणस्य चाप विज्ञादिफला शीघ्र्यपिद स्मृतम् ॥१०७

एतदाद्ये कुजादीना चतुर्थं चैव कर्मणि ।

मान्द कर्मकर्मकोन्दो भीमादीनाम योच्यते ॥१०८

शीघ्र्य मान्द पुनर्मान्द शीघ्र्य चत्वार्यनुक्रमत् ।

अजादिकेन्द्रे सवेषा शीघ्र्ये मान्दे च कर्मणि ॥१०९

धन ग्रहाणा विष्टादि तुलादा वृणमेव तत् ।

अव वाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्ति विभाजिता ॥११०

शीघ्र फल साधन—पूर्व कथित विधि से साधित शीघ्र भुजफल को त्रिज्या में गुणा करे और कर्ण के द्वारा भाग देवे । उससे जो भी फलादि लग्न होवे, उससे चाप बनानेमें शीघ्र भुजफल मङ्गल होता है ये शीघ्रफल प्रभृति ग्रहा में प्रथम तथा चतुर्थ कर्म में ससृष्ट (घन या ऋण) किया जाता है । १०७। रवि और चन्द्रमें केवल एक ही मन्द फल का सस्कार (घन या ऋण) किया जाता है । हे मुने । अब मैं मङ्गल आदि ५ ग्रहों के सस्कार का वणन करके बतलाता हूँ । उनमें प्रथम शीघ्र फल का, द्वितीय मन्द फल का, तृतीय भी मन्द फलका और चतुर्थ शीघ्र फलका सस्कार किया जाता है ॥१०८॥ सस्कार की विधि—शीघ्र या मन्द के ३ मेषादि (६ राशि के अन्दर) हो तो शीघ्र फल और मन्द फल जोड़े जाया करते हैं । यदि तुला आदि केन्द्र (६ राशियों से ऊपर) हों तो

घटाये जाया करते हैं। रविभुज फल सस्वार—प्रत्येक ग्रह की गति कला का पृथक पृथक न्य के म दफल कला से गुणा करके उसमें २१६०० के द्वारा भाग देने पर जो कलादि लब्धि हो उसको पूव साधित ज्ञेय कालिक ग्रहों में रविमन्द फल के समान मस्वार करना चाहिए। यदि मन्द फल घन हो तो घन ऋण हो तो ऋण करे। इस से स्पष्ट सूरीय कालिक ग्रह हो जाते हैं। १११०।

भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता वार्या ग्रहेऽनवत् ।

स्वमन्दभक्तिसद्गुढ मध्य भुक्ते निशापत ॥११११

ग्रहभुक्ते फल काय ग्रहव-मन्दकमणि ।

दाज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तस्वनेत्रोद्घृता पुन ॥११२

स्वमन्द परिधिःशुण्णा भगणाशाद्घृता कना ।

कवादी तु घन तत्र मकरादावृण स्मृतम् ॥११३

मन्दस्फुटोदृता भुक्ति प्रोज्वय शीघ्राच्चभुक्ति ।

तच्छेष विचरेणाय हन्यात् त्रिज्यात्स्य वणयो ॥११४

चक्रवर्ण हृत भुक्ती कर्णे त्रिज्याधिरे घनम् ।

ऋणमूनेऽधिके प्रोज्जय शेष वनगतिर्भावत् ॥११५

स्पष्ट ग्रह गति साधनाय गति फल—च द्रमध्य गतिमे चद्रमदोष्ट गति को घटाकर सेतसे अर्थात् च द्र के द्रगतिम तथा अ य ग्रहोकी स्वल्पांतर से अपनी २ गति से ही मन्द स्पष्ट गति साधन में फल का साधन करे। जैसे—उक्त गति अर्थात् च द्र की के द्र गति और अय ग्रहों की गति को दोर्ग्यान्तर अर्थात् मन्वज्या तथा गन ज्या के अंतर से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देने। लब्धि को अपनी अपनी म द परिधि से गुणा करके भगणाश ३६० के द्वारा भाग देना चाहिए और जो कलादि फल की लब्धि हो उसको चर्वादि अर्थात् ३ म ऊपर ६ राशियों के भीतर च द्र हा ला मध्य गति म ज्ञान देने से तथा मकरादि ६ राशि म ऊपर ३ राशि तक च द्र हो तो अपना म मन्द स्पष्ट गति होती है।

पुनः इम मन्द स्पष्ट गति को अपनी शीघ्रोच्च गति में घटा कर शेष को विज्या तथा अन्तिम शीघ्र कर्ण के अन्तर में गुणा करे फिर पूर्व साधित शीघ्र कर्ण के द्वारा भाग देना चाहिए। उससे जो लब्धि कन्नादि हो उसको यदि विज्या से अधिक हो तो मन्द स्पष्ट गति में जोड़ देने और अल्प हो तो घटाने से स्पष्ट गति होती है। यदि साधिता श्रृण गतिफल मन्द स्पष्ट गति से अधिक हो तो उसी श्रृण गतिफल में मन्द स्पष्टगति को घटा देना चाहिए जो भी बचे वह वक्रगति होती है। ऐसी स्थिति में वह ग्रह वक्रगति वाला रहा करता है ॥१११-११५॥

कृततु चन्द्रैः वेदेन्द्रैः शून्यत्रयेकैर्गुणाष्टिभिः ।

शरद्रेषचतुर्थेषु केन्द्राशौभू सुतादयः ॥११६

वक्रिणश्चक्रशुद्धैः तैरशेरुज्जन्ति वक्रताम् ।

क्रान्तिज्या विपुवद्भाष्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ॥११७

त्रिभ्यामुणा दिनव्यासभक्ता चाप चरासव ।

तत्कामुं कदक्क्रान्ती धनहीने पृथक् स्थिते ॥११८

स्वाहोरात्र चतुर्भागे दिनराशिदने स्मृते ।

याम्यक्रान्ती विपयंस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे ॥११९

भभोगोऽष्ट शतीलिप्ताः खाशिवशीलास्तथा तिथेः ।

ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥१२०

रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिता ।

गतगम्याश्च पट्टिच्यो भुक्तयोगाप्तनाडिका ॥१२१

ग्रहों की वक्र केन्द्रांश नखया—यदि मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्र १ केन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांश में, गुरु १२० केन्द्रांश में, शुक १६२ केन्द्रांश में और शनि ११२ केन्द्रांश में हो तो ये सब वक्रगति वाले होते हैं। अपने २ वक्र केन्द्रांश को ३६० में घटा देने से शेष के समान केन्द्रांश होने पर फिर मार्गी होता है ॥११६॥ काल ज्ञान के

विषय में बतलाया जाता है—जब क्रान्ति उदा की फलभा में गुणा करे ओ दुग्धनपत्र हा उसमें १२ से भाग देवे । सन्धि जा होती है वह दुग्ध हुआ करती है । उन दुग्ध को विग्या से गुण करता चाहिए । दुग्ध में फिर भाग देवे । दुग्ध क्रान्ति की श्रेष्ठिग्या बरी जाती है । सन्धि (धरज्या) के चाप बनाने में धरामु प्राप्त हैं । दीर्घ अक्षर के दशवार उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतना समय एक अगु कहा जाता है और ६ अगु (प्राण) का एक पल होता है तथा ६० पल की १ घड़ी होती है । अतएव धरामु में ६ का भाग देन म पल बनाकर ही दिनमान का माघन करना चाहिए । उस धरामु को यदि उत्तर क्रान्ति ही तो १५ घड़ी में जोड़ देने पर दिनार्ध तथा १५ घड़ी में घटा देने पर रात्र्यर्ध हो जाता है । यदि दक्षिण क्रान्ति हो ता हम के विपरीत होता है अर्थात् १५ घड़ी में घटाने म दिनार्ध और १५ घड़ी जोड़ देने पर रात्र्यर्ध हो जाया करता है । दिनार्ध का दूना करने पर पूर्ण दिनमान तथा रात्र्यर्ध का दुगुणित कर देने म रात्रिमन् निवन् आता है ॥११७-११८ ॥ अब पञ्चाङ्ग माघन बान्ताते हैं—८०० कला का एक-एक नक्षत्रका और ७२० कला का एक-एक तिथि का भोग मान हुआ करता है । इतनिय हम समय में यह विग नभय में है—यह ज्ञान प्राप्त करना ही ता रात्र्यादि घट को बसायक बनाकर उगमें भभोग ८०० के द्वारा भाग देन में ओ भी सन्धि हो उगव अनुसार सन्धि का माघन मन् नभय समय में चाहिए । नव बरादि में घट की

जाति कला के योग से भाग देने से गत तथा गम्य घटी हो जाती है ॥१२१॥

अर्कोन चन्द्रातिष्माभ्यस्तिथियो भोगभाजिता ।

गता गम्याश्च पष्टिघ्नो नाड्यो भुक्त्वन्तरोद्धृता ॥१२२

तिथय शुक्ल प्रतिपदो माता द्विघ्ना नगोद्धृता ।

शेष बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गर ॥१२३

वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धं व ।

शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किम्तुघ्न मेव च ॥१२४

शिलानलेऽम्बुमशद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।

तत्र शक्त्वगुर्नैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ॥१२५

तन्मध्ये स्थापयेच्छकु बल्पनाद्वादशागुलम् ।

तच्छायाम् स्पृशेद्यत्र वृत्तो पूर्वापराद्धं यो ॥१२६

तत्र विन्दु विधागोभौ वृत्ते पूर्वापगभिधौ ।

त-मद्ये तिमिना रेखा पश्चिम्य दक्षिणोत्तरा ॥१२७

याम्योत्तरदिशोमध्ये निमिना पूर्वपश्चिमा ।

विद्मध्यमत्स्य मसाद्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतलाते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट मूर्ध की घटाकर शेष राग्यादि की बन्ना बाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देव जो लब्धि है वह गत तिथि की गच्छा होती है और शेष वर्तमान तिथि की गत बला है । उसको ७२० से घटाने से गम्य कला निकल आती है । यह और गम्यवला को पृथक् ६० से गुणा करके चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गम्यवला से भाग देकर लब्धि के क्रम न हुन और गम्य घटी होती है । गच्छाङ्ग से बत मान तिथि के आगे गम्य घटी ही लिखी जाया करनी है ॥१२२॥ शुक्लपक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की गम्यता को दूना करने ७ के द्वारा भाग देना चाहिए । १ आदि गम्य से क्रम से १ वर, २ वापत्र ३ कोत्रव, ४ सैत्रव

२ मग, ६ बलित्र ७ विष्टि (मट्टा)—य कारण यत्तमान निवि क
 पूर्वांश म हान है । य नाम कारण शुवन प्रतिपदा के उत्तमाध म कृष्ण
 १४ क पूर्वांश तब २८ नियोग म आठ आवृत्ति कर मत है । इसी
 कारण म य ७ पर कारण बहे मत है । कृष्ण पक्ष १४ के उत्तमाध मे
 शुवन प्रतिपदा क पूर्वांश तब लग म १ कृष्णि २ नग ३ चतुर्द
 शी ४ विष्णुत्त य चार विधर कारण हुआ करत है ॥ १२३।१२४ ॥
 अब विव माधन यत्नाथा जाना है—जय म मशोधित निवा हस
 या ययवव मीमण) के द्वारा मम बनाय हुए भुनय म विम
 अंगुन मान म लद्ध बनाया गया है उमी अद्भुत मान म अभीष्ट
 निम्नांगुल म कृत बनाकर उमके मदन म समान द्वादश विधाम म बन
 हुए मनुष्य स्थापना कर । उत लड की लाया का अग्रभाग निरु
 पूर्वांश म जही पर भी वृत्त गरिष्ठि म स्थाप करे वही पर पश्चिम वि दु

जाति कला क याग स भाग देन से गत तथा गम्य घटी हो जाती है ॥१२१॥

अर्कोन चन्द्रनिष्पाम्यस्तिथियो भोगभाजिता ।
 गना गम्याश्च पष्टिघ्नो नाड्यो भुक् यन्तरोद्धृता ॥१२२
 तिथय शुक्ल प्रतिपदो माता द्विघ्ना नगोद्धृता ।
 शेष बवो बालवश्च कौनवस्तैतिलो गर ॥१२३
 वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धं व ।
 शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किम्तुघ्न मेव च ॥१२४
 शिलावलेऽम्बुमशद्वे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
 तत्र शक्वगुर्नैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ॥१२५
 तन्मध्ये स्थापयेच्छकु वल्पनाद्वादशागुलम् ।
 तच्छायाग्र स्पृशेद्यत्र वृत्तो पूर्वापराद्धं यो ॥१२६
 तत्र विन्दु विधायोभो वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
 तन्मध्ये तिमिनः रेखा वर्त्तस्य दक्षिणोत्तरा ॥१२७
 याम्यात्तरदिशोर्मध्ये निमिना पूर्वपश्चिमा ।
 दिङ्मध्यमत्स्यं ससाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतताते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की कला बनाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देव जो लब्धि है वह गन तिथि की सख्या होती है और शेष वर्त्तमान तिथि की गत कला है । उसको ७२० में घटाने से गम्य कला निकल आती है । गन और गम्यकला को पृथक् ६० में गुणा करके चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गत्यन्तर म भाग देकर लब्ध के क्रम से शुक्ल और गम्य घटी हाती है । पञ्चाङ्ग में वर्त्तमान तिथि क आगे गम्य घटी ही लिखी जाया करनी है ॥१२२॥ शुक्ल पक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की सख्या को दूना करके ७ के द्वारा भाग दना चाहिए । १ आदि शेष म क्रम से १ बव २ बानव ३ कौनव, ४ तैतिल

५ ग, ६ षणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये चरण वर्त्तमान तिथि के पूर्वांश में होते हैं । ये साल करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध में वृष्ण १४ के पूर्वार्ध तक २८ तिथियों में आठ आवृत्ति कर आते हैं । इसी कारण से ये ७ चर करण बहे ज ते हैं । वृष्ण पक्ष १४ के उत्तरार्ध से शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक क्रम से १ शक्रुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ क्रिन्तुघ्न ये चार स्थिर करण हुआ करते हैं ॥ १२३।१२४ ॥

अब दिक माधन बनलाया जाता है—जल से सशोधित शिला तल या बच्चनेप सीमेण्ट) के द्वारा मम बनाये हुए भूतल में जिम अगुल मान से शङ्कु बनाया गया है उसी अङ्गुल मान से अभीष्ट त्रिज्यागुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य में समान द्वादश विभाग स बने हुए शकुकी स्थापना करे । उस शकु की छाया का अग्रभाग दिनके पूर्वार्ध में जहाँ पर भी वृत्त परिधि में स्पर्श करे वही पर पश्चिम दि कु समझ लेवे और दिन के उत्तरार्ध में फिर उसी शकुकी छाया का अग्र-भाग जहाँ पर वृत्त परिधि का स्पर्श करे वहाँ पर पूर्व विन्दु समझ लेना चाहिए । इसी गीति पूव और पश्चिम दि-कु को जान लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उन दोनों विन्दुओं में एक साल रेखा खींचने से पूर्वा पर रेखा बन जायगी । उस पूर्वपर रेखा के दोनों अग्रभागों को केन्द्र मान कर दो वृत्तार्ध बनाने से मातृमाकार बन जायगा । उसके मुख एक पुच्छम रेखा बना देने में दक्षिणोत्तर रेखा बन जायगी । यह दक्षिणोत्तर रेखा केन्द्र विन्दु में होकर जाता करती है । यह रेखा जहाँ पर वृत्त में स्पर्श करे वहाँ पर दक्षिण तथा उत्तर दिशा के विन्दु समझे । पुन दक्षिणोत्तर रेखा पर पूर्वोक्त युक्ति में मत्स्योपासन द्वारा पूर्वा पर रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्र विन्दु में होकर ठीक पूर्व और पश्चिम विन्दु का स्पर्श करेगी । इस रीति में च र दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके पुन द्वा-दो दिशाओं के मध्य विन्दु में मत्स्योपासन के द्वारा विदि-शाओं अर्थात् वाणों का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए ॥ १२५—१२८ ॥

जाति कला के याग से भाग देने से गत तथा गम्य घटी हो जाती है ॥१२१॥

अर्कोन चन्द्रलिप्माभ्यस्तिथियो भोगभाजिता ।
 गता गम्याश्च पट्टिघ्नो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृता ॥१२२
 तिथय शुक्ल प्रतिपदो माता द्विघ्ना नगाद्धृता ।
 शेष षडो वालवश्च कौलवस्तंतिलो गर ॥१२३
 वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धं च ।
 शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किम्तुघ्न मेव च ॥१२४
 शिलानलेऽम्बुसशब्दे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
 तत्र शक्वगुलैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ॥१२५
 तन्मध्ये स्थापयेच्छकु कल्पनाद्वादशागुलम् ।
 तच्छायाम् स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापराद्धं यो ॥१२६
 तत्र विन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
 तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्य दक्षिणोत्तरा ॥१२७
 याम्योत्तरदिशोमध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
 दिङ्मध्यमत्स्यै समाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतलाते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की बना बनाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देने जो लब्धि है वह गत तिथि की संख्या होती है और शेष वर्तमान तिथि की गत कला है। उसको ७२० म घटाने से गम्य कला निकल आती है। गत और गम्यकला को पृथक् ६० में गुणा करने चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गत्यन्तर स भाग देकर लब्धि के क्रम न भुक्त और गम्य घटी होती है। पञ्चाङ्ग म वर्तमान तिथि क आगे गम्य घटी ही लिखी जाया करती है ॥१२२॥ शुक्ल पक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की गम्यता को दूना करके ७ के द्वारा भाग देना चाहिए। १ आदि भोग म क्रम म १ वर २ वानव, ३ कौनव, ४ तैनिव

२ मग, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—से वरण वर्त्तमान तिथि के (र्वात्र मे होत हैं । ये साल करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तराघ म कृष्ण १४ व पूर्वात्र तक २८ तिथियो मे आठ आवृत्ति कर अते हैं । इसी कारण से ये ७ चर करण कहे जाते हैं । कृष्ण पक्ष १४ के उत्तराघ मे शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वाघ तक क्रम से १ शकुनि, २ नाग ३ चतुष्पद और ४ किस्तुष्ण ये चार स्थिर करण हुआ करत हैं ॥ १२३।१२४ ॥ अब दिक माधन बनलाया जाता है—जल से सशोधित शिला तल या वज्रनेप सीमेण्ट) के द्वारा सम बनाये हुए भूतल मे जिस बगुन मान से शङ्कु बनाया गया है उसी अङ्गुल मान से अभीष्ट त्रिज्यागुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य मे समान द्वादश विभाग स बने हुए शकुनी स्थापना करे । उस शकु को छाया का अग्रभाग दिनक पूर्वाघ मे जहाँ पर भी वृत्त परिधि मे स्पश करे वही पर पश्चिम वि दु समझ लेवे और दिन के उत्तराघ मे फिर उसी शकु की छाया का अग्र म्बम जहाँ पर वृत्त परिधि का स्पश करे वहाँ पर पव वि दु समझ लेना चाहिए । इसी रीति पूव और पश्चिम विन्दु को जान लेना चाहिए । तात्पर्य यह है कि उन दोनो वि दुओ म एक साल रेखा खीचने से पूर्वा पर रेखा बन जायगी । उस पूर्वापर रेखा के वगो अग्रभागो का केन्द्र मान कर दो वृत्तः बनाने से मात्स्याकार बन जायगा । उसके मुख एव पुच्छ म रेखा बना देने से दक्षिणोत्तर रेखा बन जायगी । यह दक्षिणोत्तर रेखा केन्द्र विन्दु मे होकर जाया करती है । यह रेखा जहाँ पर वृत्त मे स्पश करे वहाँ पर दक्षिण तथा उत्तर दिशा के वि दु समझ । पुन दक्षिणोत्तर रेखा पर पूर्वोक्त युक्ति से मत्स्योपादन द्वारा पूर्वा पर रेखा बनाव तो यह रेखा केन्द्र विन्दु म होकर ठीक पूव और पश्चिम विन्दु का स्पश करेगी । इस रीति से चार दिशाओ का ज्ञान प्राप्त करके पुन सा दो दिशाओ व मध्य विन्दु मे मत्स्योपादन व द्वारा विदि शाओ अर्थात् वाणा का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए ॥ १२५-१२६ ॥

चतुरस्र ग्रहि कुयात्सूत्रमध्याद्विनि सृत ।
 भुवसूत्रागुलैस्तत्र दत्त रिष्ट प्रभा स्मृता ॥१२६
 प्राकपश्चिमाधिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले ।
 उमण्डले च विपुवण्मण्डले परिकीर्तते ॥१२७
 रेखाप्राच्यपरा साध्या विपुवदभाग्रया तथा ।
 इष्टच्छायाविपुवतोमध्यसप्राभिधीयते ॥१२९
 शकुच्छायावृत्तियुतेमूल कर्णोऽस्य वगत ।
 प्रोज्जय शकुक्लृति मूल छाया शकु विषययात् ॥१३२
 त्रिशकृत्यो युगे भाना चक्र प्राक् परिलम्बते ।
 तद्गुणाद्भूदिनेभक्ताद्द्युगणाद्यन्वाप्यन ॥१३३
 तद्वास्त्रिधनाद्दशाप्लाशा विज्ञया अयनाभिधा ।
 तत्संस्कृताद्ग्रहान् क्रान्तिच्छायाचरदनादिकम् ॥१३४
 शकुच्छायाहन त्रिज्ये विपुवत्वण भाजिते ।
 लम्बाक्षय्य तयोश्चापे लम्बाक्षी दक्षिणी सदा ॥१३५

इस रीति से वृत्त में सब निशाओ का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर
 वृत्त के बाहिर चारो निशाओ के बिन्दुओ से स्पष्ट रेखा के द्वारा चतुरस्र
 (चतुर्भुज) बनाना चाहिए वृत्त के मध्य के दूरे से भुजाङ्गुल के समान
 बिन्दुपद छाया रेखा होती है । उस छाया रेखा को पूर्वा पर रेखा के
 समानांतर बनावे । पूर्वापर रेखा पूर्वापर वृत्त उमण्डल और नारी
 वृत्त के धरतल में होती है । इसीलिये त्रिज्या धरातल में बना के
 केंद्र से पूर्वा पर रेखा खींचकर फिर पलम पर बिन्दुगत पूर्वापर के सप-
 ना कर रज्जा बनावे । इस प्रकार में इष्ट छायापद तथा पचमा रेखा
 के बीच (२ तर) का अन्तर रहता है ॥१२६ १३०-१३१॥ शकु के वग
 में छाया के वग का जोड़कर मूल ग्रहण करने में छाया कण होता है
 और छाया कण के वग में शकु के वर्ग को घटाकर मूल छाया का होती है
 तथा छाया के वग का घटाकर मूल शकु ही जाता है ॥ १३२ ॥

७-१ स्व अयनाश साधन बतलाते हैं—एक गुण मे राशि चक्र सृष्टिवादि स्थान मे पूर्व और पश्चिम को ६०० बार चलित होता है। जो कि उसके भगण कहलाते हैं। इसीलिये अहर्गण को ६०० से गुणा करके पुर के कुदिन से भाग देकर र श्यादि फल से भुज बनावे। उस भुज को ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग देवे तो जो लब्धि होती है वह अयनाश होती है। इस अयनाश को अहर्गण के द्वारा स घित ग्रह मे जोड़कर क्रान्ति, छाया और चर खण्ड आदि बनाने चाहिए ॥१३३॥ ॥१३४॥ अर तन्वाश और अक्षाय साधन का प्रकार बताते हैं—शकु और पत्रभा को पृथक्-पृथक् त्रिज्या से गुणा करके उसमे पल कर्ण से भाग देने पर लब्धि क्रमश 'लम्बज्या' और 'अक्षज्या' होती है। इनो के चाप बना देने से 'लम्बाश' और 'अक्षाश' हा जाते हैं।

दोरी दिशा सर्वदा दक्षिण ही समझी जाया करती है ॥१३५॥

स्वाक्षार्कापक्रमयुति दिक्साम्येऽंतरमन्यथा ।

शेषा नताशा सूर्यस्य तद्राहुज्ये च कोटिजा ॥१३६

शकुमानागुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ।

कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णविहर्दने ॥१३७

स्वाक्षार्कनतभागाना दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।

दिग्भेदेऽपक्रम शेषस्तस्य ज्वा त्रिज्यया हता ॥१३८

परमापक्रमज्यप्ता चाप मेपादिगो रवि ।

कक्ष्यादी प्रोज्जय चक्रद्वित्त लादी भाधंमयुतात् ॥१३९

मृगादी प्रोज्जय चक्रात् मध्याह्नेऽक स्फुटी भवेत् ।

तन्मान्दमसबुद्धाम फा मध्यो दिवाकर ॥१४०

प्रहावय प्राणहता खलार्ष्ट्रकोद्धृता गति ।

चक्रासवो लवप्रयुता स्वाहोरात्रासव स्मृता ॥१४१

त्रिमद्यु कर्णाद्धं गुणा स्वाहोरात्राद्धं भाजिता ।

नमादेकद्वित्रिभज्यास्तन्वापानि पृथक्-पृथक् ॥१४२

स्वाधोऽथ प्रविशोऽध्याय मेपालङ्कोदयासव ।

स्वागाष्टयोऽर्धगोर्जका शरभ्यङ्क हिमाशव ॥१४३

स्वदेशचरखण्डोना भवन्तोऽष्टोदयासव ।

व्यस्ता व्यस्तैर्युता स्वै स्वै ककटाद्यास्ततस्त्रय ॥१४४

अथ सूर्य ज्ञान म मध्याह्न-छाया साधन बतलाया जात है—
 अपन अक्षांश और सूर्य के क्रांत्यंश दोनों एक ही दिशा की ओर हो
 तो योग करने से और यदि भिन्न दिशा में हो तो दोनों का अन्तर
 करने से शेष सूर्य 'नताश' होता है। उस नताश की भुज्या और
 कोटिज्या बनावे। भुज्या और त्रिज्या को पृथक् २ शकुमान (१२)
 से गुणा करके उसमें फिर कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि प्रथम
 मध्याह्न काल म छाया और छाया कर्ण के मान को सूचित किया
 करती है ॥१३६-१३७॥ मध्याह्न छाया से सूर्य साधन—अपने अक्षांश
 और मध्याह्न कालिक सूर्य के 'नताश' ये दोनों एक ही दिशा के हो
 तो अन्तर करने से और यदि भिन्न दिशा के हो तो योग करने से जो
 फल हो वह सूर्य की 'क्रान्ति' होती है। क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा
 करके उसमें परम क्रान्तिज्या १३६७ से भाग देवे। जो लब्धि होती
 है वह सूर्य की 'भुज्या' होती है। उसके चाप बनाकर मेष आदि ३
 राशि में सूर्य हो तो वही स्पष्ट सूर्य होता है। बर्कादि तीन राशियों
 में हो तो उस चाप को ६ राशियों में घटा देवे। तुलादि तीन राशि
 में हो तो ६ राशि में जोड़ देवे और मकरादि ३ राशि में हा तो १२
 राशि में घटा देवे फिर जो भी जोड़ या अन्तर हो वह मध्याह्न में
 स्पष्ट सूर्य होता है। उस स्पष्ट सूर्य से विपरीत क्रिया के द्वारा मन्द
 फल साधन कर बार-बार संस्कार करने से मध्यम सूर्य का ज्ञान होता
 है ॥१३८-१४०॥ ग्रहों के अहोरात्र मान—जिस राशि में तत्काल
 घट हो उस राशि के उदयमान से उस ग्रह की गति का गुणा करे
 फिर उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध अंश को अहोरात्रांश में जोड़ ५

देवे । वही उक्त ग्रह का अहाराय मान होता है । अमु से घड़ी और पल बना लेन चाहिये ॥१४१॥ राशिया के उदयमान १ राशि, २ राशि, ३ राशि की ज्या को पृथक् २ परमात्य द्युज्या (परम कान्ति कोटिज्या) से गुणा करके उममे अपनी द्युज्य स भाग देकर जो भी लब्धियाँ ही उनके चाप बना लेवे । उनम प्रथम चाप भेष का उदय (लङ्कोदय) मान होता है । प्रथम चाप को द्वितीय चाप म घटान पर भेष वृष का उदयमान होता है । इसी रीति से द्वितीय चाप को तृतीय चाप मे घटाने पर जो शेष रहे वह मिथुन का लङ्कोदय मान होता है । पुन उन्ही तीनों को अर्थात् लङ्कोदय मानों को उक्रम से रखकर—इन तीना म अपने देश के तीनों चर खण्डों को उत्क्रम से जोड़ने पर बर्क आदि ३ राशिया के स्वदेशोदय मान होते हैं । एव भेषादि कन्या पर्यन्त ६ राशिया के उदयमान सिद्ध होते हैं । पुन ये ही उत्क्रम से तुला आदि ६ राशियों के मान होते हैं ॥१४२-१४४॥

उत्क्रमेण पडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादय ।

गतभोग्यामद कार्या सायनात् स्वेष्टभास्करात् ॥१४५

स्वोदयामुहृता भुक्तभोग्या भक्ता खवह्निभि ।

अभीष्टपटिकासुभ्यो भोग्यासू-प्रविशोधयेत् ॥१४६

तद्वदेवैप्यलम्नासूनेव वातास्तथोत्क्रमात् ।

शेष चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धे न विभाजितम् ॥१४७

भागयुक्ता च हीन च व्ययानाश तनु कुजे ।

प्राक् पश्चान्नतनाडी भिस्नद्वलङ्कोदया सुभि ॥१४८

भानौ क्षयधने कृत्वा मध्य लग्न तदा भवेत् ।

भोग्यासूनुनवस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥१४९

सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेव स्यात्कालसाधनम् ।

विराट्कर्कभुजाशाश्चेदिन्द्रात्पा म्याद्प्रहो विधौ ॥१५०

राश्या शिवघ्ना शीलासा व्यग्वकाश शरोऽङ्गुली ।

अर्कं विधुर्विधु भूमा छादयत्यथ छन्नम् ॥१५१

छाद्यच्छादकमानार्धं शरीरं ग्राह्यवर्जितम् ।

तत् खच्छन्नं च मानं वयार्धं शराह्य दशाहतम् ॥१५२

छन्नघमत्मान्मूलं तु स्वाङ्गोन ग्लोवयु हृतम् ।

स्थित्यद्वं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वशसामितौ ॥१५३

इष्टं पलैस्तदूनाह्य व्यगावूनेर्ज्वपगृहात् ।

तदन्वयाधिषे तस्मिन्नेव स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥१५४

सम साधन-इष्ट काल के साधनाश सूर्य के मुक्ताश और भाग्याश व द्वारा 'मुक्तासु' और 'भोग्यासु' का साधन करना च हिए । यथा-मुक्ताश को साधन मूत्र के स्वदेशोदय मान से गुणा करके ३० का भाग देव । जो लब्धि है ही उसको मुक्तासु और भाग्याश को स्वदेशोदय मान से गुणा करे । फिर उसमें ३० का भाग देवे । जो लब्धि है वह भोग्यासु होत है । इष्ट घड़ी के असु धनाकर उसमें भाग्यासु को घटा देना चाहिए । जो शेष बच उसमें अप्रिम राशियों में से जितने क स्वदेशोदय मान घटे उतने घटा देवे । अथवा इसी प्रकार स इष्टासु में मुक्तासु का घटाकर शेष में सप्त राशियों के उत्क्रम से उनके जितने स्वदेशोदय मान घटें उतने घटा देवे । जिस राशि तद्व का मान घट जावे वहा तक शुद्ध और जिसका मान न घटे वह अशुद्ध सत्तक होनी है । बचे हुए इष्टासु को ३० से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदयमान स भाग देवे और लब्धि अथ आदि को (मुक्त उत्क्रम विधि हो तो) अशुद्ध राशि की सख्या घटाने से म यन लग्न होता है । उसमें अयनांश घटाने से फल में जाड देव और (मुक्त उत्क्रम विधि हो ता) अशुद्धराशि की सख्या म बधनपयुक्त उदय लग्न होता है । १५४-१५७। मध्य दशम लग्न साधन-२सी रीति से पूर्वगत कलासु स लङ्कोदय के द्वारा जसादि साधन करके उसको मूत्र में घटाने से तथा पश्चिमगत कलासु और लङ्कोदयके द्वारा त्रैराशिवमें जसादिका साधन करके सूर्य में जाडने से

मध्य (दशम अंशांश, मध्य) लग्न होता है ॥ १४८ ॥ लग्न और स्पष्ट सूर्य को जानकर इष्टकाल साधन-लग्न और सूर्य इन दोनों में जो भी ऊँच अर्थात् पीछे हो उसके भोग्यांश के द्वारा भोग्यांश और भा अधिक हो तो उसके भुक्तांश के द्वारा भुक्त्यांश साधन करके दानों को जोड़े तथा उसमें उन दोनों लग्न और सूर्य के बीच में जो राशिवाँ हा उनके उदयामुखा को जोड़ देवे तो इष्ट का लाभ होजाया करत है । १४९ । ग्रहण माघ-पूर्वा-न वान में स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन करे । सूर्य में राहु को घटा कर जो भी शेष बचे उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्र ग्रहण की सम्भावना समझनी चाहिये । उर भुजांश को ११ से गुणा कर ७ में भाग दान पर लघि-गङ्गा अङ्ग, लघि शर होता है ॥ १५० ॥ सूर्य सूर्य को चन्द्रमा और चन्द्र को भूमा (पृथ्वी छाया) छादित करती है । इसीनिये सूर्य ग्रहण में सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छाद्यक होता है । तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्र छाद्य और भूमा छाद्यक ग्रहणकर्त्री है । ऐसा ही समझना चाहिये । अब छान प्राप्त मान कहते हैं—छाद्य और छाद्यक के विम्ब मान का योग करके उसके आधे में 'शर' घटाने में 'छन्न' (घास) मान होता है । यदि प्राप्त मान घाह्य (छाद्य) में अधिक हो तो उसमें छाद्य को घटा कर जो शेष बचे उतना ख 'छन्न'(घास) समझना चाहिये । मानैकशाध' (छ छ छाद्यक के विम्ब योगाध') को शर जोड़कर १० में गुणा करना चाहिये । फिर घास मान में गुणा करके गुणनफल का जो मूल हो उसमें अपना पट्टांश घटाकर शेष में चन्द्र ग्रहण हो भाग देवे । जो लघि प्राप्त हो घटी आदि का स्थि शर्ध समझे । इग स्थि शर्ध का ही स्थान में रखे । शशु (शशुर्वं राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशि में ऊँच हातां त्रिगुणित शशु भुजांश तुल्य पत्र को प्रथम स्थानागत स्थि शर्ध में घटावे और द्वितीय स्थान शाने में जोड़ देवे । यदि शशु ६ या १२ में अधिक हो तो दिवरीत कम में (प्रथम स्थान में जोड़ने और द्वितीय

स्थान मे घटाने से) स्पर्श और मोक्ष कालिक स्पष्ट स्थित्यध होता है ॥१५१ १५४॥

प्रासनखाहते छासमानाप्ते स्युविशोपका ।

पूणान्ता मध्यमत्र स्याद्दशान्तेऽङ्ग त्रिभोनकम् ॥१५५

पृथक् तत् क्रान्त्यक्षभागसस्कृती स्युनताशका ।

तद् द्विद्वय शट्टति द्विध्नो द्व्यूनार्धाकमुता हर ॥१५६

त्रिभोनाङ्गकिविश्लेषाशाशोनघ्ना पुरन्दरा ।

हराप्ता लम्बन स्वर्णं वित्तिभेऽर्काधिकोनके ॥१५७

विश्वध्न लम्बन कलाढयोनस्तु तिथिवद् व्यगु ।

शरोऽक्ते लम्बन पङ्घन तल्लबाढयोनवित्रिभात् ॥१५८

नताशास्तद्दशाशोनघ्ना धृत्स्यस्त द्विर्वजितौ ।

साप्टेन्दुलिप्तं पङ्भिस्तु भक्ता नतिनताशादिकु ॥१५९

तयोनाढ्यो हि भिन्नैकदिकु शर स्फुटता व्रजेत् ।

ततश्छन्न स्थितिदले साध्ये स्थित्यधपङ्ढति ॥१६०

अशास्तौर्वित्तिभ द्विष्ट रहित सहित क्रमात् ।

विधाय ताभ्या ससाध्ये लम्बने पूर्ववत् तयो ॥१६१

पूर्वोक्ते सस्कृते ताभ्या स्थित्यद्ध भवत स्फुटे ।

ताभ्या हीनमुता मध्यदर्श कालो मुखान्तगौ ॥१६२

ग्रहण विशोपक (विश्व) फल— अ गुलादि प्राप्त मान को २० से गुणा करे । जो गुणनफल हो उनमें अ गुणात्मक छास मान से भाग देना चाहिए । जो भी सन्धि आवे वह विशोपक फल होता है । सूय ग्रहण म विशेष लम्बन—घटी—साधन—पूर्वा तकाल मे ग्रहण का मध्य होना है । सूय ग्रहण मे दर्शा त कालिक लग्न बना कर उसमे तीन राशि घटाने से वित्रिभ या त्रिभोन लग्न कहलाना है । उसके पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांश के संस्कार (एक दिशा मे योग भिन्न दिशा मे अ तत्) करने से नताश होता है । उसका २२

नारद पुराण]

वा भाग करके वग करे । यदि २ से कम हो तो उसी में और यदि २ से अधिक हाजाय तो २ घटा कर शेष के अर्ध भाग वा उसी वग में जोड़ कर पुन १२ में जोड़ने से हार होता है । तिमाज नम और सूष के अंतराश के दशमांश को १४ में घटा कर शेष को उत्ती दशमांश से गुणा करना चाहिये । उसमें पूर्व साधित हार से भाग देन पर लब्धि तुल्य घट्यादि लम्बन होता है । यह लम्बन यदि विविध मूय से अधिक हो तो घन अला हो तो ऋश होता है । अर्थात् साधित दर्शांत काल में इस लम्बन को जोड़ने-घटाने में पृष्ठ स्थानीय दर्शांत काल होता है ॥१५५-१५७ घट्यादि लम्बन को १३ से गुणा करने पर गुणनफल वल दि होता है उसको लम्बक में जोड़ या घटा कर शर बनाने में पृष्ठीय दर्शांत कालिक शर स्पष्ट होता है । तथा घट्यादि लम्बन को ६ से गुणा करके और गुणनफल को अंशादि मानकर विविध में जोड़ या घटा के नशा साधन करे । नशाश के दशमांश को १८ में घटा कर शेष को उसी दशमांश से गुणा करना चाहिए । फिर गुणनफल को ६ अंश १८ कला में घटा कर जो भी शेष बचे उससे गुणनफल में ही भाग देने से लब्धि अगुनादि नशाश की दिशा की ही गति होती है । इस नशा और पूर्व साधित शर दोनों में संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अंतर और एक दिशा हो तो योग) से स्पष्ट शर होता है । मूय प्रश्न में उसी शर में प्राह्य और स्थिर गद्य बनावे । स्थिर गद्य को ६ में गुणा करके अंशादि गुणनफल को विविध में घटा देवे और दूसरे स्थान में जोड़ देना चाहिए । इन दोनों पर से पूर्वोक्त विधि में लम्ब साधन करके क्रमशः पूर्व विधि से साधित स्पश और मोक्ष काल में संस्कार करने से स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पश और मोक्ष काल होते हैं ॥१५८-१६२॥

अर्थात् घना विश्व ईशा नवपच-शाशना ।

कालाशास्त्रीम्नयवते रवी हस्तोदयी विधौ ॥१६३

त्रिज्या से अल्प ही तो जोड़ दंवे फिर उसमें ३ से भाग देने पर क्रमशः मङ्गल प्रभृति ग्रहों के विम्ब प्रमाण होते हैं । ग्रहों की युति से गति गम्य दिन साधन-त्रिन दो ग्रहों की युति-काल का ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट हो वे दोनो मार्गो हो अथवा दोनो ही वक्री हो लो दोनो ग्रहों की अन्तर कला से दोनो की गम्य-तर कला से भाग देना चाहिये । यदि एक वक्र और एक मार्गो हो तो दोनो की गति योग कला से भाग देना चाहिये । फिर जो भी लब्धि आवे वह ग्रह्य युति के गतिमा-गम्य दिनादि हैं । ग्रहों की युति में भेद ज्ञान—त्रिन दों ग्रहों की युति होनी हो उन दोनो को अपनी गति से ससृज्य शर एक दिशा के हो तो अन्तर और यदि भिन्न दिशा के हो तो योग करने से दोनो ग्रहों का अन्तर होता है वह अन्तर यदि दोनो के विम्बमान योगार्थ से अल्प हो तो उनके भोग में भेद होता है । इसलिए इनमें बीच याने को छ'दक और ऊपर वाले को छाद्य मान कर सूर्य ग्रहण के समान ही लम्बन, ग्राममान आदि साधना करना चाहिये ॥ १६८—१७१ ॥

पाताधिकार—नातकी मन्त्रा—जब सूर्य और चन्द्रमा दोनो एक ही अयन में हो अर्थात् पामायन, दक्षिणायन अथवा सौम्यायन, उत्तरायण में हों तथा उभे दोनो के राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थिति में दोनो के क्रांति साम्य होने पर वैद्युते नाम वाला पात कहलाता है तथा जब दोनो भिन्न २ अयन में हो और दोनो का योग ६ राशि हो तो उभे स्थिति में दोनो के क्रांति साम्य होने पर व्यतीपात नामक पात होता है । जब सूर्य चन्द्र का अन्तर वक्र ० या ६ राशि हो उस समय में तात्कालिक अयनांशादि से युक्त सूर्य और चन्द्रमा की अपनी अपनी क्रांति का साधन करे । यदि शर ससृज्य चन्द्रमा की क्रांति तात्कालिक सूर्य की क्रांति में अधिक हो तो यदि चन्द्रमा विषम पद में हो तो पातकाय को घीना हुआ समझ लेवे । यदि विषम पद में स्थित चन्द्रमा शर ससृज्य क्रांति सूर्य की क्रांति में अल्प हो

तो पातकाल को भावी (होने वाला) समझ लेना चाहिये । यदि चन्द्रमा सम पद में हो तो इसमें विपरीत पातकाल समझे अर्थात् सूर्य की क्रांति से चन्द्रमा की स्पष्ट क्रांति अधिक हो तो भावी और अल्प हो तो गत समझे । यदि स्पष्ट क्रांति बनाने में चन्द्रमा के शर में घटायी जावे तो ऐसी स्थिति में तो चन्द्रमा के विम्ब और स्थान में पद की मिन्नता होती है ॥१७२—१७३॥

भास्करेन्दोर्भञ्जान्त चक्रार्धावधि सस्थयो ।

दृक्तुल्यमाधिताशरदियुक्तयो स्वावपक्रमौ ॥१७४

अथोजपदगस्येन्दो क्रान्तिविक्षेप सम्बृता ।

यदि म्वादधिका भानो क्रान्ते पातो गनस्तदा ॥१७५

न्यूना चेतस्यान्तश भावी वाम युग्मपदस्य च ।

पदान्यत्वविधो क्रान्तिविक्षेपाच्चेद् विशुद्धघति ॥१७६

कान्त्योर्जे त्रिज्यषाभ्यस्ते परमापक्रमोद्धृते ।

तच्चापान्तरमद्धं चा योग्य भ विनि शीतगौ ॥१७७

शांध्य चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् ।

चन्द्रभुक् या ह्यन भानो लिप्तादि शशिवत्फनम् ॥१७८

तद्वच्छयात्पातस्य फल देय विपर्ययात् ।

वर्मेतदसकृत्तावत्क्रान्ती यावत्तमे तयो ॥१७९

स्पुट क्रांति-साध्यज्ञान प्रकार—सूर्य और चन्द्रमा दोनों की क्रांति उग की द्विज्या से गुणा करके उसमें परम क्रांति उग से भाग देव । जो भी लब्धिवाँ हो उन दोनों के चाप बनावे । उन दोनों चापों का जो भी अन्तर हो उसको सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ-धून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमा में जाड देव और गतपात हो तो घटावे । पुन उपर्युक्त चाप के अन्तर या उसके मण्ड का सूर्य की गति से गुणा करके उग बाये हुए गुणन फल में चन्द्रकी गति में भाग देना चाहिए जो भी लब्धिवाँ उपरका चन्द्रमा के समान ही सूर्य में सम्बार करे (गम्य पात

हो तो जोड़े और गतपात हो तो घटा देव) इसी प्रकार से (मूयफल
 वग उक्त चापान्तर को चन्द्रपात की गति से गुणा करके उसमें चन्द्र
 गति से भाग देदे) सवित्र म्ना चन्द्र पत के बराबर पत्र की चन्द्रपात
 (राहु) में विपरीत सम्कार करे अर्थात् गत पात में जोड़े और चन्द्र पात
 में घटा देव तो सप्तदशालासन्न समय के सूर्य, चंद्रमा और चन्द्रपात
 होने हैं। फिर इन तीनों रवि चन्द्र और चन्द्रपात के द्वारा उपर्युक्त
 क्रिया का बार-बार करता रहे जब तक दोना की कान्ति समन हो
 जावे । १७४-१७६।

क्रान्त्यो समत्ये पातोऽप्य प्रक्षिप्ताशोनिते विधौ ।

हीने प्रद्वरा यकाचानो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१८०

स्थिरीकृत्वाद्धं रात्रन्दोर्द्विधौ विवरलिप्तिना ।

पष्टिध्न्यश्चन्द्रभुक्त्यासा पातकालस्य नाडिका ॥१८१

रखोन्दोर्मानयोगाद्धं पष्टया सगुण्य भाजयेत् ।

तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्य स्थित्यर्धं नाडिकाद् तत् ॥१८२

पातकाल स्फुटो मध्य सोऽपि स्थित्यद्धं वर्जित ।

तस्य सम्भवकाल स्यात्तत्सपुक्तोऽन्वसजित ॥१८३

आद्यन्तकालयोर्मध्य कालो ज्ञाऽऽतिदारुण ।

प्रज्वलज्ज्वलनाकार सवकर्मसु गहित ॥१८४

इत्येतदपणिते किञ्चित्प्रोक्त्वा सक्षेपतो द्विज ।

जातक वच्चिं समयाद्राशिसाज्ञातुर सरम् ॥१८५

इस तरह से कान्ति-साम्य होने पर पात समझना चाहिए ।
 यदि उपर्युक्त क्रिया के द्वारा प्राप्त अशादि स युक्त या हीन क्रिया हुआ
 चंद्रमा अथ राशि कान्तिक साधिल चंद्रमा स अल्प हो तो पात काल को
 गत समझना चाहिए और यदि अधिक हो तो पातकाल को भावी समझे ।
 अर्धं रात्रि में गत-चन्द्र पातकाल का ज्ञान—ऊपर में बताया हुयी
 क्रिया के द्वारा स्थिरीकृत पातकालि चंद्रमा और अर्धं रात्रिात्तिक

चंद्रमा जो हो इन दोनों की अन्तर कला को ६६ से गुणा करके गुणन-फल से चंद्र की गति कला से भाग होने पर जो भी लब्धि आवे, उतनी घटी मध्य रात्रि में पीछे या आगे (गतपात में पीछे और गम्य पात में आगे) तब पात काल की घड़ी समझी जाया करती है । १९८०।१८१।
 पात के स्थित काल, आरम्भ तथा अन्त काल का साधन—सूर्य तथा चंद्र के विष्व योगार्ध को ६० से गुणा करे और गुणन फल में जो सूर्य चन्द्र की गम्यन्तर कला हो उसमें भाग देना चाहिए । जो भी लब्धि हो वह, पात स्थित्यर्ध घड़ी होती है । इसको पात के स्पष्ट मध्यकाल में घटा देने में पात का आरम्भ काल होता है और जोड़ देने से अन्त काल होता है । पात के आरम्भ काल में गम्य काल पर्यन्त जो मध्य का पात है वह प्रखलित अग्नि के तुल्य अत्यन्त दारुण होता है जो कि भयमस्त कायों में निषिद्ध माना गया है । हे ब्रह्मन् ! इन प्रकार से इस ज्योतिष शास्त्र के गणित स्वग्ध को सशिक्ष रूप में कुछ उपयोगी विषयो का ही प्रतिपादन किया है । अब इसके आगे राशियों की राज्ञा आदि के गुणन के साथ में जातक का कुछ प्रमुख वर्णन करूँगा । १९८२। १९८३।१८४।१८५।



॥ त्रिस्कन्ध ज्योतिष का जातक-स्कन्ध ॥

मूर्धास्य दाहृहृत्कोगतवंस्ति व्यजसो नख ।
 जानुजपास्त्रिभुग ल कालागानि क्रियादय ॥१
 भीमास्फुजिबुधेन्दुश्च रविस्नीम्पगित बुज ।
 गृह मन्दार्कगुरवा मेपादीनामधीश्वरा ॥२
 होरे विषमभेर्वन्दो समभे राशिमूययो ।
 आदिपचनवाधीशास्त्रेऽवाणशा प्रकीर्तिता ॥३
 पक्षेष्टाष्टद्विपचाशा कुजावीज्यज्ञशुक्रगा ।

ओजे विपर्ययाद्युग्मे त्रिशाशेशा समीरिता ॥४
 त्रियेणतीलिफर्काद्या मेपादिपु नवाशका ।
 स्वभाद्द्वादशभागेशा षड्वर्ग राशिपूर्वकम् ॥५
 गोजाश्र कर्कयुग्मेन राभ्याख्या पृष्ठकोदया ।
 शेषा दिनाख्यास्तूभय तिमि क्रूर सौम्य पुमान् ॥६
 पुमान् च क्लीवश्चर स्थिर द्विस्वभावका ।
 मेपाद्या पूर्वतोदिकस्था स्वस्वस्थान चरास्तथा ॥७

सन-दनञ्जी ने गणित ज्योतिष का सिद्धान्त प्रतिपादन

। के परचात् बतलाया कि ये आकाशस्थ मेप आदि बारह राशियो भी सूक्ष्म रूप से काल-पुण्य के अङ्ग हैं जिनको मस्तक, मुख बाहू, हृदय उदर, कटि, पेडू, जननन्द्रिय, ऊरु, जानु, जघा और दोन चरणो की उपमा दी जा सकती है । इन बारह राशियो के एक एक स्वामी हैं जिन्हे क्रम से—मङ्गल, शुक्र, बुध च द्रमा, सूर्य, बुध शुक्र, मङ्गल गुरु शनि, शनि तथा गुरु माना गया हैं । (एक इह दा - दो राशिषी का स्वामी भी है) जो राशिषी विषम हैं उनमें पहले सूर्य की ओर फिर चन्द्रमा की होरा व्यतीत होती है और सम राशियो से इससे विपरीत क्रम होता है । एक राशि क ३० अश माने गये हैं जिनको १५ अश के दो 'होरा' और १० अश के तीन 'ट्रेक्वाण' में विभाजित किया गया है । आदि से १० अश तक उसी राशि का ट्रेक्वाण होता है ॥ १-३ ॥ विषम राशियो में पाँच-पाँच अश तक मङ्गल और फिर आठ सात तथा पाँच राशि अशो में बृहस्पति, बुध और शुक्र को त्रिशाशेष कहा गया है । सम राशियो में इसका विपरीत क्रम होता है । मेप आदि राशियो के नवभास मेप, मवर, तुला और कक स प्रारम्भ होत हैं । द्वादश अश के द्वादशांश होते हैं जो अपनी राशि से अन्तिम राशि तक जात हैं ॥ ४-८ ॥ छ राशिषी रात में बली होनी हैं उनका पृष्ठादय बहने हैं सूर्य, मेप, धनु मक, मिथुन,

मकर इम श्रेणी म हैं । शेष छ राशियो को कूर और रात्रि सप्तक को सौम्य बतलाया है । ये राशियाँ क्रम से पुण्य, स्त्री और क्लीब (नपुंसक) भी कही जाती है । इन राशिया का क्रम से चर स्थिर तथा द्विस्वभाव होने की दृष्टि से तीन विभागो म बाँटा गया है । जैसे मेष 'चर' वृष 'स्थिर' और मिथुन 'द्विस्वभाव' वाली है । ऐसा ही क्रम अत तक चला गया है । ये राशियाँ तीन-तीन के विभागो मे क्रम से पूर्व दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मे स्थित है ॥६-७॥

अओर्क्षणागनाकीट जपजूकाइनादित ।

उच्चानि द्वित्रिमनुयुवितथीपु भरुनखाशकै ॥८

तत्तप्तन्तमनीचानि प्राङ् मध्यात्पशका क्रमात् ।

वर्गोत्तमाश्च राधेपुभावदद्वादश मूर्तिमान् ॥९

सिंहोक्षाविस्त्रश्चतौलि कुभा सूर्यात्त्रिकोणभम् ।

चतुरस्र तूर्यमृत्युत्रिकोर्ण नवपचकम् ॥१०

रिप्याष्ट षट्क त्रिकभ केन्द्र प्रान्तुयसप्तखम् ।

नृपाद कीट पशवो वलाढ्या केन्द्रगा क्रमात् ॥११

केन्द्रात्परम् पणरमापोविलममत परम् ।

रक्त श्वेत शुक्रनिम पाटलो घृन्नपाडुरी । १२

त्रिषु कृष्ण पीतपिपी वध्रु स्वच्छ प्रभाक्रियात् ।

साम्याशाट्यप्लवत्व स्याद्द्वितीये वशिरर्कभात् ॥१३

मूय, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, शनि का उच्च मय मे तुला तक होता है । जिस ग्रह की ओ राशि उच्च रही गई है उसमे सातवीं राशि उमका नीच स्थान होता है । चर मे पूर्व नवमास वर्गोत्तम है । स्थिर म मध्य नवमास और द्विस्वभाव म अग्निम नवमास वर्गोत्तम है । सप्त आदि के बारह भाग हात हैं ॥ ८-९ ॥ मूय का सिंह, चन्द्रमा का वृष, मङ्गल का मय, बुध का शन्या, शुक का धनु शुक का तुला और शनि क कुम्भ—य मूल विभाग बह गय है ।

चतुर्थ और अष्टम भाव का नाम चतुरस्र तथा नवम पञ्चम का त्रिकोण है । द्वादश, अष्टम, षष्ठ का नाम त्रिक है । चतुर्थ, सप्तम, दशम का नाम केन्द्र है । द्विपद, जलचर कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्र में बसी होती हैं । केन्द्र के पश्चात् के स्थान 'प ण फ र' बहे गये हैं उसके बाद वाले आपोक्लिम' कहलाते हैं । बारहों राशियों का वर्ण क्रमशः लाल श्वेत, हरित पाटल धूम्र, पाण्डु चित्तकवरा, कृष्ण, पीत पिङ्ग भूरा और स्वच्छ कहा गया है । सब राशियाँ स्वामी की ओर झुकी रहती हैं । सूर्य की राशि से दूसरे का नाम 'वेशि' है ॥ १०-१३ ॥

कालात्मार्को मनश्चन्द्र कुज सत्त्व वचोबुध ।
जोवोज्ञान सुख शुक्र वामो दुःख दिनेशज ॥१४
नृपो रवीन्द्र नेतासूक् कुमारो ज्ञ कवीज्यको ।
सचिवो सूर्यो ज प्रेप्योमतो योतिर्विदावरै ॥१५

..... १९६

..... १९७

..... स्मृता ।

स्मृतिव्याप्तितोतादि नाशिनो अमन्त्रात् ॥१८

चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितो कुजार्की सात्त्विकादिका ।
द्वयतेन्द्रग्निखलाभूकोसखायोपराधिपा ॥२०
वस्त्र स्थल नव यद्दिनकहता मध्यद तथा ।
स्पुटित रवितस्ताम्र तार त अ धुनिस्तथा ॥२१
हमवास्यापमीन्धरी शिशिराद्या श्रुतीतिता ।

सौरशुक्रारचद्रशगुरुपूछत्सु च क्रमात् ॥२२

काल पुरुष की कल्पना में सूर्य उसके आत्मा, चन्द्रमा मन, ज्ञान सत्व, बुध वाणी, बृहस्पति ज्ञान, शुक्र, काम तथा शनि दुःख रूप । सूर्य, चन्द्रमा नृप, मङ्गल नेता, बुध कुमार, बृहस्पति तथा शुक्र स्त्री और शनि सचिव के समान है ॥ १४-१५ ॥ सूर्यादि ग्रहों का र्ण ताम्र, शुक्ल, रक्त, हरित, पीत, चितकबरा तथा काला है । अग्नि, वर कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, शची और ब्रह्मा रात इनके स्वामी रहे गये हैं ॥ १६ ॥ सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये आठों क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, पश्य, उत्तर तथा ईशान दिशाओं के स्वामी हैं । चन्द्रमा (धीण), म, मङ्गल, और शनि ये पापग्रह हैं । बुध तथा शनि क्लीब हैं, शुक्र, चन्द्रमा स्त्री ग्रह, शेष पुरुष ग्रह हैं । मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, तथा शनि क्रम से अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु तत्वों के स्वामी हैं ॥ १७-१८ ॥ शुक्र, गुरु ब्राह्मण, मङ्गल, सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध शूद्र वर्ण वालों के स्वामी हैं । शनि अन्त्यजों तथा राहु म्लेच्छों के अधिपति कहे गये हैं ॥ १९ ॥ चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति, सत्गुण वे, मङ्गल-शनि समोगुण के स्वामी हैं । सूर्य देवताओं के, चन्द्रमा जल वे, मङ्गल अग्नि वे, बुध क्रीडा के, बृहस्पति भूमि वे, शुक्र कोप के, शनि शयन के तथा राहु ऊत्तर के स्वामी हैं । स्थूल, नवीन, जला हुआ, भीगा हुआ, मध्यम, मुट्ठ तथा फटा हुआ क्रम से सूर्यादि का वस्त्र कहा गया है । ताँबा, गणि, सुवर्ण, चाँदा, चाँदी, मोती तथा सोटा ये शमन इन्हीं धातुओं हैं । जिशिर, बसन्त, शीघ्र, वर्षा, शरद और हेमन्त क्रमशः शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध तथा गुरु की ऋतुएँ हैं ॥ २०-२२ ॥

श्याशत्रिणोऽनुर्जीष्टसप्तनान्देव वृद्धित ।

सौरैर्ग्यारापरे पूर्णैः क्रमात्पश्येति नारद ॥२३

अयनक्षणघस्रतुं मासाद्धं शरदो रवे ।

कटुतिक्तक्षारमिश्रामधुराम्लाकपापका ॥२४

त्रिकोणात्सात्यघाघर्मायु सुखखोद्यप सुहृत ।

जीवोजीवज्ञौ सितज्ञौ व्यार्वा ध्यार ऋमादमी ॥२५

वीढर्को विवुजेंढर्का सुहृदोन्ये रवेधता ।

मियोधनव्ययायत्रिवधुव्यापारग सुहृत् ॥२६

ध्येकानुभक्तामयान् ज्ञात्वा मिथ्रीदीत्सहजामुने ।

मत्कालोधिमुहृन् मित्रपूषकान् क्ल्ययेत् पुन ॥२७

समस्त ग्रह अपने स्थान से ३ १० स्थान को एक चरण से ५, ६ को दो चरण से ४ ८ को तीन चरण से और ७ के को चार-चरण से देखते हैं । पर ३ १० को जनि ५ ६ को बृहस्पति तथा ४ ८ को मङ्गल पूषण दृष्टि (चारों चरण) से देखते हैं अथ ग्रह केवल सप्तम वें पूषण दृष्टि से देखते हैं ॥ २३ ॥ अयन मुहूर्त अहोरात्र मग्न प्रध्वारा तथा घप क्रम से सूर्यादि के कालमान हैं । कटु लवण तिक्त मिश्रित मधुर अम्ल और कषाय क्रमशः सब ग्रहों के रस हैं । ग्रहों के अपने मूल त्रिकोण स्थान से २ १२ ५ ६ ८ ४ स्थानों क स्वामी मित्र होत है और १ ३ ६ ७ १० ११ के शत्रु हाते हैं । सूर्य का बृहस्पति चन्द्र के गुरु बुध मङ्गल के शुक्र बुध बुध क रवि को छोड़कर शेष सभी ग्रह बृहस्पति के मङ्गल को छोड़कर सभी ग्रह शुक्र के चन्द्र-रवि को छोड़कर सभी ग्रह और जनि के मङ्गल—चन्द्र—रवि को छोड़कर सभी ग्रह मित्र होते हैं । इसके अतिरिक्त जो दो ग्रह २—१२ । ३—११ । ४—१० स्थानों में हो वे तात्कालिक मित्र हाते हैं ॥ २४—२७ ॥

स्वोच्च त्रिकोणगेहा पुनवाशीस्थानजवनम् ।

दिक्षु सोम्येज्ययो सूर्यारयो सौरे सिताब्जयो ॥२८

खाद्यदूदगनेन्ये तु वक् च समागमे ।

उत्तरस्था दीप्तकराश्चेष्टा चोर्वयुता मता ॥२६
 निशीदुकुजसौराश्च सर्वदा क्षौहिन चापरे ।
 कूरा वृष्णे सिते सौम्या मत कालवलबुधे ॥३०
 सौरारज्जेज्यशुक्रेन्दुसूर्याधिक्य परस्परम् ।
 पापास्तु वलिनः सौम्या विवक्षा कटकोपगे ॥३१
 बलीवे तदूर्शनाद्वापि चद्रार्काशसम जनु ।
 स्वाशे पापा पराशस्था सौम्या लग्न वियोजिनम् ॥३२
 निबल च तदादेश्य वियोनेजंम पण्डितं ।
 शीप वक्रगते पादावती सृष्टमूरस्तथा ॥३३
 पार्श्वे बुक्षी स्वपानाघ्नी मेहूमुष्की तथा स्फिजी ।
 पुच्छा चतुष्पदागेपु मेपाद्या राशय स्मृता ॥३४
 लग्नाशाद्ग्रहयुग्मदृष्ट्वा वर्णान् बलयुताद्वयेत् ।
 दृक्समान प्रमाणाश्च इष्टरेखा स्मरस्थितं ॥३५

इस विभिन्न ग्रहों के प्रभाव पर विचार करते हुए कहते हैं स्वयं के उच्च, मूल त्रिकोण, गृह और नवमास में स्थान के अनुसार विभिन्न ग्रहों का न्यूनधिक प्रभाव होता है। बुध और बृहस्पति को पूर्व (उदय लग्न) में दिग्दक्षिण घड़ी बल प्राप्त होता है। इसी प्रकार मूय और मङ्गल को दक्षिण (दशम भाग) में, शनि को पश्चिम (सप्तम भाग) में, चन्द्र तथा शुक को उत्तर (अधुयं भाग) में बन मिलता है। मूय और चन्द्रमा उत्तरायण में तथा शुक, बृह बली होने तथा चन्द्रमा के साथ समागम में बली समत मान है। जिन दो ग्रहों में युति होती है तो जो ग्रह उत्तर में होता है, वह अधिक शक्तिशाली समझा जाता है। चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये ग्रह राशि में बली होते हैं, बुध दिन और राशि दोनों में तथा अन्य दिन में ही होते हैं। पाप ग्रह वृष्णपक्ष में और शुभ-ग्रह शुक्लपक्ष में अधिक शक्तिशाली होते हैं ॥ २८-३० ॥ शनि, मङ्गल,

बुध, बृहस्पति, शुक्रे, वेन्द्रमा तथा सूर्य ये सर्व उत्तरोत्तरे अधिक शक्ति रखने वाले ग्रह मय हैं । पापग्रह निर्बल और शुभ बनवाने हों, नष्ट सब ग्रह वेन्द्र में हों तथा लग्न पर शक्ति या बुध की दृष्टि ही, तो चन्द्रमा जिस राशि के बारहवें भेग में हो उसी राशि के अनुसार विद्योनि (पशु पक्षी आदि) का जन्म माना जाता है । अथवा पाप ग्रह अपने नवमास में और शुभ ग्रह अन्य ग्रहों के नवमास में हो तथा विद्योनि राशि लग्न में निर्बल हो तो भी विद्योनि का जन्म मानना चाहिये । मस्तक, मुख, पैर, कन्धा, पीठ, हृदय, दोनों बाले, पेट, गुदा, लिङ्ग, अण्डकोप, चूतड़ और पूंछ आदि अङ्गों में मेषादि राशियों का स्थान होता है । लग्न में जिस ग्रह का योग हो उस ग्रह के समान और यदि किसी का योग न हो तो लग्न के नवमास के समान विद्योनि प्राणी वश (रङ्ग) कहना चाहिए ॥ ३१-३५ ॥

खगम्यशे वलाग्नेर्ग चरमाशे ग्रहान्विते ।
 वांशस्थलांबुज सौरेर्द्वीक्षायोगभवा द्विजा ॥ ३६
 विप्रलस्तनु चद्रज्याकस्तंरुणा जनि वदेत् ।
 स्थलांबुभेन्द्रोश कृतश्चेतरेपा मुदाहृत ॥ ३७
 स्थलांबु च पति खेटो लग्नाद्यावन्मिते गृहे ।
 तावन्त एव तंरवे स्थलजा जलजास्तथा ॥ ३८
 अंतं सारारंवी सौरे दुर्भगा क्षीरिणो विधी ।
 भोमे कंटिकिनो वृया ईज्ये मे सफलाफली ॥ ३९
 पुष्पिता भोगेवे स्निग्धाश्चद्रये कटुका कुजे ।
 श्रुम भक्षे शुभ खेट शुभ वृक्ष कुमुमिजम् ॥ ४०
 कुर्याद्विलोभगो वापि स्वांशोक्तपरमै समेभू ।
 कुजेन्दुहेतुक स्त्रोणा प्रतिमांसमिहृतं वम् ॥ ४१
 नेष्टस्थे जगन्मथास्तै स्त्रोयुक्तासन्तरे रक्षिते ।
 पापयुक्ते क्षिते चूने रुपाप्रीत्या शुभग्रहे ॥ ४२

ग्रह युक्त लग्न में यदि बुध को नवमास हो, चर राशि पर हो और शनि या चन्द्रमा की दृष्टि हो तो स्थल अथवा जल में रहने वाले पत्नी का जन्म समझना चाहिये । चन्द्रमा, बृहस्पति, सूर्य के निर्बल होने पर स्थल अथवा जल के वृक्षों का जन्म जानना चाहिये । उस स्थल का जल का स्वामी लग्न से जितने नवमास आये हो उतनी ही सख्या समझनी चाहिये ॥ ३६-३८ ॥ अगर स्वामी सूर्य हों तो अन्त मार वाले वृक्ष, शनि हो तो दुर्भंग (बेकार), चन्द्रमा हा तो दूध वाले, मञ्जल हो तो काटे वाले, बृहस्पति में फल वाले, बुध से फल रहित, शुक से पूजा वाले वृक्षों का जन्म समझना चाहिये । चन्द्रमा से स्निग्ध, मयल होने से बहुत वृक्ष होते हैं । शुभ ग्रह होने से कुभूमि में भी अच्छे वृक्ष हो जाते हैं और इसके विपरीत ग्रह होने से अच्छी भूमि में उत्तम वृक्ष उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती । स्त्रियों के मासिक घर्म का कारण भी मयल और चन्द्रमा का प्रभाव ही होता है । जब चन्द्रमा स्त्री की राशि से नेष्ट हो और बृहस्पति से देखा जाता हो तो स्त्री को पुत्र का सयोग प्राप्त होता है । नक्षत्र भाव पर पाप ग्रह का योग हो तो रोप-पूर्वक और शुभग्रह का योग हो तो प्रेमयुक्त पति पत्नी का सयोग कहा गया है ॥ ३६-४२ ॥

गुत्रावैन्दुर्जं स्वाशस्थेरीज्य चाग्नित्त्रिणगे ।
 भवेदपत्य विप्रेन्द्र पु मा शङ्कीर्यंशालिनाम् ॥४३
 अग्नवैन्दो गुत्रार्थि चेत् पु स्त्रियोरामय प्रदी ।
 व्यग्रगो मुनी चैवदृष्टधामृरपुप्रदी तयो ॥४४
 गुत्रार्थी मातृपितरो दिवा नक्षत्र शशीनजी ।
 मातृत्वमृगितृष्पादयो वा पश्मिन् गमे शमी ॥४५
 पापदृष्टे शुभे क्षी ने तु मे च लग्नगे यमे ।
 क्षी गेन्दु कुत्र गदृष्टे मृग्युमेव गता ध्रुवम् ॥४
 गुत्रपद्मा पृथ्वनस्यो लग्ना-दू पापमध्यगो ।

यदा तदा गर्भयुता नारी मृत्युमवाप्नुयात् ॥४७

लग्नाच्चन्द्राच्चतुर्यस्थै पापैर्निधनगे कुजे ।

नष्टेन्दौ कुजरव्योश्च बधुरिष्कगयोमृति ॥४८

तन्वस्तसस्थयोभौमरुख्योशस्त्र भव क्षय ।

यन्मासाधिपतिर्नष्टस्तन्मासे सस्रवे त्यजतेत् ॥४९

सयोग काल मे शुक्र, सूय, चन्द्रमा तथा मंगल नवमास पर हों और बृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण मे हो तो सन्तान की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है । यदि उस समय मङ्गल और शनि सूर्य से सप्तम हो तो पुरुष के लिये और चन्द्रमा मे सप्तम हो तो स्त्री के लिए रोगोत्पत्ति का कारण होते हैं । इसी प्रकार ये ग्रह सूय से १२ २ मे हो तो पुरुष के लिये और चन्द्रमा से ही तो स्त्री के लिये मृत्युप्रद कहे गये हैं ॥ ४३-४४ ॥ दिन मे गर्भाधान होने पर शुक्र और सूर्य क्रमश मातृ-पितृ ग्रह होते हैं और रात्रि मे होने पर चन्द्रमा और शनि कहे गये हैं । पितृग्रह विषम राशि मे होने से पिता के लिये और मातृग्रह सम राशि मे होने से माता के लिये शुभ कहे गये हैं । यदि वारहवे स्थान मे पापग्रह हो और शुभग्रह के बजाय पापग्रह द्वारा ही देखा जा रहा हो अथवा लग्न मे शनि हो और वह क्षीण चन्द्रमा और मङ्गल से देखा जाता हो तो गर्भाधान के फलस्वरूप स्त्री की मृत्यु सम्भावित होती है ॥ ४५-४६ ॥ लग्न और चन्द्रमा पापग्रहों के मध्य में हो तो स्त्री और गर्भ या केवल स्त्री की ही मृत्यु की आशंका माननी चाहिये । ४७। लग्न या चन्द्रमा से पाप ग्रह चतुर्थ हो, मङ्गल अष्टम भाव में हो अथवा लग्न से चौथे या वारहवे स्थान में मङ्गल और शनि हो तब भी मृत्यु का भय रहता है । ४८। लग्न मे मङ्गल और सप्तम सूर्य होने से गभवती व शस्त्र मे मारे जाने की सम्भावना होती है । गभ की स्थापना के समय जिस मास का अधिपति अस्त होना है तो उस महीने मे गभ के गिर जाने की सम्भावना समझनी चाहिये ॥ ४९ ॥

सग्नेन्दुगैः शुभं घटं. त्रिकोणाद्यास्त भूषणैः ।
 पार्ष्णिघट्ट लाभस्थै. मुग्घी गर्भो रवीक्षितः ॥
 ओजभे पुरुषाशेके ज्येन्दुलग्नेवंलान्वितै. ।
 गुर्वकी विषमस्थो वा पुंजन्म प्रवदेत्तदा ॥५१
 युग्मभांशस्थितैस्त्वेतु वक्रेन्दुभृगुभिस्तथा ।
 यामग्यानगतैर्वाच्य स्त्रियो जन्म मनीषिभिः ॥५२
 द्वयंगम्या युधमदृष्टा. न्यपक्षे यमलाकरा ।
 मग्न विनीजभावस्य मोर पु जन्मकृतया ॥५३
 मिषो रवीन्दुर्भाषो वा पश्यत ममग रविः ।
 वशोवागविषू ओजे जमी युग्मोज मन्थितौ ॥५४
 कुत्रेक्षिते गुमाशेर्गदुहिता वनीत्र जन्मदा ।
 ममे मितेन्दू भोजग्या ज्ञागगेज्या नृवीक्षितौ ।
 मरुतेऽऽत्तमगो यामस्थाने वा यमत्

चन्द्रमा सम और लग्न विग्न राशि में हो और उन पर मङ्गल की दृष्टि हो, अथवा लग्न, चंद्र और शुक तीनों पुरुष राशि के नवमास में हो तो नपुंसक (हिजडा) का जन्म होता है । यदि सम राशि वाले शुक और चन्द्रमा हो और बुध, मंगल, लग्न, बृहस्पति विषय राशि में स्थित रहते हुए पुरुष गृह में देखे जाते हो तो जुड़वा सन्तान होती है । अथवा लग्न एव चंद्रमा समराशि में हो य बुध, मङ्गल लग्न एव गुरु समराशि के हों तो भी जुड़वा उत्पन्न होने की सम्भावना मानी जाती है ॥ ५४—५५ ॥

ग्रहोदयस्थान् चगाशान् पश्यति ज्ञे स्वभागगे ॥५६
 त्रितय ज्ञाशकाद्युग्ममिथ्रं सममादिशेत् ।
 लग्ने पापात्यभागस्थे तदशस्थ बलिग्रहे ॥५७
 वोर्याढ्यज्ञार्किसदृष्टं कोशस्याब्रह्मवोगिन ।
 सितारेज्याकं चद्रार्कज्ञागेश्तेर्कन्दवोधिपा ॥५८
 मासाना तरसम वाच्य गर्भस्थस्य शुभाशुभम् ।
 त्रिकोगेजे परैर्नष्टं द्विमुखाहिनकपान्वित ॥५९
 अवागावाटावशुभंभसधिस्यं प्रजायते ।
 वीरान् सगीषचदष्टेष्वाष्टार्कातभ सहिता ॥६०
 आरार्की चेज्यभाशस्थी सदतोगर्भकस्तदा ।
 खभेजे भुवि मदारदृष्टे कुब्जस्तु गर्भग ।
 पगुर्मीने यमेद्वारैर्दंष्टे थागेभसधिगे ॥६१
 पापैर्जंडो विधौ गर्भं शुभदृष्टिविर्वजिते ।
 मृगात्यगे वामनक सौरैर्द्वर्कनिरीक्षिते ।
 घोनयोदपगंस्थशं पापास्तेरसिरोह्लादा ॥६२
 रवीन्दुयुक्ते सिंहैगे माहगे मार्ह्यार्कनिरीक्षिते ।
 नेत्रहीना मिथ्रखेटेर्दंष्टे बुद्बुद् लोचना ।
 ध्ययेजो वामनयन दश सूर्या विनाशयेत् ॥६३

जब बुध नवमास में रहकर द्विस्वभाव राशिस्य गृह और लग्न को देखता है तो तीन सन्तान एक साथ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। उनमें से दो बुध के सदृश और एक लग्न के सदृश्य होंगे। यदि घनु-राशि अन्तिम अश लग्न हो, उसी अश में बलवान गृह स्थित हो और वही बुध या शनि से देखे जाते हो तो तीन में भी अधिक सन्तान की सम्भावना समझ लेनी चाहिए ॥१६—१७॥ गर्भकाल दश महीनों के दश स्वामी या अधिपति ज्योतिष शास्त्र में बतलाये हैं। वे क्रम से शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध आधीन लग्नेश सूर्य और चन्द्रमा होते हैं। जिस मास में जैसा बलवत्या निर्बल गृह होना है, उस मास में वैसा ही शुभ या अशुभ प्रभाव गर्भ और गर्भवती पर पड़ता है। बुध त्रिकोण में हो और अन्य गृह निर्बल हो तो गर्भस्य तेषु के दो मुख, चार हाथ, चार पैर आदि होते हैं। चन्द्रमा वृष में और अन्य गृह निर्बल हो तो बालक रूंगा होता है। यदि उन गृहों पर शुभ गृहों की दृष्टि हो तो बालक अधिक दिनों में बोलता है ॥१८--१९॥ मङ्गल और शनि के बुध की राशि नवमास में होने से बालक जन्म लेने समय ही दांतपुक्त होता है। यदि चन्द्रमा कर्क राशि में होकर लग्न में हो और शनि तथा मङ्गल की दृष्टि हो तो मिश्रु गर्भावस्था में ही कुम्भ (कुम्हा) होता है। अगर लग्न मीन राशि की हो और शनि, चन्द्र एवं मङ्गल की दृष्टि हो तो पशु होता है। पापगृहा तथा चन्द्रमा के राशि मन्ध्र में होने तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि न होने से बालक जड़ होता है। यदि लग्न मकर राशि के अन्तिम अश में हो एवं शनि चन्द्रमा तथा सूर्य की दृष्टि हो तो बीना होता है। पञ्चम तथा नवम लग्न के द्रोणान में अशुभ ग्रह होने से बह पैर अथवा हाथों से रहित होता है। सूर्य और चन्द्रमा मिथु लग्न में हो और शनि, मंगल की दृष्टि हो तो अन्ध होता है। अगर शुभ तथा अशुभ दोनों की दृष्टि हाथों तथा पंजुरबुद (पूती) होती है। लग्न में बारहवें भाव पर

चन्द्रमा हो तो बायीं ओर नष्ट हो जाती है और सूर्य हो तो दाहिनी ओर जाती रहती है ॥६१-६३॥

नेष्टा योगा शुभं हृष्टा. पापाः स्युर्नात्र सशयः ।
 मदेस्ते मदभाशेगे निवेकेन्द्रेय्ये जनि. ॥६४
 द्वादशाब्दे शशिन्येव सुतावपि विचितयेत् ॥६५
 आघानेन्दु द्वादशाशा पापास्तद्राशिभि. पुरः ॥६६
 शशाके जन्मभागादि द्विघ्नमिष्टकलाः स्मृताः ॥६७
 पितु परोक्षे जन्मास्यादिन्दोर्नग्नमपश्यति ॥६८
 मध्याद्घ्नष्टेकं विदेशस्ये जनने नारिजन्म यं ।
 मदेन्गस्ये कुजेस्ते च शोस्फुजि मध्यगे विधी ॥६९
 पापामेब्जे त्रिभागे स्त्री स्वायर्ग सद्भिः रद्गत. ।
 सूर्यं स्तदृष्टिगो वापि ज्ञेयो ज्योतिर्विदां वरं. ॥७०
 चतुष्यदशंगे भानो शीषं नयुतं. षण्णं. ।
 योनादतो तु यमनी जायेते मुनितत्तम् ॥७१

अथवा बुध और शुक्र के बीच चन्द्रमा होने पर भी पिता के न होने पर शिशु जन्म होना कहा जाता है। पाप की राशियुक्त लग्न में चन्द्र हा अथवा वृश्चिक राशि के द्रोष्वाण में हो तो सप का जन्म समझना चाहिये। यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो और अन्य पह बलवान हो तो एक ही कोश में यमल (जुडवा) शिशुओं का जन्म होता है।
॥६४-७१॥



॥ त्रिस्कन्ध ज्योतिष का संहिता स्कन्ध ॥

क्रमाच्चैत्रादिमासेषु मेपाद्या भङ्गमा यता ।
 चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वार स नृप स्मृत ॥११
 मेपप्रवेशे सेनानी कर्कटे सस्यपो भवेत् ।
 समोद्यधीश्वर सूर्यो मध्यमश्चोत्तमो विधु ॥१२
 ने ट बुजो गुधो जीवोभृगुस्त्वतिशुभङ्कर ।
 अधमो रवि जो वाच्यो ज्ञाता चैपा बलाबलम् ॥१३
 दण्डाकोर कवधेवा द्वाक्षाकारेश कोलके ।
 दृष्टेर्क मण्डले व्याधिर्भातिश्चोराथंताशनम् ॥१४
 छात्रध्वज पताकाद्य सन्निभैस्तिमितैर्ध्वने ।
 रविमण्डलगीधूम्रं मस्फुलिगीजगत् क्षय ॥१५
 सितरक्ती पीतवृष्णीवर्णा विप्रादिपीडनम् ।
 घ्नति द्वित्रिचतुर्वर्णोभुं वि राजजनान्मुने ॥१६
 ऊर्ध्वं भानुकरेस्ताम्रं नांश याति चमूपति ।
 पीतं नृपमुन श्वेतौ पुरोधाश्चित्रतैर्जना ॥१७

चैत्र आदि वारह महीनो म गण से लगा कर भीन तक वारह राशिया आती रहती है निम मूय ही सक्रांति कही जाती है। चैत्र शुक्ल व प्रथम दिन (प्रतिपदा का) आ वार (दिन) पडता है वही उम

वर्ष का राजा कहा जाता है । मेष राशि में सूर्य का प्रवेश होते समय जो दिन हो वह सेनापति या मंत्री होता है । बक राशि की मन्त्रान्ति याता वार मस्य (अग्नादि) का अधिपति माना जाता है । जब किसी वर्ष का अधिपति सूर्य हो तो वह मध्यम और चन्द्रमा हो तो उत्तम फल प्राप्त होता है । १-२। मङ्गल को अशुभ फल देने, वाता और बुध, बृहस्पति तथा शुक्र को बहुत शुभ फलदायक माना गया है । मणि के अधिपतिरव को अधम कहा गया । इन सब ग्रहों के बलावल को देखकर ही उम वर्ष के न्यूनाधिक शुभ या अशुभ होने का निर्णय किया जाता है । ३ । सूर्य के मण्डल में यदि दृष्ट, कवच, कौश्र अथवा मीन के धावार वाले चिन्ह दिखाई पड़े-तो उसका फल रोग, घाति और चारो का उपद्रव तथा अर्थ नाश होता है । अगर छत्र, ध्वजा पताका, मज्जन मेष, अग्नि की चिनकारियाँ जैसे चिन्ह दिखाई दें तो देश का नाश समझना चाहिए । ४-५। श्वेत, साम, पीला या काला रंग सूर्य मण्डल में जान पड़े तो क्रमशः चारो वर्णों के लोगोंको पीडा सहन करनी पडनी है । यदि इन रंगों में से कई रंग के वर्ण मिले हुये दिखाई पड़े तो राजा सागो का नाश होना है । ६। सूर्य की ऊर्ध्व-चिरणें तारे के रङ्ग की हो तो सेनापति का पीले रङ्गकी हो तो राजकुमार का श्वेत हो तो पुरोधा (पुरोहित) और विभिन्न वर्ण की हो तो जनता का नाश होता है । ७।

धूम्रं नृपपिशगैस्तु जलदाघोमुद्धोजंगत् ।

शुभोक्तं शिशिरे साम्र ककुमाभा वसतिके ॥८

ग्रीष्मश्चापाद्दुरश्चैव विचित्रो जलदागमे ।

पद्मोदिराम शरदि हेमते लोहितच्छवि ॥९

पीत, शीते सितेशृष्टी ग्रीष्मे साहितभारवि ।

रोगानापृष्टिभयकृत् क्रमादुक्तो मुनीश्वर ॥१०

इन्द्रचापाद्धं मूर्तिस्तु भानुभूर्पविरोधकृत् ।

शशरक्तनिभे भानी सग्रामो न चिराद्भुवि ॥११

मयूरपत्रसङ्घाशो द्वादशाब्द न वर्षति ।

चन्द्रमासदृशो भानु कुर्याद् भूपातर क्षितौ ॥१२

अर्को श्यामे कीटभय भस्माभे राष्ट्रज तथा ।

छिद्रेकमण्डले दृष्ट महाराज विनाशनम् ॥१३

घटाकृति क्षुद्रभयकृत्पुरहातोरणाकृति ।

छात्राकृतेदेशहति खड्गभानु नृपातकृत् ॥१४

सूर्य की इन किरणों का रंग यदि धुँवा का सा हो तो राजा का, पिशाच हो तो मेघ (वर्षा) का नाश होता है। अगर किरणें अधोमुख हो तो जगत के लिये अकल्याणकारी होती हैं। यदि गिगिर श्रतु मे मूर्ध ताभ्रवर्ण दिखाई दे तो उसे शुभ कहा गया है। प्रथम प्रकार बसन्त श्रतु मे पीला, वर्षा मे मिले जुले अनेक रंगों का, शरद मे पद्म के रंग का और हेमन्त मे लोहित (रक्त वर्ण) रङ्ग का सूर्य दिखाई पड़े तो वह शुभ होता है। यदि जाड़े की श्रतु मे सूर्य का रङ्ग पीला जान पड़े तो रोग का सूचक है, वर्षा मे श्वेन दिखाई दे तो जलाभाव का चिन्ह है और ग्रीष्म मे लाल रङ्ग का जान पड़े तो किसी प्रकार का भय उपस्थित होता है। सूर्य का आधा भाग इन्द्र धनुष के से रङ्ग का दिखाई पड़े तो राजाओं मे कलह होता है। यदि वह शशक के रक्त के समान दिखाई दे तो शीघ्र ही महायुद्ध छिड जाता है ॥ ८-- ११ ॥ यदि सूर्य का रङ्ग मोर पंख के समान हो तो बारह वर्ष तक वर्षा नही होगी, अगर सूर्य कापी चन्द्रमा के समान दिखाई दे तो राज्य परिवर्तन हो जाता है ॥ १२ ॥ श्याम रङ्ग का दिखाई पडने से कीट-भय उत्पन्न होता है, भस्म के समान हो तो राष्ट्र व्यापी सङ्घट गामने आता है, यदि सूर्य मडल मे छिद्र दिखाई दें तो महाराजा की आकृति वाला सूर्य का विनाश होता है ॥१३॥ घर अजान उत्पन्न करता है, तोरण के आकार वाला नगरो का नष्ट करने वाला होता है, छात्र की आकृति वाला देश का नाश और खड्गित दिखाई पडने पद राजा का अन्त करने वाला होता है ॥१४॥

पाम्यशृङ्गोन्नतश्चन्द्रः शुभदो मीन मेपयोः ।
 सौम्य शृङ्गोन्नतः श्रेष्ठो नृयुङ् मकरयोम्नया ॥१५
 घटोदणस्तु सम. कर्कचापयो. शरसन्निभः ।
 चापवत्सौमहयोश्च शूनवत्तुलकनयो. ॥१६
 विपरीतोदितश्चन्द्रो दुर्भिक्षकलहप्रदः ।
 आपाद्द्वयमूलेन्द्रघण्ट्याना याम्यग. शशी ॥१७
 अग्निप्रदस्तेयचर वन सर्प विनाशकृत् ।
 विशाखा खामिप्रयोर्याम्यपाश्वंग. पापग. शशी ॥१८
 दुर्भिक्ष धनधान्यादिनाशने भयकृत् सदा ।
 फाल्गुन्योरुदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपग. ॥२०
 अस्तगश्चतुरास्याश्चै लोकरत्रयविनाशकृत् ।
 उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रतृगोश्वनहानिद. ॥२१

मीन और मेप राशि में यदि शुक्ल पक्ष में नवीन चन्द्रमा का दक्षिण शृङ्ग उन्नत दिखाई दे तो वह शुभ होता है, मिथुन और मकर राशि में भी ऐसा होना श्रेष्ठ कहा गया है, कुम्भ और वृष में दोनों शुभ होना उत्तम माना गया है। कर्क और धनु राशियों में दोनों शुभ बारणावृत्ति हो तो शुभ होता है। वृश्चिक और मिह में भी, धनुष के आकार के जूग कल्याणकारी माने गये हैं। तुला और (कन्या) में शून की आवृत्ति के शृङ्ग उत्तम कहे गये हैं। यदि चन्द्रमा की आवृत्ति उत्पत्तिकर्ता मानना चाहिए। पूर्वाषाढ, इसमें भिन्न प्रकार की हो तो उसे दुर्भिक्ष और कलह का उत्तराषाढ, मूल, ज्येष्ठा नक्षत्रों में चन्द्रमा दक्षिण की ओर दिखाई दे तो आग्न भय होता है और जलचरों, धलचरों तथा सर्पों का नाश होता है। विशाखा और अनुराधा में यदि दक्षिण हो तो पापफल देने वाला होता है। १७वें या १८वें नक्षत्र में मङ्गल यदि वक्र हो तो उसको 'मुसल' कहते हैं और उसका अघात या भ्रूजमरी का भय उत्पन्न होता है। यदि मङ्गल पूर्वाषाढगुनी या उत्तराषाढगुनी में उदित होकर

उत्तराषाढ मे वक्र हो तथा राहिणी मे अस्त दा तीन लोक के लिए नाशकारी होता है । यदि वह श्रवण नक्षत्र मे उदित होकर पुष्य मे वक्रगति का प्राप्त है ॥१५—२१॥

यदिदग्गोऽभ्युदितो भौमस्तदिदग्भूप भयप्रद ।

मद्यामध्यगतो भौमस्तत्र चव प्रतीपग ॥२२

अवृष्टिशस्त्राभयद पीड्य देवा नृपातकृत् ।

पितृद्विदैवधातृ णा भिद्य ते गडतारका ॥२३

दुर्भिध मरण रोग करोति क्षितिञ्जस्तदा ।

त्रिपूत्तरामु रोहिण्या नैऋते श्रवणे मृगे ॥२४

अवृष्टिदशचरन्भीमो दक्षिणे रोहिणीस्थित ।

भूमिज सबधाष्ण्याना मुदगामी शुभप्रद ॥२५

अनावृष्टाग्निभयवृदनय नृप विग्रह ।

वमुवैष्णव विश्वेन्दु धातृभेषु चरन्नुद्य ॥२६

मिनति यदि तत्तारा वाधावृष्टिभयकर ।

आर्द्रादिपितृभातेषु दृश्यते यदि चन्द्रज ॥२७

तदा दुर्भिधवनहरोगानावृष्टि भीतिवृत् ।

हस्तादिमुत्तरामु विचरन्निन्दुनदन ॥

धेम सुभिन्ममारोग्य वृत्ते रोगनाशनम् ॥२८

मङ्गल जिस ञिहा मे उदय हो उमी तरफ के शासक के लिए अशुभकारी होता है । यदि मङ्गल मघा नक्षत्र से घनता हुआ षकी हो जाय तो उससे अवृष्टि सदाई मगडे की सम्भावना होती है रात्रा के लिए भी भयप्रद होता है । जब मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणी के योगारार का भजन करे ना उग अशान मृत्यु और बीमारी मान जाना कहा गया है । सोना उत्तरा नृगत रोहिणी मूल श्रवण और मृगशिरा-इन नक्षत्रा के बीच होकर मङ्गल घन अथवा रोहिणी के अर्ध रात्र तरफ होकर घनता उगना घन वर्षा का अग्रवृत्त होता है ।

जब मङ्गल सब ग्रहों के उत्तर की ओर होकर चलता है तब उसे शुभ माना गया है और दक्षिण की तरफ चले तो अशुभ ॥२२-२५॥ आधी मेष आदि की बाधा न होने पर साफ आकाश में बुध का उदय होना दिखाई न पड़े तो अनावृष्टि अग्निकाण्ड, और युद्ध का भय समझना चाहिये, घनिष्ठा, श्वषण, उत्तराषाढ मृगशिरा और रोहिणी में चलता हुआ बुध यदि योगताराओं का भेदन करे तो वह लोगो में झगडे और अनावृष्टि की संभावना उत्पन्न करता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, इन, नक्षत्रों में बुध दिखाई पड़े तो अज्ञान, कलह, रोग तथा अवृष्टि का भय जानना चाहिये। हस्त नक्षत्र से आगे के छँ नक्षत्रों में बुध के रहने पर जनता में सुभिक्ष, कल्याण और आरोग्य रहता है ॥२५-२८॥

अहिर्बुध्न्यार्धमाग्नेययाम्यभेषु चरन्बुध ॥२६

वंशाखे थावगे पौषे आपाढम्बुदितो बुध ।

जगता पापफलदस्त्वित्येषु शुभप्रद ॥३०

द्विमारजोदिभास्तस्य पचमेकादशास्त्रिभात् ।

यन्नक्षत्रोदितो जीवस्तन्नक्षत्राख्यवत्सर ॥३१

कार्तिको मार्गशीर्षश्च नृणा दुष्टफल प्रद ।

शुभप्रदो पौष माघो मध्यमो फाल्गुनो मघु ॥३२

माधव शुभदो ज्येष्ठो नृणा मध्यफल प्रद ।

शुचिर्मध्यो नम श्रेष्ठो भाद्र श्रेष्ठ क्वचिन्नर ॥३३

सौम्य मध्यमयाम्येषु मार्गेषु वीथिकाप्रथम् ।

शुक्रस्य दस्रभाज्जेय पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभि ॥३४

नागेभैरावताश्चैव वृषमोऽद्रखराह्वया ।

मृगाजदहनाख्या स्युर्गाम्याता वीथयो नव ॥३५

वंशाख, थावण, पौष और आपाढ में उदय होने पर बुध अशुभ पत्र देता है और अन्य मासों में शुभ पत्र देन वाला होता है

॥२६-३०॥ कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रों के आश्रय से कार्तिक आदि षास होते हैं, परन्तु अन्तिम (आश्विन) पञ्चम (फाल्गुन) और एकादश (भाद्रपद) ये तीन नक्षत्रों से पूर्ण होते हैं । बृहस्पति का जैन नक्षत्रों में उदय होता है, उन नक्षत्रों से सम्बत्सरो के नाम रखे जाते हैं । उन सम्बत्सरो में से "कार्तिक" और "मार्गशीर्ष" नाम वाले सम्बत्सर प्राणियों के लिये अकल्याणकारी होते हैं । पौष और माघ नाम वाले उत्तम फल देते हैं और फाल्गुन तथा चैत्र मध्यम फल देते हैं । वैशाख शुभ और ज्येष्ठ मध्यम होता है । आपाद मध्यम, श्रावण श्रेष्ठ और भाद्रपद कभी श्रेष्ठ और कभी विपरीत होता है ॥३१-३३॥ शुक के तीन मार्ग कहे गये हैं—सौम्य उत्तर, मध्य और साम्य (दक्षिण) । इनमें तीन-तीन वीथियाँ होती हैं और एक-एक वीथी में तीन-तीन नक्षत्र आते हैं । इनमें अश्विनी से आरम्भ करना चाहिए । इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक शुक के मार्ग में नौ वीथियाँ हैं जिनके नाम हैं—नाग, दूम, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, गृग, अज तथा गहन कहे गये हैं ॥३४- ३५॥

सौम्य मार्गं च तिमृषु चरन्वीथिषु भार्गव ।
 धान्यार्थं वृष्टिं सस्याना परिपूर्तिं करोति हि ॥३६
 कृष्णाष्टम्या चतुर्दश्याममामा च यदा सितः ।
 उदयास्तं मन याति तदा जलमयी मही ॥३७
 श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणी भाग्य भेषु च ।
 चरन्छनैश्वरो नृणां सुभिक्षारोग्य सस्यकृत ॥३८
 रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभः सौख्यं च बधनम् ।
 आयासः श्रेष्ठयात्रा च धन लाभ क्रमात्फलम् ॥३९
 बहुधारविजस्त्वेतद्वक्रगः फलमीदृशम् ।
 करोत्येव समं साम्यं शीघ्रगेपूत्क्रमात् फलम् ॥४०

एरुस्मिन्नेव मासे तु चद्रार्कग्रहण यदा ।
 विरोधो धरणीशानामर्घवृष्टि विनाशनम् ॥४१
 यावन्तो दिवसान्वेतुष्टं श्यते विविधात्मव ।
 तावन्मासं फल पच्छा त्यष्टौ साध्य वसरं ।
 ये दिव्या केतवस्तेपि शश्वञ्जीव फल प्रदा ॥४२

उत्तर मार्ग की तीन बीधियो म चलने पर शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और अन्न की पैदावार की वृद्धि करता है ॥३६॥ वृष्ण मघ की अष्टमी, चतुदशी तथा अमावस्या को यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो जाती है ॥ ३७ ॥ श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रो मे विचरण करने पर शनि सुभिक्ष, आरोग्य और वृषि की उपज को बेढाने वाला कहा गया है ॥३८॥ शनि का वतमान जिस भङ्ग मे हो उसी के अनुसार रोग, लाभ हानि-लाभ, मित्रता, बधन, परिश्रम, श्रेष्ठ यात्रा व धन लाभ के फल उत्पन्न करता है ॥३९॥ शनि शश्वञ्जी होने पर ही शनि के व फल स्पष्ट रूप मे दिखाई पडते हैं । यदि वह सम माग पर हो तो फल १० मध्यम होते हैं और शीघ्रगति से हो तो उत्तम फल प्राप्त होता है ॥४०॥ जब एक ही महीने में चन्द्रमा और सूर्य दोनों के ग्रहण पडते हैं तो परिणामस्वरूप राजाओं में लडाई शपथे, अर्घनाश और अवृष्टि का सकट उपस्थित होता है ॥४१॥ जितन दिनो तक केतु (पुच्छलतारा) धाकाश मे दिखाई देता है, उतने ही महीने या सौर वर्षों तक वह अपना शुभा-शुभ फल प्रकट करता रहता है । जो केतु दिव्य होते हैं वे प्राणियो को विविध प्रकार के फल देने बाल होते हैं ॥४२॥

ह्रस्व स्निग्ध सुप्रसन्न श्वेतुकेतु सुवृष्टिकृत् ।
 क्षिप्रादस्तमय याति दीर्घकेतुरवृष्टिवृत् ॥४३
 अनिष्टदो धूमकेतु शक्रचापसमप्रभ ।
 द्वित्रिचतु शूल रूप स च राज्यातकृन्मत ॥४४

प्रणिहारस्तु वर्णाभा दीप्तिमतोर्वं सूतव ।
 केतवरचोदिता पूर्वापरयोर्नृपहानिदा ॥४५
 अथाद्वेश चमूनाथ सस्यपाना बलावलम् ।
 तत्काल च ग्रहचार च ज्ञात्वा फल वदेत् ॥४६
 सौम्यायन मासपटक मृगाद्यभानुभुक्तित ।
 ग्रह सुराणा तद्रात्रि कर्काद्य दक्षिणाय नम् ॥४७
 गृह प्रवेश वैवाह प्रतिष्ठा मौजिवधनम् ।
 माघादौ मगल वर्म विधेय चोत्तरायणे ॥४८
 याम्यापने गहित च कर्म यत्नात्प्रशस्यते ।
 माघादिमासौ द्वौ द्वौ च ऋतव शिशिरादय ॥४९
 मृगाच्छिशिर वसतश्च ग्रीष्मा स्युश्चोत्तरायणे ।
 वर्षा शरच्च हेमत कर्काद्वि दक्षिणायने ॥५०

ह्रस्व (छोटे आकार वाला), स्निग्ध सुप्रसन्न (स्व
 वर्ण का केतु सुवृष्टि का सूचक होता है । शीघ्र अस्त हान वाला
 विशाल आकार का केतु अवृष्टिकारक कहा गया है । ४३। जिस घूमकेतु
 का वर्ण इन्द्र धनुष के तुल्य जान पड़े उसे अनिष्टकारक समझना चाहिये।
 जो दो, तीन या चार प्रकार के रूपों में शूलाकृति दिखाई दे वह राज्य
 को नष्ट करने वाला होता है । ४४। जो केतु पूर्व अथवा पश्चिम दिशा
 में मणि, हार और सुवर्ण के तुल्य प्रभा युक्त दिखाई दे तो उन दिशाओं
 के राजाओं के लिये हानिकारक होता है । ४५। किसी भी मन्वन्तर का
 फल जानने के लिये उस वर्ष के राजा, मंत्री तथा घाम्येश का बलावल
 और उनकी तात्कालिक स्थिति को देखकर फल कहना चाहिये । ४६ ।
 छे महीनों तक मृगादि में सूर्य जब सौम्यायन (उत्तरायण) रहता है, तब
 वह देवताओं का दिन होता है और छे महीने तक कर्कादि राशियों में
 जब दक्षिणायन रहता है उसे देवताओं की राशि कहा जाता है ॥४७॥
 गृह प्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठ मौजि (यज्ञोपवीत) आदि शुभ कर्म माघ

आदि उत्तरायण के महीनो में करने चाहिये । दक्षिणायन के समय इन कार्यों का होना गढ़ित माना गया है । अगर कमी करना ही पड़े तो उसके लिये विशेष पूजा आदि का विधान करना पड़ता है । माघ से आरम्भ करके दो-दो महीनो की शिशिर आदि ऋतुएं बही गई हैं । ४६। मकर से दो-दो राशियो में शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएं उत्तरायण में हाती हैं और कर्क से दो दो राशियो में वर्षा, शरद और हेमन्त दक्षिणायन में होती हैं ॥५०॥

कार्तिके शुक्लनवमी त्वादि कृतयुगस्य च ।
 त्रेतादिर्माघवे शुक्ले तृतीया पुष्यसज्जिता ॥५१
 वृष्णापचदशी माघे द्वापरदि मुदीरिता ।
 कल्यादि स्यात्कृष्णपक्षे नभस्यस्य त्रयोदशी ॥५२
 भाद्रे कृष्ण त्रयोदश्या मघामिन्दु करे रवि ।
 गजच्छाया तथा ज्ञेया श्राद्धे ह्यत्यतपुष्यदा ॥५३
 रवि स्थितश्चरश्चन्द्र क्रूरो वक्रोखिलो बुध ।
 लघुरीज्यो मृदु शुक्रस्तीक्ष्णो दिनकरात्मजः ॥५४
 चित्रादित्तनु विष्वक् वात्याधिमित्र वसूद्विपु ।
 समृगेज्येषु वालाना वर्णवेध क्रिया हिता ॥५५
 उत्तरात्रयमैत्रेन्द्र वसु वारुण भेषु च ।
 पुष्यविषौष्णधिष्ण्येषु नृत्यारम्भ प्रशस्यते ॥५६

सनयुग का आरम्भ कार्तिक में शुक्ल पक्ष की नवमी (अशय-नवमी) को कहा गया है । त्रेता वंशाद्य शुक्ल की तृतीया (अशयतीज) को आरम्भ हुआ । माघ की अमावास्या द्वापर की आदि तिथि बही गई है और पत्तिपुग की आदि तिथि भाद्रपद वृष्णपक्ष की त्रयोदशी बतलाई है । ये सब तिथियाँ विशेष पुण्यप्रद समझी जाती हैं । ५१-५२। भाद्रपद वृष्णपक्ष की तैरस को यदि मूर्ध्न हरत कदाच मे और षग्नमा मघा में हा तों उसे "गजच्छाया" योग कहा जाता है । ऐसा दिन

पितरों के धाढ़ के लिये अत्यन्त पुण्यदायक कहा गया है ॥५३॥ रवि-
वार का दिन स्थिर सोमवार का चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल, बृह-
स्पति लघु शुक्र मनु और शनि तीक्ष्ण कहा गया है ॥५४॥ वित्रा,
पुनवसु ध्रुवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा
और पुष्य नक्षत्र वणवेध सस्वार क लिय उपयुक्त कहे गये हैं ॥ ५५ ॥
उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा,
तमिषा, पुष्य, हस्त और रेवती को नृत्यारम्भ आदि के लिये प्रशस्त
माना गया है ॥५६॥

हस्तर्क्षम् च रवाविन्दी चन्द्रम दत्तम कुजे ।
सौम्य मित्रभमाचार्यं तिष्य पोषण भृगोसुते ॥५७॥
रोहिणी मद्वारे च सिद्धियोगाह्वया अमी ।
आदित्य भौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्र शशाक यो ॥५८॥
जया सौम्ये गुरो रिक्ता शनि पूर्णोति नो शुभा ।
नदा तिष्य शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया ॥५९॥
रिक्ता मन्दे गुरोवरि पूर्णा सिद्धाह्वया अमी ।
एकादश्या मिन्दुवारो द्वादश्यामर्कं वासर ॥६०॥
पष्ठी गुरो तृतीया ज्येष्ठीमी शुक्रे शनैश्चरे ।
नवमी पचमी भौमे दग्धयोगा प्रकीर्तिता ॥६१॥
माघ फाल्गुण वंशाया ज्येष्ठमासा शुभ प्रदा ।
मध्यम कार्तिकी मार्गशीर्षो वै निदिता परे ॥६२॥
चतुर्यमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षान्च सप्तमम् ।
गोघूलिक तद्गुभय विवाहे पुत्र पौत्रदम ॥६३॥

रविवार को हस्त, सोमवार को मृगशिरा, मङ्गल को अश्विनी,
बुध को अनुराधा, बृहस्पति को पुष्य, शुक्र को रेवती और शनिवार
को रोहिणी नक्षत्र हैं तो उस अवसर का सिद्धि योग कहा गया है ।
रवि और मङ्गल को नन्दा, शुक्र और सोम को भद्रा, बुधवार को जया

बृहस्पति को रिक्ता और शनिवार को पूर्णा हो तो उस दिन शुभ कर्म न करे । शुकवार को नन्दा, बुध को भद्रा, मङ्गल को जया, शनिवार को रिक्ता और गुरुवार को पूर्णा तिथि हो तो उसे सिद्ध योग कहा गया है । रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, बृहस्पति को पष्ठी, शुक को अष्टमी, शनि का नवमी तथा मङ्गलवार को पञ्चमी तिथि हो तो 'दग्ध योग' कहा जाता है ॥ ५७-६१ ॥ माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार महीने विवाह के लिये उत्तम, कार्तिक तथा अगहन के महीने मध्यम और अन्य महीने निन्दित कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ सूर्योदय के समय जो लग्न रहता है उससे चतुर्थ लग्न का नाम 'अभिजिद्व' है और सातवाँ "गाधूलि." लग्न कहा जाता है । इन दोनों लग्नों में विवाह कार्य होने से पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है ॥ ६३ ॥

एकद्वित्रिचतु शाला समशाला दशहवया ।
 त पुन षड्विधा शाला प्रत्येक दशषड्विधा ॥६४
 न मदेन्दुदिने प्राची न अजेद्दक्षिणा गुरो ।
 सितार्कयोर्न प्रतीची नोदीची जारयोदिने ॥६५
 इ द्राज पादचतुरास्यार्यं मर्क्षार्णि पूर्वत ।
 शूलानि सर्वद्वाराणि मित्रार्कज्याश्च भानि च ॥६६
 गन्धर्वं नगर चंद्र दिवा नक्षत्र दर्शनम्
 महोल्वापतन वाष्ठतृण रक्त प्रवपंशम् ।
 गाधर्वं देह दिग्धून भूमिरम्प दिवा निशि ॥६७
 अनग्नौ च स्फुलिङ्गाश्च ज्वलन च विनेधनम् ।
 निशोद्र चाप मडूव शिखरे श्वेतवायस ॥६८
 दृश्यते विस्फुलिगाश्च गोगजश्रोष्ट्रमात्रत ।
 जतवो द्वित्रिशिरसा जायते चापि योनियु ॥६९
 एवमाद्या महोत्पाता बहव स्थान नाशदा ।

केचिन्मृत्युप्रदा केचिच्चत्रुभ्यश्च भय प्रदा ॥७०

पर छे प्रकार के बहे गये हैं—एक शाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतुशाला, सप्तशाला तथा दशशाला । इनमें से प्रत्येक के १६ भेद बताये गये हैं ॥६४॥ शनि और सोमवार के दिन पूर्व दिशा की ओर यात्रा न करे, बृहस्पति को दक्षिण की तरफ न जाय, शुक्र और एतवार की पश्चिम की यात्रा निषिद्ध है और मङ्गल को उत्तर की ओर न जाय । ज्येष्ठा, पूर्व भाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में शूल होते हैं ॥६५-६६॥ आकाश में गधर्व नगर का दिखाई देना, दिन में वारे का इष्टिगोचर होना, बड़ी उल्का गिरना, काण्ड, तृण और रक्त की वर्षा, गन्धर्व-दर्शन, दिग्दाह, दिशाओं में धुँवाँ छा जाना, दिन या रात्रि में भूकम्प होना, बिना आग के चिनगारियाँ-सी उड़ती दिखाई देना, बिना ई धन के आग प्रकट होना, रात्रि में इन्द्र धनुष या परिवेश देखना, वृक्ष के ऊपर उजला कौआ दिखाई पडना, आग की चिनगारियाँ दिखाई पडना, गौ, हाथी, घोड़ों के दो या तीन मस्तक वाला बच्चा पैदा होना आदि घटनाये बहुत बड़े उत्पातो और नाश के चिह्न होते हैं । इनमें से कितने ही मृत्यु करने वाले और कितने ही शत्रु का आक्रमण तथा भय को सूचित करने वाले होते हैं ।

॥६७-७०॥



॥ संक्षिप्त छन्द-शास्त्र वर्णन ॥

वैदिक लौकिक चापि छन्दो द्विविध मुच्यते ।
 मात्रा वर्ण विभेदेन तच्चापि द्विविध पुन ॥१॥
 मयो रसो तजो भनी गुहर्लघुरपि द्विज ।
 कारण छदसि प्रोक्ताश्छन्दशास्त्र विणारद -

सर्वगो मगण प्रोक्तो मुखलो यगणः स्मृतः ।
 मध्यलो रगणश्चैव प्रात्यगः सगणो मतः ॥३॥
 तगणोत्तलघुः ख्यातो मध्यगो जीभ आदिगः ।
 त्रिलघुर्नगणः प्रोक्तस्त्रिवा वर्णगणामुने ॥४॥
 चतुर्लस्तु गणाः पञ्च प्रोक्ता आर्यादि समताः ।
 सयोगश्च विसर्गश्चानुस्वारो लघुतः परः ॥५॥
 लघोदीर्घत्वमाख्याति दीर्घो गोलो लघुमंतः ।
 पादश्चतुर्थभागः स्याद् विच्छेदो यति रुच्यते ॥६॥
 सममर्द्धं सम वृत्तं विषम चापि नारदः ।
 तुल्य लक्षणतः पाद चतुष्के सममुच्यते ॥७॥

श्री सनन्दनजी ने कहा—वैदिक और लौकिक दो प्रकार का छन्द कहा जाता है । मात्रिक और वाणिक के भेद से वह लौकिक छन्द भी दो प्रकार का होता है । जिस छन्द में गुरु-लघु मात्राओं का हिसाब होता है वह मात्रिक छन्द कहलाता है और जिस छन्द में वर्णों का ही हिसाब होता है वह वाणिक छन्द कहा जाया करता है ॥१॥ हे द्विज ! छन्द शास्त्र के पण्डितों ने मगण-यगण-गण-तगण - सगण-जगण-भगण-नगण इन आठ गणों को छन्द में कारण बतलाया है तथा इन गणों के साथ गुरु और लघु भी कारण स्वरूप होते हैं ॥२॥ ये गण तीन-तीन वर्णों के होते हैं । जिस गण में तीनों वर्ण गुरु होते हैं वह मगण होता है । यगण में प्रथम वर्ण लघु होता है और शेष दो गुरु होते हैं । जिस गण के मध्य का वर्ण लघु और शेष दो गुरु होते हैं वह रगण कहा जाता है । सगण में अंतिम वर्ण गुरु और शेष दो लघु होते हैं ॥ ३ ॥ जिस गण में अंतिम वर्ण लघु और शेष दो गुरु होते हैं वह नगण तथा मध्य का वर्ण गुरु और शेष दो लघु होते हैं जगण होता है । आदि का वर्ण जिस गण में गुरु होता है वह भगण कहलाता है । तीनों वर्ण जहाँ लघु हैं वह तगण और तीनों जिसमें गुरु हो वह मगण कहा जाया

करता है ॥४॥ पञ्चुर्वा आर्यादि से सम्मत पाँच गण कहे जाते हैं । तयोः—विमर्ग और अनुस्वार सप्त वर्ण से परे हो तो सप्त वर्ण को भी दीर्घता होजाया करती है । जो दीर्घ अर्थात् दो मात्रा वाला होता है उमरों गुरु कहते हैं और जो ह्रस्व एक मात्रा वाला होता है वह सप्त होजाया करता है । वर्ण को उच्चारण के कम से कम समय को ही मात्रा कहा गया है । इसी हिमाय से दीर्घ में दुगुना समय लगता है । दुगुने समय से भी अधिक समय जिसमें लगता है वह गुरु कहा जाता है । छन्द में वेचन सप्त और दीर्घ होने का ही विचार होता है। छन्द का पञ्चुर्नमाय पाद कहलाता है । जो विच्छेद है ताही उसको पति कहा जाता है ॥५॥६॥ हे भारत! मात्रिक छन्द तीन प्रकार का होता है—मम-अर्धं, मम और विषम । तुल्य सहाय से जिसके चारो पाद समान होने हैं वह मम छन्द कहलाता है ॥७॥

आ दत्रिणे द्विचतुर्थे सममद्वे मम तत्रम् ।
 मम भिन्न यस्य पादचतुर्थे विषम हितुम् ॥८
 एताद्वारात् समारभ्य वर्णैर्वाभ्य वृद्धित ।
 पञ्चविंशत्यक्षर यावत् पादस्तावत् पृथक् पृथक् ॥९
 तत्पर पञ्चवृष्टपादि दद्यात् परितन्पिता ।
 निमि पञ्चभिः पदैर्ध्वया शृणु मजा यथोत्तरम् ॥१०
 उक्तायुक्त तथा मध्या प्रतिष्ठा स्यात्पुत्रिवा ।
 गायन्मुष्टिगनुष्टुप् च वृद्धी पतिरेव च ॥११
 त्रिष्टुप् च जगती चैव तथात्रिजगती मया ।
 षडक्षरी मानिपूर्वा च अष्टाक्षरी मम स्मृते ॥१२
 धृतिश्च त्रिष्टुप्चैव हृति प्रष्टुतिराष्टुति ।
 त्रिष्टुति मष्टुतिश्चैव तथात्रिष्टुतिरष्टुति ॥१३
 इत्येताश्छन्दसा मजा प्रख्यात भेदभाषिता ।
 पाद सर्वगुरो पूर्वात्तप्तु स्यात्पुत्रिरेव ॥१४

जल में खड़ा होकर जलाशय की मिट्टी को बाँधें, हाथ को हथेली और मणिबन्ध (पहुँचा) तक लगाकर शुद्धि करे । बाँधे हाथ की एक अँगुली से कुछ मिट्टी लेकर उसे अपने शिर के चारों तरफ घुमा कर 'फट्' शब्द का उच्चारण करे ॥८१॥ फिर हथेली की मिट्टी को छ अङ्गुली में लेपन करे और तब धो डाले । इस प्रकार बाह्य स्नान करके आन्तरिक स्नान करे । मन में यह भावना करे कि अनन्त सूर्यों के समान प्रकाशमान और देवी आभूषणों तथा दिव्य आभूषणों से सम्पन्न भगवान् के चरणोदक से उत्पन्न दिव्य धारा मेरे ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा अन्तरङ्ग में प्रवेश कर रही है ॥१२१४॥

तथा सक्षालयेत्सर्वं मतद्दह्यत मलम् ॥१५

तत्क्षणाद् विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपम ।

तत श्रौतोक्त विधिना स्नात्वा मन्त्री समाहित ॥१६

मन्त्रस्नाने तत कुर्यात्तद्विधान मथोच्यते ।

देश कालीच सर्वोत्थं प्राणायाम पङ्कवै ॥१७

कृत्तार्कं मडलात्तीर्थं न्याह्वयेन् मुष्टिमुद्रया ।

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करै स्फुष्टान ते र वै ॥

तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थ दिवावर ॥१८

गमे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन्मनिधिं वुह ॥१९

इत्या वाह्य जले तानि मुधारीजेन योजयेत् ।

गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगु ठम च ॥२०

सरथ्यामन्त्रेण तत्पश्चात्त्रमुद्रा प्रदर्शयेत् ।

वह्निषवन्दु मडलानि तत्र सचिन्तयेद् बुध ॥२१

। फिर उनी दिव्य धारा से अन्तर के सम्पूर्ण मूल को धावना द्वारा धो डाले । इसमें साधक रजोगुण से मुक्त होकर स्फटिक के समान शुद्ध और पवित्र हो जाता है । फिर शार्लोक्त विधि में

तीर्थ-जल में स्नान करने मना-ग्नान करे । इसके त्रिये देव और बाल का गवलय करने प्राणायाम और वरुण ग्याम करे और दोनों हाथों में 'मुष्टि मुद्रा बना सूर्य मण्डल में ध्यान हूय तीर्थों का आवाहन करे । आवाहन का विषय मंत्र है (ब्रह्माण्डादर जन्मिन्मन्त्रिधिपुत्र) अर्थात्—हे सूर्य देव ब्रह्माण्ड के भीतर जिनने तीर्थ हैं उन सबका आदर का विरलें स्पर्श करता है । इस समय मिथ्या-ज्ञ के आधार पर आप मुझे सब तीर्थों का पुण्य प्रदान कीजिये । गंगा, यमुना, सादावती, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु कावरी इन सानोमहा नदिया का प्रथम इति जल में स्नानाय । ॥१५।१६॥ जल में इस प्रकार सब तीर्थों का आवाहन करके उग मुखा बीज (व) से मुक्त करे और धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करके प्रवृष्य द्वारा अवगुण्डित कर । अग्न मुद्रा द्वारा गरक्षण करके षड्मुद्रा का प्रदशन करे और उगी जल में अग्नि सूर्य और षड्मा का मण्डलां की स्थापना करे । (धेनु मुद्रा की विधि यह है कि बाँव हाथ की अँगुलियों के बीच दाहिने हाथ की अँगुलियों को मगुल्य करके दावी तरफ की मध्यमा में समावे । दाँव हाथ की मध्यमा में बाँव हाथ की तरफ की समावे । फिर बाँव हाथ की अनामिका में दाँव हाथ की अँगुलियों का समाहित कर । ऐसी भावति बनाकर उरका मुँह में धे की लग्न करदे । एही धेनुमुद्रा कही जाती है) ॥२०।२१॥

मयवेदकं मन्त्रेण मुधावीरेन तज्जलम् ।

मुनेन शंकादगघा तत्र समस्य भावयेत् ॥२२

पूत्रायत्र न तन्मध्ये स्थानादावाप्य देवताम् ।

स्नापति शशवेसां न मानसं नपयार्कं ॥२३

मिश्रागतस्थां ता नाना तज्जलं प्रन्मेऽमुषी ।

आधारं सर्वं नूपात्तं शिखीरतुतीजम् ॥

तद्गन्धैश्च तथा प्राणा आत्मना प्रपमाम्यम् ॥२४

इति नाना समस्येण मन्त्रिन्दिशानि भाष्यम् ।

निमज्ज्य सलिले तस्मिन्मूल देवाकृति स्मरेत् ॥२५

निमज्ज्योन्मज्ज्य त्रिश्चैव सिचेत्क बु भमुद्रया ।

त्रिमूर्त्तेन चतुर्मंत्रैरभिषिचेन्निजा तनुम् ॥२६

पृथिव्या यानि तीर्थानि दक्षाघ्नौ तानि भूसुरे ।

स्वष्ट देव समुद्रास्य मन्त्री मानण्ड मण्डले ॥२७

तत्सतीर समागत्य वस्त्र सक्षाल्य यत्नत ।

वाससी परिधायथ कुर्यात् सध्यादिव सुधी ॥२८

तत्पश्चात् मूर्ध्नि मन्त्र और सुधा बीज (व) द्वारा जल को अभिमन्त्रित मूल मन्त्र से ग्यारह बार अभिमन्त्रित करे और मध्य में पूजा-यन्त्र की भावना करते हुये देवता का आवाहन करे । उसी समय देवता की मानसिक रूपसे स्नान कराके उपचार सहित उसकी पूजाकरे । मेरे इष्टदेव यही, पर सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं यह भावना करके उन्हे नमस्कार करे । साथ ही निम्न मन्त्र पढ़कर जल को भी प्रणाम करे (आधार ऐसी प्रणमायहम्) अर्थात् 'हे जन । तुम सब भूतों के और महा तेजस्वी विष्णु भगवान के भी आधार हो । इस कारण आप विष्णु रूप ही हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥२९—२४॥ इस प्रकार नमस्कार करके साधक अपने शरीर के सातों छिद्रों को बंद करे और तीन बार जल में डुबकी लगावे । फिर ऊपर उठकर दोनों हाथों से बुम्भमुद्रा (घड़ा के समान) द्वारा अपने सिर पर अभिषेक करे फिर अपने इष्टदेव का सूर्य मण्डल में विसर्जन करके धुले हुये वस्त्र धारण करके सध्या आठि वम करे) ॥२५ २८॥

रोगाद्यशक्तो मनुज कुर्यात्तत्राघमपर्षणम् ।

अथवा भस्म नो स्नातो रजोभिश्चैव वा क्षम ॥२६

अथ सध्यादिक कुर्यात् स्थित्वा च्वासने शुभे ।

कशत्रुन तथा नारायणन माघवनच ॥३०

सप्राश्य ताय गाविन्द विष्णुभ्या क्षालयेत् करी ।

मधुसूदन त्रिविक्रमाभ्यामोष्ठी च मार्जयेत् ॥
 वामन श्रीधराभ्यां च मुख हस्ती स्पृशेत्ततः ।
 हृषीकेश पद्मनाभाभ्या स्पृशेच्चरणी ततः ॥३२
 दामोदरेण मूढानं मुखं मत्तर्पणे न च ।
 वागुदेवेन प्रसृम्नेन स्पृशेन्नासिके ततः ॥३३
 अनिरुद्ध पुरुषोत्तमाभ्या नेत्रे स्पृशेत्ततः ।
 अधोक्षज नृमिहाभ्यां श्रवणे सस्पृशेत्तथा ॥३४
 नाभिं स्पृशेदव्युनेन जनार्त्तनेन वक्षसि ।
 हरिणा विष्णुनामौ र्दण्डवाचमन तिरदम् ॥३५

यदि कोई बीमारी आदि में कमजोर होने में स्नान न कर सके तो अथवापण द्वारा मर्म अथवा रज में स्नान करके शुभ आग्न पर धीरे धीरे तनूया कर्म करे ॥३२॥३३॥ 'निर ॐ वेणवाय नमः' ॐ नारायणाय नमः' ॐ माधवाय नमः' इन तीन मंत्रों में तीन बार जल वा आबमन करे । ॐ पौरिन्दाय नमः' ॐ विष्णवे नमः' इन मंत्रों को बोलकर दोनों हाथों को धा से । निर 'ॐ वागुसूदाय नमः' ॐ निविक्रमाय नमः' द्वारा दोनों ओंठी वा मार्जन करना । ३५। ॐ वामनाय नमः' ॐ श्रीधराय नमः' में मुख और दोनों हाथों को स्पृश करणा । ॐ हृषीकेशाय नमः' ॐ पद्मनाभाय नमः' द्वारा दोनों पैरों को स्पृश करणा ॥३६॥ ॐ दामोदराय नमः' ॐ मत्तर्पणाय नमः' में मुख वा और ॐ वागुदेवाय नमः' ॐ प्रसृम्नाय नमः' में छमन दाँवें और दाँवें नथूने को स्पृश करे । ३३ । ॐ अनिरुद्धाय नमः' ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' में दोनों नेत्रों को, ॐ अधोक्षकाय नमः' ॐ नृमिहाय नमः' में दोनों हाथों वा, ॐ अश्रुनाय नमः' ॐ जनार्त्तनाय नमः' में नाभ स्पृश को तथा ॐ हरिणे नमः' ॐ विष्णवे नमः' में दोनों कानों को स्पृश करे । इही रीत्येव आबमन की विधि है ॥३६॥३७॥

प्रणवादिहोतृमूर्ति, वेणवादिन नामनि ।

मुखे नसो प्रदेणिन्या नामया नेत्र कर्णं यो ॥३६
 कनिष्ठिया नाभि देश सर्वत्रागुष्ठयोजनम् ।
 आत्म विद्या शिवैस्तत्त्वं स्वाहातं शैवमीरितम् ॥३७
 दीर्घं त्रयेन्दु युग्म्योम पूर्वकैश्च पिवेज्जलम् ।
 आत्मविद्या शिवैरेव शैव स्वाहा वसानिकं ॥३८
 वाग्लज्जा श्रीमुखं प्रोक्त शक्त स्वहा वसानि वै ।
 वाग्लज्जा श्रीमुखं प्रोक्त द्विजाचमनमर्थदम् ॥३९
 तिलकं च तत कुर्याद् भाले सुष्टु गदाकृति ।
 नदक हृदये शखचक्रे चैव भुजद्वये ॥४०
 शाङ्गवाण मस्तके च विन्यसेत् क्रमश सुधी ।
 कणमूले पार्श्वयोश्च पृष्ठे नाभौ ककुच्चपि । ४१

आदि मे प्रणव और अन्त मे चतुर्थी का एक वचन और नम' पद लगा पूर्वोक्त केशव आदि नामो से मुख आदि नामा से मुख आदि का स्पर्श करना चाहिये । मुख और नाक को तृतीय अँगुली से स्पर्श करना चाहिये । नेत्रो तथा काना को अनामिका से तथा नाभि देश को कनिष्ठा अँगुली से स्पर्श करना चाहिये । अँगूठा का स्पर्श सभी अंगो मे करना चाहिये । 'स्वाहा' पद अन्त मे लगाकर चतुर्थी विभक्ति के साथ आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व का उच्चारण द्वारा विद्या तृया शिव आचमन कहा जाता है ॥३६,३८॥ आदि मे क्रमश तीन दीर्घ अनुस्वार और ह (अर्थात् हा हीं हैं) लगाकर अ त मे 'स्वाहा' पद' वाला आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व शब्दो का उच्चारण करने से (जैसे— हाँ आ मतत्वाय स्वाहा — ह्रीं विद्या-तत्वाय स्वाहा') उस आचमन को शैव कहा जाता है । आदि मे 'ऐ ह्रीं श्रीं ये बीज लगाकर स्वाहान होने से उस आचमन को शाक्त आचमन कहा जात' है । हे ब्रह्मान् वाग्बीज ए लज्जाबीज (ह्रीं) और श्री बीज (श्रीं) क प्रारम्भ मे प्रयोग करने से वह आचमन अभीष्ट

उद्देश्य का पूरा करने वाला होता है ॥३६॥ उसके पश्चात् मस्तक पर गदा की आकार वाला सुन्दर तिलक लगाना, हृदय पर नक्षत्र नामक खड्ग की ओर दोनो भुजाओ पर क्रमशः खड्ग की ओर दोनो भुजाओ पर क्रमशः खड्ग और चक्र की आकृति बनानी चाहिये । उत्तम बुद्धि वाले वैष्णव को क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्व भाग, पीठ, नाभि, ककुद (शिखा) में भी शाङ्ग धनुष और बाण का न्यास करना आवश्यक है ॥४०॥४१॥

एव तु वैष्णव कुर्यान् मृदिभि तीर्थोद्भवादिभिः ।
 अग्निहोत्रोद्भव भस्म गृहीत्वा त्र्यवकेणु तु ॥४२
 किंवाग्निरिति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य पञ्चमन्त्रकैः ।
 क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्योजातादि नामभिः ॥४३
 पञ्चकुर्यात् त्रिपुण्ड्राणि भालासोदराहत्सु च ।
 शैव शाक्त त्रिकोणाभ नारीवदवा समाचरेत् ॥४४
 वृत्त्वा तु वंदिकी सध्या तान्त्रिकी च समाचरेत् ।
 आचम्य विधिवन्मन्त्री तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत् ॥४५
 ततस्त्रिवार दर्भेण भूमौ तोय विनि क्षिपेत् ।
 सप्तधा तज्जलेनाथ मूर्धानमभिषेचयेत् ॥४६
 ततश्च प्राणानायम्य कृत्वा न्यास पङ्कगम् ।
 आदाय वाम हस्तेष्वु दक्षेणाच्छाद्य पाणिना ॥४७
 वियद्वाटवग्नि तोयक्ष्मा दीजैः समस्य मन्त्रवित् ।
 मूलेन तस्मात् श्चोतद्भिर्विन्दु भितस्तत्त्व मुद्रया ॥४८
 स्वशिर सप्तधा प्रोक्ष्यावशिष्ट तत्पुनर्जलम् ।
 कृत्वा तदक्षर मन्त्री नासिकातिक मानयेत् ॥४९

वैष्णव पुरुष को तीर्थ की मिट्टी (गोपी चन्दन) आदि से तिलक करना चाहिये । शैव को 'त्र्यम्बक' मन्त्र से अग्निहोत्र की भस्म लेकर 'अग्निरिति मन्त्र' से अभिमन्त्रित करने तत्पुरुष, अघोर, सद्यो-

जात वामदेव और ईशान—इन नामों से क्रमशः मस्तक, कंधा उदर, भुजा और हृदय—इन स्थानों पर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए । शक्ति के उपासकों को त्रिकोण की आवृत्ति का अथवा त्रिभुजों व जैसा गोल तिलक लगाना चाहिये ॥४२-४४॥ वैदिक संध्या करने के पश्चात् साधक को आचमन करके तांत्रिक संध्या करनी चाहिये । इसके लिये पूर्वपक्ष जल में तीर्थों का आवाहन करके कुशा से पृथ्वी पर तीन बार जल छिड़कना । फिर उसी जल से अपने मस्तक पर सात बार अभिषेक करना ॥४५॥४६॥ फिर प्राणायाम और पङ्कजास करके बायें हाथ में जल लेकर उस दायें हाथ से छटना और मङ्गल पुरुष को आकाश, वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी के बीज मन्त्रों द्वारा उसे अभिमन्त्रण करना । फिर तत्वपट्टा पूर्वक अपने मस्तक पर सात बार माञ्जरी करना और शेष जल को बीजाक्षरों से अभिमन्त्रित करके नाक को पास साना ॥४७॥४८॥

जल तेजोमय तच्चाकृष्यात् शचेडया पुन ।
 प्रक्षाल्यान्तर्गतं तेन कल्पय तज्जलं पुन ॥५०
 कृष्ण वर्णं पिङ्गलया रेचेत् स्वाग्रतस्तथा ।
 क्षिपेदस्त्रेण तत्पश्चात् कल्पिते कुन्दिशोपले ॥५१
 एतद्धि सर्वपापघ्नं प्राकृतं कंवाघमपणम् ।
 ततश्च हस्तौ प्रक्षाल्य प्राग्बदाचम्य मन्त्रवित् ॥५२
 समुत्थाय च मन्त्रज्ञस्नात्त्रपात्रे सुमादिकम् ।
 प्रक्षिप्यार्घं प्रदद्याद्दे मूलार्तमन्त्रमुच्चरन् ॥५३
 रविमंडलं सस्थाय देवायाध्यं प्रकल्पयेत् ।
 दत्तवार्धं त्रिरनेनाथ देवं रविगतं स्मरेत् ॥५४
 स्वकल्पोक्ता च गार्ग्यनी जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
 अष्टाविंशतिर्वारं वा गुह्यं तिमनुनापयेत् ॥५५

उस तेजोगम जल को हड़ा नाड़ी द्वारा भीतर खींचने की भावना करके अन्दर, के सत्र मलों को धोना । फिर भावना द्वारा काले पहे हुए उस जल को पिगला द्वारा बाहर निकालना । और अपने सम्मुख ब्रह्ममय पत्थर की कल्पना के अस्त्र मन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जल को पत्थर पर डाल देना । इस क्रिया को सब पापों का नाश करने वाली अधमर्षण क्रिया कही जाती है । फिर मन्त्र-वेत्ता पुरुष को पूर्ववत् आचमन करके धडा होना और तपि के पात्र में पुष्प चन्दन आदि डालकर मूल मन्त्र का उच्चारण करके सूर्यमण्डल में विराजमान इष्टदेव का अर्घ्य देना चाहिये । इस तरह तीन बार अर्घ्य देकर आराध्य देव का ध्यान करना ॥ ५०-५४ ॥ इसके पश्चात् अपने-अपने कल्प में बताये भुमार गायत्री का १०८ या २८ बार जप करना । फिर उस जप को 'गुह्येति गुह्यगोप्त्री त्व' द्वारा समर्पित करके गायत्री का ध्यान करना ॥५५॥

उद्यदादित्य सकाशा पुस्तवाक्ष वरायुजाम् ।

वृष्णाजिनावरा ब्राह्मी ध्यायेत्ताराकितेन्वरे ॥५६

मध्याह्ने वरदा देवी पार्वती सस्मरेत्पराम् ।

शुक्लावरा वृषारूढा त्रिनेत्रा रविविद्यगाम् ॥५७

घर पाश च शूल च दधाना नृकरोटिकाम् ।

सायाह्ने रत्नभूपाद्या पीतकौशेय वाससाम् ॥५८

श्यामरगा चतुर्हस्ता शख चत्र तसत्कराम् ।

गदा पद्म धरा देवी मूर्धासन कृताश्रयाम् ॥५९

ततो देव नृपीशचैव पितृंश्चापि विधान् वित् ।

तर्पयित्वा स्वेष्टदेव तर्पयेत् कल्पमागतः ॥६०

गुह्यं पक्तिं च सतर्प्यं साय सावरण तथा ।

सायुध वैनतेय सतर्पयामीति तर्पयेत् ॥६१

नारद पर्वत विष्णु निपठोद्धव दाश्वान् ।

विष्णवसेन च शैलेय वैष्णव परितर्पयेत् ॥६२

एव सतर्प्य विप्रेन्द्र दत्त्वार्घ्यं च विवस्वते ।

पूजागार समागत्य प्रक्षाल्याद्यो उपस्पृशेत् ॥६३

प्रात उदय होते हुए सूर्य की प्रभा वाली, हाथो मे पुस्तक व माला लिये हुये वृष्णाजिनयुक्त श्वेत वस्त्र धारण किये ब्राह्मी शक्ति का ध्यान करे । मध्याह्न मे वर देने वाली वरदायिनी पार्वती देवी का स्मरण करे कि वह रौद्री शक्ति सफेद वस्त्र धारण किये है, वृषभ पर सवार है, तीन नेत्रायुक्त सूर्यमण्डल मे स्थित है, हाथो मे वर, पाश, शूल लिये है और मुण्डमाला से विभूषित है । सायकाल के समय रत्नाभूषणो से युक्त पीले कौपेय वस्त्र धारण किये श्याम वर्ण वाली, चार हाथो मे शख—चक्र—गदा—पद्म धारण किये, सूर्यासन पर विराजमान वैष्णवी शक्ति का ध्यान करे ॥ ५६—५६ ॥ इसके पश्चात् विधि के जानने वाले साधक को देवताओ, ऋषियो तथा अपने पित्रो का तर्पण करके कल्प मे बतलाई रीति से अपने इष्टदेव का भी तर्पण करना । फिर पहले से चली आती हुई गुरु-परम्परा का तर्पण करके अङ्ग, आयुध और आवरण सहित विनता के पुत्र गरुड का “साङ्ग सावरण सायुध वैनतेय समर्पयामि” बोल कर तर्पण करना चाहिए । ॥ ६०—६१ ॥ इसके पश्चात् नारद, पर्यंत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक विम्बकुसेन तथा शैलेय का वैष्णव पुरुष को तर्पण करना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! इतनी क्रिया करने के पश्चात्, सूर्य का अर्घ्य देकर पूजागृह में आना और हाथ पैर धोकर आचमन करना चाहिए । ॥ ६२—६३ ॥

अग्निहोत्रस्थितानग्नीन् हुस्वोपस्थाय यत्नत ।

पूजा स्थल समागत्या द्वारपूजा समाचरेत् ॥६४

णेश चोर्द्धशाखाया महालक्ष्मी च दक्षिणे ।

वरस्वती वामभागे दक्षे विघ्नेश्वर पुन ॥६५

क्षेत्रपाल तथा वामे दक्षे गगा प्रपूजयेत् ।
 वामे च यमुना दक्षे घातार वामतस्तथा ॥६६
 विघातार शखपद्मनिधीश्च वामदक्षयो ।
 द्वारपालास्तनोम्यच्चत्तत्कल्पोदितात् सुधी ॥६७
 तत स्थित्वासने धीमानाचम्य प्रयत शुचि ।
 दिव्यातरिक्ष भीमाश्च विघ्नानुत्सार्य यत्नत ॥६८

तत्पश्चात् अग्निहोत्र में स्थित गाहपत्य आदि अग्नियो की वृत्ति के लिए हवन करके यत्नपूर्वक उनकी उपासना करके पूजा के स्थान में आना और द्वार पूजा का समारम्भ करना ॥ ६४ ॥ द्वार की ऊपर की शाखा में गणेश की दक्षिण भाग में महालक्ष्मी की वाम भाग में सरस्वती की दक्षिण में फिर विघ्नराज गणेश की वाम भाग में क्षेत्रपाल की दक्षिण में गङ्गा की वाम भाग में यमुना की दक्षिण में घाता की वाम भाग में विघाता की दक्षिण में शखनिधि की वाम भाग में पद्मनिधि की पूजा करनी । इसके पश्चात् विद्वान् पुष्प को द्वारपाली की पूजा करनी ॥ ६५—६७ ॥ इसके पश्चात् पवित्र होकर मन और इन्द्रियो का नियम करके आसन पर बैठकर स्वयं अतरिक्ष तथा पृथ्वी के विघ्नो का निवारण करके केशव कीर्त्यादि मानृता न्यास करना ॥६८॥

वेशवाद्या मातृवा तु न्यसेद् वैष्णव सत्तम ।
 केशव कीर्ति सायुता यास्या नारायण स्तथा ॥६९
 माघवस्तुष्टि सहितो गोविन्द पुष्टि मयुत ।
 विष्णुस्तु धृतिसायुक्ता ज्ञातियुद्ध मधुमूदन ॥७०
 त्रिविक्रम त्रिपायुक्तो वामना यपिनायुत ।
 श्रीधरो मेघवा मुक्ता हृषीकेशश्च हृषया ॥७१
 पद्मनाभ मुना श्रद्धा लज्जा दानोदरान्विता ।
 वामुदेवश्च सद्भीयुक् सावयण सरस्वती ॥७२

करके उसके ऊपर आठ बार प्रणव का जप करना । मनुष्यों के लिये यह सर्वसिद्धदायक अर्घ्य बतलाया गया है । श्रेष्ठ साधक को उससे थोड़ा-सा जल लेकर अपने ऊपर और समस्त सामग्री के ऊपर पृथक २ छिड़कना । अपने बाँये भाग में आगे की तरफ एक त्रिकोण मण्डल बनाना, उम त्रिकोण की षटकोण से आवृत्त करना, फिर उसके चारों तरफ एक गोल रेखा खींचनी । फिर उस सबको एक चौकोर रेखा से घेर कर ऊर्ध्व जल से उसका अभिषेक करना ॥६।७॥

ततस्तु साधक श्रेष्ठ स्तभयेच्छ्वमुद्रया ।
 आग्नेयादिषु कोणेषु हृदाद्यग चतुष्टयम् ॥८
 नेत्र मध्ये दिक्षु चास्त्र त्रिकोणे पूजयेत्तत ।
 मूल खड्ग त्रयेनाथा धारशक्ति तु मध्यगाम् ॥९
 एव सापूज्य विधि वदस्त्र साक्षालित हृदा ।
 प्रतिष्ठाप्य त्रिपदिका पूजयेन्मनुनामुना ॥१०
 म वह्निमडला येति ततो दश कलात्मने ।
 अमुक् कार्येति पाश्राते सनापहृदयातिमे ॥११
 चतुर्विंशति वर्णोद्यमाधारस्याचने मनु ।
 स्वमत्र क्षालित शय सास्याप्याथ समर्चयेत् ॥१२

उमके बाद श्रेष्ठ साधक का श्वमुद्रा से स्तम्भन करना, आग्नेय आदि चारों कोना में हृदय, शिर, गदन और कवच (बन्धे) इन चार अङ्गों की पूजा करके मध्य भाग में नेत्रों तथा दिशाओं में पुण्य अक्षय आदि से अस्त्र की पूजा करनी । फिर त्रिकोणमण्डल के मध्य में स्थित आधार शक्ति का मूलखण्ड-त्रय से पूजन करना । ८।९ । इन प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (गत्) के उद्व्यारणपूर्वक घोंई हुई तीव्र वेगों की निपाई रखकर नीचे के मन्त्र से उगरी पूजा करनी । म वह्निमडलाय दशकवारमत्र देवताप्यवाद्या सत्ताय नमः । ' आधार पूजन का विधि यह २४ अंगों का मन्त्र है । फिर श्व की

उसके मन्त्र से धोकर स्थापित करना और उसकी पूजा करनी ।

॥१०१५॥

दध्वापूरयेत्तस्मिन्पूजयेन्मनुनामुना ।

ॐ सोम मडलायेति षोडशाते कलात्मने ॥१३

अमुकाघ्यामृतायेति हृन्मनुश्चार्घ्यं पूजने ।

तत्र षोडश सख्याना यजेच्चद्रमस कला ॥१४

प्रोक्षण्या तज्जल किं चन् कृत्वात्मान त्रिधातत ।

आत्मतत्त्वात्मने हृच्च विद्यातत्त्वात्मने नम ॥१५

शिव तत्त्वात्मने हृच्च इत्यर्तमनुभिस्त्रिभि ।

प्रोक्षेन् पुष्पाक्षतैश्चापि मडल विधि वत्सुधी ॥१६

अथवा मूत्रगायत्र्या पूजा द्रव्याणि प्राक्षयत् ।

पाशाघ्या चमनीयाथ मधुपर्कयमप्युत ॥१७

पाशाण्याधारयुक्तानि स्थापयद्विधिना पुर ।

पाद्य श्यामाकदूवाब्ज विष्णुऋतजले स्मृतम् ॥१८

अर्घ्यं पुष्पाक्षतयवं कुशाश्रांतलसपप ।

गघ दूवादल प्रावत ततश्चामनीयकम् ॥१९

जानीफल च क्वाल लवग च जनान्वितम् ।

शोद्राज्यदधि ममिश्र मधुपर्कसमीरतम् ॥२०

गघ बी गुड जल म भरकर ॐ सोम मण्डलाय षोडश कला
त्मने दर्वाघ्यामृता नम इति मत्र म उसकी पूजा करनी । फिर उस
जन म पत्रमा की सोलह कलाओं का पूजन करना । गघ म से
षोडश जन प्रोक्षणी पाद्य म डालकर तीन बार अपने ऊपर अभिषेक
करना और आत्म स्थापन नम । ॐ शिव तत्त्वात्मने नम विद्वान्
पुरर का इन तीनों मन्त्रों द्वारा अपने गायत्री ही उग मंडल का भी
त्रिभिः प्रोक्षण करना और उगम पुर तथा मधु भी दानना ॥१३।
१६। अथवा मूत्र गायत्री म पूजा मामघी का प्राशन करना और उगम

पुण्य तथा अक्षत भी डानना ॥१३॥१६॥ अर्घ्यों मूल गायत्री से पूजा-
सामग्री का प्रयोग करना और किसी आघार पर पाद्य, अर्घ्य, आच-
मणीय तथा मधुपर्क के लिए अनेक पात्र विधिपूर्वक सामन रखे । गौदा
चावन दूब, कमल, विष्णुकांता नामक औषधि और जल इनके मिश्रण
से भगवान के लिए पाद्य बनता है । पून, अक्षत, जौ, कुशा का अग्र-
भाग, तिल, सरसो, गन्ध तथा दूब इनसे भगवान को अर्घ्य देन का
विधान है । आचमन के लिए शुद्ध जल में जादरून, कसौन और लौंग
मिलाकर रगड़ना चाहिए । शहद, पी और दही के मिश्रण से मधुपर्क
बनता है ॥३७॥२०॥

एकस्मिन्नयवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।

शकरार्कचिने शखमये नैव प्रशस्यते ॥२१॥

श्वेतावृष्णारणपीता श्यामारवनाशितासिता ।

रक्तावरामय ध्येयास्स्यु पीठशक्तय ॥२२॥

स्वर्णादिलिखिते यत्रे शालग्रामे मणौ तथा ।

विधिना स्थापिताया वा प्रतिमाया प्रपूजयेत् ॥२३॥

अगुष्ठादिविलसत्यतमाना स्वर्णादि धानुभिः ।

निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिना ॥२४॥

वक्रा दग्धा खडिना च भिन्नमूर्द्धदृश पुनः ।

स्पृष्टावाप्यन्त्यजाद्यश्च प्रतिमा नैव पूजयेत् ॥२५॥

वाणादिलिगे वाभ्यर्चैत्सव लक्षण लक्षिते ।

मूलेन मूर्ति सकल्प्य ध्वात्वा देव यथोदितम् ॥२६॥

आवाह्य पूजयेत्तस्या परिवार गणै सह ।

शालग्रामे स्थापिताया नावाहनविसर्जने ॥२७॥

अथवा एक पात्र में पाद्य आदि को व्यवस्था करनी चाहिए ।
शकरजी और मूयनारामण के पूजन से शखमय पात्र को अच्छा नहीं
माना गया है ॥२१॥ श्वेत वृष्ण अरण पीत, श्याम रक्त, शुक्ल

अमित (भूरा) लान वस्त्र धारण करने वाली और अभय मुद्रा स
 युक्त पीठ शक्तिश्री का ध्यान करना चाहिए ॥२२॥ मुक्कण आदि क पत्र
 पर लिये यन्त्र मे, शालग्राम शिला म, यणि प, अथवा विधिपूर्वक
 स्थापित की गई प्रतिमा म इष्टदेव की पूजा करनी चाहिए ॥ २३ ॥
 पर म प्रतिदिन पूजा करने के लिए वही प्रतिमा कल्याणकारी मानी
 गई है जो मुक्कण आदि धातुओं को बनी होनी है कम से कम अंगूठा
 के आकार की और अधिक् से अधिक् एक वातिरत परिमाण की हो
 ॥२४॥ देदी जली हुई घण्टित जितका मस्तक या भाँव टूटी हो,
 जितने घण्टाल आदि रिती अस्पृश्य न स्पर्श कर लिया हो, ऐसी
 प्रतिमा की पूजा नहीं की जाती ॥२५॥ अथवा समस्त शुभ लगणों स
 विभूषित वाण आदि विग का पूजन करना अथवा मूलमन्त्र का उच्चा
 रण करने मूर्ति का निर्माण करने इष्टदेव के गान्धोक्त स्वरूप का ध्यान
 करना ॥२६॥ फिर उगम देशका परिवार गृहित आवाहन करके
 पूजन करना । शालग्राम शिला म तथा गहने म स्थापित देव प्रतिमा
 म आवाहन और विगजन करने की आवश्यकता नहीं होती ॥२७॥

पुष्पाजनि सुमादाय ध्यात्वा मन्त्र मुदीरयत् ।
 आत्मसस्यमत्र शुद्ध स्वामह परमेश्वर ॥२८॥
 अरण्यामिव हव्याना मूर्त्तवावाहयाम्यहम् ।
 तवय हि महामूर्त्तस्तस्या त्वा सवग प्रभा ॥२९॥
 भक्त स्नेह समाट्टे दीपवत् स्थापयाम्यहम् ।
 सर्वांतरयामिज देव सर्वबीजगम शुभम् ॥३०॥
 एतामस्याय पर शुद्धमासन पण्ययाम्यहम् ।
 अनन्या तव दशन मूर्तिशक्तिगिय प्रभा ॥३१॥
 गादिष्य मुक्क तस्या त्व भक्तानुपहारक ।
 अज्ञानादुत मरात्वाः शैलान्वात् साधनम् न ॥३२॥
 यत्पुष्पं भवेत् कन्य तथाप्यभिमुखा भव ।

दृशा पीयूष वपिण्या पूरयन् यज्ञविष्टरे ॥३३
 मूर्तो वा यज्ञसम्पूर्ये स्थितो भव महेश्वर ।
 अभक्त वाडमनश्चक्षु श्रोत्र दूरायित चुते ॥३४
 स्वतेज पजरेणाशु वेष्टितो भव सर्वत ।
 यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा स्वाभीष्टसिद्धये ॥३५
 तस्मै ते परमेशाय स्वागत स्वागत च मे ।
 कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफल जीवित मम ।
 आगती देवेदेवेश सुस्वागत मिद पुन ॥३६

फिर पुष्पाजलि लेकर इष्टदेव का ध्यान करके निम्न मंत्र का उच्चारण करना । (‘‘आत्मसस्यमज’ शब्द से लेकर ३६वें श्लोक के ‘सुस्वागतमिद पुन’) शब्द तक मंत्र है जिसका अर्थ इस प्रकार है—
 ‘हे परमेश्वर ! आप अपने ही भीतर स्थित, अजन्मा एवम् शुद्ध-बुद्ध स्वरूप हो । जिस प्रकार काष्ठ से बनी अरणी में अग्नि अदृश्य रूप में रहती है उसी प्रकार आप भी गूढ रूप में इस मूर्ति में व्याप्त हो । मैं आपको आवाहन करता हूँ । हे प्रभो ! यह आपकी महामूर्ति है, भक्त के प्रति स्नेहवश आप स्वयं इसमें खिचकर आ गये हो । इस प्रकार के आप परमात्मा को मैं इसके भीतर दीपक की तरह स्थापित करता हूँ । हे देव ! अपने अन्तःकरण में स्थित आप सर्वान्तर्यामी पशु के लिये मैं शुद्ध आसन दे रहा हूँ । हे प्रभो ! आपकी यह विशेष मूर्ति शक्ति स्वरूप है आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके इसमें निवास करो । अज्ञान, प्रमाद अथवा साधना की कमी से यदि मरा यह अनुष्ठान अधूरा भी रह जाय, तो भी आप मुझ अवश्य सान्निध्य प्रदान करें । हे महेश्वर ! आप अपनी अमृत-पपा करने वाली दृष्टि द्वारा सब नुष्टियों का निवारण करके यज्ञ की पूणता के लिए इस यज्ञामन पर अथवा मूर्ति में स्थित हो जा । आपका प्रकाश अथवा तेज अभक्त जनों के मन-दहन, नेत्र-घबभू-कानों से चहुँत दूर रहता है । हे प्रभु ! आप चारों तरफ अपने तेज पुज

5

द्वारा भीष्म आवृत हो जाओ । देवगण अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिये मद्रा
 शिगरे दर्शनो की इच्छा करते हैं, वही आप परमेश्वर का मैं अपनी
 तरफ में बारबार स्वागत करता हूँ । हे देव देवेन्द्र प्रभो! आप आशये
 तो मैं भी कृणार्थ होगया । गुप्त पर आपकी कृपा होगई । आज मेरा
 जीवन सफल होगया । मैं पुनः इस शुभ आशमन के लिये प्रभु का
 स्तुतन करता हूँ ।" इसके पश्चात् इस कनोषी को पढ़कर भगवान का
 पौडशोपचार पूजन करे ॥२८-३६॥

यद्भक्तिं लेशमप्यर्कितं परमानन्दसम्भवं ।
 तस्मै ते चरणान्जलय पाद्यं शुद्धाय वन्द्यते ॥३७
 तावदयं हरदिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
 तावन्नयं विनिर्मुक्तयं तवर्ष्यं वन्द्यनाम्बहम् ॥३८
 वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने ।
 आचाम वन्द्यामीशं शुद्धानां नृद्विहेतवे ॥३९
 सर्वं जालुष्यं हीनाय वसिष्ठुर्गं सुर्यात्मने ।
 भद्रुपर्वोमिदं देव वन्द्यामि प्रसीद मे ॥४०
 उच्छिष्टोऽप्यनुतिर्यापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
 नृद्विमाप्नोति तस्मै ते पुनरावसनीयकम् ॥४१
 स्नेहं दूताणं स्नेहेन सोऽहनाय महानय ।
 मयं योऽनेषु शुद्धात्मन् ददाति स्नेहं मुत्तमम् ॥४२

(पाद्य) चिनही तेषामाय भक्तिं वा गणार्कं हा जाने मे परम

है ॥३६॥ (मधुपर्क) आप समस्त बलुपता से रहित तथा परिपूर्ण मुख स्वरूप हो । हे देव । मैं आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ । मेरे ऊपर प्रमत्त हो ॥४०॥ जिनका स्मरण करम माथ से उच्छिष्ट अथवा अपवित्र मनुष्य पवित्र हो जाता है, उन्ही आप परमेश्वर के लिये पुनः आचमन करने को जल अर्पण करता हूँ ॥४१॥ (स्नेह) हे जगदीश्वर । आपका अन्तःकरण विशाल है । सम्पूर्ण लोको म आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो । मैं आपको यह उत्तम स्नेह (तल) अर्पण करता हूँ, इसे स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये ॥४२॥

परमानन्द बोधादि निमग्ननिज मूर्तये ।

साङ्गोपागमिद स्नान कल्पयाम्यहमीश ते ॥४३

सहस्र वा शतम् वापि यथा शक्त्यादरेण च ।

गन्ध पुष्पादि केशीश मनुना चाभिविञ्चये ॥४४

भाया चित्रपटच्छन्न निज गुह्योक्तेजसे ।

निरावरण वित्तान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥४५

समाधित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।

तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥४६

यस्य शक्ति त्रयेणेद सम्प्रीतमखिल जगत् ।

यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्र प्रकल्पये ॥४७

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानशक्त्याश्रमाय ते ।

भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमराक्षित ॥४८

परमानन्द सौरभ्य परिपूर्ण दिगन्तरम् ।

गृहाण परम गन्ध रूपया परमेश्वर ॥४९

(स्नान) हे ईश । आपका विशस्वरूप तो निरन्तर परमानन्द-मय ज्ञान के अगाध सागर म निमग्न रहता है । तो भी मैं आपके साङ्गोपाङ्ग स्नान की व्यवस्था करता हूँ ॥४३॥ (अभियेक) हे ईश । मैं आदर पूर्वक यथा शक्ति गन्ध पुष्प आदि से तथा मन्त्रों द्वारा सहस्र

अथवा सी वार आपका अभिषेक करता है ॥४४॥ (वस्त्र) हे निरावरण
 बिज्ञान स्वरूप परमेश्वर । आपने माया रूप विचित्र पट द्वारा अपने
 महान तेज को छुपा रखा है । मैं आपको वस्त्र अर्पण करता हूँ ॥४५॥
 (उत्तरीय) जिनके आश्रित रह कर महामाया समस्त जगत को मोहित
 करती रहती है, उन्ही आप परमेश्वर के लिये यह उत्तरीय वस्त्र अर्पण
 करता हूँ ॥४६॥ (यज्ञोपवीत) जिनकी त्रिविध शक्तियों से यह जगत
 सदा वृत्त रहता है, जो स्वयं यज्ञ स्वरूप है, उन्ही आप प्रभु को यह यज्ञ
 सूत्र अर्पण करता हूँ ॥४७॥ (भूषण) हे देव पूजित प्रभो । आपके
 अग्न स्वभाव से ही परम सुन्दर हैं, आप नाना प्रकार की शक्तियों के
 आश्रय हो । मैं आपको ये विचित्र आभूषण अर्पण करता हूँ ॥ ४८ ॥
 (गन्ध) जिसने परम आनन्द प्रदायक अपनी सुगन्ध से सब दिशाओं को
 परिपूर्ण कर दिया है, वे ही परमेश्वर इस गन्ध को वृषा करके स्वीकार
 करें ॥४९॥

तुरीय वन सम्भूत नानागुण मनोहरम् ।
 अमन्द सौरभम् पुष्प गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥५०॥
 जपाक्षताकंधत्तूरान् विष्णोर्नैवाप्येत् क्वचित् ।
 केतकी कुटज कुद बघ्नक केसर जपाम् ॥५१॥
 मालती पुष्पक चैव नाप्येत्तु महेश्वरे ।
 मातुलिग च तगर रवी नैवाप्येत् क्वचित् ॥५२॥
 शक्ती दुर्वाकर्मदारान् गणेशे तुलसी त्यजेत् ।
 सरोजिनी दमनकी तथा मरुत्क कुश ॥५३॥
 विष्णु क्रान्ता नागवल्ली दुर्वापामार्ग दाडिमौ ।
 धात्री मुनियुतानाच पद्मेर्देवाचन चरेत् ॥५४॥
 बदली बदरी धात्री तितणी बीजपूरकम् ।
 आम्र दाडिम जवीर जतूपनसभूरुहा ॥५५॥
 एतेषां तु फलं कुर्याद्देवतापूजन बुध ।

शुक्लंस्तु मानंयेद्देव पत्नः पुष्पैः फर्पैरपि ॥५६

(पु०) हे प्रभा ! तीनों अश्वत्थामो से परे तुरीय ही बन । उग्र-न इग परम उत्तम दिव्य पुष्प को आप ग्रहण करें । यह अनेक गुणा के प्रभाव से अति मनोहर है और इसकी सुगन्ध कभी मन्द नहीं रहती । १५०। बेतरी, कुटज, कुन्द, यन्धूप नागकेसर, जपा तथा मातली-इन पौधों को भगवान् शंकर पर कभी न चढ़ाना चाहिये । मानुलिङ्ग (विजौरा) और तगर को गुर्रों पर कभी नहीं चढ़ाना । दूध, आष (मदार) और मन्दार को दुर्गा को अर्पण नहीं करना । गणेश पूजन में तुलसी का सर्व रथाग करना । कमल, मरुवा, कुश, विष्णुकान्ता, पान, दूब, अपामार्ग, अनार, आमला और अशरत के पत्तों से देवों का पूजन करना चाहिए । बेला, बेर, आवला, तिन्तरणी, विजौरा, आम, अनार, जम्हीरी, जामुन, पनग—इन पत्तों से विद्वान् पुरुष को देवों का पूजन करना चाहिये । पर गूधे हूये, मुरझाये हुए अथवा बीने हुए पत्तों पौधों और पत्तों से पूजन नहीं करता ॥५०—५६॥

घाभी छदिर विल्वाना तमालस्य दलानि च ।

छिन्न भिन्नान्यापि मुने न द्रव्याणि जगुर्वुधा ॥५७

यममामलक तिष्ठेच्छुद्धं चैव दिनशयम् ।

सर्वदा तुलसी शुद्धा विल्वपत्राणि च तथा ॥५८

पलाशवास कुमुदैस्तमाल तुलसी दलैः । . . .

घाभी दलैश्च दूर्वाभिर्नाचयेत् जगदधिकाम् ॥५९

नाचयेत् कुमुदा पत्र फल देवे ह्यधोमुखम् ।

पुष्प पत्रादिक विप्र यथोत्पन्न तथापयेत् ॥६०

वनस्पतिरस दिव्य गन्धाढ्य सुमनोहरम् ।

आध्रेय देवदेवेश घूप भक्त्या गृहाण मे ॥६१

सु प्रकाश महीर्दाप सर्वदा तिमिरा पहम् ।

घृतवति समायुक्त्वा गृहाण मम सत्कृतम् ॥६२

अन्न चतुर्विध स्वादु रसं पद्भिः समन्वितम् ।

भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा ॥६३॥

नागवल्लीदल श्रेष्ठं पूगखदिर चूणयुक् ।

कर्पूरं रादि सुगन्धाढ्यं यद् दत्तं तद् गृहाण मे ॥६४॥

हे मुने ! आबला, खैर बिल्व (बेल) और तमाल के पत्ते छिन्न भिन्न हों तो भी विद्वान् उनको शूणित नहीं कहना ब्रह्मण्य ब्रह्मण्य और आबला तीन दिन तक शुद्ध रहने हैं । पुनर्हीदल और बिल्व पत्र सदा शुद्ध माने गये हैं । पलाश और कास के फूलों तथा तमाल तुलसी आबला और दूब से जगदम्बा की पूजा कभी नहीं करनी । फूल पत्र और देवता पर अघोमुख (औंघ्रा) करने न चढ़ाना चाहिये । पत्र पुष्प आदि जिस रूप में उत्पन्न होते हैं उसी रूप में देवता पर चढ़ाने चाहिये ॥६७-६०॥ (घूप) हे देवदेवेश्वर ! यह सूँघने योग्य घूप भक्ति पूवक आप का मेवा में अर्पित है । यह वनस्पति का सुत घ युक्त परम मनोहर दिव्य रस है ॥६१॥ (दीप) भगवन् यह घी की बत्ती से युक्त महादीप आपकी सेवा में समर्पित है । यह उत्तम प्रकाश से युक्त और सदैव अधकार का दूर करने वाला है । आप इसे स्वीकार करो ॥ ६२ ॥ (नैवेद्य) हे देव ! इस छ रसों में युक्त चाण्ड प्रकाश के अन्न का, भक्ति पूवक अर्पण करता हूँ । यह सदा सतोपदायक है आप इसे स्वीकार करें ॥६३॥ (ताम्बूल) हे प्रभो ! यह उत्तम नागरेल का पान सुपाडी गरया गुना में युक्त है । इसमें कपूर आदि सुगन्धि घट द्रव्य डाले गये हैं । यह आपकी सेवा में अर्पित है इस ग्रहण कीजिये ॥६४॥

दद्यान् पुष्पाजलिं पशुचन् वृयादावरणाचनम् ।

यदाशाभिमुखो भूत्वा पूजनं तु समाचरेत् ॥६५॥

सैव प्राचीं तु विनया ततान्या विदिशो दश ।

पेशरेऽग्निं शीलादि हृदयादीनि पूजयेत् ॥६६॥

नप्रमथे दिश चास्त्र अगमगैयया क्रमम् ।

शुक्लश्वेतसितैर्वैर्यामि कृष्णारैर्वैताचिपैः क्रमात् ॥६७
 वराभयकराद्येयास्वस्वदिर्दिवग शक्तयः ।
 अमुका वरणाते तु देवता इति संबदेत् ॥६८
 सालकारास्तैते पश्चात्सागा सपरिचारिका ।
 सवाहना सायुधाश्च तत सर्वोप चाग्नकं ॥६९
 सपूजितास्तपिताश्च वरदा भक्तिद पठेत् ।
 मूर्ताते च समुच्चार्य देवतार्थं निवेदयेत् ॥७०
 अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
 भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणाचनम् ॥७१

इसके पश्चात् पुष्पाञ्जलि धरित करके आवरण पूजा करनी ।
 जिस दिशा की तरफ पुष्प रखकर पूजन किया जाय उसी को पूज दिशा
 समझना और उसी के अनुसार दक्षि दिशाओं का निश्चय करना ।
 कर्मगो के कौशरी में अग्निर्बोध आदि से आरम्भ करके हृदय आदि ध्येयों
 की पूजा करनी । अपने शम्भुच नेत्र की ओर समस्त दिशाओं में वायु
 की अर्घ्य-यज्ञों द्वारा क्रमशः पूजा करनी । शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम,
 कृष्ण तथा रक्त वर्ण वालों अङ्ग शक्तियों का क्रमशः अपनी-अपनी
 दिशा में ध्यान करनेवा ॥६५-६७॥ उन सबके हाथों में वर और अथवा
 की मुद्रा मुञ्जोभित है । यह कहना चाहिये कि 'अमुक आवरण के
 वर्णवर्ती देवताओं की पूजा करता हूँ ।' इसके पश्चात् अलङ्कार,
 अर्घ्य परिचारक, वाहन तथा वायुओं सहित समस्त देवताओं की पूजा
 करके कहना कि 'ऊपर कहे गये समस्त देवगण पूजित तथा वृष्ट
 होकर वर प्रदान करने वाले हो । मूल-मन्त्र के अंत में ७१ वें श्लोक
 अभीष्ट - चनम्) की बोलकर इष्टदेव की पूजा अर्पण करनी

॥ ६८-७१ ॥

इत्युच्चार्य क्षिपेत् पुष्पाञ्जलि देवस्य मस्तके ।

तत्सर्वभ्यर्चनीयां स्यु कल्पोक्ताश्ना वृत्ती क्रमात् ॥७२

सामुधास्तत इद्राद्यान् स्वस्वदिक्षु प्रपूजयेत् ।
 इन्द्रो वह्निरयमो रक्षो वह्णः पवनो विद्युः ।
 ईशानोय विधिश्चवमधस्तात्पन्नगाधिपः ॥७३
 ऐरावतस्तथा मेयो महिषः प्रेतस्तिमिर्नृगः ।
 वाजी वृषो हंस कूर्मो वाहनानि विदुर्बुधाः ॥७४
 वज्र शक्ति दंडखड्गी पाशाकृश गदा अयि ।
 त्रिशूल यज्ञचक्रे च क्रमादिन्द्रादि हेतयः ॥७५
 समाप्यावरणाची तु देवतारातिक चरेत् ।
 गच्छ तोय परिधिप्योद्वाहूर्नृत्यन् पतेत्क्षितौ ॥७६
 दंडवच्चाप्यथोत्थाय प्रार्थयित्वा निजेश्वरम् ।
 दक्षिणे रथडिल कृत्वा तत्र सस्कारमाचरेत् ॥७७

इस प्रकार पौडगोपचार पूजा के मन्त्र बोलकर दृष्टदेव के
 मन्त्र पर पुण्य नडा देना और आवरणों की पूजा करनी चाहिए ।
 आयुध और वाहनो सहित इन्द्र आदि ही आवरण देव हैं, इनकी पूजा
 अपनी-अपनी दिशाओं के करनी चाहिए ॥७२॥ इन्द्र, अग्नि, यम,
 निष्कंति, वह्णः, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज यह प्रथम
 आवरण के देवता हैं । ऐरावत, गेडा, भैंसा, प्रेत, निमि (मगर)
 मृग, अश्व, वृषभ, हंस और बुध्वा (कूर्म)—ये विद्वानों द्वारा दत्तो
 देवताओं के वाहन माने गये हैं । इनकी पूजा द्वितीय आवरण से की
 जाती है ॥ ७३-७४ ॥ वज्र, शक्ति, दण्ड, यज्ञ, पाश, अकृश, गदा,
 त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादि के आयुध हैं— इनकी
 पूजा तीसरे आवरण से की जाती है ॥ ७५ ॥ इस प्रकार आवरण
 पूजा करके भगवान की आरती उतारनी । फिर प्राय के जल को चारों
 तरफ छिड़क कर हाथ ऊँचा करके भगवान् का नाम बोलते बोलते नृत्य
 करने हुए दण्ड की तरह पृथ्वी पर पडकर माष्टांग प्रणाम करना ।
 प्रार्थना के पश्चात् दक्षिण तरफ बेदी बनाकर निम्न विधि से उभय
 संस्कार करना ॥७६-७७॥

मूलेने क्षणमस्रेण प्राक्षण ताडन पुन ।
 पुनस्तद्वर्मणाभ्युदय पूज्य तत्र न्यसेद् वसुम् ॥७८
 प्रदाप्य तत्र जुहुयाद्घात्वा च्चंष्ट देवताम् ।
 महाध्याहृतिभिर्पस्तु समन्ताभिश्चतुष्टयम् ॥७९
 जुहुयात्सपिपा भवन्स्त्रिंशत् पापसेन वा ।
 सधृत् साधक श्रेष्ठ पञ्चविंशति सद्यया ॥८०
 पुनर्व्यर्वाहृनिभिर्हुत्वा गधार्थं पुनरचंयेत् ।
 देव सयोजयेन् मूर्ती ततो वह्निं विसर्जयेत् ॥८१
 भो भो वह्ने महाशक्त मूर्त्वं वर्मं प्रसाधन ।
 धर्मान्तरेपि सप्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥८२
 विगृह्याग्निदेवतापै दद्यादात्मनीयनम् ।
 अवशिष्टेन हविषा गध पुष्पाक्षतान्वितम् ॥८३
 देवतापापं देव्योपि पूर्वोक्तेभ्यो घ्नन् ददेत् ।
 ये रौद्र रौद्रकर्माणो रौद्रस्थान निवासिन ॥८४
 योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ।
 विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्बिदिक्षु समाश्रिता ॥८५
 सर्वे ते प्रीतमनस प्रतिगृह्णन्ति त्वम वलिम् ।
 इत्यष्टदिक्षु दत्त्वा च पुनर्भूतं वलिं चरेत् ॥८६

मूल-मंत्र से ईक्षण, अस्त्र (फट) द्वारा प्रीक्षण और कुंश से
 ताडन करके कवच (हुम्) द्वारा वेदी का अभियेक करना । इसके
 बाद वेदी की पूजा करके उसके ऊपर अग्नि की स्थापना करनी । फिर
 अग्नि को पञ्चवलिन करके उसमें इष्टदेव का ध्यान करके आहुति देनी।
 समस्त ऋहृतियों से चार बार घी की आहुति देकर श्रेष्ठ साधक भात,
 निल अथवा घृतयुक्त खीर द्वारा पञ्चमीन आहुति दे ॥ ७८-८०॥ इसके
 पश्चात् व्याहृतियों से हवन करके गन्ध आदि द्वारा पुन इष्टदेव की
 पूजा करनी । भगवान् की मूर्ति के अग्नि के लीत हो जाने की भावना

करनी फिर ('भोभो वहने महाशक्ते' वाला मन्त्र गण्डया ८२) बीजपर
 अग्नि का विसर्जन करना । अर्थात्—'हे अग्निदेव ! आपकी शक्ति
 महान् है । आप ही समस्त ब्रह्मों की सिद्धि कराने वाले हैं । पून योद्ध
 अन्य कर्म किया जाय तो यहाँ सादर पधारना ॥ ८२ ॥ इस प्रकार
 अग्नि का विसर्जन करके उनके लिए आचमन को जल अर्पित
 करना । फिर शेष बचे हविष्य से इष्टदेव तथा पूर्वोक्त को गण्ड,
 पुष्प और अक्षत सहित बलि देना । फिर " य रोद्र—स्विम वलिम्"
 ऋग्वेदों से आगे दिशाजो में योगिनी आदि को बलि देना ॥ ८१—
 ८४ ॥ अर्थात्— 'जो भयकर हैं, जो भयकर स्थानों में निवास करते
 हैं, जो उग्ररूप वाली योगिनियाँ हैं, जो गणों के स्वामी तथा विष्णु
 स्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा दिदिशा में रहते हैं, वे सब प्रताप-
 वित्त होकर इस बलि को ग्रहण करें । इसके पश्चात् भूत बलि देना
 ॥ ८५—८६ ॥

पानीयम मृती वृत्त्य मुद्रया धेनुसजया ।
 देवताया करे दद्यात् पुनश्चाचमनीयवम् ॥८७
 देवमुद्राम्य मूर्तिस्य पुनस्तत्रैव योजयेत् ।
 नैवेद्य च ततो दद्यात्तदुच्छिष्ट भोजिने ॥८८
 महेश्वरस्य चङ्गेशो विष्वक्मेनस्तथा हरे ।
 चडाशुस्तरणेवंक्रतु इषचापि गजेशितु ॥८९
 शक्तोरुच्छिष्ट पाडाली प्रोक्त उच्छिष्ट भोजिन ।
 ततो ऋष्यादिक स्मृत्वा कृत्वा मूलपङ्कगम् ॥
 जपत्वा मत्र यथाशक्ति देवतायै निवेदयेत् ॥९०
 गुह्यातिगुह्यागोप्ता रव गृहाणास्मृत्कृत जपम् ।
 सिद्धिर्भवतु मे देव त्वप्रसादात्स्वयि स्थिता ॥९१

फिर धेनु मुद्रा में जल का अमृतीकरण करके इष्ट देवता के
 हाथ में आचमन करने को उभे देना । तत्पश्चात् मूर्ति में उपस्थित

देवता का विसर्जन करके पुन उसी मूर्ति में उन्नी प्रतिष्ठा करनी । इसके बाद पापदो को नैवेद्य चढ़ाना ॥ ८७—८८ ॥ महादेव के पापंद "चण्डेश" विष्णु के 'विष्वक्सन' गणेश के "सक्रतुण्ड", भगवती दुर्गा की 'उच्छिष्ट चण्डाली'—ये सब उच्छिष्ट भोजी बहे जाते हैं ॥८७—॥८८॥ इसके पश्चात् मूल मंत्र व ऋषि आदि का स्मरण करके मूल से ही पङ्कगन्धास करना और यथा शक्ति मन्त्र का जप करके उसे देवता को अर्पण करना—'ह देव आप गुह्य से भी अति गुह्य वस्तु की रक्षा करने वाले हो । आप मेरे द्वारा किये इस जप को ग्रहण करें । आपके प्रसाद से आपके भीतर रहते वाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो ॥८९॥

तत परामुख चार्धं कृत्वा पुष्पै प्रपूजयेत् ॥८२
 दोभ्यां पद्भ्या च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
 मनसा वचसा चेति प्रणामोऽप्याग ईरित ॥८३
 बाहुभ्या च सत्रानुभ्या शिरसा वचसापि वा ।
 पञ्चागव प्रणाम स्यात् पूजाया प्रवरायभौ ॥८४
 न त्वा च दण्डवन्मथ्री तत कुर्यात् प्रदक्षिणा ।
 विष्णुसोमार्कविघ्नाना वेदार्धेन्द्रद्विवहनय ॥८५
 तत स्तोत्रादिक मथ्री प्रपठेद् भक्तिपूर्वकम् ।
 इत पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्मादिकारत ॥८६
 जायस्वप्नसपुप्त्यते वस्थामु मनसा वदेत् ।
 वाचा हस्ताभ्या च पद्भ्यामुदरेण तत परम् । ८७
 शिरसाते पत्स्मृत पश्चाद्युदुवत यत्कृत तत ।
 तत्सर्वं च ततो ब्रह्मायण भवतु ठडयम् ॥८८
 मा मदीय च सकल विष्णवे च समर्पय ।
 तार तत्सदतो ब्रह्मार्पणमस्तु मनुर्मत ॥८९

तत्पश्चात् पराङ्मुख अर्घ्य देकर पुष्पो से पूजा करनी । पूजन के बाद प्रणाम करना चाहिये । दाना हाथ, दोनो पैर,

दोनो पुटने, छाती, मस्तक, नेत्र, मन, बाणी—इन सबसे किया गया नमस्कार "अष्टाङ्ग प्रणाम" कहलाता है। दोनो भुजा, दोनो पुटने, छाती, मस्तक तथा मन से किया गया नमस्कार "पञ्चाङ्ग प्रणाम" कहा जाता है। पूजा में ये दोनो प्रणाम खैष्ठ माने गये हैं ॥६२-६४॥ मन्त्र के साधक को दण्डवत्, प्रणाम करके भगवान की परिक्रमा करनी। भगवान विष्णु की चार बार, शंकर की आधी बार भगवती दुर्गा की एक बार, सूर्य की सात बार और यमेश की तीन बार परिक्रमा करने का नियम है। उसके पश्चात् मन्त्रोपासक को भक्ति-पूर्वक यह स्तोत्र पाठ करना चाहिये—(६६ वें श्लोक में 'इत पूर्व' से लेकर ६६ वें श्लोक में 'विष्णवे च समर्प्ये' तक) "इससे पहले प्राण, बुद्धि, देह धर्म के अधिकार में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में मन, बाणी, दोनो हाथ, दोनो हाथ, दोना पैर, उदर, प्रजनन अङ्ग म मीने जो कुछ विचारा है, जो कहा है, जो कर्म किया है वह ब्रह्मार्पण हो जाय। मैं अपने को तथा अपने सर्वस्व को वाप विष्णु को सेवा में समर्पित करता हूँ। (विद्वाना ने इसे 'ब्रह्मार्पण भव' कहा है। इसके आदि में 'ॐ' और अन्त में "'ॐ नमः' लगाकर पाठ करने में भगवान् को 'आत्म समर्पण' होना है। इसके पश्चात् इस प्रकार दया प्रार्थना की जाती है ॥६५-६६॥

अज्ञानाद् वा प्रमादाद् वा वैकल्यात् साधनस्य च ।

दन्वूनमतिरिक्त वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१००

द्रव्यहीन क्रियाहीन मन्त्रहीन मयान्यथा ।

कृत यत्तत् क्षमन्वेशा कृपया त्वम दयानिधे ॥१०१

यन्मया क्रियते कर्म जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिषु ।

तत्सर्वं तावकी पूजा भूषाद् भूयै च मे प्रभो ॥१०२

सुमी स्रष्टितपादाना भूमिरेवावलम्बनम् ।

त्वयि जातापराधाना त्वमेव शरणं प्रभो ॥१०३

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम ।
 तस्मान् कारुण्य भावेन क्षमस्व परमेश्वर ॥१०४
 अपराध सहस्रा ण क्रियन्तेऽहनिश मया ।
 दासोऽयमिति मा मत्वा क्षमस्व जगता पते ॥१०५
 आवाहन न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
 पूजा चैव न जानामि त्व गीत परमेश्वर ॥१०६
 संप्रार्थ्यैव ततो मत्री मूलाते श्लोक मुञ्चरेत् ।
 गच्छ गच्छ पर स्थान जगदीश जगन्मय ॥१०७
 यत्न ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिव ।
 अकाल मृत्यु हरण सर्वव्याधि विनाशनम् ॥१०८
 सर्वं पापक्षय कर विष्णुपादोदक शुभम् ॥१०९

'हे भगवन् अनान से, अथवा प्रमाद से तथा साधन के अभाव से मुझमे जो ग्यूनता अथवा अधिकता का दोष हो गया हो उसे माफ क्षमा करें। हे ईश्वर! दयानिधे मैंने द्रव्य बिना, क्रिया बिना तथा मन्त्र बिना विधि से विपरीत जो कर्म किया हो उसे आप कृपा करके क्षमा करें ॥ १००-१०१ ॥ हे प्रभो! मैंने जागृत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओ मे जो कर्म किया वह सब आपकी पूजा रूप हो जाय और मेरे लिये कल्याणकारी हो। जो व्यक्ति फिमल कर भूमि पर गिरता है उसे आश्रय देने वाली भी पृथ्वी ही होती है इसी प्रकार आपका कोई अपराध करने वाले व्यक्ति को शरण देने वाले भी आप ही है ॥१०२-१०३ ॥ हे परमेश्वर! आपके अतिरिक्त और कोई शरण देने वाला नहीं है इसलिये कृपापूर्वक मेरी भूलो को क्षमा करके शरण प्रदान करें। हे जगत्पते! रात दिन मुझमे हजारो अपराध होत हैं, इसलिये 'यह मेरा दास है' ऐसा ममज्ञ कर मुझे क्षमा करना ॥ १०४-१०५ ॥ हे भगवन्! मैं न आवाहन करना जानता हूँ न विसर्जन करना मुझे ज्ञात है पूजा करने की विधि भी मुझे ठीक तरह नहीं आती इसलिये आप

ही गति हो—आधार ही ॥१०६॥ इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्र—
 गायत्र मूल—मन्त्र योक्तर विसर्जन के लिये "गच्छा-गच्छा-सदा-
 शिव" (श्लोक १०८) अर्थात्—हे जगदीश्वर ! आपसे जिस परम
 धाम की प्रज्ञा आदि देवगण तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते उसी
 परमधाम को आप सिधारिये " इमं मन्त्रं वा उच्चारणं करके पुण्या-
 जनि कर्माणि करे ॥१०७-१०८॥ अन्त में "अकाल मृत्यु --- शुभम् ।"
 (श्लोक १०९) अर्थात्—"भगवान् मिष्णु वा शुभं चरणामृतं
 अकाल मृत्यु का अपहरण, समस्त व्याधियों का नाश और पापों का
 गहार करने वाला है " वा उच्चारण करके चरणामृत पान करना ।
 ॥ १०९ ॥



॥ भगवान् राम के मंत्र की विधि ॥

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यते सिद्धिदायका ।
 देवामाराधनान्यस्तरति भवमागरम् ॥१॥
 सर्वेषु मन्त्रवर्षेषु श्रेष्ठं वैष्णवं मुच्यते ।
 गणपत्येषु मौक्त्येषु शाक्तैर्वैष्णवैश्च श्रेष्ठम् ॥२॥
 वैष्णवेषु वापि मानेषु राममात्रो पञ्चाधिरा ।
 गणपत्यादि मन्त्रेषु कोटि कोटि गुणाधिरा ॥३॥
 विष्णुर्वायुश्चिन्मो वह्निग्निदुर्भूषित मन्त्रवा ।
 रामाय हृदयात्पाय महापीय विनाशन ॥४॥
 सर्वेषु राममात्रेषु कर्त्तव्यं पठशा ॥
 कोटि कोटि मन्त्राणि ह्युपपापानि यानि वै ॥५॥
 अथर्ववेदोच्चारणं गृह्यते त्वं यति न मुञ्चय ।
 श्रद्धा मुनि रसात्मात्रो हन्ते रामश्च देवता ॥६॥

“आद्य बीज च हृच्छक्ति विनियोगोखिलाप्तये ।
पङ्दीर्घभाजा बीजेन पङ्गानि समाचरेत् ॥७

सनत्कुमारजी कहने लगे—नारद ! अब मैं 'भगवान राम' के मन्त्रों का वर्णन करता हूँ । यह विद्धिदायक हैं और इनकी आराधना से मनुष्य भवसागर में तर जाते हैं ॥१॥ सब उत्तम मन्त्रों में वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है । वे गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव सम्बन्धी मन्त्रों की अपेक्षा अभिलाषा को शीघ्र पूर्ण करने वाले होते हैं । वैष्णव मन्त्रों में भी राम मन्त्र का फल अधिक है । गणपति-मन्त्र आदि की अपेक्षा राम नाम का महत्त्व करोड़ों गुना अधिक है ॥ २ । ३ ॥ विष्णुशैवा (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र) का मस्तक के चन्द्रमा (अनुस्वार) से विभू-पित हो और उसके आगे (रा रामाय नम) मन्त्र महान पापों के समूह को नाश करने वाला है ॥४॥ श्रीराम सम्बन्धी मन्त्रों में यह पङ्कश मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है । यह समस्त जाने और अनजाने पातकों तथा उपपातकों को तुरन्त नष्ट कर देता है इसमें सशय नहीं । इस मन्त्र के ग्रहण श्रेष्ठ, गायत्री छन्द, श्रीराम देवा, 'रा' बीज मन्त्र और 'नम' शक्ति है । समस्त मनोरथों के लिये इसका विनियोग किया जाता है । छ दीर्घ' स्वरों से युक्त बीज मन्त्र द्वारा 'इगका पङ्ग्यास' करता ॥५-७॥

ब्रह्मरघ्ने भ्रुवोर्मध्ये हृन्नाम्भोगुं ह्य पादयो ।
मन्त्रवर्णान् क्रमानुन्यस्य केशवार्दान् प्रविन्यसेत् ॥८
पीठन्यागादिकं कृत्वा ध्यानेद्दहृदि रघूत्तमम् ।
कालाभोधरवान च धीरासनसमाभ्यस्तम् ॥९
ज्ञानमुद्रा दशहस्ते दधन जानुनातरम् ।
मरोत्तरा सोता विष्टदाभा च पार्श्वंगाम् ॥१०
पश्यन्ती रामवत्पद्मं त्रिविधापद्मं भूषिताम् ।
द्व्यारक्षे च प्रजयेद्वर्णनश मन्त्रो दशाशत ॥११

कमलैर्जुं हुयात्स्वहृत्तौ ब्राह्मणान्भोजयेत्तत ।
 पूजयेद्वेष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते ॥१२
 मूर्तिमूलेन सकल्प्य तस्यामावाह्य साधकः ।
 सीता वामे समासीता तन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ॥१३
 रमासीता पद डेत द्विठान्तो जानकीमनु ।
 अग्रे शारंग च सपूज्य शरान् पार्श्वद्वयेर्चयेत् ॥१४

यह न्यास ब्रह्मरुद्र, भोहो के मध्य हृदय, नाभि, मुख स्थान और पैर इन छ मन्त्रों में करे । मन्त्र के अक्षरों का क्रम से एक एक अक्षर में न्यास करता जाय । फिर पीठन्यासादि करके हृदय में रेघुनाथ जी का नीचे श्लोक के 'कालामोघर' शब्द से ग्यारहवें श्लोक के 'भूमितामू' शब्द तक उच्चारण करके ध्यान करे । इसका आशय है कि 'भगवान राम की अङ्गकान्ति मेघों की प्रथम घटा के समान है । ये वीरासन पर बैठी है । दक्षिण हाथ में जानमुद्रा धारण करके बायाँ हाथ को जानु पर रखा है । उनके बायीं ओर विद्युत् जैसी कांति वाली, विविध प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से विभूषित सीताजी विराजमान हैं । उनके हाथ में कमल है और वे अपने प्राण वस्त्रधारी रामचन्द्रजी के मुखारविन्द को देख रही हैं । इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र साधक को छ लाख वर्ष करना और कमल द्वारा प्रज्वलित अग्नि में दशाश हवन करना । फिर ब्राह्मण भोजन कराना । मूल-मंत्र से इष्टदेव की मूर्ति बनाकर उसमें भगवान का आवाहन और प्रनिष्ठा करके विगत आदि पूण कार्यों से गमुक्त वैष्णव पीठ पर सनकी पूजा करनी, श्रीराम के वाम भाग में खड़ी हुई धीमीताजी की उन्ही के मन्त्र से पूजा करनी चाहिये । श्री सीतायै नमः' यह जानकी जी का मन्त्र है । भगवान राम के अग्रभाग में शङ्ख धनुष की पूजा करके दोनों पार्श्वों में बाणों की पूजा कर ॥८११५॥

वेशरेपु षडगानि पश्चेत्वेता-समन्वयेत् ।

हनुमत च सुग्रीव भरत सविभीषणम् ॥१५
 लक्ष्मणागदशत्रुघ्नां जाववत क्रमात्पुन ।
 वाचयत हनुमतमग्रतो धृतपुस्तकम् ॥१६
 यजेद्भरतशत्रुघ्नो पार्श्वयोर्नृतचामरौ ।
 धृतातछत्र हस्ताभ्या लक्ष्मणा पृष्ठनोचयेत् ॥१७
 ततोष्टपत्रं सृष्टि च जप त विजय तथा ।
 सुराष्ट्र राष्ट्रपालच अक्रोष धर्मपालकम् ॥१८
 सुमत चेति सपूज्य लोत्रेशानापुष्पैस्तान् ।
 एव राम समाराध्य जीवन्मुक्त प्रजायत ॥१९
 चदनाक्री प्रजुहुयाजजातीपुष्पी समाहित ।
 राजवश्याय कमलौघनधान्यादि सिद्धये ॥२०
 लक्ष्मीकाम प्रजुहुयात्प्रसूनैर्विल्वसभवे ।
 आजपाक्रीर्नलिकमलं वशयेदखिल जगत् ॥२१

कमल की केशरी म छ अङ्गो को पूजा करके दत्तो मे हनुमान, सुग्रीव भरत विभीषण लक्ष्मण अङ्गद शत्रुघ्न तथा आम्बवान का क्रमश पूजन करना चाहिए । हनुमानजी भगवान के सम्मुख पुस्तक लेकर वाच रहे हैं । श्रीराम के दोनों तरफ भरत और शत्रुघ्न खँवर लेकर खड़े हैं । लक्ष्मणजी पीछे खड़े हाकर दोनों हाथा से भगवान के ऊपर छत्र लगाये हैं । इस प्रकार ध्यान करके सबकी पूजा करनी चाहिये ॥१५॥१७॥ इसके पश्चात अष्ट दत्ता के अग्रभाग म सृष्टि जय त विजय सुराष्ट्र राष्ट्रपाल अक्रोष धर्मपाल तथा सुमत की पूजा करके बाह्य भाग मे इन्द्र आदि देवताओं की अष्टोत्तुसहस्र पूजा करनी । इस प्रकार भगवान राम की पूजा करके मनुष्य जीवन मुक्त होजाता है ॥१८॥१९॥ जाती पुष्पी को चदन म लिप्त करके हवन करने से राजा वश मे होता है । कमला से हवन करने से धन धान्य की प्राप्ति हाती है । लक्ष्मी की इच्छा रखने वाल का विल्व क

पुष्पो मे हवन करना चाहिए । नील कमलो को घी में डुबा कर हवन करने में समस्त जगत वश में हो जाता है ॥२०॥२१॥

घृतावत शतपर्वीभिर्दीर्घायुषच निरामयः ।

रक्तोत्पलानां ह्येमेन घनं प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥२२

पालाश कुसुमैर्हुंत्वा मेधावी जायते नरः ।

तज्जप्ताभं पिवेत् प्रातस्सरात् क्विराड्भवेत् ॥२३

तन्मद्वितान्नं भुञ्जीत महारोग प्रशान्तये ।

रोगोक्तौपधं ह्येमेन तद्दरोगान् मुच्यते क्षणात् ॥२४

नदीतीरे च गोष्ठेवा जपेत्लक्षं पयोव्रत ।

पायसेनाजययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत् ॥२५

परिक्षीणाधिपस्थो यः शाकाहारो जलातरे ।

जपेत्लक्षं च जुहुयाद विल्वपुष्पीर्दशाशत ॥२६

तदैव पुनरानोति स्वाधिपत्यं न सशयः ।

उपोष्य गङ्गा तीरात् स्थित्वा लक्षं जपेन्नरः ॥२७

दशाशतं कमलं हुंत्वा विल्वोत्थंवा प्रमूनकं ।

मधुरत्रयं समुक्तेराज्यं श्रियमवाप्नुयात् ॥२८

घी में डुवाई हुई शतपर्वी (दूध) से हवन करने वाला दीर्घायु और निरोग होता है । रक्त कमलो का हवन करने में मन वाञ्छित घन प्राप्त होता है । पलाश के फूलों से हवन करने वाला मेधावी होता है और यदि कोई एक वर्ष तक प्रातःकाल में पूर्वोक्त मन्त्र में अभिमन्त्रित जल पिये तो वह क्वि मन्त्राट बन जाता है ॥२२॥२३॥ श्रीराम मन्त्र में अभिमन्त्रित अन्न का भोजन करने से बड़े-बड़े भयङ्कर रोग मिट जाते हैं । किसी रोग के निपटने की गई अधोपधि का हवन करने में मनुष्य क्षण भर में रोग मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ बेदम दूध का आहार रक्षकर नदी के तीरे पर या गङ्गातीरे में एक लाख जप किया जाय और पुनः पुनः श्री बी भाट्टनियं दी जाये ॥ विद्यानिधि हो

जाता है ॥२५॥ जिसका अधिकार नष्ट हो गया हो वह मनुष्य शाका-
हार पर आधार रखकर जल में छूटे होकर एक लाख जप करे और
वित्त के फूलों की दशांश आहुतियाँ दे तो उसको अपना नष्ट हुआ श्रेष्ठत्व
फिर से मिल जायगा, इसमें सन्देह नहीं । गङ्गा तट के समीप उपवास
करके जो मनुष्य एक लाख जप करे और त्रिमधु (गहूँ, घी और
शक्कर) युक्त व्रत भयवा वित्त फूलों की आहुतियाँ दे तो राज-
सदमी की प्राप्ति करता है ॥२६॥२८॥

माघमासे जले स्थित्वा कदमूल फलाशन ।
लक्ष जप्त्वा दशांशेन पायसैर्जुं हुयाद्वसौ ॥२६॥
श्रीरामचन्द्र महेश पुत्र पौत्रोपि जायते ।
अन्येपि बहव सन्ति प्रयोगा मन्त्रराजके ॥३०॥
पट्कोणा वसुपत्र च तद्वाह्याकं दल लिखेत् ॥३१॥
पट्कोणेषु षडर्णानि मन्त्रस्थ विनिश्चेद् बुध ।
अष्ट पत्रे तथाष्टार्णान्लिखेत् प्रणव गभितान ॥३२॥
कामवोज रीवदल मध्ये मन्त्रावृष्याभिधाम् ।
सुदशनावृत बाह्ये दिक्षुगुग्मावृत तथा ॥३३॥
वज्रोन्मसद्भूमिगेह कन्दार्पाकुशप शकं ।
भूम्या च विलसन्कोणयत्रराजमिदस्मृतम् ॥३४॥
भुजैष्टगर्धं सलिख्य पूजयेदुक्त वर्त्मना ।
पट्कोणेषु दलार्काब्जान्यावेष्ट वृतयुग्मत ॥३५॥
केशरेष्ट्वष्ट पत्रस्य स्वरद्वह लिखेद्बुध ।
बहिस्तु भातृकाचैव मन्त्र प्राण निघापनम् ॥३६॥

माघशीघ्र मास में कन्द, मूल फल का आहार करते हुए जल
में छूटे रह कर एक लाख जप करके प्रखलित धनि में खीर से दशांश
हाम करने वाले मनुष्य को भगवान राम जैसे गद्गुणी पुत्र और पौत्र
की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार इस मन्त्रराज के और भी बहुत से

बह्म्याणकारी प्रयोग है । पहले एक घटकोण बनावे । उसके चारो ओर
एक अष्टदल कमल का चित्र खीचना, उसके भी चारो ओर एक बारह
दल का कमल बनाना, कौनों म विद्वान् पुरुष को मन्त्र के छ अक्षरों
को लिखना । अष्टदल कमल में भी प्रणव सहित उक्त मन्त्र के आठ
अक्षरों का उल्लेख करना । दाहिने कमल दला में वाम बीज (वनी)
लिखना । बाह्य भाग में मुद्राण मन्त्र से और दिशाओं में शुभ बीज
(रा धी) से घट को आवृत करना ॥२६।३३॥ उमका 'भूपुर' ब्रह्म
संशोभित होना चाहिए । उसके चारो कोण बन्दर्ष, अशुभ, पाश,
भूमि से मुशोभित होने चाहिये । इसको यन्त्रराज माना गया है । भोज
पत्र पर अष्ट मन्त्र के ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिख कर छ कोनों
पर दलों का आवेष्टन करना, यन्त्र के बाह्य भाग में मातृका वर्णों का
उल्लेख करना, माय में प्राण प्रविष्टा का मन्त्र भी लिखना
॥३४।३६॥

यत्रमेतच्छुभे घटे वृत्ते वा दक्षिणे भुजे ।
मूर्ध्नि वा धारयेन्मन्त्री सर्वं पापं प्रमुच्यते ॥
ध्यायेन् ब्रह्मरूपं लोमू ल सुवर्णमय मण्डपे ॥३७
पुष्पवालय विमानान्त निहासान् परिच्छेदे ।
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनील समप्रभम् ॥३८
वीरासनसमासीनं शशा मुद्रोपशाभितम् ।
षामोहन्यस्तनद्वस्त सीतालदमणसेवितम् ॥३९
रत्नावल्प विभु ध्यात्वा वण लक्ष जपन्मनुम् ।
यद्वा स्मारदादि मन्त्राणा जपान च हृदि स्मरेत् ॥४०
रामश्च चन्द्रभद्रात्ता टोनर्मातो ध्रुवादिव ।
मन्त्रावष्टाधरो ह्येतो तारात्पौ चैन्वाधरो ॥४१
एतेषा मजन सर्वं कुर्यान्मन्त्री पठन्वत् ॥४२

मन्त्र के उपरान्त जो किसी शुभ दिन में वृत्त में, दाहिने भुजा

मे अथवा मस्तक पर इस मन्त्र को धारण करना । इसमें वह सर्व पापों से मुक्त हो जायगा ॥३७॥ भगवान राम का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि 'कल्प वृक्ष के नीचे सुवर्ण का एक विशाल मण्डप बना है । उसमें पुष्पक विमान है । विमान में एक दिव्य सिंहासन रखा है । उस पर अष्टदल कमल का आसन है । इसके ऊपर इन्द्र नीलमणि ध्याम कान्ति वाले भगवान श्रीरामचन्द्र वीरासन पर बैठे हैं । उनका दाया हाथ ज्ञानमुद्रा से सुशोभित है और बाया हाथ बायीं जाँघ पर रखा है । भगवनी सीता तथा सेवा द्रुत धारण करने वाले लक्ष्मण उनकी सेवा में लगे हैं । वे सर्वव्यापी भगवान रत्नमय आभूषणों से शोभित हैं ।' इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् छ अक्षरों की मन्त्र के अनुसार छ लाख मन्त्र जपे अथवा 'कली' आदि से युक्त मन्त्रों का साधन के लिये हरि का चिन्तन करे ॥३७॥४०॥ इसका पूजन तथा स्त्रीक प्रयोग पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्र के समान ही करना चाहिये 'ॐ रामच द्राय नम' तथा ॐ रामभद्राय नम' से दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं । इनके अन्त में भी यदि 'ह्र' लगा दिया जाय तो ये नवक्षर मन्त्र हो जाते हैं । इस मन्त्र का ध्यान निम्न प्रकार से करना चाहि ॥ ४१॥४२ ॥

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे ।

मन्दारपुष्पैरावद्धविताने तोरणान्विते ॥४३

सिंहासनसमासीन पुष्पकोपरि राघवम् ।

रक्षोभिर्हंरिभिर्देव सुविमानगतं शुभै ॥४४

सस्तूयमान मुनिभि प्रह्वैश्च परिमेवितम् ।

सीतालकृतवामाङ्ग लक्ष्मणतोप शोभितम् ॥४५

श्याम प्रमन्नवदन सर्वाभरण भूपितम् ।

एव ध्यात्वा जपेन्मश्री वर्णलक्ष समाहित ॥४६

दशाश कमलैर्होमो यजन च षडर्णवत् ।

रामो हन्तो धनुष्पाणिहन्तोन्ते वह्निमुन्दरी ॥४७
 दशाक्षरोय मन्त्रोस्य मुनिर्ब्रह्मा विराट् पुनः ।
 छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो राक्षस मदन ॥४८
 आद्यत्राज द्विठ शक्तिर्वीजे नागानि कल्पयेत् ।
 वर्णन्यास तथा ध्यानपुरश्चर्यार्चनादिकम् ॥४९
 दशाक्षरोक्तवत् कुर्याच्चाप वाणधर स्मेरत् ।
 तारो नमो भगवते रामान्ते चद्रभद्रकौ ॥५०
 ह्येतावर्काक्षरी मन्त्रो ऋषिध्यानादि पूर्ववत् ।
 श्रीपूर्वं जयपूर्वं च तद्द्विधा रामनाम च ॥५१

“दिव्य अयोध्या नगर मे रत्नो मे चित्रित एक मुवर्णमय महप है जिसमे मन्दार के पुष्पो से चंदोवा बनाया गया है, उसमे तोरण लगे हुये है । उसके अन्दर पुष्पक विमान मे एक दिव्य सिंहासन पर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुये हैं । उस सुन्दर विमान मे एकत्रित होकर शुभ स्वरूप देवता बन्दर, राक्षस तथा विनीत महर्षिगणनाम की स्तुति और परिचर्या करते हैं । श्रीराघवेन्द्र के वाम भाग मे भगवनी सीता विराजमान होकर वामाङ्ग की शोभा बढा रही है । भगवान का दाहिना हाथ लक्ष्मणजी से मुशोभित है । श्री रघुनाथजी को कान्ति श्याम है, उनका मुख प्रसन्न है, तथा वे समस्त आभरणो से विभूषित हैं । इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त से दश लाख जप करे । कमल के फूलो से दशाश होम और पूजन पङ्कधर मन्त्र के समान ही है । “रामाय धनुष्पाणये स्वाहा” यह दशाक्षर मन्त्र है । इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट छन्द तथा राक्षस मदन श्रीरामचन्द्रजी देवता हैं । मन्त्र का आदि अक्षर अर्थात् ‘रा’ बीज है और ‘स्वाहा’ शक्ति है । बीज से पङ्कगन्दास करना । वर्ण का न्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य पहले बताये गये के अनुसार ही करना चाहिये । इसके जप मे धनुष बाण धारण किये भगवान श्रीरामचन्द्र का ध्यान करना चाहिये ।

‘ॐ नमो भगवते राम चन्द्राय” अथवा ‘ॐ नमो भगवते राममद्राय” यह दो प्रकार के द्वादशाक्षर मन्त्र हैं । इनके ऋषि ओर ध्यान आदि पूर्ववत् हैं । श्रीरुवंक, जय पूषक तथा जय-जय पूर्वक ‘राम’ नाम होना चाहिये ॥४३-५१॥

द्वयोदशाक्षरो मन्त्रो मुविर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम् ।
 छन्दस्तु देवता प्रोक्तो राम पापीघनाशन ॥५२
 पङ्गानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्त्या पदत्रये ।
 ध्यानाचनादिकं सर्वे यस्थ कुर्याद्दशाक्षरम् ॥५३
 तारो नमो भगवते रामायते महापदम् ।
 पुरुषाय हृदतोष भनुरष्टादशाक्षर ॥५४
 विश्वामित्रो मुनिश्छन्दो धृती रामोस्य देवता ।
 तारो वीजं नमः शक्तिश्चन्द्राश्रयच्छ्वमिनि पट्भुजं ॥५५
 वर्णमन्त्रोत्थितं कुर्यात् पङ्गानि समाहितं ॥५६
 निशणभेरीपटहृशङ्खतुर्यादिनि स्वर्नं ॥५७
 प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमगल भाषिते ।
 चन्द्रनागुरु कस्तूरी कर्पूरं रादि सुवासिते ॥५८
 सिंहासने समासीनं पुष्पकापरि राघवम् ।
 सीमितिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥५९
 चाप धाणध श्याम ससुग्रीवविभीषणम् ।
 हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥६०
 एव ध्यात्वा जपेद्वर्णं लक्ष मन्त्री दशाक्षतम् ।
 धृताकर्तृ पायमहुत्वा ये जन पूर्ववच्चरेत् ॥६१

यह (श्रीराम जयराम जय जय राम) तेरह अक्षर का मन्त्र है । इसके ब्रह्मा ऋषि विराट् छन्द तथा पाप राशि के नाश करने वाले भगवन् श्रीराम देवता हैं । इसमें तीन पदों की दो दो आधुति करके पहेंग-यास करना । ध्यान पूजन आदि सर्वं कर्म दशाक्षर मन्त्र के

समान करे ॥५२-५३॥ "ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नम" यह अठारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, धीराम देवता, ॐ बीज और 'नम' शक्ति है। मन्त्र का एक, दो, चार, छ और दस अक्षरों वाले पदों से एकाग्रचित्त होकर पङ्कग्यास करना ॥५४-५६॥ इस अठारह अक्षर वाले मन्त्र का ध्यान इस प्रकार करे "भगवान् राघवेन्द्र रावण को मार कर और त्रैलोक्य की रक्षा करके फिर लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान में सिंहासन पर विराजमान हैं। उनका मस्तक जटाओं के मुकुट से शोभायमान है। उनका वण श्याम है और धनुष बाण धारण किये हैं। उनके साथ में सुधीव और विभीषण भी हैं। (उनकी विजय के उपलक्ष्य में निगान, भेरी, पटह, शख, तुरही आदि की ध्वनि के साथ नृत्य भी होने लग गया है।) चारों तरफ जय-जयकार और मङ्गल पाठ हो रहा है और चन्दन, अगुर, कस्तूरी और कपूर आदि की मधुर गन्ध सर्वत्र ग्यास हो रही है ॥५७-५९॥ इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक को मन्त्र की अक्षर सङ्ख्या के अनुसार अठारह लाख जप करना चाहिए और धृति मिश्रित स्त्री की दशाश आहुतियाँ देकर पूज्यत् पूजन करना चाहिए ॥६०-६१॥

एकाक्षरो रघुपतेर्मन्त्र कल्पद्रुमोपर ।
 ब्रह्मा मुनि स्याद्गायत्री छन्दो रामोस्य देवता ॥६२
 पङ्कीर्षाडिधेन मन्त्रेण पङ्कगानि समाचरेत् ।
 सरयूतीर मन्दार वेदिका पङ्कजासने ॥६३
 श्याम धीरासनासीन ज्ञानमुद्रोय शोभितम् ।
 वामोरुन्यस्ततद्वस्त सीतालक्ष्मणसपुत्रम् ॥६४
 अवेशमाणपात्मान मन्मगमिततेजसम् ।
 गुदस्कटिक सकारा वैबल मोक्षकाक्षया ॥६५
 चिन्तयेत् परमात्मानगृत्तुलक्ष जपेन्मनुम् ।

सर्वं पङ्कणवच्चास्य होमनित्याचंनानादिनम् ॥६६

भगवान् राम का एकाक्षर मन्त्र भी है वह है "रा" । यह द्वितीय कल्प वृक्ष के समान ही पमदायक है । इसका ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छंद और श्रीराम देवता हैं । छंदीय स्वरो स इसका पङ्कण-वास करे और निम्न रीति में भगवान् का ध्यान करे—' सरयू के तीर पर मदार (कल्पवृक्ष) के नीचे एक बड़ी पर कमल का आसन है । उस पर श्याम वन भगवान् राम बीरासन पर बैठे हैं और उनका दाया हाथ ज्ञान मुद्रा स मुशोभिन है । बायें हाथ को बायीं जथा पर रखा है । व सीताजी और लक्ष्मण क साथ हैं और कामदेव स भी बद्ध कर अत्यन्त सुन्दर है । वे शुद्ध स्फटिक के समान निम्न हैं और ध्यान द्वारा आत्म साक्षात्कार कर रहे हैं । ऐस परमात्मा श्रीराम का कवल मान्त्र व आकाशा से छ लाख जप करे । इसका हाम और नित्यपूजन सब कार्य पङ्कण मन्त्र की ही भांति है ॥६२—६६॥

पद्मानीतापद उत ठद्धयात पङ्कणर ।

वालमीकिश्च मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुन ।

सीता भगवती प्रोक्ता श्री बीज बहिन मुन्दरी ॥६७

शक्ति पङ्कदीघयुक्तेन बीजनागानि कल्पयेत् ।

ता ध्यायेन्महादेवी सीता त्रैलाक्य पूजिताम् ॥६८

प्रहारक वर्णाभा पद्म युग करद्वये ।

द्रव्यभूषण स्फूर्जदिव्यदेहा शुभात्मिकाम् ॥६९

तानावस्त्रा शशिमुखी पद्ममाक्षी मुदितान्तराम् ।

शयनी राघव पुण्य शय्याया पङ्कगुणेश्वरीम् ॥७०

एव ध्यात्वा जपेद्वन लक्ष म श्री दशाशत ।

मुहुयात् कमल कुलौ पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥७१

भूति सकल्प्य मूलन तस्याःमावाह्य जानकीम् ।

सपूज्य दक्षिणे राममभ्यर्च्याग्रे निलात्मजम् ॥७२

अब 'सीता मंत्र' को बतलाते हैं। पद्मा (श्री) चतुर्थी अन्न वाला सीता शब्द (सीताये) और अन्न में छद्म (स्वाहा) यह "श्री सीतायै स्वाहा" पदमंत्र मंत्र है। इसके वारमीक्ति ऋषि, मायत्री छन्द, भगवती सीता देवता, 'श्री' बीज और 'स्वाहा' शक्ति है। छ दीर्घ स्वरो स युक्त बीजाक्षर द्वारा पदमन्त्रपाठ करना। इसके पश्चात् त्रैलोक्य में पूजित महादेवी सीता का इस प्रकार ध्यान करना—श्री सीताजी की कानि तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य है। दोनो हाथों में दो कमल पुष्प सुशोभित है। रत्न जडित सुन्दर आभूषण धारण किये हैं जिससे उनका शरीर शोभायमान हो रहा है। वे चन्द्रमा के सटण सुंदर मुख वाली, कमल के समान तन वाली अन्तरा मा स प्रमुदित सीताजी भाँति भाँति के वस्त्रा स सुशोभित हैं और शेषा पर अपने प्राणनाथ परम पुण्यशील श्रीरामचन्द्रजी को निहार रही हैं। व ऐश्वर्य आदि पद्मगुणा की अधीश्वरी हैं ॥६७ ७०॥ इस प्रकार सीता देवी का ध्यान करके छ लाख मंत्र जप करना और खिले हुये कमल पुष्पा स दशाक्ष हवन करना। पूर्वोक्त पीठ (चदिरा) पर यह पूजा करनी चाहिये। मूल मंत्र से मूर्ति निर्माण करके उसमें सीताजी का आवाहन करना चाहिए। फिर उनका विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिण भाग में भगवान राम की और अप्रभाग में हनुमान जी की पूजा करनी चाहिये ॥७१ ७२॥



॥ विविध मंत्र द्वारा हनुमत्-उपासना ॥

अथोच्यते हनुमतो मन्त्रा सर्वोपदायका ।

यान्तमाराध्य विप्रेन्द्र तत्तुल्याचरणा नरा ॥१॥

मनु स्वरेन्दु सयुक्त गगन च भगान्विता ।

हस्तफाग्निराजशाधीशः द्वितीय बीजभीरितम् ॥२॥

आवाहन, स्थापना पूर्वक पाद्यादि द्वारा पूजन करना । हृदयादि अङ्गों की पूजा करके अष्टदल कमल की आठ दलों में हनुमानजी के निम्न आठ नामों की पूजा करनी—रामभक्त, महानिशा, कपिराज, महावन, द्रोणाग्निहारक, मेरीठाचंनकारक, दक्षिणाणा भास्कर तथा सर्व विघ्न विनाशक ॥११॥१४॥

इत्थं सम्पूज्य नामानि दलाग्रेषु ततोर्चयेत् ।
 सुग्रीवमगद नील जायवत नल तथा ॥१५॥
 गुपेण द्विविद मैद लोऋपालास्ततोर्चयेत् ।
 वज्राद्यानीय सपूज्य सिद्धश्चैव मनुर्भवेत् ॥१६॥
 मन्त्र नवशत रात्रौ जपेद्दशदिनावधि ।
 यो नरस्तस्य नश्यति राजशत्रूत्यभीतय ॥१७॥
 मातुलिगाभ्रकदली फलं हृत्वा सहस्रकम् ।
 द्वाविंशति ब्रह्मचारि विभ्रान्सभोजयेच्छु चीन ॥१८॥
 एवकृते भूतविषग्रहरोगद्युपद्रवा ।
 नश्यति सतक्षणा देव विद्धेऽपिग्रह दानवा ॥१९॥
 अष्टोत्तरशतेनायु मंत्रित विपनाशनम् ।
 भूताहस्मर कृत्योत्य ज्वरे तन्मन्त्रमंत्रितं ॥२०॥
 भस्मभि सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिण क्रुधा ।
 त्रिदिनाज्ज्वरमुक्तोऽसी मुख च लभते नर ॥२१॥

इस प्रकार हनुमानजी की पूजा करके कमल पत्रों के अग्रभाग क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, गुपेण, द्विविद तथा की पूजा करनी । फिर लोऋपालो और उनके आयुधो वज्र आदि की पूजा करनी । इस प्रकार साधन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । जो व्यक्ति दस दिन तक लगातार प्रति रात्रि को नौवीं मन्त्र का जप करता है उसको राजभय तथा शत्रु भय से छुटकारा मिल जाता ॥१६॥१७॥ इस मन्त्र से मातुलिग (विजोरा), आम, बेला के

पत्नी की एक मह्य आहुतियाँ देकर हवन करने से और पवित्र बाईस ब्रह्मचारियों की भोजन कराने से भूत, विष, रोग, कुपित ग्रह, दानव आदि का प्रकोप सुख-न नष्ट होजाता है ॥१८॥१९॥ एकमी आठ बार मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल विष के प्रभाव को दूर कर देता है । भूत, अवस्मार (बाप) और कृप्या (तन्त्र डाग मारण प्रयोग) आदि के कारण जो उबर उत्पन्न हुआ हो तो उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म या जल को शोधपूर्वक रोगी पर फेंक कर मारना । इस प्रकार का प्रयोग, तीन दिन तक करने से तीन दिन में रोग मुक्त होकर स्वाम्य लाभ करता है ॥२०॥२१॥

श्रीपथ वा जप यापि भुज्वा तन्मन्त्रमन्त्रितम् ।
 सर्वाङ्ग रोगान्पराभूय गुण्यो भवति त अणान् ॥२२
 तज्जन्तमन्मन्त्रिमाहो भुव वा तन्मन्त्रित पर ।
 योद्धु गच्छेन्न वा मथो मन्त्र मथेनं वाध्यते ॥२३
 शस्त्र दान शण्पाटी सूताग्धोटीनि भग्ना ।
 त्रिजंभन व मन्मृष्टा मुष्यन्वेव न मन्त्र ॥२४
 जपदांस्तमारभ्य याजदांदयो भवेन् ।
 मन्त्र मन्त्र दिन यावच्चादाय भस्म कीर्तौ ॥२५
 निश्वस्यभिष्पाश्यान् शत्रूणा द्वापंरशित ।
 विद्वेष मिथ आपन्ना पत्न्यायत्तरत्वात्त्रिगत् ॥२६
 भस्मात्तु घदन मथो मयेणानेन मन्त्रितम् ।
 भस्मादि योजित यस्मिं ददाति म नु दानवन् ॥२७
 वा रात्र जपयो त्येष भवति मन्त्रदिन ॥२८

है उसका शस्त्र द्वारा कोई अतिष्ट नहीं हो पाना ॥२२॥२३॥ शस्त्र से लगा हुआ घाव, फोड़ा, मकरी से उत्पन्न फुसी आदि तीन बार जप कर भस्म के लगाने से बहुत शीघ्र सूख जात है ॥ २४ ॥ सात दिन सूर्यास्त में सूर्योदय तक मन्त्र का जप करे और उससे अभिमन्त्रित भस्म का शत्रु के द्वार के सम्मुख किसी गढे में गाढ़ दे तो शत्रु का द्वेष भाव दूर हो जाता है ॥२५--२६॥ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित चन्दन की भस्म या जल को भोजन के साथ मिला कर खिला दिया जाय तो वह अपना पूर्ण रूप में अनुयायी बन जाता है । मनुष्य की तो क्या बात क्रूर जतु भी इस प्रयोग से वशवर्ती हो जाते हैं ॥२७--२८॥

गृहीत्वेशानदिवसस्थे करजतरुमूलकम् ।
 कृत्वा सेनागुष्ठमात्रा प्रतिमा च हनुमत- ।
 कृत्वा प्राणप्रथिष्ठा च सिद्धूराद्यं प्रपूज्य च ॥२६
 गृहस्याभिमुखी द्वारे निखनेन् मन्त्रमुच्चरन् ।
 ग्रहाभिचार रोगाग्नि विष चौर नृपोद्भवा ॥३०
 न जायते गृहे तस्मिन् कदाचिदप्युपद्रवा ।
 तद्गृहे धनपुत्राद्यं रेधते प्रत्यह चिरम् ॥३१
 ज्वरे दूर्वागुह्वचीभिर्दंष्टना क्षीरेणवा घृते ।
 शूले करजवातारिस मिद्भिस्तील लोलि ॥३२
 जप्तोयुद्धे जय दद्याद्ब्याधी व्याधि विनाशन ।
 एव यो भजते मन्वी वायु पुत्र कपीश्वरम् ॥३३
 सर्वान्स लभते कामान्दे वरपि सुदुर्लभान् ।
 धन धान्य सुतान्यौत्रान् सौभाग्य मतुल यश ॥३४
 मेधा विद्या प्रभा राज्य विवादे विजय तथा ।
 उपासितो जनागर्भं सभूत प्रददात्यलम् ॥३५

ईशान दिशा में स्थित करज वृक्ष की जड़ लाकर उससे अँगूठा के बराबर हनुमान जी की प्रतिमा बनाव । फिर उम प्रतिमा में प्राण

॥८८॥ करके मिन्दूर आदि से उसकी पूजा करनी फिर प्रतिमा का मुख
 दर की तरफ करके, मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे दरवाजे पर गाढ़
 देना । ऐसा करने से ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा
 पाजा आदि का उपद्रव उस घर में कभी नहीं होता । वह घर दीर्घकाल
 तक धन पुत्र आदि से सुखी बना रहता है ॥२६-३१॥ ज्वर से पीड़ित
 होने पर दूध, गिलोय (गुहूची) को दही, दूध अथवा घृत से मिथित
 करके हवन करे । शूल रोग में कर्ज अथवा एरण्ड (बातारि) की
 समिधायों को तैल में डुबोकर हवन करे ॥३२॥ इस प्रकार विधिपूर्वक
 वायुपुत्र कपीश्वर हनुमान जी का जप करने से युद्ध में विजय प्राप्त
 होती है और सब प्रकार की आधि-व्याधि नष्ट हो जाती हैं । इससे
 साधक को वे सब कामनायें सिद्ध हो जाती हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ
 हैं । अजनिपुत्र हनुमानजी की उपासना धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल
 मौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवाद में जय प्रदान
 करने वाली है ॥३३-३५॥



॥ श्रीकृष्ण मंत्र की अनुष्ठान विधि ॥

अथ वक्ष्ये कृष्ण मन्त्रान् मुक्ति मुक्ति फलप्रदान् ।
 ब्रह्माद्या यान्समाराध्य मृष्टघादिकरणे क्षमा ॥१॥
 काम वृष्णपद डेत गोविन्द च तथाविधम् ।
 गोपीजन पद पश्चाद् वल्लभायाम्नि सुन्दरी ॥२॥
 अष्टादशार्णो मन्त्रोय दुर्गाधिष्ठान् देवत ।
 नारदोस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ॥३॥
 श्रीकृष्ण परमात्मा च कामो वीज प्रकीर्तितम् ।
 स्वाहा शक्तिर्नियोगस्तु चतुर्वर्गं प्रसिद्धये ॥४॥
 श्रापि शिरशि वक्त्रे तु छन्दश्च हृदि देवताम् ।

गुह्ये बीज पदो शक्ति न्यसेत्साधन मत्तम ॥५
 युगवेदाग्नि निगमोद्गीम्या वर्णोर्मान्द्रमणौ ।
 पचागानि प्रसिन्यस्य तत्त्रय्याम समाचरेत् ॥६
 मूर्धास्य हृद्गुह्य पादेऽप्यावा शादीन् न्यसेत्तन ।
 हृत्पुण्डरीकमर्बन्दु यद्दिन विद्यान्यनुकमात् ।
 द्विपट्टह्यष्टदशरत्ना ध्याप्तानि च तथा मत ॥७

श्री मनसु कुमार बोले— नारद । अत्र पाचिव भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् कृष्ण के मन्त्रों का वर्णन करता है । इन्हीं का साधन करने ब्रह्मात्री सृष्टि रचना करने में समर्थ होते हैं । काम (कवी) ' छे ' चतुर्थी विभक्ति युक्त " कृष्ण " और " गाविन्द " पद, फिर ' गोपीजन वल्लभाय स्वाहा ' (कवी कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा) यह अष्टारह अक्षरों का मन्त्र है । इसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है इस मन्त्र के नारद ऋषि, गायत्री छ द, परमात्मा श्रीकृष्ण देवता ' कवी बीज और ' स्वाहा शक्ति है । धर्म, अथ, काम और मोक्ष के लिये इसका विनियोग किया जाता है । थोड़ा साधन को ऋषि का शिर म, छ द का मुख में, देवता का हृदय में, बीज का गुह्य म और शक्ति का चरणों में न्यास करना । (जैसे नारदपदे नम शिरस, गायत्री छ द से नम मुखे, श्रीकृष्ण परमात्मदेवतार्यं नम हृदि, कवी बीजाय नम गुह्ये, स्वाहा शक्तये नम पादयो, इस प्रकार ऋष्यादि न्यास होता है) । मन्त्र के चार, चार, चार, चार और दो अक्षरों से पञ्च श्रद्धा न्यास करना (जैसे— ' कवी कृष्णाय ' हृदयाय नम, ' गाविन्दाय शिरसे स्वाहा ' गोपीजन शिखायै वषट ' वल्लभाय कवचाय ह्रै, स्वाहा अस्ताय फट) । इस प्रकार पञ्चाङ्ग न्यास करके फिर तत्त्व न्यास करे । इसके बाद हृदय कमण्डलु क्रमशः द्वादश कला व्याप्त मूय षोडशकला व्याप्त च द्वाभङ्गल तथा दश कला व्याप्त अग्निमण्डल का न्यास करे ॥९-७॥

अथ वक्ष्ये महागुह्य सर्वन्यासोत्तमोत्तमम् ।
 यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नर ॥
 अग्निमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरः स्यान्न सशय ॥८८
 यस्मिन् आराधनतो मन्त्री कृष्ण सानिध्यता व्रजेत् ।
 ताराद्याभिव्यङ्ग्यहृतिभिः सपुट विन्यसेन्मनुम् ॥८९
 मन्त्रेण पुटिताश्चापि प्रणवाद्यास्ततो न्यसेत् ।
 गायत्र्या पुटित मन्त्रं विन्यसेन्मातृका स्थले ॥९०
 मन्त्रं पुटिता वा च गायत्री विन्यसेत् क्रमात् ।
 मातृका पुटित मूलं विन्यसेत् साधकोत्तम ॥९१
 मूलेन पुटिता चैव मातृका विन्यसेत् क्रमात् ।
 तृच न मातृका वर्णापूर्वं तत्स्थले सुधी ॥९२
 विन्यसेन् न्यास पट्कं च पौडा न्यासोयमीरित ।
 अनेन न्यास वर्णेण साक्षात् कृष्णसमो भवेत् ॥९३
 न्यासेन पुटितं दृष्ट्वा सिद्धं गन्धर्वं किन्नराः ।
 देवा अपि नमत्येन किं पुनर्मानवा भुवि ॥९४
 सुदर्शनस्य मन्त्रेण कुर्याद्दिग्बन्धनं ततः ।
 देव ध्यायन्स्वहृदये सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥९५

अब मैं न्यासो मे उत्तमोत्तम न्यास को बतलाता हूँ जो अत्यन्त गुह्य है। यह ऐसा प्रभावशाली है कि इसके जानने मात्र से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है और अग्निमा आदि आठों सिद्धियों करत लगत जान पड़ती है। इसकी आराधना से मन्त्र साधक भगवान् श्रीकृष्ण का सानिध्य प्राप्त कर लेता है। प्रणवादि व्याहृतियों से सम्पुटित मन्त्र का और मन्त्र से सम्पुटित प्रणवादि का मातृकास्थल में न्यास करे। फिर गायत्री से सम्पुटित मन्त्र का और मन्त्र से सम्पुटित गायत्री का उनी प्रकार मातृकास्थल में क्रम से न्यास करना चाहिये। फिर मातृका से सम्पुटित मूल का और मूल से सम्पुटित मातृका वर्णों का नियत क्रिये

स्थलो मे न्यास करना । पहले मातृका वर्णों का न्यास करके पूर्वोक्त न्यास करने चाहिये । इस प्रकार छ प्रकार के न्यास करे । इसे षोडाश्यास कहा जाता है । इस महा न्यास के करन वाला साधक भगवान के सदृश्य ही बन जाता है और पित्र, मन्धवं, किन्नर तथा देवगण भी उसे नमस्कार करत हैं, फिर इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को तो बात ही क्या है । उत्पश्चात् " ॐ नमः मुदगनाय शस्ताय पट्ट " इस मन्त्र से दिग्बध करके अपने हृदय मे समस्त अभीष्टों की पूति करन वाले इष्टदेव का इस प्रका ध्यान करना ॥५-१२॥

उत्फुल्ल कुसुमव्रात नम्रशाखेवंद्रुमं ।
 सस्मेरमज्जरी वृन्द वल्लरी वेष्टितं शुभं ॥१६
 गलत्पराग धूलोभि सुरभीकृतदिङ्मुखं ।
 स्मरेच्छिशिरित वृन्दावन मन्त्री समाहित ॥१७
 उन्मोलन् नवकञ्जालि विगलन्मधु सधयै ।
 लुब्धान्त करणं गुञ्जद् द्विरेफ पतलं शुभम् ॥१८
 मराल परभृत कीर कपोत निर्वरमुहु ।
 मुखरीकृत मानृत्यन् मापूरकुल मजुलम् ॥१९
 कालिन्धा लोलकल्लोल विप्रुपंर्नन्दवाहिभि ।
 उन्निद्राम्बुरुहघात रजोभिधसरं शिवी ॥२०
 प्रदीपित स्मरं गोष्ठ सुन्दरी मृदु वाससाम् ।
 विनोसनपरं ससवित वा तीनिरन्तरम् ॥२१
 स्मरेत्सदन्ते गीर्वाणभूरह सुमनोहरम् ।
 तदध स्वर्णवेद्या च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥२२
 रत्नबुट्टिमपीठस्मिन्नरुण कमल स्मरेत् ।
 अष्टपत्र च तन्मध्ये मुकुन्द सस्मरेत् स्थितम् ॥२३
 फुलो दीनरवान्त च वक्त्रिहावतसकम् ।
 पीताशुभ च प्रमुख परसीरह नेत्रम् ॥२४

कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्गं सुभूपितम् ।

व्रजस्त्री नेत्र कमलाभ्यचित गोगणावृतम् ॥

गोपवृन्दयुत वशी वादयन्त स्मरेत् सुधी ॥२५

‘भगवान् कृष्ण वा लीलास्थल वृन्दावन गुन्दर हरे भरे वृक्षो से परिपूर्ण तथा शीतल है। उन वृक्षो की शाखायें खिले हुए फूलों के भार से झुकी हुई हैं। उन पर प्रफुल्ल मञ्जरियो से युक्त बेलें लिपटी हुई हैं। उन वृक्षो पर से जो पुष्पपराग रूप धूल-वण झरते हैं उनसे दमो दिशाएँ मुगंधमय हो रही हैं। वहां खिलने वाले कमलों से विशलित मधु धारा में आकर्षित होकर भौरो के समूह मधुर गुञ्जार करते रहते हैं। (हम कोपल, भुक्त और कपोतो के समूह उस प्रदेश को नाना प्रकार के शब्दा से पूर्ण किये रहते हैं और मयूर गण मनोहर नृत्य करते रहते हैं।) यमुनाजी के ऊपर बहने वाला शीतल सुखद वायु जल की चञ्चल लहरों से सूक्ष्म जल बिन्दुओं तथा कमलों के पराग को लेकर धूमर वर्ण का दिखाई पड़ने लगता है। वह व्रज-नारियो के वस्त्राचलो को चञ्चल करता रहता है और प्राणियों के हृदय में प्रेमभाव को उद्दीपित करता रह कर वृन्दावन का निरन्तर सेवन करता है। उस वन में एक अत्यन्त मनोहर कल्प वृक्ष का किन्तन करना। उसके नीचे गुवर्ण मय बेशी पर एक परमोत्तम रत्नमय पीठ शोभायमान है। वहाँ की भूमि भी रत्न जडित है। उस रत्नमय पीठ पर लाल रङ्ग के अष्टदल कमल की भावना करनी कि जिसके मध्य में श्री मुकुन्द विराजमान हैं। उनके स्वस्व का ध्यान दम प्रकार करना कि उनके अङ्ग की कानि विकसित नील कमल के समान है, उन्होंने मोरपक्ष का मृकुट धारण कर रखा है। कटि में पीताम्बर शोभित है। उनका मुख चन्द्रमा को लज्जित कर रहा है, और नेत्र खिले हुये कमलों की शोभा को छीने ले रहे हैं। समस्त अङ्ग कौस्तुभ मणि की प्रभा से प्रकाशित हो रहा है। वक्ष स्थल पर धीवत्स का चिह्न सुशोभित है।

वे परम सुन्दर दिव्य आभूषण धारण किये हैं । ब्रज की सुन्दर भारिणी मानो अपने नेत्र रूपी कमलों का उपहार उनको अर्पित कर रही हैं, यामें उनको चारो ओर से घेरकर छड़ी है, गोपवृन्द उनके साथ हैं और वे बामुरी बजा रहे हैं । विद्वान् पुण्यो को इसी प्रकार भगवान् कृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥१९—२५॥

एव ध्यात्वा जपेदादाव्युताद्वितयं बुधः ॥२६
 जुहुयादरणाभोजं स्तददशाश समाहित ।
 जपेत् पञ्चान्मन्त्रसिद्धयं भूतलक्ष्य समाहित ॥२७
 अरुणं कमलहृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
 पूर्वोक्ते बँष्णवे पीठे मूर्ति सकल्प्य मूलतः ॥२८
 तस्यामावाह्य चाम्यचेंद गोपीजन मनोहरम् ।
 मुखे वेणुं समभ्यर्च्य वनमाला च कौस्तुभम् ॥२९
 श्रीवत्स च हृदि प्राच्यं ततः पुष्पाजलि क्षिपेत् ।
 तथ श्वेता च तुलसी शुक्ल चन्दन पक्विलाम् ॥३०
 रक्ता च तुलसी रक्तचन्दनाकना क्रमात् सुधां ।
 अपंपेद् दक्षिणे वामभागे ध्यायन्सुरेश्वरम् ॥३१
 ह्यमारुह्ये नैव हृदि मूर्द्धनि तथा पुनः ।
 पद्मद्वयं च विधिवत्ततः शीर्षे समर्पयेत् ॥३२
 तुलसीद्वयमभोजद्वयमश्चारियुग्मकम् ।
 ततः सर्वाणि पुष्पाणि सर्वाणिषु समर्पयेत् ॥३३

युद्धिमान् मन्त्र-गायक को इन रीति से ध्यान करके पहले बीस हजार मन्त्र जपना फिर एकाग्रचित्त होकर भाल कमल पुण्यो से दशांश (दाहशर) आहूति देनी । फिर सावधान होकर मन्त्र सिद्धि के लिये पाँच लाख जप करना । तापसवाग् साम कमलो में हवन करने से साधक ममत्ता निवृत्तियों का स्वाधो ब्रज जाता है । पूर्वोक्त बँष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति निर्माण करके उसमें गोपीजन मनोहर भगवान्

श्रीकृष्ण का आवाहन और अर्चन करना । श्रीकृष्ण के मुख में जो वशी है उसको पूजन कर फिर ब्रह्म स्थल पर बनगाल, वीस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स का पूजन करना । इसके बाद पुष्पाजलि अर्पण करनी । फिर दाँयी ओर श्वेत चन्दन से लिप्त और बाँयी ओर लाल चन्दन से पुक्त तुलसीदल समर्पित करने । तत्पश्चात् कनेर के दो फूल लेकर भगवान् के हृदय और मस्तक की पूजा करे । फिर विधिपूर्वक दो कमल के पुष्प उनके मस्तक पर चढावे और समस्त अङ्गो में दो तुलसीदल, दो कमल और दो कनेर के फूल चढाकर सब प्रकार के पुष्पो को समर्पित करे ॥२६—३१॥

दक्षिण वामुदेवाख्य स्वच्छ चैतन्य मव्ययम् ।
 वामे च रुक्मिणी तद्वन्नित्या रक्ता रजोगुणाम् ॥३४
 एव सपूज्य गोपाल कुर्यादावरणार्चनम् ।
 यजेद्दाम सुदामो च वसुदाम च किंणीम् ॥३५
 पूर्वाद्याशासु दामाद्या डेनमोन्त ध्रुवादिका ।
 अग्निर्नर्त्तति वाय्वीश कोणेपु हृदयादिकान् ॥३६
 दिश्वस्त्राणि समभ्यर्च्य पत्रेषु महिषी यजेत् ।
 रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजित्यभिधा पुन ॥३७
 सुविदा मित्रविद्रा च लक्ष्मणा चर्क्षजा तत ।
 सुशीला च लसद्रम्या चित्रितावर भूपणा ॥३८
 ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवञ्च देवकीम् ।
 नन्दगोप यशोदा च बलभद्र नुमद्रिकाम् ॥३९
 गोपान् गोपीश्च गोविन्द विलीन मति लोचनान् ।
 ज्ञानमुद्राभयकरो पितरो पीतपादुरौ ॥४०

श्रीकृष्ण के दाहिने भाग में वामुदेवजी का, जो अविनाशी चैतन्य स्वरूप है पूजन करे तथा बाँयी ओर रक्त वर्ण रजोगुण स्वरूप रुक्मिणी जी का पूजे । भगवान् श्रीकृष्ण का इस प्रकार विधिवत् पूजन

करने के पश्चात् उनके चार आवरण देवता श्याम, सुदाम, वसुदाम और हृदयणी का पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमशः पूजन करे । इनके नामों के आरम्भ में ' ॐकार ' अन्त में चतुर्थी विभक्ति और ' नम ' शब्द लगाना चाहिये (जैसे ॐ कामायनम , ॐ सुदामाय नम ' आदि) । फिर अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान—इन चारों दिशों में क्रमशः हृदय, शिरसिखा तथा कवच का पूजन करके समस्त दिशाओं में अस्त्रों का पूजन करे । फिर कमल के आठों दलों में भगवान् वृष्णकी आठों पटरानियों हविषणी, सत्यभामा, नाम्नजिती, मुविन्दा, मित्रविदा, लक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला का पूजन करे । वे सभी पटरानियाँ बड़ी सुन्दर, रमणीक तथा दृशनीय वस्त्राभूषणों से युक्त हैं तब अष्ट दलों के अग्रभाग में वसुदेव, दन्वी, नन्द, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा तथा गोप और गोपियों का पूजन करे । इन सबका ध्यान और नेत्र सोपिन्द की ओर ही लगाना है । दोनों पिता—वसुदेव और नन्द ज्ञान मुद्रा पीत में और पाण्डु वर्ण के हैं ॥३४—४०॥

दिव्यमात्म्यावरणं लेप भूपजे-मातरीं गृत् ।

धारयत्यौ च ह चैत्र पापमी पूर्णपात्रिकाम् ॥४१

वृष्णं च वसुदेवं च देवकीनन्दनं तथा ।

नारायणं यदुत्प्रेष्टं वाष्पेयं धर्मपालकम् ॥४२

वसुराकांत-भूभारहारिणं पूजयेत्ततः ।

एभिरावरणैः पूजा कर्तव्यासुरैरिण ॥४३

समारम्भागरीत्तीर्थैः सर्वं कामस्ये बुधैः ।

एष पूजादिभिः सिद्धो भवेद्देवत्ववशो यम ॥

त्रिकान्तं पूजनं चास्य वक्ष्ये सर्वाणि सिद्धिदम् ॥४४

दोनों माताओं—देवकी तथा यशोदा दिव्य वस्त्राभूषण, गन्ध, अङ्गराग आदि से युक्त हैं और हाथों में क्षीर से भरे पात्र लिये हुए हैं । इस प्रकार आठों नामों को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण का यजन करे ।

वे आठ नाम ये हैं—कृष्ण, वामुदेव, देवकी नन्दन, नारायण, यदुश्रेष्ठ, वाष्णोय घर्मपालक, और धमुराक्रान्त भूभारहारी । इस प्रकार अमुरो का नाश करने वाले भगवान धीकृष्ण का आवरणो सहित पूजन करने में बुद्धिमान व्यक्ति समस्त कामनाओं को प्राप्त करते हुये समार सागर से पार चले जाते हैं । अर्थात् भगवान की कृपा से उनकी भुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति हो जाती है । अब नीचे भगवान के तीनों काल में पूजा करने का विधान बताया जाता है जो नमस्त मनोरथो को सिद्ध करने वाला है ॥४१—४४॥

थी मदुद्यान सवीत हेमभूरत्नगठपे

लसत्कल्पद्रुमाद्य स्थ रत्नाब्जपीठ मस्थितम् ।

सुश्रामरत्नसकाश गुडस्निग्धालक शिशुम् ॥४५

चलत् वनक कुण्डलोत्लसित चारुगण्डस्थल-

सुघोणघर्मदभुत स्मितमुखाम्बुज सुन्दरम् ।

स्फुरद्विमल रत्नयुक्कनक सूत्रनद्ध दधत्-

सुवर्ण परिमडित सुभग पीण्डरीक नखम् ॥४६

समुद्घुसरोर स्थले धेनुधूल्या

सुपुष्टाङ्गमष्टापदा कल्प दीप्तम् ।

कटीरस्थले चारुजयान्त युग्म

पिनद्ध क्वणित् किकणी जालदाम्ना ॥४७

हसन्त हसद् बन्धुजीव प्रसून-

प्रभापाणि पादाम्बुजोदारकान्त्या ।

दधान करे दक्षिणे पायसान्न

सुहृयगवीन तथा वामहस्ते ॥४८

लसद्गोपगोपी गवा वृन्दमध्ये

स्थित वासवाद्य सुरैरचिताङ्घ्रिम् ।

महोभारभूतामरारारि यूथा-

स्तत पूतना दीन् निहन्तु प्रवृत्तम् ॥४६
एव ध्यात्वा चर्चयेद्देव पूर्ववत् स्थिर मानस ।

दध्ना गुडेन नैवेद्य दत्त्वा दशशत जपेत् ॥५०
मध्यदिने यजेद्देव विशिष्ट रूप धारिणम् ।

नारदाद्यैर्मुनिगणै सुरचन्द्रैश्च पूजितम् ॥५१

प्रातः काल भगवान का ध्यान करने के लिए अपने चित्त में भावना करे कि ' एक परम मुन्दर उद्यान के बीच में सुवर्णमय भूमि पर एक रत्नों का मण्डप बना है । वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों की ही एक कमलाकार वेदी बनी है । उसके ऊपर नीलम के समान अङ्गुलीयमाना तथा अत्यन्त मुन्दर घुँघराते वेशो से युक्त एक शिशु विराजमान है । उसके कपोल कानों में पहिने हिलते हुए कुण्डलो से बड़े मनोहर लगने हैं । उसकी नासिका मुन्दर और मुषड है और मुख पर मन्द मुम्बान दिखाई पड़ती है । उसने गले में सोने की जड़ीर म लटका और सोने से मढा रत्नों से युक्त वाघमन्त्र धारण कर रखा है । उसका वक्ष - स्थल घोघूर्णित से घुमरित है और अनेक दिग्घ्न आभूषणों में दीप्तिमान हो रहा है । उसके समस्त अङ्ग खूब पुष्ट हैं उसके पँरों की दाया विण्डनियी अत्यन्त मनोहर हैं और उसने कमर में घुँघरो वाली करधनी पहिन रखी है जिससे सवार युक्त मधुर शब्द होता रहता है । उसके चरणों की आभा घिले हुये यन्धुजीव पुष्प के समान सान्निमा युक्त है और वह मन्द २ स्मित कर रहा है । शिशु के दीये हाथ में धीर की बटोरी और बाँये में तुरन्त का निहाला मन्थन है । स्वात, गोपी और गायत्री के समूह के मध्य में वह अत्यन्त शोभा पा रहा है । इन्द्र आदि देवगण उसने चरणों की आराधना करत हैं और उमन पृथ्वी के लिये भारभूत दैत्यगणों पूतना आदि का महार करना आरम्भ कर दिया है । इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त से भगवान का पूजन करना उनके सम्मुख दही और गुड या नैवेद्य रख कर एक हजार मन्त्र जप

करे । इसी प्रकार नारद आदि मुनिगणों और देवनाभों से पूजित विशिष्ट रूपयुक्त भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना ॥४५-५१॥

लसद्गोपगोपीगवा वृन्दमध्य-

स्थित सान्द्रमेघप्रभ सुन्दराङ्गम् ।

शिखण्डिच्छदापीडमञ्जायताक्ष

लसच्चिस्लिक पूर्णचन्द्रानन च ॥५२

चलत्कुण्डलोल्लामि गण्डस्थलश्री-

भर सुन्दर मन्दहास सुनासम् ।

सुकार्तस्वराभाम्बर दिव्यभूष

क्वणित् किकणीजालमात्तानुलेपम् ॥५३

वेणु धमन्त स्वकरे दधान

सव्ये दर यष्टि मुदार वेपम् ।

दक्षे तथैवेप्सितदान दक्ष

ध्यात्वात्तयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥५४

मध्याह्न की पूजा के समय ध्यान करते हुये भावना करनी कि "वे श्रीकृष्ण भगवान् गोप, गोपियो तथा गायो के मध्य विराजमान हैं, उनकी छत्रि स्निग्ध मेघ के समान श्याम है, और प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर है । वे मोर पक्षी का मुकुट धारण किये हैं और नेत्र कमल दल के समान विशाल हैं । उनकी भीहे बहुत शोभा सम्पन्न हैं और मुख चन्द्रमा से भी अधिक कान्ति युक्त है । हिलते हुए दैदीप्यमान कुण्डलों से उनके कपोलों की शोभा अपूर्व हो जाती है । उनकी नासिका बड़ी मनोहर है और मन्दहास करने से मुख अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है । उनके वस्त्र लपाये हुए सुवर्ण की आभा के वर्ण वे हैं, शरीर पर दिव्य आभूषण धारण कर रहे हैं, कटि में धारण की हुई वरधनी के घुँघरुओं मधुर शब्द ही रहा है और दिव्य गन्ध युक्त अङ्गराग धारण किये । वे अपने हाथ में लेकर मुरली को धर रहे हैं, उनके बाँये हाथ में

स्तत पूतना दीन् निहन्तु प्रवृत्तम् ॥४६
एव ध्यात्वाच्चंपेदेव पूर्ववत् स्थिर मानस ।

दध्ना गुडेन नैवेद्य दत्त्वा दशशत जपेत् ॥५०
मध्यदिने यजेदेव विशिष्ट रूप धारिणम् ।

नारदाद्यमुनिगणैः सुरवृन्दैश्च पूजितम् ॥५१

प्रातः काल भगवान् का ध्यान करने के लिए अपने चित्त में भावना करे कि ' एक परम सुन्दर उद्यान के बीच में सुवर्णमय भूमि पर एक रत्नो का मण्डप बना है । वहाँ बल्पवृक्ष के नीचे रत्ना की ही एक कमलाकार बेड़ी बनी है । उसके ऊपर नीलम के समान अङ्गभाषा वाला तथा अत्यन्त सुन्दर घुँघरासे बेशो से युक्त एक शिशु विराजमान है । उसके कपोल कानो में पहिने हिलते हुए कुण्डलो से बडे मनोहर लगते हैं । उसकी नासिका सुन्दर और मुषड है और मुख पर मन्द मुस्कान दिखाई पडती है । उसने गले में सोने की जड़ीर में लटका और सोने से मन्दा रत्नो से युक्त वाघमख धारण कर रखा है । उसका वक्षस्थल गोधूलि से घुसरिन है और अनेक दिव्य आभूषणो से दीप्तिमान हो रहा है । उसके समस्त अङ्ग खूब पुष्ट हैं उसने परो की दानो पिण्डलियाँ अत्यन्त मनोहर हैं और उसने कमर में घुँघरो वाली करधनी पहिन रखी है जिससे अकार युक्त मधुर शब्द होता रहता है । उसके चरणो की आभा खिले हुये बन्धुजीव पुष्प के समान लालिमा युक्त है और वह म द र स्मित कर रहा है । शिशु के दाँये हाथ म खीर को कटोरी और बाँये में तुरन्त का निकाला मखन है । श्वान, गोपी और गायक के समूह के मध्य में वह अत्यन्त शोभा पा रहा है । इन्द्र आदि देवगण उसके चरणो की आराधना करते हैं और उसने पृथ्वी के लिये भारभूत ईश्वरगणो पूतना आदि का सहार करना आरम्भ कर दिया है ।' इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त से भगवान् का पूजन करना उनके सम्मुख दही और गुड का नैवेद्य रख कर एक हजार मन्त्र जप

करे। इसी प्रकार नारद आदि मुनिगणों और देवताओं से पूजित
विशिष्ट रूपयुक्त भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना ॥४५-५१॥

सराद्गोपगोपीगवा वृन्दमध्य-

स्थित सान्द्रमेघप्रभ सुन्दराङ्गम् ।

शिखण्डिच्छदापीडमञ्जायताक्ष

लसच्चिल्लिक पूर्णचन्द्रानन च ॥५२

चतत्कुण्डलोल्लामि गण्डस्थलश्री-

भर सुन्दर मन्दहास सुनासम् ।

सुकार्तस्वराभाम्बर दिव्यभूष

ववणित् किञ्चणीजालमात्तानुलेपम् ॥५३

वेणु धमन्त स्वकरे दधान

सव्ये दर यष्टि मुदार वेपम् ।

दक्षे तथैवेष्मितदान दक्ष

ध्यात्वाचंयेन्नन्दजमिन्दिरात्स्यै ॥५४

मध्याह्न की पूजा के समय ध्यान करते हुये भावना करनी कि
'वे श्रीकृष्ण भगवान् गोप, गोपियों तथा गायों के मध्य विराजमान हैं,
उनकी छवि स्निग्ध मेघ के समान क्याम है, और प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर
है। वे मोर पक्षी का मुहूर्त धारण करते हैं और नेत्र कमल दल के
समान विशाल हैं। उनकी मोह बहुत शोभा सम्पन्न है और मुख
चन्द्रमा के भी अधिक वाग्मि युक्त है। हिलत हुए देदीप्यमान कुण्डलों
ग उनके कपोलों की भाभा अपूर्व हो जाती है। उनकी नासिका यही
मनोहर है और मन्दहास करने से मुख अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है।
उसके सस्त्र तपाये हुए मुवर्णों की भाभा के वण के हैं, शरीर पर दिव्य
भाम्बरण धारण कर रहे हैं, कटि में धारण की हुई कण्ठनी के पुष्पत्रों
मयुर मण्ड हो रहा है और दिव्य गन्ध युक्त अङ्गराग धारण करते
हैं। वे अपने हाथ में सेवर मुरली को बजा रहे हैं, उनके बाय हाथ में

शख और दाँये हाथ में लठिया (छडी) है । उनका वेप उदारता युक्त है, वे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करने में दक्ष हैं । उन नन्द नन्दन श्री कृष्ण का ध्यान करके सुख-सम्पदा की प्राप्ति के हेतु उनका पूजन करना ॥५२-५४॥

एव ध्यात्वावयेत् कृष्णपूर्ववद्वैष्णवोत्तम ।
 अपूपू पायसान्नाद्यैर्नैवेद्य परिकल्पयेत् ॥५५
 हुत्वा चाष्टोत्तरशत पयोर्नै सर्पिपाप्लुतं ।
 स्व स्वदिक्षु बलि दद्याददिशेदाचमन तत ॥५६
 अष्टोत्तर सहस्र च प्रजपेन् मन्त्रमुत्तमम् ।
 अहनो मध्ये यजेदेव य कृष्ण वैष्णवोत्तम ॥५७
 देवा सर्वे नमस्यति लोकाना बल्लभो नर ।
 मेघायु श्रीकातियुक्त पुत्रै पोत्रैश्च वद्वंते ॥५८
 तृतीय काल पूजायामस्ति काल विकल्पना ।
 सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदत्येके विपश्चित ॥५९
 दशाक्षरेण चेद्रात्री सायाह्नेष्टादशार्णत ।
 उभयोमुभये नैव कुर्यादित्य परे जगु ॥६०

इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष को पूर्ववत् भगवान् कृष्ण की पूजा करनी । पुआ, खीर तथा अन्य पदार्थों का नैवेद्य अर्पण करना । घृत युक्त खीर से १०८ आहुतियों का हवन करना और समस्त दिशाओं में उमी खीर से बलि प्रदान करना । इससे पश्चात् एक हजार आठ बार मन्त्र जप करना । जो श्रेष्ठ भगवद्भक्त भगवान् कृष्ण की इस प्रकार पूजा करता है देवगण भी उसका सम्मान करते हैं और सब मनुष्य भी उसमें प्रेम रखने लगते हैं । वह मेघा, आयु लक्ष्मी तथा बलि को प्राप्त करने पुत्र और पौत्र के साथ अम्युदय को प्राप्त होता है । तीसरी बार की पूजा कब की जाय इस सम्बन्ध में लोगो में मत-भेद है । कुछ लोग संध्या का समय प्रशस्त मानते हैं और कुछ रात्रि

में मानते हैं । इस विषय का निर्णय यह है कि दशाक्षर मन्त्र से पूजा करनी हो तो रात्रि में करे और अठारह अक्षरी के मन्त्र से करनी हो तो सायकाल में करे । कुछ विद्वानों का कथन है कि दोनों प्रकार के मन्त्रों से दोनों समय पूजा की जानी चाहिये । सायकाल की पूजा के समय भगवान का ध्यान निम्न प्रकार करे ॥५५-६०॥

सायाहने द्वारवत्या तु चित्रोद्यानोप शोभिते ।
 अष्टसाहस्रसख्यातं भवनैरुप मण्डिते ॥६१
 हससारस सकीर्ण कमलोत्पलशालिभि ।
 सरोभिनिर्मलाम्भोभि परीते भवनोत्तमे ॥६२
 उद्यत् प्रद्योतनो द्योतद्युती श्रीमणिमण्डपे ।
 हेमाम्भोजामनासोन वृष्ण गेलोक्य मोहनम् । ६३
 मुनिवृन्दै परिवृतमात्मतत्त्व विनिर्णये ।
 तेभ्यो मुनिभ्य स्व धाम दिशन्त परमक्षरम् ॥६४
 उन्निन्द्रन्दी वरश्याम पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
 स्निग्ध कुत्तल सभिन्न किरीट वनमालि नम् ॥६५
 चारप्रसन्न वदन स्फुरन्मकरकुण्डजम् ।
 श्रीवत्सवक्षस घ्राजत् वीस्तुभ मुमनोहरम् ॥६६
 वाश्मीर वपि विशोरस्क पीतवौशेय वाससम् ।
 हारकंपूरतुकटवक्वटिमूर्त्रं रत्नवृत्त ॥६७
 हृत विश्वम्भरा भूरिभार मुदित मानसम् ।
 शशचक्रगदापद्मराजद्भुज चष्टयम् ॥६८

' सायकाल व मगद भगवान द्वारका पुरी के एक अत्यन्त मनोहर उद्यान में वन भवन में विराजमान हैं । वह आठ हजार गृहों से शोभायमान है । उस अष्ट गृह युक्त स्थान में निर्मान जल से युक्त दशनीय सरोवर है जिगम ह्य और मारग आदि पक्षी विहार कर रहे हैं और शानि शानि व वसन पुष्प शोभा दे रहे हैं । वहाँ एक बड़ा सुन्दर रत्न

निम्न मण्डप है, जो उदर कापीन सूर्य के समान प्रकाश में जगमगा रहा है । उगम कमलाकृति सुवर्ण मिहागन पर धीमावय मोहन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं । वे मुनियों के समुदाय के गच्छ ध्यात्म लक्ष का निषय कर रहे हैं और उनसे अपने अविनाशी परमधाम का प्राप्त कर सक्ते का उगदश द रहे हैं । भगवान् की अङ्गुष्ठानि नील कमल के समान है, दाना नेत्र कमल दल के समान विशाल हैं । सुविशेष केशो स युक्त मस्तर पर तिरोट और मत्र म बनमाला शोभायमान है । मुख अत्यन्त सुन्दर और प्रगल्भभाव युक्त है और मकराकृति कृष्णो म सुशोभित है । वन स्थल पर श्रीवत्स का विह्वन है और वीस्तुमणि जगमगा रही है जो अमन्त सु दर जान पड़ती है । वक्ष स्थल केशर के नेप स सुवर्ण की सी प्रभायुक्त हो रहा है । उन्होंने रेशमी वस्त्र धारण कर रगे हैं । हार, बाजूबन्द, बडा, करधनी आदि आभूषणों को उड़ोन धारण किया हुआ है । भगवान् ने पृथ्वी के भार को उठा दिया है, वे चारो हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये परम प्रमुदित हो रहे हैं ॥६१—६८॥

एव ध्यात्वाचंयेन्मन्त्री स्यादग्रे प्रथमावृत्ती ।

द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयाया समचयेत् ॥६६

नारद पर्वत जिष्णु निशठोद्ववदारुकान् ।

विष्कमेरु च शैतेय दिक्ष्वग्रे विनतामुत्तम् ॥७०

लोकपालेशच वज्राद्यै पूजयेद्वैष्णवोत्तम ।

एव सम्पूज्य विधिवत् पायस विनिवेदयेत् ॥७१

तर्पयित्वा खड्गिश्चदुग्धमुद्धया जलैरिह ।

जपेदष्टशत मन्त्री भावय पुरुषोत्तमम् ॥७२

पूजासु होम सर्वान् कुर्यान्मध्यदिनेऽथवा ।

आसनादर्घ्यपयन्त कृत्वा स्तुत्वा नमैस्तुधा ॥७३

समर्थात्मानमुद्धास्य स्वीय हृत्सरसीरुहे ।

दिन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥७४

सायाहने वासुदेव यो नित्यमेवं समर्चयेत् ।
सर्वान्कामानवाप्याते स याति परमा गतिम् ॥७५॥

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक को भगवान की पूजा करनी । हृदय, गिर, जिह्वा, कवच नेत्र और अम्बु—इन षट्पाङ्ग द्वारा प्रथम आवरण होता है । दूसरा आवरण रुक्मिणी, गत्यभामा आदि षट्पत्नियों का कहा गया है । तीसरे में नारद, पर्यंत, जिष्णु, निगठ, उद्धव, दाहक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि की गणना की जाती है । इन आठों का आठ दिशाओं में और दिग्गजा पुत्र गरुड का भगवान के सम्मुख पूजन करना चाहिये । चौथे आवरण में इन्द्रादि लोकपालों और पंचवे में षष्ठ आदि आयुधों के साथ भगवान का पूजन करना । इस प्रकार भगवान की विधिपूर्व पूजा करके खीर नैवेद्य अर्पण करना । फिर जल में खाडमिश्रित दूध की भावना करके उसके द्वारा तर्पण करना । उसके पश्चात् मन्त्रोपासक को भगवान कृष्ण का ध्यान करके एक सौ आठ बार जप करना । हवन आदि तीनों काम की पूजा में करे अथवा मध्याह्न के समय ही करे । आसन में लेकर अर्घ्य पर्यन्त सम्पूर्ण पूजा करके ज्ञानी पुरुष को भगवान की स्तुति और नमस्कार करना । फिर भगवान को आत्म समर्पण करके उनका विसर्जन करने के पश्चात् अपने हृदय कमल में उनकी स्थापना करनी और फिर तन्मयतापूर्वक आत्मस्वरूप भगवान की पूजा करनी । जो व्यक्ति सायकाल के समय इस प्रकार नियमित रूपसे भगवान वासुदेव की पूजा-अर्चा करता है उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और अन्त में वह परम गति को प्राप्त करता है ॥६६-७५॥

राज्ञी चेन्मदनाह्वान्त चतस नन्दनन्दनम् ।

यजद्रासपरिथान्त गोपीमण्डलमध्यगम् ॥७६॥

विषसत् कुन्द कह्लार मल्लिका मुसुमोद्गतै ।

रजोभिर्घृ सरैर्मन्दमारुते शिशिरी कृते ॥७७॥

उन्मोलनवकरवालिबिगलन्माध्वीक लब्धान्तर-
 भ्राम्यन्मत्तमिलिन्द गीतनलिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते ।
 पीयूषाशुकरैर्विषालित हरिन् प्रान्ने स्मरीद्वीपने
 कालिन्दीपुत्रिनाङ्गणे । स्मृतमुख वेणु रणन्त मुहु ॥७८
 अन्नस्नोयलसन्नवाम्बुद घटासघट्टकारत्विय
 चञ्चच्चिल्लिवमम्बुजाय तदृश विम्वाधर सुन्दरम् ।
 मायूरच्छदवद्धमौलि विलसद्धम्मिल्ल माल चलद-
 दीप्यन् कुण्डल रत्न रश्मि विलसद्गण्ड द्वयोद्भासितम् ॥७९
 काञ्चीनूपुरहारकङ्कुण लसत्केयूर भूपान्वित -
 गोपीना द्वितयान्तरे सुललित वन्य प्रसून स्रजम् ।
 अन्योय विनिवद्धगोपद यतादोर्वल्लिवीत लस-
 द्रास क्रीडनलोलुप मनसिजाक्रान्त मुकुन्द भजेत् ॥८०
 विविध श्रुति भिन्न मनोज्ञतर स्वरसप्तकं मूर्च्छनतानगणै ।
 भ्रममाणममूभिर्द्वार मणिस्फुटमडन शिञ्जति चारुतनुम् ॥८१
 इतरेतरखद्धकरप्रमदागण कल्पित गम विहार विधौ ।
 मणिगङ्गुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वन दिव्यतनुम् ॥८२

यदि रात्रि काल में भगवान की पूजा की जाय तो उनका
 इयान इस प्रकार किया जाय भगवान कृष्ण के हृदय में प्रेम भाव का
 विशेष रूप में उदय हो रहा है और वे रास क्रीडा में यश कर
 गोपियों की मण्डली के मध्य विराजमान हैं। इस समय यमुनाजी का
 यह तट प्रदेश चन्द्रमा के धवन प्रकाश में समस्त रहा है। श्वित हुये
 कुन्द बह्मनार मल्लिका आदि पुष्पा के पराग से युक्त गुणघन वायु
 मन्द मन्द बह रहा है और उस प्रदेश को शीतल बना रहा है जिससे
 वही उपरिष्ठत सभी में भगवत् प्रेम का उद्दीगन हो रहा है। विरगित
 मूलन मुमुदा का मकरन्द पान करके उन्मत्त भ्रमर मयूर गुञ्जार कर
 रहे हैं। इस प्रकार यह जनस्थली अत्यन्त सुन्दर लग रही है। ऐस

रम्य वातावरण में भगवान् श्रीकृष्ण मधुर मुस्मान बिखेरते हुये बार-बार वणी बजा रहे हैं। उनके अङ्ग की कान्ति जल से भरे मेघ की क्या घटा के तुल्य दिखाई पड़ रही है, मोही का मध्य भाग कुछ चञ्चल हो उठा है। दोनों नेत्र पद्मपत्र के समान सुन्दर और ओष्ठ अपनी अरुणता में विभ्रम पत्र की लज्जित कर रहे हैं। भगवान् का स्वस्त्र अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। माथे पर मोरपंखों का झुंड है और बेंदी हुई बेंगों की सटे बड़ी मनोहर जान पड़ती है। दोनों कपोल हिलते हुये रत्न जडित गुण्डलों की चमक में प्रकाशित हो रहे हैं। (वे काञ्ची, नूपुर, हार, कङ्कण, बेसूर आदि आभूषणों में विभूषित होकर प्रत्येक दो गोपियों के बीच में स्थित हैं। उनके गले में बन्धे प्रभूना की माला शोभायमान है। एक गोपी दूगरी का हाथ पकड़ कर और उसके बीच में भगवान् कृष्ण की ओर कर राम-नृत्य कर रही है।) इस प्रकार परम सुन्दर शोभायमान राम-लीला के नियत उद्युक्त ब्रह्म के अश्रुमय भगवान् कृष्ण का ध्यान करना। वे नाना प्रकार की श्रुतियाँ और गानों स्वरों की सुश्रुति और ताना के साथ-साथ गोपियों सहित विरच रहे हैं। सुन्दर, श्रुतीय आभूषणों की चर्चित में भगवान् का सम्पूर्ण अङ्ग ही छाकार कर रहा है। एक दूगरी का हाथ पकड़े हुए मङ्गलाकार गरी हुई गोपियों के बीच भगवान् क्या सुन्दर मणिमय के समान स्थित है पर अपनी दिव्य शोभा में वे प्रायेण गोपी के समीप जान पड़ते हैं।)

॥३९-२०॥

एष ध्यात्वाचंयेभ्यन्त्री स्यादमे प्रथमावृत्ति ।
 श्रीराम मन्थरस्थानि कथाश्चैवैत्यथोत्तम ॥३९
 यत्रेभ्येनवनीर्थादि सिधुनाति च पादन ।
 इन्द्राज्ञानि मयादीन्पुत्रमदननरम् ॥४०
 ० गृधु गृधु मगून रिगुग्नितमात्रोन्नत को विनिगुन्नर शकुम् ।
 आश्रय पदशामिपरेनन्नु हर्षांभं मोर सानु गगलोष्ठं ॥४१

सपूज्यैव च पयसा ससितोपलसपिपा ।
 नैवेद्यमचयित्वा तु चपवैन्तुंसटपके ॥८६
 ससित पायस मत्रो मिथुनेष्वर्पयेत्क्रमात् ।
 विधाय पूर्ववच्छेष सहस्र प्रजपेन्मनुम् ॥८७
 स्तुत्वा नत्वा च सप्रार्थ्य पूजशेष समापयेत् ।
 एव य पूजयेत् कृष्णा स समृद्धे पद भवेत् ॥८८
 अणिमाद्यष्टसिद्धी नामीश्वर स्यान्न सशय ।
 भ्रक्त्वे हविविधान् भोगानते विष्णुपद व्रजेत् ॥८९
 एव पूजादिभि सिद्धे मनो काभ्यानि साधयेत् ।
 अष्टाविंशतिवार वा त्रिकाल पूजयेत्सुधी ॥९०
 स्वकालविहितान् भूप परिपाराश्च तर्पयेत् ।
 प्रातर्दध्ना गुडावनेन मध्याह्ने पयसापुन ॥९१
 नवनीतयुतेषां साश्राह्ने तपयेत् पुन ।
 ससितोपलमिश्रेण पयसा वैष्णवोत्तम ॥९२
 तपयामिपद योज्य भ्राते स्वेषु नामसु ।
 द्वितीयातेषु पुन पूजा शेष समापयेत् ॥९३

इस प्रकार भगवान् कृष्ण का ध्यान करने मंत्रोपासक को पूजा करनी । हृदय आदि पटाङ्ग से प्रथम आबरण की पूजा होती है । लक्ष्मी की इच्छा रखने वाले भक्त को पूर्वोक्त 'नेशव कीर्ति' नारायण कीर्ति' आदि सोनह मुंगली को बमन पुष्पी द्वारा पूजा करनी । उनका नामो के आग क्रमशः मोलह स्वरो का जोड़ दिया जाय - जैसे 'य नशव कीर्तिभ्या नम आं नारायण कीर्तिभ्या नम आदि । इसके पश्चात् इन्द्र आदि तारकान्तो और उनके आमुषा की पूजा करनी ।
 (एक माटा, सोन चिकना एक वित्ता (वातिज) ऊँचा घूँटा पृथ्वी पर गाड़ना । उस पीर में दबाकर एक दूगरे का हाथ पकड़ कर उसके तारो तरफ पश्चात्तर पूज जाना । इसी को राम बहा जागा है ।) इस प्रकार पूजा करके दूध, घी, श्राद्ध मिलाकर उगे

नैवेद्य रूप में भगवान को अर्पित करना । साथ ही पूर्वोक्त सोलह गुणलो को सोलह प्यालो में खीर और छाँड रखकर अर्पण करना । फिर शेष क्रिया पूर्ववत् करके एक द्वाजार मन्त्रों का जप करना । फिर स्तुति, नमस्कार, प्रार्थना आदि करके पूजाके समस्त कार्यों को सम्पन्न करना । जो उपासक इस प्रकार भगवान की पूजा-अर्घा करता है वह सभी ऋद्धि सिद्धियों को प्राप्त करके इस लोक के भोगों को भोगकर अन्न में भगवान के विष्णु लोक में जाता है । इस प्रकार की पूजा द्वारा मन्त्र सिद्ध होजाने पर स्वयं उपासक अपने अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि कर सकता है । अथवा वह निष्काम भाव में अट्ठाईस बार मन्त्र जप करके तीनों समय भगवान की पूजा करता रहे । इन तीनों समय में पूर्व कथित आवरण देवताओं का तर्पण भी करना आवश्यक है । प्रातः काल गुड़ और दही मिलाकर, मध्याह्न काल में मक्खन युक्त दूध में और सायंकाल छाँड मिले दूध से तर्पण करना चाहिये । मन्त्र के अन्त में तर्पणीय देवता का नाम लगा कर उसके आगे द्वितीय विभक्ति तथा 'तर्पयामि' शब्द का प्रयोग करे । इस प्रकार पूजा कार्य सम्पन्न करके तन्मयता पूर्वक मन्त्र जप करता रहे ॥८३—८३॥



॥ नारद सनक सम्वाद समाप्ति ॥

इत्येवमुक्त्वा मुनिना हि पृष्टास्ते वै पुमारा. विल नारदेन ।
 सपूजिता शास्त्रविदा वरिष्ठा वृताहिनवा जगुदमेशलोरम् ॥१॥
 तत्रेशमन्यकंमिभंभुंनोन्द्रे श्रीवामदेवादिभिरर्चिताघ्नम् ।
 मुरागुरेन्द्रैरभिवन्द्यमुष नन्वाजया तस्य निरदुःख्याम् ॥२॥
 श्रुत्याप तत्राग्निलशास्त्रगार शिवागम ते पशुपाशमोक्षणम् ।
 जगुस्ततो ज्ञानघनस्वरूपा नत्वा पुगारि श्यपितृनिनाशम् ॥३॥
 मग्नादपद्मे प्रणवि विधाय पितृपि गत्वा य मभाजितस्ते ।

लब्ध्वाशिपोऽद्यापि चरन्ति शश्वन्लोकेषु तीर्थानि च तीर्थभूता ॥४

जम्भुस्ततो वै बदरीवनान्ते सुरेन्द्रवर्गेषुस्यमानम् ।

दध्युश्चिर विष्णुपदाधजमव्यय ध्यायन्ति यद्यतया वीतरागा ॥५

नारदोऽपि ततो विप्रा कुमारेभ्य समीहितम् ।

लब्ध्वा ज्ञान सविज्ञान भृश प्रीतमनाह्यभूत् ॥६

स तस्मात्स्वर्णदीतीरादागत्य पितुरन्तिके ।

प्रणम्य सत्कृत पित्रा ब्रह्मणा निषपाद च ॥७

महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में श्री सनकदेवजी इस रीति से कह चुके थे तब श्री नारदजी ने उन चारों (सनक-सन-दन सनातन, सनत्कुमार) कुमारों से भगवान से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातें पूछी थी और इसके अनन्तर श्री नारदजी ने उनका अचन किया था । इसके उपरान्त वे शास्त्रों के ज्ञाता दिग्गज चारों कुमार आह्निक कृत्य समाप्त करके शिव लोक की ओर प्रयाण कर गये थे । वहाँ पर पहुँचकर परमेश ईशानदेव शिव की सेवा से प्रणाम करके उनका आदेश प्राप्त कर भूमि पर बैठ गये थे । वहाँ पर अग्नि तथा सूर्य के समान प्रकाशमान वाग्देव प्रभृति मुनिगण भगवान शङ्कर का पूजन करने में निरत रहा करते हैं और सुर-अमुर गण चरणों की धुना करने में मलग्न थे ॥१२॥ वहाँ पर उन कुमारों ने पशुत्व—अज्ञत्व—जीवत्वरूपी पाप का छेदन कर देने वाले समस्त शास्त्रों के सार शिवायम का श्रवण कर ज्ञानधन स्वरूप होकर त्रिपुरारि देव को प्रणाम करके अपने पिता ब्रह्माजी के समीप में प्रस्थान कर गये थे ॥३॥ वहाँ पर प्राप्त होकर उन चारों कुमारों ने अपने पिता श्री ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम किया था । इस विधि से आशीर्वाद प्राप्त करके लोको के तीर्थभूत हाकर सभी तीर्थों में वे निचरण करते रहा करते हैं ॥४॥ इसका पश्चात् मनरादिह बदरी वन में पहुँच था । यह बदरी वन ऐसा परम पावन स्थान है जिसका यत्रन्

महेन्द्र भी क्रिया करते हैं। वहाँ पर धीतराग ऋषियण भगवान का ध्यान किया करते हैं। मनरारिक मुनीश्वरो ने प्राप्त होकर अच्युत भगवान का अत्यधिक समय तक ध्यान किया था ॥५॥ हे ब्राह्मणो ! वेदपि श्री नारदजी कुमारो के द्वारा प्राप्त हुये विज्ञान के सहित ज्ञान को प्राप्त करके अपने चित्त में अत्यंत प्रसन्न हुये थे ॥ ६ ॥ फिर वे स्वयं गङ्गा के तीर से उठकर पुन अपने पिताजी की सेवा में प्राप्त हुये थे और वहाँ जाकर ब्रह्माजी के चरणा में प्रणाम किया था । उस समय में ब्रह्माजी ने सत्कारपूर्वक उनको अपने समीप में बिठाया था।७।

कुमारेभ्य श्रुत यच्च ज्ञान विज्ञानसयुतम् ।
वर्णयामाम तत्त्वेन सोऽपि श्रुत्वा मुमोद च ॥८
अथ प्रणम्य शिरसा लब्धाशीर्मुनिसत्तम ।
आजगाम च बंलास मुनिसिद्धनिपवितम् ॥९
नानारच्यमय शश्वत्सर्वतु कुसुमद्रुमं ।
मदारं पारिजातंश्च चपकाशोकवजुलै ॥१०
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापक्षिगणावृतं ।
वातोद्भूतशिखं पाथानाह्वयदिभरिवावृतम् ॥११
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धकिन्नरसकुलम् ।
सरोभि स्वच्छसलिलैर्लसत्काचनपक्वै ॥१२
शोभित सारसीहंसीश्चक्राह्वाद्यैर्निनादितम् ।
स्वर्दानीपातनिघुंष्ट क्रीडदिभश्चाप्सरोगणै ॥१३
सलिलेऽनवनन्दाया कुचकु कुमपिङ्गले ।
आमोदमुदिनेर्नागै सलिलं पुष्करोद्भूतं ॥१४
स्नापयदिभ करेणूश्च क्लभाश्च समाकुले ।
अथ श्वेताभ्रसदृशे शृंगे तस्य च भ्रूमूठ ॥१५
वट कालाभ्रसदृशे ददर्श शतयोजनम् ।
तस्याधस्तात् समासीन यागिमण्डलमध्यगम् ॥१६

उस समय में नारदजी ने जो ज्ञान-विज्ञान के सहित प्राप्त किया था, उसका तात्त्विक वर्णन किया था । उसका ध्वनन करके ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रसन्न हुये थे ॥८॥ इसके अनन्तर परम श्रेष्ठ नारदजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था । फिर इसके पश्चात् मुनिमण्डल और सिद्धों के द्वारा सेवित कैलाश पर्वत पर पहुँच गये थे ॥ ९ ॥ उस कैलाश पर्वत पर सब ऋतुओं में विकसित होने वाले पुष्पों से युक्त वृक्ष थे । उस पर्वत पर मन्दार—पारिजात—वम्पा—अशोक—वेन के वृक्ष थे जिन पर विभिन्न प्रकार के पक्षी बैठे हुये थे । वे वृक्ष वायु से हिलने वाली टहनियों से ऐसे पत्तीत होते थे मानो राहगीरों को बुला रहे हों । इनके अतिरिक्त अन्य भी कई तरह के वृक्ष उस पर्वत पर लहरा रहे थे जिनसे उस पर्वत की शोभा अत्यधिक हो रही थी ॥१०॥११॥ उस पर्वत में अनेक तरह के मृग रहा करते थे । वह चारों ओर सिद्ध और क्षिप्रों में घिरा हुआ था । उसमें एक सरोवर था जो अजीब स्वच्छ जल से भरा हुआ था और उसमें सुनहरी कमल खिले हुए थे ॥१२॥ हम सारंग पृभृति विविध पक्षियों के सञ्चार से अद्भुत सुगन्ध वहा पर हो रही थी । चक्रवाक पक्षी की ध्वनि से वह पर्वत गूँज रहा था । अप्सराओं की क्रीडा तथा स्वर्ग गङ्गा के प्रवाह की श्रुतिप्रिय ध्वनि से वह कैलाश गिरि प्रकट हो रहा था ॥१३॥ अलकनन्दा का जल अप्सराओं के अवगाहन में उनके स्थानों पर लगी हुई कुकुम के धुल जाने के कारण पीन वर्ण का हो गया था । उस सुगन्ध समन्वित पीन वर्ण वाले जल को हाथी अपनी सूँठ में भरकर हृषिनियों के तथा अपने छोटे २ बच्चों का स्नान करा रहे थे । उस पर्वत के गिखर पर जा हिमाच्छादि होने के कारण श्वेतमय के सदृश था काले वर्ण के मय के समान भी योजन तक पहुँचे हुये वट वृक्ष को देवपि श्रं नारदजी ने देखा था जिसके नीचे जटाजूट धारण करने वाले व्याघ्र

चर्मधारी भगवान् विरूपाक्ष योगियो वे समुदाय के मध्य मे विराज-
मान थे ॥१४—१६॥

कर्पादिन विरूपाक्ष व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् ।
भूमिभूपितसर्वाङ्ग नागभूषणभूपितम् ॥१७
रुद्राक्षमालया शश्वच्छोभित चन्द्रशेखरम् ।
त दृष्ट्वा नारदो विप्रा भक्तिनम्रात्मकधर ॥१८
ननाम शिरसा तस्य पादयोजंगदीशितु ।
तत प्रसन्नमनसा स्तुत्वावाग्भिर्वृषध्वजम् ॥१९
निपसादाज्ञया स्थाणो सत्कृतो योगिभिस्तदा ।
अयाभृच्छच्च कुशल नारद जगता गुह ॥२०
स च प्राह प्रसादेन भवत सर्वमस्ति मे ।
सर्वेषा योगिवर्याणा शृण्वता तत्र वाडवा ॥२१

भगवान् शिव के सब अङ्ग भस्म लेपन से विभूषित थे और सर्पों के आभूषणों से सुशोभित थे । भगवान् शिव के कण्ठ मे रुद्राक्ष की माला अनन्त शोभा दे रही थी । श्री नारद मुनि ने उनका दर्शन करके अपना मस्तक झुका कर हे विप्रगण ! बहुत ही भक्ति भाव से जगदीश्वर प्रभु के चरणों मे प्रणाम किया था और परम प्रसन्न मन वाले होकर वृषभध्वज सदाशिव का स्तवन किया था ॥१७—१९॥ इसके अनन्तर भगवान् शिव की आज्ञा पाकर नारदजी वहाँ पर प्रविष्ट हो गये थे । उस समय मे वहाँ पर स्थित योगिराज ने देवर्षि श्री नारदजी का स्वागत सत्कार किया था । इसके उपरान्त उन जगन्नायक प्रभु शङ्कर भगवान् से नारदजी कुशल पूछने लगे ॥२०॥ देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! आपकी चरण वृषा मे मेरे पाम मभी कुछ विद्यमान है । हम नारदजी की वचनावलि को बड़ा पर मभी योगीजन श्रवण कर रहे थे ॥२१॥

पप्रच्छ शाभव ज्ञान पशुपाशविमोक्षणम् ।

स शिव सादर तस्य भक्त्या सतुष्टमानस ॥२२
 योगमष्टागसायुक्त प्राह प्रणतवत्सल ।
 स लब्ध्वा शाश्वत ज्ञान शकराल्लोचशकरात् ॥२३
 सुप्रसन्नमना नत्वा ययौ नारायणातिवम् ।
 तत्रापि नारदोऽभीक्ष्ण गतागतपरायण ॥२४
 मेवित्त योगिभि सिद्धं नारायणमतोपयत् ।
 एतद्द्व कीर्तित विप्रा नारदीय महन्मया ॥२५
 उपाख्यान वेदसम सर्वशास्त्रनिदर्शनम् ।
 धर्माख्यासासमायुक्त शृण्वता ज्ञानवद्धनम् ॥२६
 य एतत्कीर्तयेद्विप्रा नारदीय शिवालये ।
 समाजे द्विजमुख्याना तथा केशवमदिरे ॥२७
 मथुराया प्रयागे च पुष्टपोत्तमसन्निधौ ।
 रोतौ काञ्चव्या कुशस्थल्या गगाद्वारे कुशस्थले । २८
 पुष्करेषु नदीतीरे यत्र कुवापि भक्तिमान् ।
 स लभेत्सर्वयज्ञाना तीर्थाना च फल महत् ॥२९

हे अग्निम तंज धारण करने वाले श्रुतिथो ! उस समय मे
 समस्त योगीभ्रमण के समक्ष में हा देवपि न पशुपाण के विमोचन
 करने वाले शाश्वत ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रकट की थी ।
 उस समय मे प्रणत पालक भक्त वत्सल भगवान शिव नारदजी की
 श्रद्धा भक्ति से हृदय में परम प्रसन्न होकर अष्टाग योग का ध्यान
 करने लगे थे । उस समस्त मन्त्र वा श्रेष्ठ सम्पादन करने वाले
 शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति कर नारद मुनि अत्यन्त प्रसन्न होगये थे तथा
 भगवान शिव के चरणों में प्रणाम करके भगवान नारायण के समीप मे
 पहुँचने के लिये वही स चल दिने थे । इस तरह से देवपि नारदजी
 वही पर अनवरत आवागमन किया करते थे ॥२२-२४॥ हे विप्रो !
 वही पर सिद्धगण और योगिजनों से वन्द्यमान भगवान नारायण को

सन्तुष्ट किया करते थे । हे विप्रो ! मैंने यह नारायण पुराण रूपी एक महान उपाख्यान आप लोगों के सामने वर्णित कर दिया है । यह उपाख्यान वेदों के ही सदन है । इसमें विविध प्रकार के धर्मों का वर्णन हुआ है इसीलिये इस पुराण के श्रवण करने वाले को बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है ॥२५॥२६॥ हे विप्रगण ! जो भी इस नारद पुराण को श्रेष्ठ द्विजों की सेवा में अथवा शिव मन्दिर में, विष्णु के देवालय में, मथुरा, प्रयाग, पुरुषोत्तमपुत्री के समीप में, सेतुबन्ध रामेश्वर में, पुष्कर क्षेत्र में इन स्थलों में से किसी भी स्थल में इस पुराण का पठन किया करता है उस पुरुष को समस्त यज्ञों के यजन करने का और सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करने का महान पुण्य फल मिल जाता है ॥२७॥२८॥

दानानां चापि सर्वेषां तपसा वाप्यशेषतः ।

उपवासपरो वापि हविष्याशी जितेन्द्रिय ॥३०

श्रोत्रा चैव तथा वक्त्रा नारायणपरायण ।

शिवभक्तिरतो वापि शृण्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१

अस्मिन्नशेषपुण्यानां सिद्धीनां च समुद्भव ।

वयित्त सर्वपापघ्न पठना शृण्वता सदा ॥३२

कलिदापहरं पुंसां सर्वमपत्तिवर्द्धनम् ।

सर्वेषामीक्षितं चेद सर्वज्ञानप्रवाशकम् ॥३३

य एतत्पठने भक्त्यः शृणुयाद्वा समाहितः ।

स सद्भेदाछिन्नान्वामान्देवादित्पति दुर्नमान् ॥३४

श्रुत्वेद नारदीयं तु पुराणं वेदममितम् ।

यान्तरं पूजयेद्भक्त्या धनरत्नाशुवादिभिः ॥३५

यदि कोई भी मनुष्य इन नियमों को धारण करता हुआ सदा-प्यारी रहकर इसके वाचन का अनुष्ठान किया करता है तो उस विविध भागों के महा दानों का तथा तपस्याओं का भी पूरा पुण्य-फल मिल

जाया करता है । चाहे कोई नारायण का भक्त हो अथवा जिस की भक्ति करने वाला हो, भले ही इस पुराण का भक्त हो या श्रवण करने वाला हो, यदि इन्द्रिगत्रिन होकर उपव्राम करके अथवा हवि-प्याहार करके इस परम श्रेष्ठ नारद पुराण का श्रवण किया करता है तो अवश्य ही परम मित्रि की प्राप्ति किया करता है ॥३०॥३१॥ इस परमोत्तम पुराण में समस्त मित्रियो की ओर सपरिवर्षा की प्राप्ति यतलायी गयी है । अतएव इसके श्रवण करने वाले के महान में भी महान पाप नष्ट होजाया करते हैं ॥३२॥ इस पुराण को सभी पाह्य करते हैं क्योंकि यह पुराण कलियुग के सब दोषो को दूर भगा देने वाला है । इसके पठन श्रवण से मनुष्यो की सभी तरह की सम्पत्ति की वृद्धि हुआ करती है । इसमें सभी तरह की सम्पत्ति की वृद्धि हुआ करती है तथा पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होजाया करता है ॥ ३६ ॥ जो परम समाहित होकर इसका भक्ति भाव के साथ पठन किया करता है अथवा सुनता है उसके बड़े से बड़े मनारथ पूर्ण होजाया करते हैं जो देवो को भी परम दुर्लभ हुआ करते हैं ॥३४॥ इस वेद के सदृश नारद पुराण के वाचन करने वाले व्यास का धन रत्न, वस्त्र आदि अनेक पदार्थो में समुचित उत्कार करना चाहिये ॥३५॥

भूमिदानैर्गवा दानं रत्नदानैश्च मततम् ।

हस्त्यश्वरथदानैश्च प्रीणयेत्सतत गुरुम् ॥३६

यस्तु व्याकुर्वते विप्रा पुराण धमसग्रहम् ।

चतुर्वर्गप्रदं नृणां कोऽन्यस्यत्सदृशो गुरु ॥३७

कायेन मनसा वाचा धनाद्यैरपि सन्ततम् ।

प्रिय समाचरेत्तस्य गुरोर्द्धर्मोपदेशिन ॥३८

श्रुत्वा पुराण विधिवद्धोमं कृत्वा सुरार्चनम् ।

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छत मिष्टान्नपायसं ॥३९

दक्षिणां प्रददेच्छब्दया भक्त्या प्रीयेत् माधव ।

यथा श्रेष्ठा नदी गगा पुष्कर च सरो यथा ॥४०
 काशी पुरी नगो मेरुदेवो नारायणो हरिः ।
 वृत्तं युग सामवेदो धेनुविप्रोऽन्नमधु च ॥४१
 मार्गो मृगेन्द्रः पुरुषोऽश्वत्थः प्रह्लाद आननम् ।
 उच्चैश्च वा वसतश्च जपः शेषोऽयं मा धनु ॥४२
 पावको विष्णुरिन्द्रश्च कपिलो वावसति कविः ।
 अर्जुनो हनुमान्दर्भश्चित्त चित्ररथोऽवुजम् ॥४३
 उर्वशी काचन यद्वच्छेष्ठाश्चैने स्वजातिषु ।
 तथैव नारदीय तु पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥४४

श्रीनारदपुराण के वाचक गुरुदेव का भक्ति और शक्ति के अनुसार वित्तशोषण न करता हुआ हुआ सब प्रकार के पापों समर्पित कर सत्कार करना चाहिए और सर्वदा उनको प्रसन्न रखें ॥ ३६ ॥ हे विश्वो ! जो भी कोई भक्त इस धर्म, अर्प, काम और मोक्ष से भरी पूरी भङ्गुपा को मानवों के उद्धार के लिये सोचता करता है उसकी समानता रखने वाला अन्य महान् उपकारक गुरु कौन हो सकता है ? ॥३७॥ अतएव मास्व की यही आज्ञा है कि धर्म का उपदेश करने वाले गुरुदेव का मन, वचन और कर्मों द्वारा तथा धन से सर्वदा ही प्रिय करते रहना चाहिये ॥३८॥ जो कोई भी इस नारद पुराण का अध्ययन करे उसका कर्त्तव्य है कि विधि-विधान के साथ ध्यान करे और वेदों का अध्ययन करके बाह्याणों को मिष्टान्न और पायस का भोजन करावे ॥३९॥ अपनी शक्ति के अनुसार उन सब छात्रों को शिक्षा देवे । भगवान् माधव की प्रसन्नता केवल ध्याता भक्ति से ही हुआ करती है । यह भी नारदपुराण समस्त अन्य पुराणों में परम श्रेष्ठ कहा गया है । त्रिमूर्ति में ब्रह्मा समस्त तारिणीयों में श्रेष्ठ है । पुष्कर तट सरोवरों में परम श्रेष्ठ है । सब पुरिषों में काशीपुरी श्रेष्ठ है, पर्वतों में मेरु गिरि परम श्रेष्ठ है । सब देवों में

नारायण, विष्णु श्रेष्ठतम है । जिस तरहसे सत्ययुग, कामधेनु सामवेद , विप्र, अन्न जल, राजमार्ग, मिह, पुरुष, अश्वत्थ वृक्ष, प्रह्लाद ध्यान, उर्ध्व श्रवा वसन्त, जय, शेष अयमा, घनु वाचक, इन्द्र, कपिल, विष्णु ब्रह्म, सुरगुरु, अर्जुन, हनुमान, दम, चित्ररथ, चित्त, उवशी, अम्बुज और कञ्चन आदि अपनी २ जातियो मे परम श्रेष्ठ एव अन्युत्तम माने जाया करते हैं उसी तरह से यह नारद पुराण भी परमोत्तम एव सर्व श्रेष्ठ माना गया है ॥४०—४४॥

शातिस्तु शिव चान्तु सर्वेषा वो द्विजोत्तमा ।

गमिष्यामि गुरो पार्श्व व्यासस्यामिततेजस ॥४५

इत्युक्त्वाभ्यर्चित सूत शीनवाद्यं महात्मभि ।

आज्ञप्तश्च पुन सर्वदंशनार्थं गुरोयंथौ ॥४६

तेऽपि सर्वे द्विजश्रेष्ठा शीनकाद्या समाहिता ।

श्रुत सम्यगनुष्ठाय तत्र तस्युश्च सत्रिणा ॥४७

कलिकल्मषविपनाशन हरिं यो जपपूजनविधिभेजोपसेवी ।

स तु निर्विषमनसा समेत्य योग लभते ,

सनतमभोप्सित हि लोकम् ॥४८

अत्र सम्यग्घयेर्मक्ति साध्यतेऽनुपद नृणाम् ।

नारदीय पुराण तु विवधाख्यानसयुतम् ॥४९

हे द्विजोत्तमो ! अत मे यही आशीर्वाद देता हुआ परम शुभ

करता है कि आप सब का पूर्णतया कल्याण हो सर्वत्र शान्ति

हो । अब मैं अपने श्री गुरुदेव व्यासजी की सेवा मे

उपस्थित होऊँगा जो अपरिमित तेज के धारण करने वाले

॥४५॥ शीनक प्रभृति सप्त स मुनिगणों ने यह सूतजी का वचन

कर उनका अत्यधिक सम्मान-सत्कार किया था । उस समय मे

सूतजी सबसे सम्मानित होकर वहाँ मे विदा हुए थे और अपन

श्री गुरुदेव व्यासजी के दशन प्राप्त करन के लिये वहाँ से चले गये थे

॥४६॥ इसके अनन्तर श्री शीतलादि समस्त मुनिगण भी परम सावधान होकर श्रवण किये हुये ज्ञान के ही अनुसार यज्ञों के रूप में अनुष्ठान करने में प्रवृत्त हो गये थे ॥४७॥ जो कलियुग के कल्मषरूपी विष को नष्ट करने के लिये उपयुक्त श्री हरि का पूजन विधि रूप से औषध समझ कर सेवन किया करता है उसके मन से कल्मष का विष निकल जाया करता है और परम विशुद्ध होजाता है । फिर जो भी यागादि का पुण्य-फल होता है उसे प्राप्त करके सर्वदा अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति कर लिया करता है और जिस लोक का निवास चाहता है वही उसे मिल जाया करता है ॥४८॥ यह नारद पुराण ब्रह्म से उपाख्याना से भरा हुआ है । इसमें पद-पद पर श्री हरि भगवान की भक्ति सिद्ध हुआ करती है ॥४९॥

यं शृणोति नरो भक्त्या स गच्छेद्धृष्यव पमाम् ।
 धर्मार्थनाममोक्षाणा चतुर्णां कारण परम् ॥५०॥
 सर्वेषां च पुराणानामिदं बीजं सनातनम् ।
 प्रवृत्तं च निवृत्तं च पुराणेषुऽस्मिन् द्विजोत्तमा ॥५१॥
 विस्तराद्ब्रूति सर्वं पाराशर्येण धीमता ।
 अनौक्तिकवस्त्रादृष्य पुराणं नारदीयकम् ॥५२॥
 यस्मिन् कस्मिन् न दातव्यं मह्यं व्यासेन कीर्तितम् ।
 हित्वा स्वशिष्यान्पेलादीन्महा नारदसहिताम् ॥५३॥
 यो व्याचक्षे नगरतस्मै वेदव्यासाय विष्णवे ।
 पुराणसहितामेतां नारदाय विषं श्रुते ॥५४॥
 सननाद्यां महाभागा मुनयः प्रचवाशिरे ।
 ह्यगम्यन्ती भगवां पदा तं यत्नं शाश्वतम् ॥५५॥
 तद्गुणादिशदेनेष्टयो विज्ञानेन विजृम्भितम् ।
 भूदिभ्यः भगवां माशा नारदोऽध्यात्मदर्शिनः । ५६॥
 वेदव्यासाय मुनये रहस्यं निदिदेश ह ।

मया प्रकाशित ह्येतद्ब्रह्म्य भुवि दुर्लभम् ॥५७

जो भी कोई मनुष्य भक्ति-भाव के साथ इस नारद पुराण का श्रवण किया करता है उसको विष्णुनोक वा निवाम प्राप्त होजाया करता है । यह अत्युत्तम नारद पुराण धर्म—अर्थ—काम—मोक्ष इन चारो पदार्थों के प्राप्त कराने का अत्युत्तम साधन है ॥ ५० ॥ यह समस्त पुराणों का सनातन (सदा सजे आने वाला) बीज है । हे द्विजगणो ! परम बुद्धिमान पाराशर ऋषि के पुत्र श्री व्यासदेव ने इस पुराण में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग दोनों ही मार्गों का जो कर्म कसाप है उन सबका एक परम विस्तृत वर्णन किया है । यह नारद पुराण परम अलौकिक चरित्रों में भरा हुआ है ॥५१॥५२॥ यह परम गोपनीय है । इस पुराण के श्रवण करने के सर्व माधारण मनुष्य अधिकारी नहीं होते हैं । अतएव हर एव के मामने इसका वर्णन कभी नहीं करना चाहिये । श्री गुरुदेव व्यासजी ने भी अपने परम प्रिय पौत्र प्रभृति शिष्यों को न गुना कर इसका उपदेश केवल मुझको ही किया है ॥५३॥ भगवान् श्री व्यासदेव जो भगवान् विष्णु की ही एक दूसरी भूति है अर्थात् भगवान् विष्णु में ही श्री व्यासदेव के स्वप्न में अवतार धारण किया है । उन श्री व्यासदेवजी की सेवा में जिन्होंने इस परमोत्तम गहिना की रचना की है । मेरा परम समादर के साथ प्रणाम समर्पित है । उरुगन दयानु

निरजनात्समुत्पन्न जगदेतच्चराचरम् ।

तिष्ठ यष्येति वा यस्मिस्तत्सारस्य ज्ञानमद्वयम् ॥७४

शिव दैवा वदरयेन प्रधान साध्यवेदिन ।

योगिन पुरुष विप्रा यमं मीमासवा जना ॥७५

विभु वैशपिकाद्याश्च चिच्छक्ति शक्तिचित्तना ।

ब्रह्माद्वितीय तद्वदे नानारूपक्रियास्पदम् ॥७६

भक्तिर्भगवत पृसा भगवद्रूपकारिणी ।

ता लब्ध्वा चापर लाभ की वाञ्छति विना पशुम् ॥७७

जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं है और दूर से ही वापिस लौट आया करता है—जहाँ तक मन का प्रवेश ही नहीं हो पाता है उसको रूप से रहित ज्ञान स्वरूप वाणी आत्मा का रूप ही जानना चाहिए । ॥ ७१ ॥ जिनकी सततता स्वरूप सत्ता के कारण से यह सम्पूर्ण जगत् मन्थपत्न रूप में प्रकाशित हो रहा है उन अज्ञान से दूर परात्पर गुण विहीन निरञ्जन त्रिचिण रूपधारी भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है ॥ ७२ ॥ जो महा पुरुष कभी भी जन्म धारण नहीं किया करता है अर्थात् उत्पत्ति से रहित है तथा सृष्टि के आदि काल में मध्य काल में और अवसान के समय अतकाल में प्रकाशित हुआ करता है तथा ओ_विभु एक अक्षर (अकार) है उही अनक स्वरूपों में प्रकाशमान निरञ्जन परमात्मा की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७३ ॥ जिन निरञ्जन प्रभु से यह चराचर जगत् प्रकट हुआ है और त्रिममें सदा स्थिति प्राप्त किया करता है तथा त्रिममें ही यह लीन हो जाना है वह परमा मा ईश्वर—सत्य स्वरूपधारी—ज्ञानात्मक और द्वैत से रहित है ॥ ७४ ॥ उस परमात्मा परब्रह्म को भगवान् शिव की उपासना करने वाले शैव शिव—इस नाम से कहा करते हैं—साङ्ख्य दर्शन के मानने वाले उनको प्रधान कहकर पुकारा करते हैं—यागाम्याम करने वाले योगीजन पुरुष नाम से सम्बोधित किया करते हैं—मीमांसक

अर्थात् पूर्वं मीमांसा दर्शन के मुनने वाले जिनके यहां कर्म ही की प्रधानता मानी जाया करती है और कर्म द्वारा ही आत्मा का परम श्रेय होता है ऐसा सिद्धान्त है उम परब्रह्म परमात्मा को 'कर्म' कह कर पुकारा करते हैं ॥ ७५ ॥ वैशेषिक दर्शन के मानने वाले जिस परात्पर प्रभु को 'विभु' कहा करते हैं तथा जो शक्ति उपासक जन हैं वे उसी को चित् - शक्ति कहा करते हैं इस प्रकार से उसी एक प्रभु के अनेक स्वरूप भिन्न - भिन्न उपासना करने वालों के द्वारा कहे जाया करते हैं और वही अनेक क्रियाओं के आस्पद भी है । उसी अद्वितीय ब्रह्म की मैं व दना करता हूँ ॥ ७६ ॥ भगवान् की अद्भुत शक्ति का ऐसा ही महत्त्व है कि वहाँ उसकी उपासना करने वाले भक्त पुरुषों को भगवद्रूप ही बना दिया करती है । ऐसी भगवान की भक्ति को प्राप्त कर इसके अतिरिक्त अन्य किसी तरह के लाभ की प्राप्ति करना पशु के बिना अन्य कौन पाना चाहगा ॥ ७७ ॥

भगवद्विमुखा ये तु नरा ससारिणो द्विजा ।
 तेषा मुक्तिर्भवाटव्या नास्ति सत्सगमतरा ॥७८॥
 साधव समुदाचारा सर्वलोकहितावहा ।
 दीनानुकपिनो विप्रा प्रपन्नास्तारयन्ति हि ॥७९॥
 यूय धन्यतमा लोके मुनय साधुसामता ।
 यन्मुहुर्वामुदेवस्य कीर्ति पल्लवनूतनाम् ॥८०॥
 धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिर्लोकमगलम् ।
 यत्समाहितो हरि साक्षात्सर्वकारणकारणम् ॥८१॥

हे द्विजगण । जा इस महान्, चोर ससार के नाया माह में फँसे हुए मनुष्य ऐस परम कारुणिक एवं जीवात्माओं के उद्धार करने वाले भगवान्, स विमुक्त रहा करत हैं वे बिना मत्पुरुष महापुरुषों की सहायता प्राप्त किए इस ससाररूपी अत्यन्त गहन जङ्गल से बाहर किसी

भी प्रकार से निवृत्त ही नहीं सकते हैं ॥ ७८ ॥ सत्पुरुष साधुजन परमाधिक श्रेष्ठ आचरण वाले हुआ करते हैं और सत्पुरुष सर्वदा समस्त प्राणियों का हित ही पाहा करते हैं । ये लोग हमेशा ही दीन-हीन जीवों पर अपनी परम कृपा की दृष्टि किया करते हैं और जो जानकर या अनजाने ही इनकी शरण ग्रहण किया करते हैं उनको ये महापुरुष तार दिया करते हैं तथा इनके उद्धार का कोई सम्भोगं बताने सत्तार के जन्म मरण के बन्धन से मुक्त कर दिया करते हैं । इन महा पुरुषों की सङ्गति क्षण मात्र भी यदि हो जाया करती है तो उतने ही से महान् से महान् पापिष्ठ लोग भी विशुद्ध होकर परम सद्गति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाया करते हैं ॥ ७९ ॥ हे मुनिगणो ! इस घोर सत्तार में आप लोग परम धन्य एव महान् सौभाग्यशाली हैं । सभी सज्जन पुरुष आप लोगों का सम्मान किया करते हैं । आपने एक अक्षर के समान एक नवीन स्वरूप में ही भगवान् वामुदेव की कीर्ति को प्रकाशित किया है ॥ ८० ॥ यह आपके ही परम उद्योग एव प्रबल प्रयत्न का फल है कि इस सत्तार का परम मङ्गल करने वाले—समस्त कारणों के भी कारण सत्तार श्रीहरि भगवान् का स्मरण एव ध्यान कराया है । इसीलिये मैं इस समय में परम धन्य हो गया हूँ । आप सब लोगों ने मिलकर इस समय में अत्यधिक अनुग्रह मुझ पर किया है कि ऐसा सत्सङ्ग का अवसर प्राप्त हो गया है जिससे भली भाँति श्री हरि का स्मरण एव गुण कीर्तन हो सका है । इसीलिये सत्पुरुषों की सङ्गति का परम अधिक महत्त्व हुआ करता है ॥ ८१ ॥

नारद पुराण

(उत्तरार्द्ध)

-०-

॥ एकादशी साहात्म्य वर्णन ॥

पान्नु वो जलदश्याम शान्द्ग्याघात कर्षंशा ।
त्रैलोक्य मडपस्तम्भाश्चत्वारो हरि वाहवा ॥१
सुरामुरशिरोरत्ननिघृष्ट मणिरजितम् ।
हरिपादान्बुज द्वन्द्वमभीष्ट प्रदमस्तु न ॥२

“जो भगवान् मेघ के समान श्याम वर्ण वाले हैं, तिनकी भुजाएँ, शान्द्ग घनुप की प्रत्यचा की घीचन रहन से बठोर हो गई हैं और त्रिभुवन रूपी विद्यालय भवन को सँभाले रखन के निय स्तम्भ स्वरूप हैं, वे ही चारो भुजाएँ सदा तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् के जो चरण देवनाओ और असुरो के मुकुटो में लगे रहना तथा मणिया की समक तो सदा अनुरजित रहते हैं, वे ही चरण-गुणल हमारे अभीष्ट मनोरथा की पूति करें।”

राजा साँधाना ने महामुनि वसिष्ठजी से पूछा—हे द्विशोक्तम ! पपट्टर पापरूप मूये अथवा नीले बाण की जमा मने, ऐसी अग्नि कीन भी है यह बनाने की कृपा करें। अज्ञान अथवा म विद्ये मये पाप को 'मूया' कहा गया है और ज्ञान बूझकर विद्या गया पाप 'नीला' कहा गया है। यह चाहे पुराने समय अथवा इनी जन्म का हो, चाहे वर्तमान ज्ञान का और चाहे भागे भागे बाप भविष्य का। पर वह जिस अग्नि की मजबूत विद्या जा मजना है, वही जानने की मेरी इच्छा है।

वसिष्ठजी कहते लगे—राजन् ! सुनो, जिस अग्नि से मूढा और गीला सब प्रकार का काष्ठ जलकर भस्म हो सकता है, उसको बतलाता है । जो व्यक्ति भगवान् विष्णु की एकादशी के दिन इन्द्रियो के विषयो से उपराम होकर उपवास करता है, भगवान् की पूजा करता है, थांबला से स्नान करता है, रात को जागरण करता है, वह सब पापो से मुक्त हो जाता है । मनुष्य जब तक भगवान् पद्मनाभ के शुभदिवस एकादशी का व्रत नहीं करता तभी तक उसकी देह में पाप का निवास रहता है । एकादशी का व्रत सैकड़ो अश्वमेध और राजसूय यज्ञो से अधिक महत्वपूर्ण है । हे राजन् ! ग्यारह इन्द्रियो से जो पाप होते हैं वे सब ग्यारस (एकादशी) के व्रत से नष्ट हो जाते हैं । यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है, राज्य और पुत्र प्रदान करने वाली है तथा शरीर को रोग रहित बनाने वाली है । गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर के तीर्थ महा पवित्र हैं, पर एकादशी उनसे भी बढ़कर है । कुरक्षेत्र, नमदा, देविका, ममुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशी से अधिक पुण्यप्रद नहीं हैं । एकादशी के व्रत के प्रभाव से विष्णु धाम सहज ही प्राप्त हो सकता है ।

राजेन्द्र ! एकादशी का व्रत करने वाला पुरुष अपने पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुल की दस-दस पीढ़ियों का उद्धार कर देता है और स्वयं भी ब्रह्मकुण्ड को जाता है । एकादशी तिथि का व्रत चिन्तामणि अथवा निधि के समान है । अथवा वह सक्त्यों की पूति करने वाले कल्पवृक्ष और वेद वाक्यों के महत्त्व कल्याणकारी है । हे राजन् जो कोई एकादशी युक्त द्वादशी को शरण लेता है, वह चार भुजाओं से युक्त होकर गरुड़ की पीठ पर आरूढ़ हो, वनमाला और पीताम्बर से सुशोभित हो भगवान् विष्णु के धाम को जाता है । इस एकादशी युक्त द्वादशी का प्रभाव चार पाप करी ई धन के लिये अग्नि के समान है । पुत्र-पौत्र तथा अनुल वैभव आदि की इच्छा रखने वाले धर्मपरायण

पुरुष को सदैव एकादशी का उपवास करना चाहिये । इसी से कहा है—

हरिदिनमिहमर्त्यो य करोत्यादरेण,

नरवर स तुकुक्षि मातुरान्नोति नैव ।

बहुवृजिन समेतो ऽ कामत कामतोवा,

व्रजति पदमगन्त लोकनाथस्थ विष्णो ॥

अर्थान्—“जो मनुष्य भक्तिपूर्वक हरि दिवस (एकादशी) का व्रत करता है वह पुन माता के उदर में प्रवेश नहीं करता अर्थात् उसे पुनजन्म ग्रहण करना नहीं होता । जो पापी मनुष्य भी निष्काम अथवा सज्जाम भाव से एकादशी का व्रत करता है वह पापमुक्त होकर भगवान् के लोक को प्राप्त होता है ।”

एकादशी का ऐसा माहात्म्य सुनकर नैमिषारण्य निवासी मुनियो ने पौराणिक सूतजी से प्रश्न किया—“कृपा करके यह बताइये कि किसी भी तिथि का व्रत उसके आरम्भ में करना चाहिए अथवा अन्तिम भाग में । चाहे देव-कर्म हो अथवा पितृकर्म, उसमें तिथि के किस भाग में उपवास करना उचित है ?

सूतजी बोले—‘हे महर्षिगण ! देवताओं की प्रमत्ता के निवे तो तिथि के अन्त भाग में उपवास करना उत्तम माना गया है । पर पितरों को तिथि का मूल भाग (आरम्भ) प्रिय है । इष्टिर्नि देव-ताओं से दत्त गुणा फल प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को तो तिथि के अन्तिम भाग में ही उपवास रखना चाहिए और मृत्यों की तृप्ति

पूर्वविद्धा तिथि ही उत्तम है। सूर्योदय के समय यदि थोड़ी सी भी पूर्व तिथि शेष रह गई हो तो उसे 'पूर्वविद्धा' मानना चाहिये। यदि सूर्योदय में पहले ही वर्तमान तिथि आ गई हो तो उसे 'प्रभूता' मानना चाहिये। उपवास का पारण करने तथा मरण में उसी तिथि को ग्रहण करना उचित है जो उस समय वर्तमान हो। पितृकार्य में सूर्यास्त काल में विद्यमान तिथि ही माननीय है। हे द्विजोत्तमो ! तिथि की गणना सूर्य और चन्द्रमा की गति पर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्य की गति का ज्ञान होने से कालवेत्ता विद्वान् तिथि ज्ञान का निर्णय करते हैं।

इसके पश्चात् में स्नान, पूजा आदि की विधि का क्रम बतलाता है। यदि दिन में शुद्ध समय न हो तो रात को पूजा करनी चाहिये। दिन का समस्त कार्य प्रदोष (रात्रि का आरम्भक काल) में पूर्ण करना चाहिये। यह विधि व्रत रखने वालों के लिये बताई गई है। यदि सूर्योदय काल में थोड़ी भी द्वादशी शेष रही हो तो उसी में स्नान, पूजन, होम, दान आदि सब काम करना चाहिये। द्वादशी का व्रत करने के पश्चात् यदि शुद्ध त्रयोदशी में पारण करने का अवसर मिले तो उसका पुण्यफल अत्यधिक होता है।

॥ गंगा-माहात्म्य वर्णन ॥

राजा स्वमाज्जद की पत्नी मोहिनी एकादशी का विरोध करने के कारण जब दुर्दशा को प्राप्त हो गई तो उसने राज पुरोहित वसु से अपने उद्धार का उपाय पूछा। वसु वाले—मोहिनी ! मैं तुमको प्रगुप्त तीर्थों के सञ्चालन पृथक्-पृथक् कहता हूँ जिससे पापग्रस्त व्यक्ति भी श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त कर सकते हैं। पृथ्वी के समस्त तीर्थों में गंगा श्रेष्ठ है। वे देश, नगर, ग्राम पर्वत और आश्रम धर्म्य हैं, जिनके समीप पवित्र जल युक्त मज्जाजी सर्दिव बहती है, जैसा कि कहा गया है—

ते दे शास्ते जनपदास्ते गंलास्तेऽपि चाश्रमा ।

येषा भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ॥

मनुष्य गङ्गाजी का सेवन करके जिस गति को पाता है वंसी गति तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दान द्वारा भी नहीं मिल सकती । जिन मनुष्यों ने पहले पाप कर्म किये हो पर तत्पश्चात् वे उनसे छुटकारा पाने के निमित्त गङ्गा का सेवन करें तो वे श्रेष्ठ गति के अधिकारी बनते हैं । इस समार मे दुःख से व्याकुल होकर जो जीव उत्तम गति का माग डूँढ रहे हैं उनके लिये गङ्गा के समान अन्य गति नहीं है । अंधे, जड़ और दरिद्रियों का उद्धार भी गङ्गा करती है ।

हे देवी । विशेष रूप स कृष्ण पक्ष की पष्ठी से अमावस्या तक दस दिन गङ्गाजी इस पृथ्वी पर निवास करती हैं । शुक्ल पक्ष की प्रति पदा से लेकर दशमी तक वह पाताल मे रहती हैं और शुक्ल पक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक—दस दिन स्वर्ग मे रहती हैं । इसी कारण उसे त्रिवेणी कहा गया है इसीलिये गङ्गा को सदैव मोक्षदायिनी मान कर कहा है—

वृते तु सर्वं तीर्थानि त्रेताया पुष्कर पर ।

द्वापरे तु कुक्षेत्र कलौ गगा विशिष्यते ॥

कलौ तु सवतीर्थानि स्व स्व धीर्यं स्वभावन ।

गङ्गाया प्रतिमु चति सा तु देवी न कुत्रचित् ॥

गगाम्भ कणदिग्धस्य वायो सस्पर्शनादपि ।

पापशीला अपि नरा परा गतिमवाप्नुयु ॥

योऽसौ सर्वगतो विःणुश्चित्स्वरूपी जनादन ।

स एव द्रव रूपेण गङ्गाभो मात्र साशय ॥

क्षेत्रस्वमुद्धदृत्त वापि शीतमुष्णमथापि वा ।

गाङ्ग्ये तु हरेत्तोय नात्र वायो विचारणा ॥

नवज्यं पयु पित तोय वज्यं पयुं पित दनम् ।

न वज्र्यं जाह्नवीतोय न वज्र्यं तुलसी दलम् ॥

मेरो सुवर्णं च सर्वं रत्नैः साद्योपलानामुदकस्य वापि ।

गङ्गा जलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तु गुणाध्यापरिमाणमत्र ।

अर्थान्—सतयुग मे सभी तीर्थ फलदायक होते हैं, छेता मे पुष्कर तीर्थ, द्वापर मे कुशक्षेत्र और कलियुग मे गङ्गा श्रेष्ठ है । कलियुग मे सभी तीर्थ अपनी अपनी शक्ति को गङ्गाजी मे छोड देते हैं, पर गङ्गा अपनी शक्ति को कभी नहीं छोडती । गङ्गा के जलवर्णो मे युक्त वायु का स्पण होने से भी अनेक पाप दूर हो जाते हैं । जो सर्वत्र व्याप्त है, जिनका चिन्मय स्वरूप है वे जनादेन भगवान विष्णु ही द्रव रूप मे गङ्गाजल होगये हैं । गंगाजन चाहे अपने क्षेत्र मे हो अथवा उसमे से किसी शाखा (नहर आदि) के रूप मे हो, चाहे वह टण्डा हो या गरम हो, पर उसके सेवन से समस्त जीवन के पाप नष्ट हो जात हैं । वासी जल और वासी दल (अन्न) त्याग करने योग्य माना गया है, परन्तु गंगाजल और तुलसी वामी होने पर भी त्याज्य नहीं होते । जल के समस्त कर्णों की गणना हो सकती है, मेरुपर्वत के सुवर्ण की, रत्नों की और वहाँ के पत्थरो की गणना हो सकती है, पर गंगाजल के गुणो का परिमाण कोई नहीं बतला सकता ।

तीर्थ यात्रा की विधि को पूरा न कर सकने वाला व्यक्ति केवल गंगाजल मे स्नान करने से श्रेष्ठ फल को प्राप्त करता है । गंगाजल से भक्ति पूर्वक एक बार कुत्ला करने वाला स्वर्ग लोक मे जाकर कामधेनु के दुग्ध का आस्वादन करता है । शालग्राम शिला पर गंगाजल चढाने वाला मनुष्य पाप रूरी तीव्र अधकार को दूर करके उदयकाल के सूर्य का समान प्रकाशित होता है । भिक्षान्न पर गंगाजल छिडक कर भोजन करने वाला कैंबुन को त्याग करके निकलने वाले सर्प की तरह पाप रहित हो जाता है । इस सम्बन्ध मे कहा गया है—

गङ्गातोषाभिपिक्ता तु भिक्षामशना गंतयः सदा ।
सर्पवत्कञ्चुक मुक्त्वा पापहीनो भवेत् सर्वं ॥

और भी कहा है—

ममोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्वहुविधैरपि ।
वीक्ष्य गङ्गा भवेन् पूतः पुण्यो नात्र सशयः ॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोषं पिबेत् सदा ।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकं पूर्वसंचितं ॥
यो वै गङ्गा समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः ।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मन, वाणी व काया सम्बन्धी कनेव प्रकार के पापों से ग्रस्त हो वह भी श्रीगंगाजी के दर्शन करने में निश्चय ही पवित्र हो जाता है। जो सदा गंगा के तट पर निवास करता है और गंगा जल पान करता रहता है, वह मनुष्य पूर्व मन्त्रित समस्त पापों से छूट जाता है। जो कोई गंगा का आश्रय लेकर सदैव निर्भय भाव से रहता है, वह देवगण, मनुष्य और जानियों द्वारा भी पूजनीय होता है।”

सरस्वती नदी का जल तीन महीना, यमुनाजी का जल सात महीना, नर्मदाजी का जल दस महीना और गङ्गाजी का जल हमेशा ताजा बना रहता है अज्ञात स्थान में मरे हुए मनुष्यों और जिनका शास्त्रानुसार तर्पण न किया गया हो, ऐसे लोगों की हड्डियों को गंगाजी में डालते ही उनकी गद्गति होजाती है। शरीर की शुद्धि करने वाले मंत्रों चान्द्रायण वनों की अपेक्षा नियमित गंगाजल पीने वाला श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में यह कथन टीका ही है—

स स्वर्गं ज्ञानममल योग मोक्ष च विन्दति ।
यस्तु सूर्याशुनिष्ठस्य माङ्गल्यं पिबने जलम् ।
गोमूत्रं यावत्काहाराद् गङ्गापानं विशिष्यते ॥

अर्थात् “जो भक्ति पूर्वक गंगाजी में स्नान करता है और सूर्य

की विरणो से तप्त गंगाजल पीता है वह स्वर्ग, ज्ञान, योग, मोक्ष सब कुछ प्राप्त कर लेता है । गंगाजल का सेवन गो मूत्र और जी के आहार से भी अधिक पवित्र है ।" ज्ञान, अनुभव ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यज्ञ तथा शुभ आश्रमों की प्राप्ति यह सब गंगाजी के दर्शना से मुलभ होती है । उनके दर्शन से समस्त इन्द्रियो की चञ्चलता, दुर्धर्षण, पातक तथा निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं । दूसरे जीवों की हिंसा, क्रुटिमता, अन्य लोगों के दोष बूँदना तथा दम्भ आदि दोष भी गङ्गाजी के प्रभाव से दूर हो जाते हैं । अविनाशी सनातन पदवी की इच्छा करने वाले मनुष्य को बारम्बार गंगाजी का दर्शन करना और उसके जल का स्पर्श करना उचित है । बावड़ी, कुँआ, तालाब आदि बनाने का पुण्यफल गंगाजी के दर्शन से अनायास प्राप्त हो जाता है । नैमिषारण्य, कुरक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्कर तीर्थ में स्नान, स्पर्श और सेवन करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करते हैं वही फल कलियुग में गङ्गाजी के दर्शनों से मिल जाता है ।

हे देवो ! अब मैं गंगाजल में स्नान करने के फल का वर्णन करता हूँ । गंगा के जल में स्नान करने वाले मनुष्य के समस्त पाप क्षीय ही नष्ट हो जाते हैं और उसे अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है । गङ्गाजी के पवित्र जल में स्नान करके शुद्धचित्त हुये मनुष्यों की जो फल प्राप्त होता है वह बहुत से यज्ञों के करने पर भी नहीं मिल सकता । जिस प्रकार सूर्य उदय काल में शब्द अन्धकार का नाश करके प्रकाशित होता है, उन्ही प्रकार गङ्गाजल से अभिषिक्त होने वाला मनुष्य पाप-समूह का नाश करके प्रकाशमान होता है । गङ्गाजी में स्नान करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह उन्ही समय पुण्यात्मा हो जाता है । समस्त तीर्थों में स्नान करने, और मन्दिरों में देव दर्शन का फल गंगास्नान से ही मिल जाता है । गंगा स्नान से श्रेष्ठ अन्य कोई स्नान नहीं है, विशेषतः कलियुग में गङ्गाजी सब पापों का हरण

करने वाली है। गङ्गा में नित्य स्नान करने वाला मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है तथा मृत्यु के उपरान्त विष्णु के लोक जाता है। गङ्गा में मध्याह्न काल में स्नान करने से प्रातः के स्नान में भी अधिक फल प्राप्त होना है। सायंकाल के स्नान से उसमें अर्यधिर तथा शिवजी के समीप स्नान करने से अनन्त गुण फल प्राप्त होता है। गङ्गा में चाहे जहाँ स्नान किया जाय वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायक होता है। परन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर में किया गया स्नान विशेष फलदायक माना गया है। सूर्य भगवान न गङ्गाजी से कहा—“हे जाह्लावी। जो मनुष्य मेरी किरणों से लप्त तुम्हारे जल में स्नान करता है वह मेरे मण्डल को देख कर मोक्ष को प्राप्त होता है।” वरुण ने भी गंगा की महिमा का वर्णन करते हुये कहा—

ये गृहे स्वे स्थितोऽपि त्वा स्नाने सकीर्तयिष्यति ।

सोऽपि यास्यति नाकः वै इत्याह वरुणश्च ताम् ॥

अर्थात्—“जो मनुष्य अपने स्थान में रह कर स्नान करते समय भी तुम्हारा नाम स्मरण करेगा वह भी स्वर्ग का अधिकारी बन जायगा।”

पुरोहित वसु ने कहा— हे मोहिनी ! अब मैं विशेष बात और स्थानों में गंगास्नान का फल बतलाता हूँ। माघमास में निरन्तर गंगा स्नान करने वाला दीर्घ काल तक अपने पुत्रपुत्र सहित इन्द्र लोक में निवास करता है। समस्त मन्त्रान्वितों में गंगाजी में स्नान करने वाला सूर्य गणेश तेजस्वी विमान में बैठ कर वैकुण्ठधाम को जाता है। माघ के गंगा-वाहिनी मास में भी गंगास्नान करने का महान फल बताया गया है। सूर्य के माघ राशि में प्रवेश करने समय और वाहिनी की पूर्णिमा का गंगा स्नान करने में माघ स्नान की अपेक्षा भी अधिक फल प्राप्ति है। वाहिनी अथवा वैशाख में अथवा मृगशिरा के दिन गंगास्नान करने में एक वर्ष तक स्नान करने का फल मिलता है। माघादि और

गुणादि तिथिभ्यो मे गगास्नान करने का फल निरन्तर तीन मास तक स्नान करने के समान होता है।

द्वादशी मे श्रवण, अष्टमी मे पुष्य और चतुर्दशी मे आर्द्रा नक्षत्र का योग हो तो उस दिन गगास्नान अत्यन्त दुर्लभ है। वैशाख, कार्तिक और माघ की पूर्णिमा और अमावस्यायें अत्यन्त पवित्र मानी गई हैं। इन तिथियों मे गगास्नान का सुयोग अत्यन्त पुष्यप्रद होता है। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी को गगास्नान करने से साधारण तिथि के स्नान की अपेक्षा अनेक गुणा पुष्य होता है। माघ कृष्णाष्टमी और अमावस्या का स्नान भी बड़ा पुष्यदायक होता है। फाल्गुन और आषाढ मास मे तथा चन्द्र ग्रहण के समय हुआ स्नान तीन मास तक स्नान करने का फल प्रदान करता है। जो मनुष्य सम्पूर्ण माघ मास अष्णोदय काल मे विधिवत् स्नान करते हैं वे जातिस्मर (पूर्व जन्म की बातों को याद रखने वाले) हो जाते हैं। इतना ही नहीं वे सब शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले, ज्ञानी और निरोगी भी होते हैं। ज्येष्ठ मास की शुक्ला दशमी तिथि को मङ्गलवार और हस्त नक्षत्र मे भगवती भागीरथी का हिमालय से पर्यंलोक मे अवतरण हुआ है। उस दिन स्नान करने से दमगुणा फल प्राप्त होता है। माघमास की पूर्णिमा यदि मघा नक्षत्र और गुरुवार के योग मे युक्त हो तो उस तिथि का महत्त्व बहुत अधिक हो जाता है।

अब देश विशेष की दृष्टि से गङ्गास्नान का फल कहा जाता है। गंगाजी मे वही भी स्नान किया जाय उसका फल कुरुक्षेत्र के स्नान से दस गुना होता है। परन्तु गंगाजी जहाँ विन्ध्याचल पर्वत से मिलती है वहाँ स्नान करने का फल कुरुक्षेत्र स्नान से सौ गुना होता है। वैसे तो गगास्नान सबत्र दुर्लभ, पर गंगाद्वार (हरिद्वार, प्रयाग तथा गंगानगर मे वह बहुत अधिक हो जाता है। हरिद्वार के कुशावर्त तीर्थ मे गगा स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

कुशावतं मे गोविन्द के और वनखल मे भगवान रुद्र के दर्शन करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकाल मे वाराह रूपधारी भगवान विष्णु प्रकट हुये थे, वहाँ स्नान करने से सहस्रो अग्निष्टोम का फल मिलता है। वही के ब्रह्म तीर्थ मे स्नान करने वाला भी ऐसे ही अपरिमित पुण्य का भागी होता है। इसी प्रकार कुञ्जतीर्थ, बपिल क्षेत्र (हरिद्वार), त्रिलोक, नील पर्वत, वनखल मे स्नान करने से निस्तन्देह स्वर्ग की प्राप्ति होती है। एक 'पवित्र' नामका तीर्थ सब तीर्थों मे उत्तम है उसमे स्नान करने वाले को विश्वजित यज्ञ का पुण्यफल मिलता है। फिर 'वेणीराज्य' नाम का एक तीर्थ है, जहाँ पुण्यमयी सरयू पवित्र गंगा से बहिन की तरह मिलती है। भगवान विष्णु के दाहिने चरण को पञ्चाने से देवसरिता गंगाजी की उत्पत्ति हुई है और बायें चरण से सरयू जी का प्रादुर्भाव हुआ है। इस 'वेणीराज्य' तीर्थ मे भगवान विष्णु और शिव की पूजा करने वाला पुरुष विष्णु रूप ही हो जाता है। इसमे आगे गाण्डव तीर्थ है, जहाँ गंगा के साथ गण्डकी का संगम होता है। वहाँ स्नान करने मे एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चान् 'रामतीर्थ' 'शामतीर्थ' 'चपकतीर्थ' 'बलशतीर्थ' तथा "सोमद्वीपतीर्थ" हैं। फिर "कोशिकी" तथा गंगा का संगम है जिसमे स्नान करन से मनुष्य इन्द्रलोक का प्रिय अतिथि बनता है।



॥ गंगाजी की पूजन विधि ॥

वसोर्वचनमाकर्ष्यं गङ्गामाहात्म्यं सूचकम् ।
पुन वप्रच्छ राजेन्द्र त विप्र स्व पुरोहितम् ॥

पुगहिन वनु के मुत्र मे इम प्रकार गङ्गाजी का माहात्म्य श्रवण करन मोहिना ने प्रार्थना की रि हे प्रह्लाद ! मेने गङ्गाजी का बस्याणकारी माहात्म्य और उममे दन तथा दान लादि के विषय मे

तो गुन लिया, अब आप कृपा करके गङ्गाजी के पूजन की विधि गुनाइये ।

वसु ने कहा—देवि । तुमने यह बड़ा-लोक ब्रह्माण्वारी प्रश्न किया है । गङ्गाजी का माहात्म्य और उनकी आराधना बड़े बड़े पापों से छुटकारा दिमाने में समर्थ हैं । पूर्वकाल में पार्वतीदेवी के प्रश्न करने पर भगवान् शिव ने इसका वर्णन किया था । उन्होंने बताया था कि देवताओं के भोजन का समय पूर्वाह्न, ऋषियों के भोजन का मध्याह्न तथा पितृ के भोजन का अपराह्न काल होना है । पर गङ्गाजी का वन और साधना करने वाले को 'नक्त भोजन' (रात्रिकालीन भोजन) करना चाहिये । साथ ही उसे ये छ कर्म भी अवश्य करने चाहिये । स्नान, हविष्य - भोजन, सत्य भाषण, स्वल्पाहार, अग्निहोत्र तथा भूमिगयन, साधक को माघ मास में गङ्गा-तट पर शिवालय के पास रात्रि में एक बार छूतयुक्त खिचड़ी का भोजन करना चाहिये । भोजन करते समय पूर्ण रूप से मौन रहना चाहिये और भगवान् शिव का स्मरण करके जितेन्द्रिय रहते हुये पन्नाश के पत्तों में नियमपूर्वक भाजन करना चाहिये । दोनों पखवारों की चतुर्दशी के दिन उपव्राम करना चाहिये ।

पूर्णिमा के दिन गन्ध तथा गङ्गा जल से, तथा दूध, दही, घी, शहद और छाँड़ से भगवान् शिव का स्नान कराक शिवलिङ्ग पर घतूरा का फूल चढ़ाना । माघ मास पूरा होने पर धाठ ब्राह्मणों का भोजन कराना । इस प्रकार जो व्यक्ति यम, नियम, थढ़ा तथा भक्ति से युक्त होकर एक बार भी शास्त्र के विधानानुसार इस व्रत का पालन कर लेता है वह इस लोक में सुख शान्ति प्राप्त करके मरण के उपरान्त उत्तम गति पाता है ।

दशाब्ध शुक्ल चतुर्दशी को एकाग्र चित्तहोकर शालि चाबल के भात और दूध का भोजन रात में करना पुण्य आदि में भगवान् शिव

की पूजा करनी । भगवान् शिव का पूजन करके उनको भोज्य पदार्थ नैवेद्यरूप में निवेदन करके भोजन करना । भोजन करते समय मौन रहना और अन्य समय भी मौन धारण करना और बट वृक्ष की दातुन करना । रात्रि में गङ्गा तट पर शिवलिंग के पास शयन करना । पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल स्नान करके उपवास का सङ्कल्प करना और रात्रि भर जागरण करना । शिवलिंग को घी से स्नान कराके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करना । गङ्गाजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाने से, मृत्यु भी गङ्गातीर पर ही होती है । मृत्यु समय गङ्गा का स्मरण करने से उसे निश्चय ही मोक्ष भी प्राप्ति होती है ।

ज्येष्ठ मास की शुक्ल दशमी के दिन गङ्गा-पूजा का विशेष महत्त्व है । उस दिन गङ्गा तट पर ही निवास करके रात्रि में जागरण करना । दस प्रकार के पुष्प, दस प्रकार की गन्ध, दस प्रकार के नैवेद्य, दस ताम्बूल तथा दस दीपको से श्रद्धा पूर्वक गङ्गाजी का पूजन करना चाहिये । पूजन करने से पहले शास्त्रोक्त विधि के अनुसार भक्ति पूर्वक दस बार गङ्गाजी में स्नान करना चाहिये । जल में दस मुट्ठी काले तिल और घी अर्पण करना चाहिये । इसी प्रकार सत्तू और गुड़ के दस २ पिंड भी जल में डालने चाहिये । फिर गङ्गा तट पर आटे से गङ्गाजी का रूप चित्र की तरह बना कर उसका पूजन करना चाहिये । पूजा का मन्त्र यह है ॐ नमो दशहराय नारायण्यै गङ्गायै नमः । उस रात को और दिन में भी दस मन्त्र को पाव हजार बार जप लेना चाहिये । ऐसा करने से साधक को भगवान् मनु के बतलाये दश धर्मों (धर्म, दामा, मनोनिग्रह, चोरी न करना, अन्दर और बाहर की पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सात्विक बुद्धि, अघ्नारम विद्या, सरय और अक्रोध) का पत्न प्राप्त होता है । तत्पश्चात् निम्नलिखित स्तोत्र का भक्ति पूर्वक पाठ करना ।

ॐ नमो शिवायै शिवदायै नमोस्तु ते ।
 नमोस्तु विष्णु रूपिण्यै गङ्गायै ते नमो नम ॥
 सर्वं देवस्य रूपिण्यै नमो भेषज मूर्तये ।
 सर्वस्य सर्वं व्याधीना भिषक्श्रेष्ठे नमोस्तु ते ॥
 स्थाणु जङ्गम सम्भूत विष हन्त्रि नमोस्तु ते ।
 ससार विष नाशिन्यै जीवनायै नमो नम ॥
 तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नम ।
 शान्त्यै सताप हारिण्यै सर्वं मूर्तये ॥
 सर्वसाशुद्धिकारिण्यै नम पाय विमुक्तये ।
 भुक्तिभुक्ति प्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नम ॥
 मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नम ।
 नमस्त्रैलोक्यमूर्त्तायै त्रिदशायै नमो नम ॥
 नमस्ते शुक्ल सास्थायै क्षेमवत्यै नमो नम ।
 त्रिदशसन सास्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते ॥
 मन्दायै लिङ्ग धारिण्यै नारायण्यै नमो नम ।
 नमस्ते विश्वभिषायै देवत्यै ते नमो नम ॥

अर्थात्—'ॐ शिवस्वरूपा गङ्गा की नमस्कार है, ॐ कल्याण
 कारिणी गङ्गा को नमस्कार है, ॐ विष्णुरूपिणी गङ्गा देवी को नम-
 स्कार है । समस्त देवता आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप
 सर्व जीवों के सम्पूर्ण रोगों का निवारण करने का लिय बँध स्वरूप हैं,
 आपको नमस्कार है । आप स्वावर तथा जङ्गल, जीवों से उत्पन्न
 होने वाले विषों का नाश करने वाली जीवनदायिनी गङ्गादेवी का
 वाग्मन्त्र नमस्कार है । आप तीनों तापों की निवारण करने वाली
 और सब प्राणों की अधीश्वरी हो, आपको नमस्कार है । नमस्कार है ।
 आप शान्तिस्वरूप हो तथा सबका सन्ताप हरण करने वाली हो सब
 कोई आपका ही स्वरूप है आपका नमस्कार है । आप सबका पूणत

मुद्ध करने वाली और सर्व पापों से मुक्त करने वाली हो, आपको नमस्कार है । आप भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली भागवती (पाताल गङ्गा) हैं—आपको नमस्कार है । आप ही मन्दाकिनी के नाम से प्रसिद्ध आकाश गङ्गा है, आपको नमस्कार है । तीनों लोको में इस प्रकार मूर्त स्वरूप में प्रगट होन वाली आपको नमस्कार है । शुक्ल रूप में रहने वाली आपको नमस्कार है । सबकी कुशल चाहने वाली आप क्षेमवती को नमस्कार है । देवताओं के सिंहासन पर विराजमान आप गङ्गादेवी को नमस्कार है । मन्द गति धारण करने वाले मन्दा और त्रिवलिङ्ग का आधार स्वरूप होने से आपको लिङ्गाधारिणी भी कहा जाता है । भगवान नारायण के चरणारविन्द से उत्पन्न होने से आप नारायणी कहलाती हो, आपको नमस्कार है, रेवती नाम से प्रसिद्ध गङ्गा को नमस्कार है ।

वृहत्यै ते नमो नित्य लोकाधायै नमो नम ।

नमस्ते विश्वमुद्ययै नन्दिन्यै ते नमो नम ॥

पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नम ।

परावर गताद्यायै तारयै ते नमो नम ॥

नमस्ते स्वर्ग सस्थायै अभिन्नायै नमो नम ।

शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नम ॥

उषायै मुखजल्पायै सजोविन्यै नमो नम ।

ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नम ॥

प्रणतार्ति प्रभञ्जिन्य जगन्मात्रे नमो नम ।

विष्णुपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नम ॥

सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नम ।

परापरे परे तुभ्य नमो मोक्षप्रदे सदा ॥

गङ्गा ममाग्रतो भूयाद गङ्गा मे पार्श्वयोरतथा ।

गङ्गा मे सर्वतो भूयास्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थिति ॥

आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्व गङ्गाते शिवे ।

खमेव मूल प्रकृतिस्त्व हि नारायण. प्रभुः ।

गङ्गे त्व परमात्मा च शिवस्तुभ्य नमो नम ॥

'आप नृशतीदेवी को नित्य नमस्कार है, शोक धारिणी को नमस्कार है । आप विश्व से मुझ्या होने से विश्वमुख्य बहलाती हैं, पतल को आनन्द प्रदान करने से आपका नाम नन्दिनी होता है, आपको बारम्बार नमस्कार है । आपको पृथ्वी, जिवामृता और विरजा भी बहा जाता है, आपको नमस्कार है । आप पर (स्वर्ग) तथा अम्बर (पाताल) दोनों में रहने से 'परावरगता' बड़ी जाती हों, आदि शक्ति स्वल्पा होने से 'आद्या' हो, सब लोगों को ससार सागर से तारने वाली होने से 'तारा' कहलाती हो, आपको बारम्बार नमस्कार है । आप स्वर्ग में विराजमान हैं और सबसे अमिन्न हैं, आपको नमस्कार है । आप शान्त-स्वल्पा, प्रतिष्ठा प्राप्त और वरदायिनी हो, आपको नमस्कार है । पाप-समूहों के लिये आप 'उषा' हो, आपने स्रोत रूप मुख से जो सदैव कलकल नाद होता है उसे 'मुख जल्पा' हो, अपने भक्तों को जन्म मरण के पाश से छुड़ाने वाली होने के कारण 'सजीविन्या हो' आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आप ब्रह्म लोक तक पहुँचती हैं और ब्रह्म की प्राप्ति भी करा देती हैं । पापों का नष्ट करने वाली हैं, आपको नमस्कार है । आप प्रणत जनों के कष्टों को दूर करने वाली अखिल जगत की मातास्वरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है । सब प्रकार की विपत्तियों को निवारण कर भङ्गल करने वाली गङ्गाजी को नमस्कार है । पर और अपर सब आपके ही स्वरूप हैं, आप ही परा शक्ति हैं, मोक्ष प्रदान करने वाली हो, आपको नमस्कार है । मेरे सम्मुख गङ्गाजी रहे, मेरे अफल-वफल भी गङ्गा ही हो, गङ्गा ही मेरे चरों तरफ हो और मैं गङ्गा में ही लीन हो जाऊँ ।

हे परमात्मा और शिवस्वरूपा देवी । आदि, मध्य और अन्त में आप ही हो, आपको नमस्कार है नमस्कार है ।'

जो प्रतिदिन भक्तिभाव से इस स्तोत्र का पाठ करता है वह मन, वाणी और शरीर में होने वाले दम प्रकार के पापों अथवा दोषों से मुक्त हो जाता है । रोगी रोग से और किसी सङ्घट में प्रस्ते उस सङ्घट से छुटकारा पाता है । शत्रुओं से, बन्धन से और सब प्रकार के भय से भी वह मुक्त होजाता है । इस लोक में उसकी कामनाएँ पूरी होती हैं और देहान्त के पश्चात् वह परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करता है । जिस घर में इस स्तोत्र की लिप्यकर इसकी पूजा की जाती है वहाँ अग्नि अथवा चोर का भय नहीं रहता । ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन गङ्गाजी के जल में छड़े होकर इस स्तोत्र का दस बार पाठ करने से दरिद्रता अथवा अममर्षना दूर होती है । गङ्गाजी की महिमा गौरी के समान ही है, इसलिये गौरी के पूजन की विधि ही गङ्गाजी के पूजन में भी काम लाई जा सकती है ।



॥ गया माहात्म्य और पिण्डदान विधि ॥

पुरोहित यगु ने कहा—प्रथम तुम्हारे द्वारा प्रश्न किये गये गयातीर्थ के विषय में बतलाता हूँ । वह 'विश्व-तीर्थ' है और वहाँ पर विनामह ब्रह्माजी स्वयं निवास करते हैं । इसकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है कि "गयागुर" नामका एक बड़ा प्रतापी अगुर प्राचीन काल में हुआ था । उसने एक बार बड़ा उग्ररूप लिया जिसके तेज में सब प्राणी स्तब्ध हो गये । जब देवगण ने अपनी बृष्ट गाथा विष्णु भगवान् को गुनाई तो उन्होंने अपनी गदा से उसे मार डाला । तत्पश्चात् विष्णु ने ही वहाँ पर एक पुण्य-क्षेत्र की मर्यादा स्थापित की और स्वयं भी गदाघर के रूप में वहाँ स्थापित हो गये ।

गया तीर्थ को उत्तम जानकर ब्रह्माजी ने वहाँ पर यज्ञ किया और सरस्वती नाम की नदी का भी सृजन किया । वे स्वयम् भी उत क्षेत्र में अर्घ्य हो गये । गया में धर्म पृष्ठ, ब्रह्ममया, गया शीर्ष तथा अक्षयवट के समीप पितरो को जो कुछ दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है । गोतीर्थ और गृध्र वटतीर्थ में किया गया श्राद्ध महान फल प्रदान करता है । वहाँ समस्त दर्शन मत के आध्यक्ष का भी दर्शन करते हैं और घोषणा करते हैं कि "समस्त देवगण इस बात का प्रमाण दें और सब लोकपाल इससे साक्षी रहे कि मैंने मतङ्ग तीर्थ में आवर पितरो का श्राद्ध किया है । तृतीयातीर्थ, पादतीर्थ, निधीरामहल तीर्थ, महाहृद तथा कीशिक तीर्थ में श्राद्ध करने का भी महान फल है । "मुण्डपृष्ठ" में महादेवजी ने अपना चरण रखा था । बनबन-दा तीर्थ में ब्रह्मपिण्ड का निवास अतलाया जाता है । ब्रह्म सरोवर में स्नान करने में ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । धेनुक तीर्थ में तिल धेनु का दान करने का महान पुण्य कहा गया है । गृध्रवट में जाकर भगवान् शंकर के समीप में शरीर पर भस्म लगावे ।

फिर उदयगिरि पर्वत पर जाना । वहाँ सावित्री देवी के परम पुण्यदायक चरण का चिह्न दृष्टिगोचर होता है । वही पर श्रोत्रिन्दार तीर्थ है, वहाँ जाने से फिर जन्म लेना नहीं पड़ता । धर्मपृष्ठ में साक्षात् धर्मराज विराजमान हैं वहाँ दर्शन करने वाले को, अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । ब्रह्मनीर्थ में ब्रह्माजी के दर्शनो से राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है । फिर फल्गुतीर्थ है जहाँ कीशिकी नदी में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है । पर्वत के ऊपर गयाशिर नाम का सरोवर है और पवित्र जल वाली महा नदी भी विद्यमान है । विष्णुवट अक्षय वट भी इसी स्थान पर है । काशी में विशालाक्षी देवी, प्रयाग में ललिता देवी, कृतशीघतीर्थ सैहिव दधी के दर्शनो से जितना पुण्यफल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य गया में मङ्गला देवी के दर्शनो से मिलता है ।

गया में पिण्ड देने का सबसे मुख्य तीर्थ "प्रेत शिला" है, जहाँ पर पिण्ड देने से मृत व्यक्ति प्रेनयोनि में मुक्त हो जाता है। वही पर महानदी और प्रभास-अग्नि के संगम पर स्नान करने से साधक वामदेव (शिव) स्वरूप होजाता है, इसलिये उसे 'वामतीर्थ' कहते हैं। देवताओं की प्रार्थना पर जब भगवान रामने महानदी में स्नान किया तब से वहाँ मनुष्यों को पवित्र करने वाला 'रामतीर्थ' प्रवृत्त होगया। वहाँ स्नान करके निम्न श्लोक बोलने से पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं—

राम राम महावाहो देवानाम भयकर ।

त्वा नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥

अर्थात्—“हे महावाहू राम ! आप देवताओं को भय प्रदान करने वाले हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ, मेरे पाप भी नष्ट होजायें।” प्रेत शिला के जपन प्रदेश को यमराज ने दबा रखा है। इसलिये वहाँ यमराज की बलि देने के पश्चात् उसके दोनों कुत्तों को भी बलि दी जाती है और उस समय निम्न श्लोक बोला जाता है—

श्वानौ द्वौ श्यामशबलौ वैवस्वत कुलोद्भवौ ।

ताभ्या पिण्ड प्रदास्यामि स्यातामेताव हिंसकी ॥

अर्थात्—“वैवस्वत कुल में उत्पन्न दो श्याम और शबल कुत्तों को मैं पिण्ड देना हूँ। वे मेरी हिंसा न करें।” इसके पश्चात् प्रेतशिला आदि तीर्थ में घृत युक्त घट के पिण्ड बना कर और वित्तों का आवाहन करके मंत्रोच्चार पूर्वक पिण्ड देना (प्रेतशिला पर) पवित्र चित्त होकर यज्ञोपवीत को अपसभ्य करना अर्थात् बाँध कंधे पर से दाहिने कंधे पर कर लेना और दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके पितरों का ध्यान और स्मरण करना।

दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेत पर्वत पर जाना और ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके देवता आदि का तर्पण करना और पिण्डदान करके इस प्रकार प्रार्थना करनी—

ये केचित्प्रेतरूपेण यतन्ते वितरो मन ।
 ते सर्वे तृप्ति मायान्तु सकनुमिस्तिलमिश्रिते ॥
 आत्रह्यस्तम्बपर्यन्त यत्त्रिञ्चित्त चराचरम् ।
 मया दत्तेन पिण्डेषु तृप्ति मायान्तु सर्वश ॥

अर्थात् जो कोई मेरा पितृ प्रेत रूप में विलसमान हो वह सब इस तिल मिश्रित सत्त्व के दाण से तृप्ति हो । प्रह्ला से लेकर कीट पर्यन्त जो कुछ इस जगत में है, वे मेरे दिय द्रव्ये पिण्ड से पूर्णत तृप्त हों ।" सबसे पहले पाँच तीर्थों में और उत्तरमानस में ध्यात् करने की विधि है । पहले हाथ में दण लेकर आत्मन करना, फिर नुशयुक्त जल मस्तक पर छिड़कना और उत्तर मानस में जाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान करना । इस समय निम्न प्रार्थना करनी—

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ।
 सूर्यं लोकादि सम्प्राप्ति सिद्धये पितृमुक्तये ॥

अर्थात्—“ मैं उत्तरमानस में आत्म शुद्धि सूर्यादि लोकों की प्राप्ति तथा पितृ की मुक्ति के लिये स्नान करता हूँ ।” इस प्रकार स्नान करके देवता आदि का तपण करना और अन्त में इस प्रकार बोलना—

आत्रह्यस्तम्बपर्यन्त देवपि पितृ मानवा ।

तृप्स्यन्तु पितर सर्वे मातृमातामहादय ॥

अर्थात्— ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त समस्त जगत, देवता, अष्टदि, दिव्य पितृ, मनुष्य पिता पितामह, माता पितामही, मातामही आदि सब तृप्त हो जाये । अपनी शाखा के गृह्यसूत्र में बताये विधानानुसार पिण्डदान सहित ध्यात् करना चाहिये । फिर सूर्य भगवान की निम्न श्लोक से प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्णे सोमभौगङ्गा रूपिणे ।

जीवभागवशमैश्चरराहुकैतु स्वरूपिणे ॥

अर्थात्—“सोम मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, शनैश्चर, राहु तथा केतु जिनका स्वरूप है, उन समस्त प्राणियों के पोषण करने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है।” इस मन्त्र से सूर्य को नमस्कार करके पूजा करने वाला पुरुष अपने पितरो को सूर्य लाव में पहुँचा देता है। ऊपर बतलाये हुये पर्वत से उत्तर की तरफ जो सरोवर है उसे ‘उत्तर मान सरोवर’ कहा जाता है। वहाँ से दक्षिण मान सरोवर तक मोन घरण करके यात्रा करनी चाहिए। दक्षिण मानस में तीन तीर्थ स्थित हैं। उनमें विधिपूर्वक स्नान करके श्राद्ध करना चाहिये। स्नान करते समय निम्न मन्त्र बोले—

दिवाकर करोमीह स्नान दक्षिण मानसे ।

ब्रह्महत्यादि पापौघघातनाय विमुक्तये ॥

‘हे सूर्य भगवान् मैं सब प्रकार के पापों को नाश करने और मोक्ष प्राप्ति के लिये यहाँ दक्षिण मानस में स्नान करता हूँ।’ वहाँ पर स्नान पूजन, पिंडदान आदि करके अन्त में सूर्यदेव को प्रणाम करते समय यह मन्त्र बोलना चाहिये—

नमामि सूर्यं तृप्तर्यं पितृणा तारणाय च ।

पुत्र पौत्र धनैश्वर्याद्यायुरारोग्य वृद्धये ॥

अर्थात्—‘मैं पितरो की तृप्ति तथा उद्धार के लिये और पुत्र, पौत्र धन, ऐश्वर्य, आयु आरोग्य की प्राप्ति के निमित्त भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ।’ फिर मोन भाव से सूर्य का पूजन करके नीचे लिखा मन्त्र बोले—

बन्धवाडादयो ये च पितृणा देवतास्तथा ।

मदीयं पितृभि साद्धं तांपता स्थ स्वधाभुज ॥

अर्थात्—‘बन्धवाड आदि पितृलोक के देवता ये मेरे पितरो के साथ तृप्त होकर स्वधा का उपभोग करे।’

वहाँ से सब तीर्थों में उत्तम फल्गुतीर्थ में जाना चाहिये वहाँ श्राद्ध

करने से पितरो तथा ध्याइकर्ता की तदा वे लिये मुक्ति हो जाती है । प्राचीन काल में ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान विष्णु भव्य फाल्गु के रूप में प्रकट हुये थे । उसमें स्नान करते समय निम्न मन्त्र धोलना चाहिये—

फल्गुतीर्थे विष्णुजले षरोमि स्नानमद्य वै ।

पितृणा विष्णु लोवाय भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धये ॥

अर्थात्—'जित फल्गु के जल रूप में स्वयं भगवान विष्णु उपस्थित हैं उसमें आज मैं स्नान करता हूँ, जिससे पितरो को विष्णु लोव' की और मुझे सासारिक भोगों तथा मुक्ति की प्राप्ति हो ।' फल्गुतीर्थ में स्नान करने के पश्चात् वहाँ पर शिवलिंग रूप में स्थित ब्रह्माजी को नमस्कार करना चाहिये—

नम शिवाय देवाय ईशान पुरुषाय च ।

अघोर वामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे ।

अर्थात्—“ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात— इन पाँच नामों से प्रसिद्ध भगवान शिव को नमस्कार है ।” फल्गुतीर्थ में स्नान करके भगवान गदाधर का दर्शन तथा नमस्कार करने वाला मनुष्य अपने पितरो के साथ बँकुण्ठ को जाता है । भगवान गदाधर के दर्शन का मन्त्र यह है—

ॐ नमो वामुदेवाय नम सकर्षणाय च ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ॥

अर्थात्—“वामुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—इन चार रूपों वाले सर्वव्यापी भगवान् श्रीधर को नमस्कार है ।” पाँच तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य अपने पितरो को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । भगवान गदाधर को पाँचों तीर्थों के जल से स्नान कराके जो उनको पूज्य और वस्त्र आदि से सुशोभित नहीं करता, उसका बिया हुआ ध्याइ

व्यर्थ चला जाता है। फिर घर्मारण्य तीर्थ पर जाकर मतङ्गवापी में स्नान करना और मतगेश्वर का दर्शन करके यह मंत्र बोलना—

प्रमाण देवता. शभुर्लोकपालश्च साक्षिण. ।

मयागत्य मतगोऽस्मिन्पितृणा निष्कृति. कृता ॥

अर्थात्—“समस्त देवता और भगवान् शंकर प्रमाण भूत हैं तथा सब लोकपाल भी इसके साक्षी हैं कि मैंने मतग तीर्थ में आकर पितरो का उद्धार किया है—उनका ऋण चुकाया है।” इसके पश्चात् तीसरे दिन ब्रह्म सरोवर में स्नान करते समय यह मन्त्र उच्चारण करना—

स्नान करोमि तीर्वेऽस्मिन्नृणत्रय विमुक्तये ।

श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थं सिद्धये ॥

अर्थात्—मैं तीनों ऋणों से मुक्ति पाने, श्राद्ध, तर्पण तथा पिण्डदान करने तथा अभीष्ट मंगलों की सिद्धि के लिये इस तीर्थ में स्नान करता हूँ। ब्रह्म सरोवर के समीप ही ‘गो प्रचार तीर्थ’ में जो आन्न वृक्ष हैं उन्हें ब्रह्माजी का लगाया हुआ कहा गया है। उनको सींचने से पितरो की मोक्ष होनी है। उस अवसर पर यह मंत्र बोलना—

आन्न ब्रह्मसरोद्भूत सर्वं देव मय विभुम् ।

विष्णुरूप प्रसिञ्चामि पितृणा चैव मुक्तये ॥

अर्थात्—‘ब्रह्म सरोवर में प्रकट होने वाला यह आन्न वृक्ष सर्व देवमय और भगवान् विष्णु का स्वरूप है। मैं पितरों की तृप्ति के लिये इसका गिपन करता हूँ।’ वहीं पर ब्रह्मरूप की परिक्रमा करनी चाहिये—

ॐ नमो ब्रह्मगोऽजाय जगज्जन्मादि क रिणे ।

भक्ताना य पितृणा य तारकाय नमो नम. ॥

अर्थात्—“जगत् की सृष्टि करने वाले महिषानन्द स्वप्न भ्रमणमा ब्रह्माजी को नमस्कार है। भक्तों और पितरों के उद्धारक

पितामह को बारम्बार नमस्कार है।" फिर इन्द्रियो का समय करते हुए यमराज को बलि देते हुए यह मन्त्र पढ़े—

यमराज धर्मराजो निश्चलार्था इति स्थितौ ।

ताभ्या बलिं प्रयच्छामि पितृणां पितृहेतवे ॥

अर्थात्—“यमराज और धर्मराज निश्चल प्रयोजन वाले हैं। पितरो की मुक्ति के लिये मैं उनको बलि देना हूँ।” उसी स्थल पर “काकबलि” भी इस मन्त्र से देनी चाहिये—

एन्द्रवारुणवायव्या याम्या वं नर्ऋतास्तथा ।

वायसा प्रतिशृहणन्तु भूमौ पिण्ड मयापितम् ॥

अर्थात्—“पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, दायव्य कोण तथा नैऋत्य-कोण के कामगण भूमि पर मेरे दिये हुए पिण्ड को ग्रहण करें।” इसके पश्चात् हाथ में दम लेकर ब्रह्मतीर्थ में स्नान करना और भगवान गदाधर को नमस्कार करके ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना।

प्राचीन काल में हेति नाम का एक अमुर था। उसने अति अद्भुत तपस्या करके ब्रह्मा आदि देवों को सन्तुष्ट करके यह पर प्राप्त किया कि मैं दैत्यो तथा मनुष्यो के किसी शस्त्र से और विष्णु, शिव के ऋक्त आदि आयुधों से भी न मरूँ, इस प्रकार अवध्य तथा महा बलवान हो जाऊँ, इसके बाद उसने देवताओं को जीत कर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। तब ब्रह्मा, शिव आदि देवता विष्णु की शरण में गये और कहने लगे—“भगवान, हेति का वध करो।” विष्णुजी ने कहा—“हे देवो” हेति तो समस्त मुर और अमुरो से अवध्य हो गया है। इस लिये अब तुम मुझे ब्रह्माजी का बनाया कोई नया अस्त्र दो तो मैं उसे मारूँ। तब ब्रह्माजी ने अन्य देवताओं के सहयोग से एक अमोघ गदा बनायी। उसे लेकर विष्णुजी ने हेति से युद्ध किया और उसे मार दिया। इसके पश्चात् भगवान ने जिस स्थान पर उस गदा को धोया था वह ‘गदानोल तीर्थ’ के नाम से प्रसिद्ध है। वही पर “अक्षय वट”

भी है, जिसके निकट पिनरो का श्राद्ध किया जाता है। गदालोल में स्नान करते समत भगवान की प्रार्थना इस प्रकार करे—

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे ।

स्नान करोमि शुद्धघर्थमक्षय्याय स्वराहये ॥

एकान्तरे वडस्यात्रे य. शेते योग निद्रया ।

वालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने ।

ससार वृक्ष शास्त्राया शेष पाप क्षयाय च ।

अक्षय्य ब्रह्मदागे च नमोऽक्षय्य वटाय वै ॥

अर्थात्—“जहाँ भगवान ने गदा छोड़ी है उस गदालोल नामक श्रेष्ठ महातीर्थ में आत्म शुद्धि तथा अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति के लिये मैं स्नान करता हूँ। जो बालरूप धारण करके वट की शाखा के अग्रभाग पर एकान्त स्थल पर योग निद्रा द्वारा शयन करते हैं, उन योगशायी श्री हरि को नमस्कार है। जो ससार बन्धन रूपी वृक्ष का उच्छेद करने के लिये शस्त्र रूप है, जो ममस्व पापों का नाश तथा अक्षय ब्रह्मलोक प्रदान करने वाले हैं, उन अक्षय वट स्वरूप श्री हरि को नमस्कार है।”

भस्मकूट पर्वत के पास भस्म नामधारी भगवान शिव का स्थान है। वही पर भगवान जनादेन का मन्दिर है। वहाँ भगवान के हाथ में निल रहित तथा मग्न रहते हुए दही मिश्रित पिण्ड देने से वे मय पुष्टि विष्णु लोक के अधिकारी हो जाते हैं जिनके लिये वह पिण्ड दिया जाता है। वही पिण्ड देने के पश्चात् भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए—

एष पिण्ड मया दत्तस्तव हस्ते जनादेन ।

गया श्राद्धे त्वया देयो मह्य पिण्डो मृते मपि ॥

तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुदिश्य जनादेन ।

देहि देव गया शीर्षे तस्मै तस्मै मृते ततः ॥

जनादेन नमस्तुभ्य नमस्ते पित्ररूपिणे ।
 पितृणां नमस्तुभ्य नमस्ते मुक्ति हेतवे ॥
 त दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष मुच्यते च श्राण त्रयान् ।
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋण त्रय विमोचन ।
 लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद ॥

अर्थात्—हे जनादेन ! मैंने आपके हाथ में यह पिंड दिया है । मेरी मृत्यु के उपरान्त गया श्राद्ध में आप मुझे पिंड देना । हे जनादेन ! त्रिनके उद्देश्य से मैंने आपको पिण्ड दिया है उनके मरने के पश्चात् आप गयाशीर्ष में उनको अवश्य पिंड देना । हे जनादेन ! आप पिता स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है । पितरो के पात्र रूप नारायण ! आपको नमस्कार है । आर्ष मव प्राणियों की मुक्ति के लिये हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है । गया में साक्षात् जनादेन ही पितृरूप में विद्यमान हैं । उन पुण्डरीकाक्ष हरि का दर्शन करने मात्र से मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है । हे कमल नयन् ! आपको नमस्कार है । हे तीनों ऋणों से मुक्त कराने वाले लक्ष्मीकान्त ! आपको नमस्कार है । पितरो को मोक्ष प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है ।'

हे देवी मोहिनी ! इस प्रकार गया तीर्थ का उत्तम माहात्म्य मैंने तुमको बताया । यह सब पापों को शान्त करने वाला तथा पितरो को मुक्ति प्रदान करने वाला है । इतना ही नहीं—

इदं स्वस्त्ययनं पुण्यं धन्यं स्वर्गतिदं नृणाम् ।
 यशस्यमपि चायुष्यं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥

“यह कल्याण करने वाला, पवित्र और धन्य करने वाला है । इससे मनुष्यों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । यह माहात्म्य यश, आयुष्य, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला है ।

॥ काशी माहात्म्य वर्णन ॥

मोहिनी ने पुरोहित वसु से कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने बारम्बार धन्यवाद कि आपने गया तीर्थ का ऐसा बल्याणकारी माहात्म्य सुनाया। अब आप काशीधाम का उत्तम माहात्म्य सुनाने की कृपा करें।

पुरोहित वसु ने कहा—हे मोहिनी ! परम मङ्गलमयी काशी नगरी धन्य है और जो भगवान् महादेव वहाँ सदैव निवास करते हैं, वे भी धन्य हैं। काशीपुरी तीनों लोकों का सार है। उस रमणीय पुरी का सेवन करने से वह मनुष्यों को उत्तम गति प्रदान करती है। यह गुह्यनम प्रदेश सब प्राणियों को सुख देने वाला और विष्णु तथा शिव के भक्तों को मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। जो राज्ञन पुरुष इस क्षेत्र में निवास करते हैं उनके कर्म समूह पूर्णरूप से शुद्ध हो जाते हैं और वे जन्म-मृत्यु के गहन जाल को भेद कर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। काशी नगरी का विस्तार पूर्व में पश्चिम तक दस कोस और दक्षिण से उत्तर दो कोस है। काशी में जो असी नाम की नदी है वह पिपला नदी के समान है और 'वरुणा' नदी इडा नाडी के समान है। (इन्हीं वरुणा और असी नदियों के सङ्गम पर बसा होने से 'वाराणसी' नाम प्रसिद्ध हुआ है।) इन दोनों नदियों के बीच जो 'मत्स्योदरी' (वर्तमान मछोदरी) है वही मुपुष्पा नाडी क तुल्य है। इस महादेव को भगवान् शिव और विष्णु ने कभी नहीं त्यागा है और न कभी त्याग करेंगे। इगलिये इगका नाम 'अविमुक्त क्षेत्र' कहा गया है।

काशी के योगपीठरूप स्मशान तीर्थ को मणिकर्णिका कहते हैं। अपने कर्म से पतित हो जाने वाले प्राणियों को वहाँ मुक्ति प्राप्त होती है। इस मणिकर्णिका में भगवान् धूर्जटिर् नित्य निवास करते हैं। इस महातीर्थ में स्नान करने से दम अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। अविमुक्त क्षेत्र में भगवान् शिव की पूजा और स्तुति करने वाला पापों

से मुक्त और अजर-अमर होकर स्वर्ग में निवास करता है । जहाँ गङ्गा और वरुणा का सङ्गम है वहाँ बुधवार को श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन स्नान करने से मोक्षरूप फल की प्राप्ति होती है । उस अवसर वहाँ श्राद्ध करने वाला मनुष्य पितरों का उद्धार करके विष्णुलोक जाता है । गङ्गा के साथ जहाँ वरुणा और असी का सङ्गम हुआ है वहाँ सगमेश्वर शिव हैं । उनका भक्तिपूर्वक पूजन करने वाला शिवरूप ही होजाता है ।

सगमेश्वर पीठ के बायव्य भाग में राजा रागर का स्थापित किया चतुर्मुख शिवलिंग है । उसके भी बायव्य कोण में भद्रदेह नामक सरोवर है (जिसे गायों के दूध से भरा गया था) पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा का समय उसमें स्नान करने का पुण्यवान् माना गया है । उससे थोड़े अन्तर पर कृतिवासेश्वर शिवलिंग है, जिसका दर्शन और पूजन करने से मनुष्य एक ही जन्म में भगवान् शिव का भ्रान्तिध्य प्राप्त कर लेता है । सतयुग में इसका नाम त्र्यम्बकेश्वर था, त्रेता में कृतिवासेश्वर हुआ द्वापर में यह महेश्वर के नाम से विख्यात हुआ और कलियुग में सिद्ध पुरुष उसे 'हस्तिपालेश्वर' कहते हैं । सनातन मोक्षप्रद ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो तो वारम्बार भगवान् कृतिवासेश्वर के दर्शन करते रहना चाहिये । इस शिवलिंग का महा शिवरात्रि के दिन फल, फूल विल्व पत्र से पूजन करने पर परमपद की प्राप्ति होती है । पश्चिम दिशा में घण्टाकर्ण नाम का सरोवर है उसमें स्नान करके व्यासेश्वर का दर्शन करने वाला मनुष्य चाहे जहाँ मृत्यु को प्राप्त हो उसको काशी में मरण का फल ही प्राप्त होता है । हे देवी ! काशीपुरी का साहात्म्य विशद है । मैंने इसे संक्षेप में कहा है । इससे मनुष्यों को स्वर्ग, यज्ञ, धन तथा पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति होती है ।

। नारद पुराण (द्वितीय खंड) समाप्त ॥